निम्बार्क-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में

अनन्तश्रीविभूषित निम्बार्कपीठस्थ जगद्गुरु श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ. परमानन्द शर्मा

निम्बार्क-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में
अनन्तश्रीविभूषित निम्बार्कपीठस्थ जगद्गुरु
श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज
का
व्यक्तित्व एवं कृतित्व
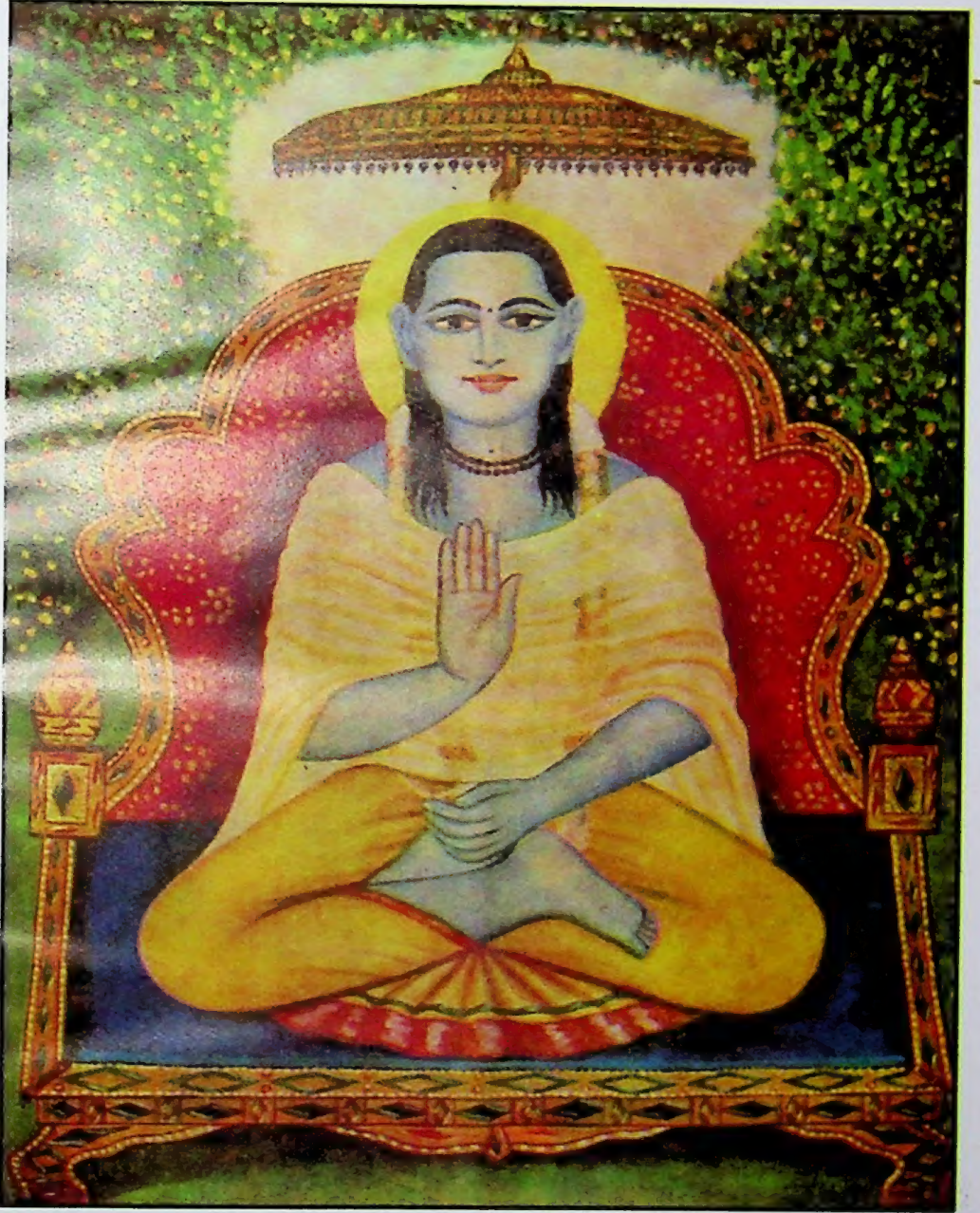
श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्य चक्रचूड़ामणि रसिकराजराजेश्वर

जगद्गुरु श्री निम्बार्क भगवान्

✽ श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ✽

।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ।।

निम्बार्क-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में
अनन्तश्रीविभूषित निम्बार्कपीठस्थ जगद्गुरु
श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज
का
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

निम्बार्क-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में
अनन्तश्रीविभूषित निम्बार्कपीठस्थ जगद्गुरु
श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज
का
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ. परमानन्द शर्मा
एम.ए. (संस्कृत, हिन्दी साहित्य)
एम.फिल. (संस्कृत) साहित्याचार्य

卐 समर्पण 卐

श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्य, चक्र-चूड़ामणि, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र,
द्वैताद्वैतप्रवर्त्तक, यतिपतिदिनेश, राजराजेन्द्रसमभ्यर्चितचरणकमल,
भगवन्निम्बार्काचार्यपीठविराजित, अनन्तानन्त-श्रीविभूषित, जगद्गुरु
श्री निम्बार्काचार्य **श्री 'श्रीजी' श्री राधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी** महाराज
अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, श्रीनिम्बार्कतीर्थ,
सलेमाबाद-किशनगढ़ (अजमेर) राजस्थान के पुनीत चरणारविन्दों में—

प्रो.(डॉ.) प्रभाकर शास्त्री | डॉ. परमानन्द शर्मा

अवलोकनीयम्

❑

महामहिम राष्ट्रपति सम्मानित मनीषी
प्रो. (डॉ.) प्रभाकर शास्त्री
शोध ग्रन्थ निर्देशक

सेवानिवृत्त अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर (राजस्थान) 302001

मचर्चिका

वस्तुतः वह जीवन का संस्मरणीय दिवस ही रहा है, जिस दिन अपने गुरु स्व. पं. श्री रामगोपालजी शास्त्री, साहित्य-धर्मशास्त्राचार्य के साथ मेरा निम्बार्कतीर्थ, सलेमाबाद पहुंच कर अनन्त श्रीविभूषित श्री 'श्रीजी' महाराज के साक्षात् दर्शन का अवसर प्राप्त हुआ था। जैसे प्रभावशाली चुम्बक लोह को बलात् आकृष्ट कर लेता है तथा अपने से बलात् हटाये जाने पर भी उसे अलग नहीं कर पाते, ठीक उसी तरह मैं साक्षात् भगवत्स्वरूप, भगवदंशावतार श्री 'श्रीजी' महाराज के चरणारविन्दों से संपृक्त हो गया हूँ। मेरी उनके प्रति जो अगाध श्रद्धा है, वह भी मैं पूर्वजन्मोपार्जित पुण्यों का ही सुपरणिाम मानता हूँ। उनके पावन दर्शनों से उनके सुपवित्र चरणारविन्द स्पर्श से, उनके उपदेशामृत श्रवण से, जो असीम आनन्दानुभूति होती है, वह शब्दों से अभिव्यक्त नहीं की जा सकती। राजस्थान संस्कृत अकादमी के निदेशक पद पर कार्य करने के अवसर को भी मैं एक निमित्त ही मानता हूँ, जिस कारण मुझे अनेक बार श्री 'श्रीजी' महाराज के व्यक्तित्व एवं वैदुष्य से सुपरिचित होने का पुण्य अवसर प्राप्त हुआ और उनकी सारस्वत-साधना से प्रभावित होने का अवसर भी उन्होंने ही स्वतः प्रदान किया, जब उनकी दिव्यलेखनी से प्रसूत **'निम्बार्कचरितम्'** के दर्शन व अध्ययन से साक्षात्कार हुआ। यह राजस्थान संस्कृत अकादमी का गौरवमय प्रसंग रहा है जब श्री 'श्रीजी' महाराज ने उस अमूल्य ग्रन्थरत्न के प्रकाशन का आशीर्वादात्मक आदेश प्रदान कर मुझे अत्यन्त अनुगृहीत किया, साथ ही राजस्थान संस्कृत अकादमी को भी उपकृत किया। उसके बाद श्री परमानन्द शर्मा, जो आचार्य पीठ के प्रति पूर्णतः समर्पित एवं मेरे पूज्य पितृचरण पं. श्री वृद्धिचन्द्र जी शास्त्री के शिष्य श्री हरिनारायण जी शास्त्री के पौत्र हैं, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के नियमित छात्र बने और धर्मशास्त्र वर्ग से स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण कर शोधोपाधि प्राप्त करने की कामना से मेरे पास उपस्थित हुए। यह भी उस सर्वेश्वर प्रभु की अहैतुकी कृपा का ही परिणाम मानता हूँ कि श्री शर्मा ने श्री 'श्रीजी' महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध कार्य करने की अपनी मनोभिलाषा को व्यक्त किया और मेरे अन्तःकरण ने तुरन्त और सहर्ष स्वीकृति

प्रदान कर दी। उसी का सुपरिणाम है कि आज वह शोधकार्य **'ग्रन्थरत्न'** के रूप में प्रकाशित हो रहा है।

इस 'ग्रन्थरत्न' के वास्तविक अधिकारी अनन्त श्री विभूषित श्री 'श्रीजी' महाराज ही हैं, जिन्हें यह समर्पित कर मैं **'ऋषिऋण'** से अपने आपको उन्मुक्त मान रहा हूँ। इसमें चतुःवैष्णव सम्प्रदायों में सर्वतः प्राचीन निम्बार्क सम्प्रदाय का संपूर्ण इतिवृत्त गुम्फित है। धार्मिक विचारों की प्रधानता वाले उपासना प्रधान इस सम्प्रदाय के 'दर्शन' को सरलता व सहजता से आत्मसात् किया जा सकता है, क्योंकि वह आडम्बर रहित है, युगल भगवत्स्वरूप श्री राधिकाजी व श्रीकृष्ण भगवान् की आनन्दप्रदलीलाओं से ओतप्रोत माधुर्य रसप्रधान है, जो लोक में समर्पण भावना को प्रोत्साहित करता है। इस सम्प्रदाय द्वारा स्वीकृत स्वाभाविक द्वैताद्वैत (भेदाभेद) सिद्धान्त का भी यही रहस्य है। अर्थात् जीवरूप से, चराचरात्मक विश्व, ब्रह्म से भिन्न है, किन्तु उसका अंश एवं शक्ति होने से स्वभावतः अपृथक् सिद्ध अभिन्न भी है और यही स्वाभाविक भेदाभेद है। इसीलिए इस सम्प्रदायानुसार जगत् के किसी भी अंश को मिथ्या मानना भूल है। अतः प्रकृति और उसके कार्यरूप बन्धनादि को मिथ्या नहीं मान सकते। अस्तु, जिज्ञासु जन संपूर्ण ग्रन्थरत्न के मनोयोगपूर्वक अध्ययन से उन सभी प्रश्नों का समाधान प्राप्त कर सकेंगे, ऐसा विश्वास है।

अधिक विवेचन न कर संक्षेप में, यह ग्रन्थरत्न अनन्तश्री विभूषित श्री **'श्रीजी' महाराज श्री राधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य जी** के चरणारविन्दों में सादर समर्पित कर उनके शुभाशीर्वाद का आकांक्षी हूँ।

'त्वदीयं वस्तु पूज्येश - तुभ्यमेव समर्पये।'

गंगादशमी - सं. 2060 चरणचञ्चरीक

दिनांक 10.06.2003 **(प्रो.) प्रभाकर शास्त्री**

आत्मनिवेदनम्

भारत की अनन्त और असीम महिमा है, जिस भारत की परम-पावन-पुनीत-रम्य धरा पर स्वयं सर्वेश्वर श्रीहरि नाना स्वरूपों में अवतीर्ण होते हैं, यहां की पावन-पवित्र रज में देवगण भी बाल-क्रीड़ा करना अपना अहोभाग्य मानते हैं। भारत की पावन धरती का गुणगान देवगण भी मुक्त कण्ठ से करते हैं—

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ये भारत भूमि-भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्ग-भूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्"

(विष्णु पुराण, अंश2, अध्याय 3, श्लोक 24)

अगणित ऋषि-मुनि, तपस्वी, योगी-यति, संन्यासी, विरागी महात्मा-जन इसकी मंगलमयी क्रोड में तपः साधना करते रहे हैं।

गंगा-यमुना-सरस्वती प्रभृति पुण्य सरससलिला सरिताएं जहां पर कल-कल निनाद से प्रवहमान होती हुई, मानव के पापों का क्षय करती हैं। जिस सुभग-वसुधा पर आध्यात्मिक चेतना का मनोहर दर्शन सदा-सर्वदा विद्यमान है, वस्तुतः ऐसे भारतवर्ष का गुणगान व्रजेश्वर श्रीसर्वेश्वर प्रभु का ही स्तवन है।

आर्यावर्त्त (भारत) की अपनी प्राचीन भाषा सुर-भारती, गीर्वाण-वाणी संस्कृत है, जिसका अपरमित माहात्म्य है। यह देववाणी न केवल भारत की भाषाओं की जननी है, अपितु समस्त विश्व-भाषाओं का मूल-स्रोत है। इस भारती में अनन्त ज्ञान-विज्ञान निहित है। आध्यात्मज्ञान की तो यह महासिन्धु रूप है, ऐसी दिव्यातिदिव्य वाणी का स्वाध्याय परमपुण्य रूप है। यथा द्रष्टव्य है–

"श्रुति-स्मृति ज्ञान विधान धारिणीं,
समग्र भूमौ सुख शान्ति वाहिनीम्।
सुधामयीं तां मनुजाऽघ-हारिणीं,
भजे सदाऽहं हृदि देव भारतीम्।।
समग्र-भाषा जननीमधीश्वरीं,
प्रजाकरीं मुक्तिकरीं महेश्वरीम्।
रसालरूपां रसदान-तत्परां,
भजे सदाऽहं हृदि देवभारतीम्।।"

(भारत-भारती वैभवम्, श्लोक सं. 50-51)

मैकाले के मानस-पुत्रों द्वारा सुरभारती-संस्कृत को 'मृतभषा' का दर्जा दिया गया है, परन्तु उनका इस प्रकार का वक्तव्य सत्य से कोसों दूर, दुर्भावना से ग्रसित, मात्र एक कपोल-कल्पित विचार है।

जिस संस्कृत का अक्षय साहित्य-भण्डार हो, जिस वाङ्मय में 'ऋग्वेद' जैसा विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ हो, 'महाभारत' जैसा 'ज्ञान का विश्वकोष' हो, जिस सुरभारती की उपासना अनवरत सत्साहित्यकार कर रहे हों, जिसके ज्ञान-वारिधि में अनुसंधित्सु-वृन्द बार-बार गोते लगाकर अमूल्य उपादेय दैदीप्यमान ज्ञान रत्नों का अनुसंधानपूर्वक संचय कर रहे हों, वह सुरभारती संस्कृत 'मृतभाषा' कैसे हो सकती है?

संस्कृत को 'मृतभाषा' कहना पाश्चात्य चकाचौंध से चुंधियाते हुए कुछेक अज्ञों का अनर्गल प्रलाप है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से देखें , तो संस्कृत भाषा एक वैज्ञानिक-भाषा है, जिसमें ध्वनियों का वर्गीकरण वैज्ञानिक क्रमानुसार है। संस्कृत भाषा भारतीय भाषाओं का ही नहीं अपितु समस्त विश्व-भाषाओं का मूलस्रोत रही है। यह भाषा-विज्ञान के खराद-बिन्दुओं पर पूर्णतः खरी उतरती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संस्कृत एवं हिन्दी का सम्बन्ध चोली-दामन का सा साथ है। यथा, समुद्धृत है-संस्कृत के बिना हिन्दी मूल-विहीन है तथा हिन्दी के बिना संस्कृत फलविहीन है।

संस्कृत एवं हिन्दी की विपुल साहित्य-निधि को सत्साहित्यकारों द्वारा अनवरत अमूल्य साहित्य-रत्नों द्वारा अवदान दिया जाता रहा है। इसी सत्साहित्यप्रणेता स्वर्ण शृंखला की एक रत्नजटित, मणि-मण्डित कड़ी **अनन्त-श्री-विभूषित निम्बार्क-पीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज (सलेमाबाद)** हैं, आप श्री द्वारा प्रदत्त साहित्यिक अवदान भूरि-भूरि स्पृहणीय तथा श्री सर्वेश्वर प्रभु के प्रसादवत् है। आपश्री ने गद्य, पद्य, स्तोत्र आदि साहित्यिक विधाओं में लेखनी चलाई है तथा समवैदुष्य व समानाधिकार के साथ सुरभारती संस्कृत एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी दोनों में पूर्णतः मौलिक सत्साहित्य का प्रणयन किया है।

मैंने अपने प्रस्तुत 'शोध प्रबन्ध' में निम्बार्क दर्शन के परिप्रेक्ष्य में अनन्त-श्री विभूषित निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययनानुशीलन किया है। शोधप्रबन्ध पंच अध्यायात्मक है, जिसके पंचम अध्याय को दो खण्डों में विभाजित किया गया है, प्रथम खण्ड अनन्तश्री विभूषित निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज के व्यक्तित्व से सम्बन्धित है तथा द्वितीय खण्ड में श्री 'श्रीजी' महाराज के कृतित्व का विवरणात्मक अध्ययन है। इस शोध-प्रबन्ध में श्री निम्बार्क-सम्प्रदाय एवं अनन्त-श्री-विभूषित निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) का विवेचन है।

यदि पूज्यपाद वर्तमान जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज के समस्त अभिनन्दनों, समस्त सम्मानों, प्रशस्तियों आदि का सप्रमाण विवरण प्रस्तुत किया जाता, तो शोध-प्रबन्ध का आकार बहुत अधिक बृहत् हो जाता, जिससे शोध सीमाओं का उल्लंघन होता। अतः यहां केवल प्रमुख विषयों एवं घटनाओं का उल्लेख संभव हो सका है, एतदर्थ मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

मनुस्मृतिकार महर्षि मनु ने लिखा है कि–

यं मातापितरौ क्लेशं, सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या, कर्तुं वर्षशतैरपि॥

अर्थात् मनुष्य को जन्म देने में माता-पिता जिस क्लेश की अनुभूति करते हैं, उस अवर्णनीय क्लेश की निष्कृति मानव सैकड़ों वर्षों तक उनकी सेवा-शुश्रूषा करके भी नहीं कर सकता। वस्तुतः यह कथन भारतीय संस्कृति का आदर्श है।

मैं अपने परमादरणीय पूज्य पिता श्री **पं. मोहनशास्त्री प्रभाकर** एवं वन्दनीयचरणा पूज्या **माताश्री गीता शर्मा शास्त्री** का आभार यदि अभिव्यक्त करूं तो वह केवल औपचारिकता ही होगी, क्योंकि मेरा सम्पूर्ण जीवन आज जिस रूप में विद्यमान है, वह सब कुछ उन्हीं की अनुपम देन है। मैं उनके प्रति विनय भाव से नतमस्तक तो हूं ही, पर सदा-सर्वदा अपने भावी जीवन में भी उनके आशीर्वाद का आकांक्षी रहूंगा। साथ ही मैं अपने प्रातः वन्दनीय, पूज्यपाद, पण्डित-प्रवर, सन्मार्ग-प्रेरक गोलोकवासी पितामह श्री **पं. हरिनारायण जी शास्त्री** को भी इस अवसर पर विस्मृत नहीं कर सकता, जो न केवल मेरे पितामह थे, वरन् जीवन के सच्चे पथ-प्रदर्शक थे। संस्कृत भाषा एवं साहित्य के अध्ययनानुशीलन के प्रति तो उन्होंने मुझे प्रवृत्त किया ही, साथ ही साक्षात् भगवद्स्वरूप अनन्तश्रीविभूषित प्रातः स्मरणीय निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज के पुनीत पाद-पद्मों में आश्रय पाने का इस चरणरजकिंकर का मार्ग-प्रशस्त किया।

एम.ए., एम.फिल. (संस्कृत) परीक्षा समुत्तीर्ण करने के उपरान्त मेरे मन में शोध-कार्य करने की जिज्ञासा हुई, मैं इसे न केवल इस जन्म के, अपितु जन्मान्तरों के उपलब्ध पुण्यों को भी कारण मानता हूँ कि अपनी रुचि एवं मनः कामनानुरूप वर्तमान निम्बार्कपीठस्थ, अनन्त श्री विभूषित भगवद्स्वरूप देवतात्मा श्री 'श्रीजी' महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध-कार्य करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ, जिसकी पूर्णाहुति के रूप में अपनी अकिंचन बुद्धि-विलास स्वरूप यह शोध-प्रबन्ध परीक्षणार्थ राजस्थान विश्वविद्यालय को प्रस्तुत कर सका एवं पी-एच.डी. (संस्कृत) उपाधि प्राप्त कर सका।

यह एक दैवीय-संयोग ही मानता हूँ, कि मैं जिस विषय पर शोध कार्य करने के लिए किंचित् विचलित था, उसे मूर्त-रूप प्रदान करने के लिए संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के प्रोफेसर एवं अधिष्ठाता (कला संकाय) विद्वद्वरेण्य, प्रातःस्मरणीय परम श्रद्धेय गुरुदेव **श्रीयुत डॉ. प्रभाकर शास्त्री**, जो सम्पूर्ण भारतवर्ष में शोध के अधिकारी विद्वान् तो माने ही जाते हैं, साथ ही परम्परा-प्राप्त भारतीय संस्कृति के मूल धर्मशास्त्र विषय के विशिष्ट विद्वान् भी हैं साथ ही जो संस्कृत साहित्य एवं हिन्दी साहित्य दोनों के विलक्षण मनीषी हैं और अनन्तश्री विभूषित निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज में अनन्य श्रद्धा एवं भक्ति रखते हैं, आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

परम श्रद्धेय गुरुदेव श्रीमान् **डॉ. प्रभाकर शास्त्री जी** की अनुमति एवं दिशा-निर्देश के फलस्वरूप इस शोधकार्य की रूपरेखा बनी और उसके अनुरूप यह शोध प्रबन्ध परिपूर्ण हो सका। पूज्यचरणा परम-श्रद्धेया गुरुमाताश्री **श्रीमती आभा शास्त्री** का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे पुत्रवत् स्नेह व ममत्व दिया।

इस शोधकार्य की पूर्णता में श्रीसर्वेश्वर प्रभु की अन्तःप्रेरणा, अपने पूज्यपाद पितामह, वन्दनीय माता-पिता, प्रातःस्मरणीय गुरुदेव श्री डॉ. प्रभाकर शास्त्री एवं मुहुर्मुहुः वन्दनीय अनन्त श्री विभूषित निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज का जो शुभाशीर्वाद, कृपा सानिध्य एवं सहयोग प्राप्त हुआ है, उससे मैं संभवतः इस जन्म में तो उऋण नहीं हो सकता। मैं सभी प्रातःस्मरणीयों की चरण-वन्दना करते हुए उनके प्रति न केवल आभारी हूँ, अपितु समर्पित हूँ।

संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय में कार्यरत समस्त गुरुजनों को मैं सादर सभक्ति नमन करता हूँ, कि उनका मुझे मंगलमय आशीर्वाद प्राप्त होता रहा है। उन्होंने जो मुझे मार्ग-दर्शन प्रदान किया है उसके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। इसी प्रसंग में, मैं निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) पीठस्थ श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्रद्धेय श्री पं. वासुदेवशरण जी उपाध्याय, कार्यरत अध्यापक-वृन्द, श्रीयुत पूज्य पं. दयाशंकर जी शास्त्री (ब्यावर-वास्तव्य), निम्बार्कपीठस्थ समस्त परिकर, एवं अन्य सभी शुभ-चिन्तक, बन्धु-बान्धवों के प्रति आभार ज्ञापित करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने ज्ञान संवर्धन के साथ अन्य सभी आवश्यक सुविधाएं समुपलब्ध करने में अखण्ड सहयोग किया।

इसी क्रम में अनुजा श्रीमती कादम्बिनी शास्त्री, एम.ए., बहनोई श्रीमान् संजय कुमार शर्मा, एम.ए., सहोदर ललित शास्त्री (शोध अध्येता), अनुज मनोज शर्मा, एम.ए. (अंग्रेजी), हनुमान शर्मा ज्योतिषाचार्य (अध्ययनरत), धर्मपत्नी श्रीमती अनुराधा शास्त्री, अन्य सभी सुहृदयवर्य एवं सहयोगी-वृन्द को भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

यह भगवान् श्री सर्वेश्वर प्रभु की अहैतुकी कृपा का ही सुपरिणाम है कि अखिल भारतवर्षीय निम्बार्कपीठ सलेमाबाद की शिक्षा समिति ने इस महत्त्वपूर्ण 'ग्रन्थरत्न' के प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान कर अनुगृहीत किया। मैं सभी संपृक्त अधिकारी वर्ग के प्रति सादर नमन करता हूँ, जिनके अनुग्रह से यह 'ग्रन्थरत्न' लोकार्पित हो रहा है, जिसे इसके सच्चे अधिकारी **अनन्त श्रीविभूषित प्रातःस्मरणीय श्री 'श्रीजी' महाराज श्री राधासर्वेश्वर शरणदेवाचार्य जी महाराज** को ही समर्पित है। इसमें जो भी विवेचित है, उनके पुण्य प्रताप से ही संकलित हो सका है।

गंगादशमी - सं. 2060

विनयावनतः

डॉ.परमानन्द शर्मा

एम.ए. (संस्कृत, हिन्दी साहित्य)

एम.फिल्.(संस्कृत), साहित्याचार्य

प्रथम अध्याय

निम्बार्क-दर्शन : परिचय एवं प्रमुख सिद्धान्त

सामान्य-परिचय

'दर्शन' शब्द के लिए अंग्रेजी में व्यवहृत 'फिलोसॉफी' शब्द का विकास यूनानी भाषा के 'फिलॉसफस' से हुआ है, जिसका अर्थ विद्या का प्रेम होता है। अतः दर्शन की परिभाषा करते हुए प्लेटो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक' में लिखा है—"वह, जिसे प्रत्येक प्रकार के ज्ञान में रुचि है और जो सीखने के लिए जिज्ञासु है तथा कभी भी सन्तुष्ट नहीं होता, सही रूप में 'दार्शनिक' कहा जाता है।[1] दर्शन की इस परिभाषा में उसे सब प्रकार के ज्ञान की जिज्ञासा और कभी न बुझने वाली ज्ञान की प्यास कहा गया है। दूसरे शब्दों में, 'दार्शनिक' आजीवन सत्य की खोज में लगा रहता है, क्योंकि उसे सत्य से प्यार होता है। वैज्ञानिक को भी सत्य की खोज रहती है, किन्तु वह सत्य विशेष क्षेत्र का सत्य होता है, जबकि दार्शनिक की खोज सम्पूर्ण सत्य की खोज है। प्लेटो के शब्दों में वह 'सत्य के किसी अंश का नहीं, बल्कि समग्र का प्रेमी है।[2]

वेंकटराव एम.ए. का कहना है—'दर्शन एक विचारक अथवा दृष्टिकोण है, जिससे व्यवस्थित समग्र रूप में विश्व-दर्शन किया जाता है, जिसमें मानव, प्रकृति तथा ईश्वर अथवा अन्तिम वास्तविकता का समुचित स्थान रहता है।'[3]

दार्शन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। समस्त ज्ञान-विज्ञान का उसमें समाहार हो जाता है। स्वामी करपात्री जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'मार्क्सवाद और रामराज्य'** में लिखा है, 'दृश्यते वस्तु यायात्म्यं जनेन इति दर्शनम्'। दूसरे शब्दों में प्रमाण द्वारा आत्मानात्मा का ज्ञान जिससे होता है, उसका नाम 'दर्शन-शास्त्र है।'[4] इस प्रकार दार्शनिक समपूर्ण जीवन पर दृष्टि रखता है। जब ग्लाउकन ने सुकरात से यह पूछा क़ि 'सच्चे दार्शनिक कौन हैं?' तो सुकरात ने उत्तर दिया, 'वह, जो कि सत्य की झांकी के प्रेमी हैं।'[5] दार्शनिक का यह ज्ञान सार्वभौम होने के साथ-साथ शाश्वत भी होता है। इस सम्बन्ध में बृहदारण्यकोपनिषद् का वह प्रसंग उल्लेखनीय है, जब याज्ञवल्क्य की इच्छा सन्यास लेने की हुई और उन्होंने अपनी दोनों स्त्रियों को सम्पत्ति बांटने का प्रस्ताव किया तो कात्यायनी के मुख् से तो कुछ नहीं निकला, क्योंकि वह प्रेयः कामिनी थी, उस धन में ही उसका सारा सुख निहित था, किन्तु मैत्रेयी थी श्रेयः कामिनी। अतः उसने सम्पत्ति को अस्वीकार करते हुए अमरत्व प्रदान करने वाले शाश्वत ज्ञान की शिक्षा देने की इच्छा व्यक्त की, 'जिससे मैं अमर नहीं हो सकती उसे लेकर मैं क्या करूँगी? मुझे तो वही बात बताइए जिससे मैं अमर हो सकूँ।'"[6]

इस प्रकार दार्शनिक दृष्टिकोण में आश्चर्य की भावना, सन्देह, समीक्षा, चिन्तन और उदारता एवं सत्य की जिज्ञासा निहित है। ज्ञान ड्यूबी के अनुसार "जब कभी दर्शन को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया गया है तो वह सदैव अवधारित हुआ है कि यह प्राप्त किये जाने वाले उस ज्ञान का महत्त्वांकन करता है, जो कि जीवन के आचार को प्रभावित करता है।[7]

वेदार्थ को समझने के लिए वेदांगों के बाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान उपांगों का है, जिन्हें प्रायः दर्शनशास्त्र के नाम से जाना जाता है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा तथा उत्तर मीमांसा नाम से अभिहित इन 6 दर्शनों के प्रणेता क्रमशः गौतम, कणाद, कपिल, पतंजलि, जैमिनि तथा बादरायण व्यास हैं। पूर्व मीमांसा को प्रायः मीमांसा तथा उत्तरमीमांसा को वेदान्त दर्शन, ब्रह्मसूत्र तथा शारीरिक सूत्र के नाम से भी जाना जाता है।

निम्बार्क-दर्शन के प्रवर्तक सुदर्शन चक्रावतार **भगवन्निम्बार्काचार्य** हैं। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो द्वैताद्वैत दर्शन प्रणाली अन्य सभी दर्शनों से अधिक व्यापक होने के कारण ब्रह्म, जीव, प्रकृति, माया, सृष्टि एवं प्रलय, चेतन तथा अचेतन तत्त्वों की संतोषप्रद व्याख्या प्रस्तुत करने में अधिक उपयुक्त है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि **'एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतो मुखम्'** एकत्वेन अभेद रूप से, पृथक्त्वेन भेद रूप से अनेक महर्षि विश्व रूप से मेरी उपासना करते हैं। **'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि"** जीवन मेरे से अभिन्न है, शब्द से भिन्न भी है। यही भेदाभेद है। श्रीशंकराचार्य जी ने अभेद पंक्ष को प्रमुख माना है और माध्वाचार्य ने भेद पक्ष को। श्रीनिम्बार्काचार्य का भेदाभेद सिद्धान्त दोनों की विचारधारा की अपूर्णता को पूरा करने वाला है। अतः समन्वयवादी दर्शन है।

1. निम्बार्क-दर्शन : प्रमुख दार्शनिक-सिद्धान्त एवं उपासना तत्त्व

सिद्धान्त

1. श्रीनिम्बार्क सिद्धान्त में तत्त्वत्रय (ब्रह्म, जीव और प्रकृति ये तीनों तत्त्व) अनादि और अनन्त माने गये हैं, ब्रह्म स्वतंत्र है, जीव और प्रकृति, सदा सर्वदा ब्रह्म के आधीन हैं, किसी भी अवस्था में स्वतंत्र नहीं।

2. बद्ध (संसारी) बद्ध मुक्त (भगवद्भक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त) एवं नित्य मुक्त (जो कभी भी माया के बंधन में नहीं फंसे) जीवों के ये संक्षिप्त रूप से तीन भेद हैं।

3. समस्त चराचर जगत् ब्रह्म का अंश एवं-परा परात्मिका प्रकृति (शक्ति) होने के कारण सत्य है। इसलिए किसी भी प्राणी को दुःख पहुँचाना, या उसके साथ विद्वेष, ईश्वर को ही दुःख पहुँचाना एवं उसके साथ ही विद्वेष करना है। जड़ वस्तुओं का भी दुरुपयोग करना निषिद्ध है। शास्त्र की आज्ञानुसार अचेतन तत्त्व में भी समादरणीय भाव रखना आवश्यक है।

4. स्वाभाविक भेदाभेद (द्वैताद्वैत, भिन्नाभिन्न) सिद्धान्त का भी यही रहस्य है, अर्थात् जीव रूप से चराचरात्मक विश्व-ब्रह्म से भिन्न है, किन्तु उसका अंश एवं शक्ति होने के कारण स्वभावतः अपृथक् सिद्ध अभिन्न भी है। यही स्वाभाविक भेदाभेद है।

5. जब जगत् के किसी भी अंश को मिथ्या मानना भूल है, तब प्रकृति और उसके कार्य रूप बन्धनादि भी मिथ्या कैसे कहे जा सकते हैं। हाँ, सच्चे बन्धन की निवृत्ति होती है।

6. बन्धननिवृत्ति एवं भगवद्भावापत्ति रूप मुक्ति भगवत् कृपा से ही होती है।

7. श्रुति, स्मृति आदि शास्त्र और आचार्य वाक्यों के किसी भी अंश में अप्रामाण्य नहीं है। तात्पर्यानुसार इनके बलाबल की व्यवस्था गम्भीर और ऊहा-पोह पूर्वक आचार्यों ने की है। उस पर आरूढ़ रहना चाहिये।

8. जीव प्रतिबिम्ब नहीं, न प्राकृतिक जगत् मिथ्या ही है। अतएव सर्वथा ब्रह्म से भिन्न भी नहीं। श्रीनिम्बार्क के सिद्धान्तानुसार **तत्त्वमस्यादि** महावाक्यों का यही तात्पर्य है। केवल परिणामी होने के कारण मिथ्या और विनश्वर आदि शब्दों से जगत् का निर्देश किया गया है। अल्पज्ञ, अल्पशक्ति-जीव और परिणामीशील होने के कारण जड़ तत्त्व ये दोनों तत्त्व रस एक कूटस्थ ब्रह्म से सर्वथा अभिन्न भी नहीं हो सकते। अतएव, भेद और अभेद दोनों ही स्वाभाविक हैं।

9. श्रीनिम्बार्काचार्य के वास्तविक भेदाभेद सिद्धान्त के अनुसार—1. उपास्य (ईश्वर), 2. उपासक (जीव), 3. कृपाफल, 4. भक्तिरस.5. विरोधी तत्त्व (प्रकृति और प्रकृति के कार्यादि) ये पाँचों वस्तु जानने के योग्य हैं। इन सबके ज्ञाता को ही **पूर्णब्रह्मविद्** कहा जाता है।

उपासना तत्त्व

(1) दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार विश्व और विश्वम्भर के स्वरूप को जानकर 'उपासक' विश्व की हित-कामना के साथ विश्वम्भर श्रीसर्वेश्वर की उपासना करें। उस उपासना के पञ्चविध अनुष्ठान ये हैं—

(क) अभिगमन (ख) उपादान (ग) इज्या (घ) अध्ययन एवं (ङ) योग।

विवरण—(क) श्रीगुरुदेव के आश्रित होकर भगवत् शरणागत होना (वैष्णवी दीक्षा पञ्च संस्कारपूर्वक भगवान् के मन्त्रों की प्राप्ति करना)

(ख) भगवान् की पूजा-सेवा की साज-सामग्रियों का संचय करना।

(ग) 1. प्रातः (मङ्गला), 2. पूर्वाह्ण (शृंगार), 3. मध्याह्न (राजभोगादि), 4. उत्तराह्न और सायं, (उत्थापन सायं सेवादि), 5. रात्रि (शयन भोगादि) ये पञ्चकाल सेवायें हैं।

(घ) वेद, उपनिषद्, भागवत, गीता, रामायणादि का अध्ययन कर उनका मनन करना।

(ङ) भगवान् की शयन पर्यन्त सेवा करके, उपासक स्वयं शयन करते समय मन, बुद्धि, चित्त और समस्त इन्द्रियों की वृत्तियों को एवं आत्मा-आत्मीय सर्वस्व को भगवान् के अर्पण करे, यही योग है।

(2) उपर्युक्त पञ्चकालानुष्ठान के ही अन्तर्गत-श्रवण कीर्तनादि नवधा भक्ति का समावेश हो जाता है।

(3) इन्द्रादि समस्त देव और श्रीनृसिंहादि समस्त अवतारों का अंगी मानकर **श्रीराधासर्वेश्वर भगवान्** की अनन्य आराधना करनी चाहिये।

(4) उपासना में प्रथम अंग (अभिगमन) के अंतर्गत, 'तापः' अधिकारानुसार शंख चक्रादि की तप्त या शीतलमुद्रा, (छाप) धारण करना।

गोपीचन्दनादि के ललाटादि स्थानों में ऊर्ध्व पुण्ड्र (तिलक) तुलसी की कण्ठी एवं माला तथा भगवत् सम्बन्धी नाम और मन्त्र, उसके न्यासध्यानादि अनुष्ठानों के विधानों को गुरुदेव से प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

(5) भगवान् की भाँति ही मन्त्रोपदेष्टा गुरुदेव पूजनीय हैं। उपर्युक्त उपासना में भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने पुरुषों की भाँति सधवा-विधवा सभी पतिव्रता स्त्रियों का अधिकार भी निश्चित किया है। अतएव इस उपासना में सभी वर्ण और सभी आश्रमों के आबाल-वृद्ध सभी नर-नारियों का अधिकारानुसार पूर्ण अधिकार है।

2. पुराण, धर्मशास्त्र, ज्योतिष एवं अन्य ग्रन्थों में श्रीनिम्बार्क

(i) पुराणों में श्रीनिम्बार्क

पुराणों को भी यद्यपि वेद, उपनिषदों की भाँति अनादि माना है, तथापि कुछ सज्जन इनके भविष्य वर्णन से चकित होकर इनको अर्वाचीन मानने लगे हैं, किन्तु "**पुराऽपि नव इव भातीति पुराणः**" अर्थात् आज ही नहीं, पहले भी ये नवीन की भाँति ही प्रतीत होते थे, इस व्युत्पत्ति के अनुसार ये प्राचीन सिद्ध होते हैं। उपनिषदों में भी पुराण इतिहास का नामोल्लेख मिलता है।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि भविष्य पुराण के अतिरिक्त अन्य पुराणों में प्रक्षिप्त अंश कम हैं। कुछ लेखक इनकी रचना ईसा की छठी शताब्दी अनुमानित करते हैं। वस्तुतः यह विषय विचारणीय अवश्य है, क्योंकि जिन पुराणों के कुछ श्लोक एक हजार वर्ष पूर्व के ग्रन्थों में मिलते हैं, वे आजकल उन पुराणों में उपलब्ध नहीं होते। उदाहरणार्थ—

निम्बार्को भगवान्येषां वाञ्छितार्थ-प्रदायकः।
उदयव्यापिनी ग्राह्या काले तिथिरुपोषणे॥

यह श्लोक **'हेमाद्रिकृत चतुर्वर्ग चिन्तामणि व्रतखण्ड अध्याय 11, पृ.. 784'** [एशियाटिक सोसायटी बंगाल द्वारा सन् 1878 में प्रकाशित संस्करण] में उपलब्ध है। वहाँ मत्स्यपुराणोक्त मुक्ति सप्तमीव्रत के प्रसंग में भक्तों के पालनीय व्रतोपवास की

व्यवस्था देने के उद्देश्य से 'भविष्य पुराण' का यह श्लोक बतलाया गया है। आगे के धर्मशास्त्रीय ग्रन्थकारों ने भी परम्परागत इस श्लोक को उद्धृत किया है।[8] हेमाद्रि का समय विक्रम की 12वीं शताब्दी निश्चित है और कमलाकर भट्ट कृत निर्णय-सिन्धु का रचनाकाल उसके उपसंहारीय छठे श्लोक—

वसु ऋतु क्रतु भूमिते (1668) गतेऽब्दे
नरपति-विक्रतोऽथ याति रौद्रे।
तपसि शिवतिथौ समापितोऽयम्
रघुपतिपाद सरोरुहेर्पितश्च॥

इसके अनुसार 1668 विक्रम संवत् है, किन्तु वर्तमान भविष्यपुराण में यह श्लोक दृष्टिगत नहीं होता। इसी प्रकार सदानन्दभट्ट कृत '**श्रीनिम्बार्काष्टोत्तर शतक**' की टीका विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में **श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी** ने की थी, जिसमें भागवत आदि कई पुराणों के श्लोक टीका में उद्धृत किये हैं। उनमें प्रायः सभी यथास्थान मिल रहे हैं, किन्तु वायुपुराण के कई श्लोक उपलब्ध नहीं होते।

इससे अनुमान होता है कि कुछ लेखकों ने न्यूनाधिक रूप से पुराणों के कलेवर को घटाया-बढ़ाया है और फिर मुद्रकों ने कुछ श्लोक जोड़े और कुछ निकाल दिये हैं।

इसका विशेष विवरण '**श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय सम्बन्धी भ्रान्तियाँ**' शीर्षक निबन्ध में दिया गया है, जिससे पाठकों को पता लग सकेगा कि विद्वेषीजनों ने इस सम्प्रदाय को एवं सम्प्रदाय के आचार्य, ग्रन्थ, ग्रन्थकारों को अर्वाचीन सिद्ध करने के लिए कितने-कितने कैसे-कैसे षड्यन्त्र रचे हैं और अभी भी रचते जा रहे हैं।

उक्त श्लोक में जहाँ-तहाँ पर्याप्त पाठ भेद मिलता है। किसी स्थान पर '**सर्वाप्यौदयिकी ग्राह्या काले तिथिरुपोषणे।**' उत्तरार्द्ध का ऐसा भी पाठ मिलता है।

यद्यपि श्रीसुदर्शन के सम्बन्ध में प्रायः सभी पुराणों में बहुत से आख्यान मिलते हैं, वे सुदर्शनावतार से भी सम्बन्धित हैं ही, किन्तु हम यहाँ उन्हीं स्थलों को उद्धृत करते हैं, जो सुदर्शनावतार श्रीनिम्बार्काचार्य से स्पष्ट सम्बन्ध रखते हैं।

भविष्योत्तर-पुराणे

लीलया यो वपुर्धृत्वा कृष्णध्यानं प्रदर्शयन्।
अन्तर्हितः पुनस्तस्मै निम्बार्कस्वामिने नमः॥

x x x

आगतं कलिमाज्ञाय मुनयः शौनकादयः।
कुत्र स्थित्वा तपः कर्म कर्तव्यमिति चिन्तकाः॥1॥
जग्मुस्तदा ब्रह्मलोके, जिज्ञासायाऽत्मनि स्थितम्।
गत्वा तत्र विधिं भक्त्या तुष्टुवुस्ते जगत्पतिम्॥2॥
नमः सृष्टकृते तुभ्यं स्थितिकर्त्रे नमो नमः।

नमः संहृतिकाराय जगतां प्रभवे नमः ।।3 ।।
नमः प्रजापालकाय ज्ञानदात्रे नमो नमः ।
स्तुत्वेत्येवं ततस्तस्मै ब्राह्मणाः प्रणतीकृताः ।।4 ।।
स्तोत्रेणाऽनेन सन्तुष्टस्तानुवाच जगत्पतिः ।
तुष्टोऽस्मि भवतां स्तोत्रेणानेन हि विदांवराः ।।5 ।।
... ...
तदुद्भुतं वीक्ष्य यतिर्बालकस्य महात्मनः ।
तदैव तन्नामधेयं चकार यतीनां वरः ।।35 ।।
निम्बार्क इति नाम्ना हि स्वामिशब्दयुतस्तदा ।
तदारभ्य त्रिभुवने विख्यातो गुरुसंचये ।।36 ।।
अत्यद्भूतं जगदिदमसद् हिंसको ध्वान्तकारम्
दृष्ट्वा धात्रा परम-कृपया प्रेषिता स्वीयमूर्तिः ।
निम्बादित्यः स्वयमुदित इदं शंप्रकाशाय सोऽयम्
विष्णोर्मार्गांशुभिरमृतदः स्थापयन् स्वं मतञ्च ।।37 ।।
भवीय-तापसंतप्तः चिरकालमहं विभुम् ।
श्रीमन्निम्बभास्करं तं प्रणमामि पुनः पुनः ।।38 ।।
आरोग्यमिच्छेद्यो धीरः, स हि भास्करसेवनम् ।
करोति तद्बदेशो वै तं नमामि मुहुर्मुहुः ।।39 ।।

वामन-पुराणे—

ॐ एकदा तु समासीनं वामनं कमलेक्षणम् ।
पप्रच्छ देवदेवेशं चिन्तयन्तं बलिर्नृपः ।।1 ।।

बलिरुवाच—

श्रीवामन !महाबाहो ! किञ्चित्पृच्छामि त्वां प्रभो !
दीनो दीनोऽति मत्वा मां कृपया यदि कथ्यते ।।2 ।।
व्यासेन यत्कृतं पूर्वं तवैव कृपया प्रभो ! ।
भगवन् श्रोतुमिच्छामि येनाऽस्तौ चामरो भवेत् ।।3 ।।
कथ्यतां भगवन् देव स्वेच्छया यदि रोचते ।
तत्सर्वं कथयस्वात्र सर्वभूतहिताय वै ।।4 ।।

वामन उवाच—

दृष्ट्वा कलियुगं घोरं नराणां भयदायकम् ।
भवन्ति दुःखिताः सर्वे, ये वा न भगवत्पराः ।।5 ।।
हा हा कलियुगं घोरं लोकानां धारणं कथम् ?
निरन्तरं दिवारात्रौ मलिनाश्चित्तवृत्तयः ।।6 ।।
आसक्ता चित्तवृत्तिस्त्वं मदमानादिभिर्नृणाम् ।

सर्वथाशक्तचित्तं हि धनदारासुतादिभिः ॥7 ॥
कथ्यते शृणु तद्‌गुह्यं रहस्यं वा हितं मया।
वैकुण्ठनायकः श्रीमान् जगतां जीवनो हरिः ॥8 ॥
यत्र मम कृताश्चर्यं स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम्।
दानव्रततपस्तीर्थं स्वधर्मोदय एव च ॥9 ॥
... ...
इति ते परमं गुह्यं कथितं किं बले मुहुः।
गूढावतारो मे देयो नाभक्ताय कदाचन ॥23 ॥
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रद्धया सततं भवेत्।
जन्मनि मनुजस्याशु मुच्यते पातकात्तु सः ॥24 ॥
मंत्रहीनो क्रियाहीनो भक्तिहीनोऽपि यो नरः।
शृणोति सततं चैव सोऽमृतत्त्वाय कल्प्यते ॥25 ॥
लभते ह्यचलां भक्तिं श्रीकृष्णे जगदीश्वरे।
प्राप्नोति परमैश्वर्य्यमन्ते विष्णोस्तथालयम् ॥26 ॥
नित्यं प्रियस्तथा विष्णोः हृदि भक्तिविवर्धनः।
भविता निम्बार्काचार्यो द्विजरूपधरः प्रभोः ॥27 ॥

भविष्यपुराणे

सुदर्शनो द्वापरान्ते कृष्णाज्ञप्तो जनिष्यति।
निम्बादित्य इति ख्यातो धर्मग्लानिं हरिष्यति ॥72 ॥
सूत उवाच—
शृणुष्व चरितं तस्य निम्बार्कस्य महात्मनः।
यमाह भगवान् कृष्णः कुरु कार्यं ममाज्ञया ॥73 ॥
मेरोश्च दक्षिणे पार्श्वे नर्मदायाः तटे शुभे।
देशे तैलंगके रम्ये देवर्षिवरसेविते ॥74 ॥
तत्रावतीर्य सद्धर्मान्नारदाद्देव-दर्शनम्।
लब्ध्वा भूमौ वर्तयस्व नष्टप्रायान्ममाज्ञया ॥75 ॥
माथुरे नैमिषारण्ये द्वारवत्यां ममाश्रमे।
सुदर्शनाश्रमादींश्च स्थितिः कार्या त्वयाऽनघ ॥76 ॥
तत्तेजः सूर्यसंकाशं दृष्ट्वा वेधा स्मयाऽन्वितः।
भिक्षुवेषधरं बालं मुनिं सूर्यमिवापरम् ॥88 ॥
निम्बादित्य इति ख्यातो वसुधायां भविष्यति ॥89

(इति निम्बार्क-समुत्पत्ति-वर्णनं नाम सप्तमोध्यायः)

वायुपुराणे

चक्रं तु दुष्टान्नियच्छदानन्दयच्च ब्राह्मणान्।
नियमानन्द इति ह विख्यातः कौ महायशाः ॥
जातश्चाचार्य-प्रवरः सत्सम्प्रदाय-सेतुकः।

यह श्लोक श्रीहरिव्यासदेवाचार्य ने सदानन्द भट्ट कृत श्रीनिम्बार्काष्टोत्तरशत नाम के द्वितीय श्लोकस्थ 'आनन्दः' शब्द की टीका में उद्धृत किया है। जिन अन्याऽन्य पुराण और स्मृतिग्रन्थों के उद्धरण उनके दिये हुए हैं, वे प्रायः सभी यथास्थान उपलब्ध होते हैं।

2. धर्मशास्त्र में श्रीनिम्बार्क

पुराण और स्मृति आदि ग्रन्थ ही धर्मशास्त्र के आधार हैं, उन्हीं का अवलम्बन लेकर आगे के विद्वानों ने संग्रह-संकलन करके ग्रन्थ लिखे हैं। उनकी गणना धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में होने लगी है। उनमें विक्रम की बारहवीं शताब्दी में हेमाद्रि नामक विशिष्ट विद्वान् हुए, उन्होंने **'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि'** नामक बृहद् ग्रन्थ लिखा। उसे कुछ सज्जन रचयिता के नाम से **'हेमाद्रि'** भी कह देते हैं।

हेमाद्रि ने स्वरचित चतुर्वर्गचिन्तामणि के व्रतखण्ड में मत्स्यपुराणोक्त मुक्तिसप्तमी व्रत के प्रसंग में भविष्यपुराण का यह श्लोक उद्धृत किया है—

उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे।
निम्बार्को भगवान्येषां वाञ्छितार्थप्रदायकः ॥

यही श्लोक श्रीकमलाकर भट्ट ने अपने निर्णयसिन्धु ग्रन्थ में द्वितीय परिच्छेद भाद्रपदमास श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रत के प्रसंग में उद्धृत किया है।[9]

भट्टोजि दीक्षित आदि के तिथि-निर्णय आदि ग्रन्थों में भी उक्त श्लोक उद्धृत हुआ है। स्वसम्प्रदाय के ग्रन्थों में श्रीवैष्णवधर्मसुरद्रुममञ्जरी (श्रीसंकर्षणदेव विरचित)। श्रीनिम्बार्कव्रत निर्णय, (तुलाराम (धनीराम) विरचित), वैष्णव धर्म ज्योत्स्ना, स्वधर्मामृत-सिन्धु (श्रीशुकसुधी विरचित) इन सब में विशद उल्लेख हैं। इन सब से प्राचीन औदुम्बराचार्य कृत औदुम्बर संहिता है, उसी के अनुसार सभी परवर्ती लेखकों ने स्पष्टीकरण किया है।

(iii) ज्योतिष ग्रन्थों में श्रीनिम्बार्क

बहुत से लेखकों ने लीलावतीकार श्रीभास्कराचार्य को और निम्बार्काचार्य को एक मानकर लीलावती जैसे (गणित) ज्योतिष ग्रन्थकारों में श्रीनिम्बार्क की गणना की है, किन्तु वह यथार्थ नहीं हो सकती, क्योंकि लीलावतीकार भास्कराचार्य गृहस्थ थे, उनकी धर्मपत्नी का नाम लीलावती था, उसी के नाम से भास्कराचार्य ने लीलावती ग्रन्थ का प्रणयन किया था। श्रीनिम्बार्काचार्य नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। भास्कराचार्य का समय विक्रम की 12वीं शताब्दी रहा है। श्रीनिम्बार्काचार्य 12वीं शताब्दी से बहुत पूर्ववर्ती हैं, अतः लीलावतीकार भास्कर और निम्बार्क सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं। हाँ, एक ज्योतिष ग्रन्थ सुदर्शन चक्र नामक मिलता है, जो वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में सुरक्षित है, इसका

आशय गम्भीर और अनुसंधान करने योग्य है। विद्वानों का अनुमान है कि यह सुदर्शन चक्र श्रीनिम्बार्क की कृति है।

रावण-संहिता में श्रीनिम्बार्काचार्य की जन्मकुण्डली मिलती है। वह मथुरा के पं. बालकृष्णजी ज्योतिषी द्वारा विक्रम सम्वत् 1992 माघ के सुदर्शन मासिक पत्र में प्रकाशित कराई गई थी, जो इस प्रकार है—

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
	चं.		वृ.		बु., रा.	सू., श.			मं.		के. शु.

— (रावण-संहिता योगाध्यायय, पृ. 24)

युधिष्ठिर शक 6 कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा, शोभन शकुनि कर्णे गोधूलि समये गुरुवासरे इष्टं 26/50 सूर्यः 6/21 लग्नं 1 कृत्तिकायाः चतुर्थ चरणे जन्म। इस कुण्डली में 6 ग्रह उच्च के हैं, अतः इनका आविर्भाव युगान्तर में भी सिद्ध होता है **'युगान्तरे भवेज्जन्म रसेश उच्चगे सदा'**।

यह कुण्डली काठमाण्डू नेपाल के पं. संकर्षणजी से मथुरा के पं. बालकृष्णजी ज्योतिषी को मिली थी।

वामन-पुराण आदि ग्रन्थों के संकलित आचार्य-चरित्र के तृतीय विश्राम में श्रीनिम्बार्काचार्य के आविर्भावकालीन ग्रहों का उल्लेख मिलता है—(इस कुण्डली में लेखक या प्रूफ रीडर की भूल से शुक्र 12वें स्थान में हो गया है।)

अथ सर्वगुणोपेते काले परम-शोभने।
कार्तिकस्य सिते पक्षे पूर्णिमायां वृषे विधौ॥
कृत्तिका भे महारम्ये उच्चस्थ गृह पञ्चके।
सूर्यावसान-समये मेषलग्ने निशामुखे॥
जयन्त्यां जयरूपिण्यां जजान जगदीश्वरः।
येन सर्वमिदं विश्वं वेद-धर्मे नियोजितम्॥[10]

छह या पाँच ग्रहों की उच्च राशियों पर स्थिति किस काल में थी? इस सम्बन्ध में हिन्दु सिद्धान्त ज्योतिष अनुयायी विद्वानों का कहना है कि—कलि के आरम्भ में ग्रहगण मेष आर्क बिन्दु से मानते हैं, उस काल से आरम्भ करके विक्रम संवत् 2024 तक अनुसंधान करने से पता चलता है, पाँच ग्रह कलि अब्द 15 में उच्चस्थ थे।

भगवान् श्रीनिम्बार्क हरि अंश हैं, यह पुराणों के वचनों से विदित हो रहा है। ऐसा ही आशय भृगुजी के वचन से भी प्रमाणित होता है। भृगु-संहिता के कर्म-विपाक अध्याय के चतुर्थ खण्ड के 10वें श्लोक से आगे निम्नांकित श्लोक मिलते हैं—

शुक्र उवाच—

भवेदेतादृशी पत्री यज्जीवस्य महामते।
तत्किं फलमवाप्नोति विस्तराद् वद मे प्रभो॥

भृगुरुवाच—

मेष लग्नोदये जन्म चन्द्रो धने समन्वितः।
सुखगृहे गुरुश्चैव कर्म्मे महीसुतो मुने॥
दूने गेहे शनि-शुक्रौ आयुगे च रवि-बुधौ।
राहौ भ्रातृगृहे चैव केतुः भाग्योदये मुने॥
एतादृशी यस्य पत्री श्रीमान् धर्मगुरुर्भवेत्।
हरेरंशे भवेज्जन्म सत्यं वच्मि महामुने॥

अर्थात् जिसका मेष लग्न में जन्म हो, धन (दूसरे) स्थान में चन्द्रमा हो, सुख (चतुर्थ) स्थान में बृहस्पति एवं कर्म (दशम) स्थान में मंगल, दून (सप्तम) स्थान में शनि व शुक्र हों, आयु (अष्टम) स्थान में रवि व बुध हों, तृतीय भाव में राहु हो, भाग्य (नवम) स्थान में केतु हो तो वह धर्मगुरु आचार्य पदाभिषिक्त एवं भगवान् का अंश माना जाता है।
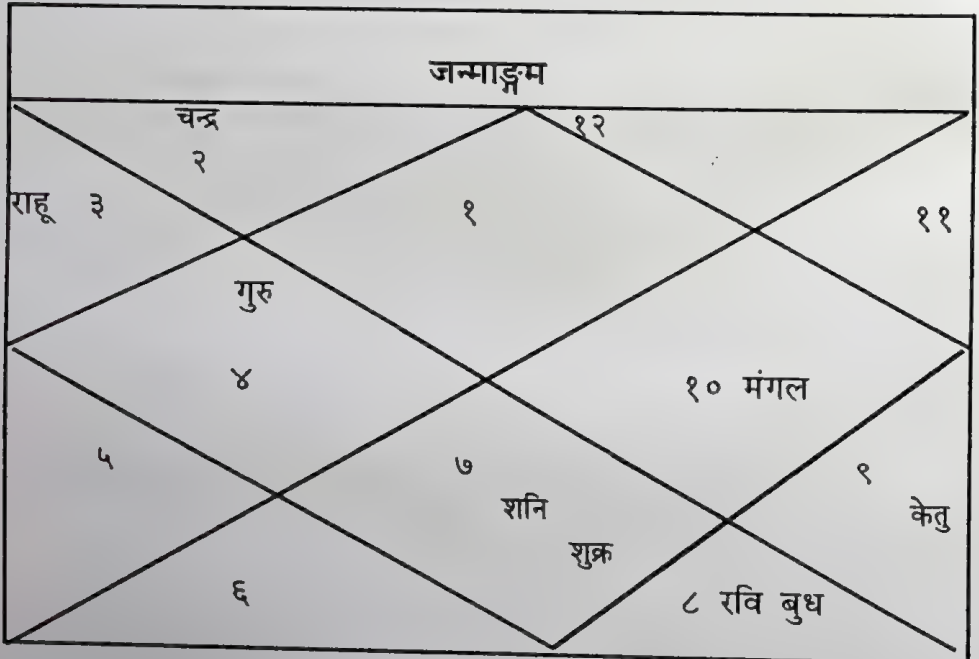
ज्योतिर्निबन्ध में लिखा है—**बलवान् धर्मस्थानाधिपतिः केन्द्र**—(1/4/7/10) कोण (5/9) स्थानों में हो एवं बलवान् लग्नेश की लग्न स्थान पर दृष्टि हो तो वह जातक धर्मरत होता है।

बलवति शुभनाथे केन्द्र-कोणोपयाते,
शुभशतमुपयाति स्वामि-दृष्टे विलग्ने ॥

(वीतभोगस्तपस्वी)

यह सब योग श्रीनिम्बार्काचार्य की जन्मकुण्डली में मिलते हैं। नवम स्थानाधिपति गुरु केन्द्र (चतुर्थ) स्थान में पूर्ण बलवान् होकर बैठा हुआ है, वह उच्चस्थ है। लग्नेश मंगल उच्चस्थ होकर लग्न को देख रहा है। उनकी कुण्डली में चन्द्र, बृहस्पति, शनि, मंगल और राहु ये पाँचों ग्रह उच्चस्थ हैं, जिनकी कुण्डली में ऐसे ग्रह हों, उन्हें भगवान् समझना ही चाहिए। श्रीकृष्ण भगवान् की जन्म कुण्डली में भी ये पाँचों ग्रह उच्च के थे।

वास्तव में श्रीनिम्बार्काचार्य कलियुगी जीवों को पावन करने के लिए ही अवतीर्ण हुए थे। बलवान् शनि की धर्मस्थान पर दृष्टि होना जातक को सर्वत्यागी धर्म-प्रचारक सूचित करता है। उसी स्थान में शनि दृष्ट केतु का होना जातक की महान् कीर्ति में सहायक होता है। नवम स्थानाधिपति के केन्द्र में रहने से चन्द्रप्रभा योग बनता है जिसका फल जातक का राजाधिराज के समान सन्मानी और पृथ्वी तल पर विख्यात होना कहा है—

पुण्याधिपः पुण्यगृहे च केन्द्रे चन्द्रप्रभा योग इह प्रणीतः।
राजाधिराजागुणवान् वरेण्यो गंगातटे मुञ्चति जीवनं सः ॥॥

इत्यादि अभिप्रायों से युक्त विद्वद्वर श्रीहरिचरण स्मृतितीर्थ एवं श्रीशान्तिप्रसाद शास्त्री जी ने दि. 7 मई सन् 1969 ई. में एक पत्र ब्रजविदेही चतुस्सम्प्रदायी श्रीमहन्त धनञ्जयदासजी तर्क-तर्कतीर्थ, काठिया बाबा की सन्निधि में भेजा था, साथ ही श्रीनिम्बार्क भगवान् की कुण्डली भी भेजी थी। उसे भृगु संहिता से मिलान के लिए काशी भेजा गया, वहाँ जैसी कुण्डली और फलादेश भृगुसंहिता में था, वह यहाँ उद्धृत किया जाता है—

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
	चं.	रा.	वृ.			श., शु.	सू. बु.	के.	मं.		

— (कलि अब्द 15 कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा गुरौ) 11

फलादेश—शुक्र उवाच—

भवेदेतादृशी पत्री यज्जीवस्य महामते।
स किं फलमवाप्नोति विस्तराद्वद मे प्रभो ॥

भृगुरुवाच—

मेषलग्नोदये जन्म तदीशे तातभावके।
प्रशंसिते कुले जन्म उच्चवंशे महामुने ॥
श्यामवर्णोऽपि जायेत लम्बदेहो भविष्यति।
मुखञ्च लम्बकं तात भृकुटी शुभ-मानद ॥

दिव्यकान्तिः प्रजायेत अर्कवन्मुनिपुङ्गव।
आजानु लम्बितो बाहुः कृष्णाज्ञया जनिष्यति॥
मेरोश्च दक्षिणे पार्श्वे नर्मदा-तटके शुभे।
पिताऽरुण इति ख्यातो जयन्ती जननी सती॥
कोशगेहे निशानाथी धन-धान्यं-सुखं कवे?

... ...

पूर्णायुः सुखदं शर्मन् दीर्घजीवी भविष्यति॥
उच्चस्थाश्च ग्रहाः पञ्च जन्मकाले महामते।
निशामुखे भवेज्जन्म वृषे च रजनीकरे।
कार्तिके च शुभे मासे पूर्णिमायां तिथौ मुने।
जातोऽयं नियमानन्दो गोदावरि तटे मुने॥
पूर्व-पुण्यप्रभावेण भृगुवंशे जनिर्मुने।
तातगेहे भूमिपुत्र पिता तस्य प्रतापवान्॥
अरुणाख्य ऋषिर्नाम्ना वेदवेदाङ्गपारगः।
यौवनेऽपि महाप्राज्ञ पितुर्मृत्युर्भविष्यति॥
दीनानां पालनं चैव धर्ममार्गे व्ययं बहु।
पूर्व-कर्म-प्रभावेण सोऽवतीर्णश्च भूतले॥

शुक्र उवाच—

पूर्व-जन्मनि किं कर्म कृतं तद्घोररूपकम्।
तन्मे वद महायोगिन् येनाभूच्च त्रिकालगः॥

भृगुरुवाच—

'सुदर्शनस्य चांशोऽयं पूर्वजन्मनि भो मुने!
चैकदा समये तात कृष्णश्चाज्ञापयत् स्वयम्॥
धर्मप्रचारणार्थाय चावतरतु भूतले।
तेनादिष्टेन मुनिना वेदधर्मः प्रसारितः॥
अस्थापयत् सम्प्रदायं स्वनाम्ना च महामते।
ग्रन्थाश्च विविधा ब्रह्मन् वेदवेदान्त-मूलकाः।
निर्मिताश्च महाप्राज्ञ! भक्तानां मोक्षहेतवे॥
दिग्विजीय-महायुद्धे स्वीयविद्याप्रभावतः।
अलौकिकानि कर्म्माणि कृतानि च महामते!
ब्रह्मचारी स्वयं तात! पूर्णत्यागी तथा मुने!

॥ इति श्रीभृगुशुक्र-संवादे जन्म-कुण्डल्यां योगाध्याये फलादेशः समाप्तः ॥

(iv) तन्त्र ग्रन्थों में श्रीनिम्बार्क

तंत्र ग्रन्थ अपार हैं और उनके भेद भी शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, वैष्णव आदि अनेकों है। तंत्र ग्रन्थों में अकेला नारद पञ्चरात्र ही डेढ़ करोड़ श्लोकों का है, जिसकी एक सौ आठ संहिताओं में केवल 35 ही उपलब्ध हैं। यामल ग्रन्थों में विष्णु-यामल में लिखा है—

'नारायण-मुखाम्भोजान्मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः।
आविर्भूतः कुमारैस्तु गृहीत्वा नारदाय वै॥
उपदिष्टः स्वशिष्याय निम्बार्काय च तेन तु।
एवं परम्पराप्राप्तो मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः॥'

इसी प्रकार का सन्दर्भ ऊर्ध्वाम्नाय तंत्र में मिलता है।

शक्ति संगमतन्त्र—

'निम्बार्काख्यं सम्प्रदायं शृणु यत्नेन साम्प्रतम्।
नित्यार्चन-क्रमासक्तः स्वतन्त्रैक-परायणः॥
बाह्यपूजादि-निरतो नान्यभक्तः प्रसन्नधीः।
आयंपक्षाश्रितः स्वच्छः स्वच्छन्दाचार-तत्परः॥
स्वतन्त्रः स्मार्त-विद्वेषी निम्बार्को भगवान् हरिः॥'

(शक्ति-संगमतन्त्रे अष्टमखण्डे प्रथमपटले शब्दकल्पद्रुमे, सम्प्रदायशब्द-प्रसङ्गे उद्धृता श्लोकावली)

3. निम्बार्क सम्प्रदाय : स्वरूप विवेचन

ब्रह्म का सान्निध्य ही जीवात्मा का उद्देश्य है। इसका उपाय शरणागति के सिवाय अन्य नहीं। भगवान् की शरण में जाने के पूर्व प्राणी को प्रथम गुरु की शरण में जाना जरूरी है। गुरु के निर्देशानुसार ही प्राणी भगवद् अभिमुख होता है। शिष्य के लिए गुरु का उपदेश उपासना के रूप में होता है। उपासना एक रूप से भगवत्प्रेम का साधन है। अतएव भगवान् की पूजा के रूप में उपासना निम्बार्क सम्प्रदाय का एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। **'दशश्लोकी'** में श्री निम्बार्काचार्य ने कहा है—**'उपासनीयं नितरां जनैः सदा प्रहाणयेऽज्ञान-तमोऽनुवृत्तये।'** अज्ञान रूपी अंधकार से मुक्ति प्राप्त करने के लिए प्राणियों को भगवान् की उपासना अवश्यमेव करनी चाहिए।

पंचरात्र-विधि में भी उपासना अति आवश्यक बतायी गई है। निम्बार्क सम्प्रदाय उपासना प्रधान है, इस सम्प्रदाय का प्रत्येक वैष्णवानुरागी गुरु सेवा, भगवन्नाम जप, भगवत्पूजा और भगवत् स्वरूप-चिन्तन का ही अनुष्ठान करता है। भगवान् श्री निम्बार्क की अपूर्व देन यह सुमधुर उपासना प्रणाली है, जिसके सम्पूर्ण विधि-विधान इस सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। उपासना का सर्वाधिक महत्त्व इसी सम्प्रदाय में मिलता है।

उपासना का स्वरूप

उपासना एवं पूजा में आन्तर्-बाह्य भावना का अन्तर है। यह भावना दो प्रकार से की जाती है—(i) स्वस्वरूप एवं उपास्य के स्वरूप का चिन्तन। (ii) उपास्यदेव की सेवा-भावना। इसमें स्वरूप चिन्तन-भावना दार्शनिक पद्धति से सम्बन्धित है। इस सम्प्रदाय में स्वरूप-चिन्तन भेदाभेद-भावना से किया जाता है, क्योंकि उपास्य (ब्रह्म) व्यापक तथा अंशी है और उपासक (जीव) व्याप्य एवं अंश है। यह अंशांशिभाव श्रुतियों के अनेक स्थलों में दृष्टिगत होता है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है—'**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः**।' इस वाक्य द्वारा उसी का समर्थन किया गया है। "**अंशो नानाव्यपदेशात्.** (ब्र.सू. 2/3/42)" आदि सूत्रों में इसी सिद्धान्त का श्री व्यासजी प्रतिपादन करते हैं। अतः द्वैताद्वैत भावना के अनुसार उपास्य और उपासक के स्वरूप का चिन्तन करना ही दर्शनशास्त्र का तात्पर्य समझा जाता है। दार्शनिक प्रणाली से श्री निम्बार्क सम्प्रदाय में भूमा विद्या की परम्परा प्राचीन है। श्री सनकादि से नारद जी को और नारद जी से श्री निम्बार्काचार्य को भूमा विद्या प्राप्त हुई थी।

"**यो वै भूमा तत्सुखम्.**" (छां. 7/23/1) वह भूमा सर्वव्यापी अखण्ड सुख-स्वरूप है, अतएव जिसे उस सुख का अनुभव हो रहा हो वह क्षणिक सुखों की ओर आकर्षित नहीं होता। "**यत्र नान्यत् पश्यति, नान्यत् शृणोति, नान्यद् विजानाति, स भूमा. (छा. 7/24/1)**" उस मधुरातिमधुर रस से बढ़कर और कोई सुख है ही नहीं। उसी उपासना का रसोपासना, माधुर्य भाव, उज्ज्वल रसोपासना आदि नामों से उल्लेख मिलता है। उसके उपास्यदेव श्री श्यामसुन्दर रस स्वरूप हैं, उन्हीं रस-रूप भगवान् की प्राप्ति होने पर यह जीव वास्तविक सुख-शांति का अनुभव कर सकता है, अन्यथा नहीं।

दशश्लोकी के युगल ध्यान वाले श्लोक को अपने भाष्य में उद्धृत करके **श्री श्रीनिवासाचार्य** ने इस रहस्य का संकेत किया है।

उपासना के अन्तर्गत पूजा ही मुख्य है। इसके तीन भेद सम्प्रदाय में किये गये हैं— (i) वैदिकी पूजा, (ii) तांत्रिक पूजा और (iii) अनुरागात्मिका पूजा या सेवा।

(i) वैदिकी पूजा

इस सम्प्रदाय में वैदिक विधि-विधानों का विशेष आदर है, पर वे विधियाँ भगवान् से ही सम्बद्ध होनी चाहिये। शुष्क कर्मकाण्ड इसके लिए अनावश्यक है। इसलिए वेद-मन्त्रों के अनुसार प्रभु की पूजा प्रधानता से प्रचलित है। इसमें शालिग्राम या गोपालजी की प्रतिमा बड़ी उपयुक्त है तथा शालिग्राम की सेवा इस सम्प्रदाय के आचार्यों का मुख्य चिह्न है। वैदिक पूजा-विधि में भगवान् के षोडश उपचार, द्वात्रिंशत् उपचार अथवा अष्ट चत्वारिंशत् उपचारों से मंत्र बोल-बोलकर पूजा की जाती है। वेदतन्त्र, सूक्त पाठ, हवन, जप आदि इसके अंग हैं। वैदिकी पूजा में गंधरहित जल, दुग्धादि से विस्तृत स्नान कराया जाता है, इसे अभिषेक कहते हैं।

(ii) तांत्रिकी पूजा

इस पूजा में **गोपाल मंत्र** की आराधना होती है। तन्त्र-शास्त्र के अनुसार प्रत्येक देवता का विशिष्ट प्रकार का रेखात्मक स्वरूप भी होता है। रेखाओं की विविध रचनायें ही यंत्र कही जाती हैं। यन्त्र का आकार त्रिकोण, चतुष्कोण, चक्र, कमल आदि के संयोग से बनता है। उन रेखाओं के मध्य परिकर समेत देवता की स्थापना होती है, एवं मुख्य इष्ट मंत्र के आकार भी स्थापित किये जाते हैं। फिर न्यास, ध्यान के साथ सबकी पूजा की जाती है। गोपालतापिनी उपनिषद्, गौतमीय तंत्र, सम्मोहन तन्त्र इत्यादि ग्रंथ तांत्रिकी पूजा के आधार हैं। केशव काश्मीरी जी की '**क्रमदीपिका**' इस विषय का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

(iii) अनुरागात्मिका पूजा

भक्तों के लिए भगवान् श्रीकृष्ण की चरणसेवा को छोड़कर अन्य कोई आश्रय नहीं है। श्रीकृष्ण ही साक्षात् परमेश्वर हैं, जिनकी वंदना ब्रह्मा-शिवादि देवता सदा किया करते हैं। श्रीकृष्ण की शक्तियाँ अचिन्त्य हैं, प्रभाव अगम्य हैं। भक्तजनों को आनन्दित करने के लिए वे मनोहर स्वरूप में प्रकट होते हैं। ऐसे प्रभु की प्राप्ति का साधन है भक्ति, जो पाँच भावों से पूर्ण मानी जाती है—**शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, और उज्ज्वल**। इनमें सबसे उत्कृष्ट भक्ति उज्ज्वल भाव के अंतर्गत होती है। इसका उदाहरण ब्रज गोपियाँ हैं। '**नारद भक्तिसूत्र**' में भी गोपी भाव वाली भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अपने आराध्य के प्रति सर्वाधिक प्रेम-भावना रखना यही उज्ज्वल या माधुर्य भाव है। इसके अन्तर्गत भक्त अपने में सहचरी भाव का आरोप कर अपनी सर्व-प्रवृत्तियों को भगवान् की अन्तरंग सेवा में लगा देता है। इस प्रकार की सेवा अप्रकाश्य रूप में की जाती है। माधुर्य उपासना के विचार से निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों में 'सहचरी' नाम धारण की परम्परा श्री निम्बार्काचार्य के समय से ही चली आ रही है, जिसे वे अपनी काव्यकृतियों और साम्प्रदायिक तत्त्व-वार्ता में प्रयुक्त करते रहते हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय की रहस्य भावना का दार्शनिक आधार श्रीमद्‌भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण, पद्म पुराण आदि से लिया गया है। सभी कृष्ण-भक्त वैष्णवों के मत में उनके परमाराध्य भगवान् श्रीकृष्ण हैं। उनका वह परम दिव्यलोक माधुर्य भावना से परिपूर्ण है। अतः निम्बार्क सम्प्रदाय में रसोपासना अनादिकाल से चली आ रही है।

अनुरागात्मिका उपासना में निकुञ्जबिहारी श्रीराधाकृष्ण प्रिया-प्रियतम भाव से आराध्य हैं। इस भाव का आश्रयस्थल ब्रजमण्डल में विराजित नित्य धाम श्रीवृन्दावन है। सखी भाव को स्वीकार करने वाला भक्त युगल स्वरूप वृन्दावनविहारी की '**अष्टयाम सेवा**' करना ही अपना कर्तव्य मानता है।

महावाणीकार श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी ने निम्बार्कीय रसोपासना के रूप की बड़ी सुन्दर रीति से प्रतिष्ठा की है।

नित्य विहार

नित्य विहार श्रीराधामाधव की अनन्य आनन्दमयी अलौकिक सुख-पूर्ण सतत शाश्वत रति-क्रीड़ा है, जो नित्य वृन्दावन धाम की दिव्य कंचनमय भूमि सुन्दर वृक्षों से आच्छादित

सुरंग पत्र, पुष्प, फल परिवेष्टित कङ्कणाकार यमुनाकूलवर्तिनी सुरभित निकुञ्जों में अनवरत रूप से चलती रहती है। इसमें किसी प्रकार का बाह्य या आंतरिक विक्षेप नहीं होता। सहचरी-वृन्द निकुञ्ज रन्ध्रों से इस नित्य विहार का दर्शन करता रहता है। उनके लिए ही नित्य विहार का आयोजन है। नित्य विहार श्रीश्यामाश्याम के अप्राकृत प्रेम का विलास है, जो काम से कोसों दूर है। तात्विक दृष्टि से भी श्रीराधामाधव उस आदि, अनादि, एकरस परब्रह्म स्वरूप के युगल विग्रह रूप हैं। सहचरी-वृन्द भी उसी परब्रह्म का अंशभूत है। प्रिया-प्रियतम के समस्त आनन्द भोग सहचरी-जन की प्रसन्नता के लिए है। इसका पूर्ण विवरण '**युगल-शतक**' में प्राप्त होता है।

उत्सव-प्रणाली

भगवान् की सेवा में समयानुसार विविध उत्सव मनाये जाते हैं। उत्सव सामूहिक रूप में होते हैं, जिनमें सेवक-वृन्द तत्कालीन उत्सव-लीला के अनुसार पूर्वाचार्यों की वाणियों का गायन करता है। उत्सवों में वसन्त, होली, झूलन, शरद् आदि मुख्य हैं। जन्मदिन अथवा पाटोत्सवतिथियों में ही आचार्यों की जयन्तियाँ मनाई जाती हैं। निम्बार्क-सम्प्रदाय में माधुर्यभावपूर्ण युगल उपासना ही मुख्य है। अवतारों के जयन्ती-उत्सव प्रायः शास्त्रीय विध्यनुसार होते हैं।

रासलीलानुकरण

रसोपासना और उत्सव-प्रणाली में रासलीलानुकरण का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। रासों की परम्परा अति प्राचीनकाल से चली आ रही है। पूर्वकाल के रस-उपासक महात्मा मानसी ध्यान में रासलीला की भावना करते थे।

'निम्बार्क-माधुरी', 'मुकुट की लटक' और 'सुदर्शन' में उद्धव घमण्डदेवजी के रास प्रवर्तक होने का प्रतिपादन किया गया है। श्रीराधाकृष्ण रासधारी ने '**रास-सर्वस्व**' में इसी का समर्थन किया है।

उपासना के बाह्य उपकरण

मुद्रा, तिलक, कण्ठी और स्मृति-चिह्न।

सगुण उपासना में आचार्य परम्परा और तिलक कण्ठी का बहुत महत्त्व है। ये साम्प्रदायिक आचार के प्रमुख अंग हैं। सभी वैष्णवों के कुछ बाह्य लक्षण बतलाये गये हैं। वे हैं तुलसी की कण्ठी, ऊर्ध्व पुण्ड्र-तिलक, शंख, चक्र, गदा और पद्म चिह्न।

निम्बार्क सम्प्रदाय के विशिष्ट स्थानों में आज भी स्मृति-चिह्न सुरक्षित हैं, जो उन स्थानों के महापुरुषों का दिव्य प्रसाद तो है ही, परन्तु साथ ही उनके पुनीत जीवन की ओर आकर्षित करते हुए दैनिक जीवन में आदर्श-पथ के प्रतिष्ठापक भी हैं।

(4) भगवान् श्री निम्बार्काचार्य का आविर्भाव एवं समय-समीक्षा

भगवान् श्री निम्बार्काचार्य का आविर्भाव कब हुआ? इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न लेखकों ने अपने-अपने विभिन्न अभिमत व्यक्त किये हैं। उन सबका वर्गीकरण किया

जाये तो तीन मत स्थिर होते हैं। (i) द्वापर का अन्त और कलियुग का आरम्भ, (ii) विक्रम की ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी और (iii) शङ्कराचार्य से पूर्व पाँचवीं-छठी शताब्दी।

पहला अभिमत संस्कृत के वामन-भविष्य आदिपुराण और औदुम्बर संहिता, रावण संहिता, भृगु संहिता आदि धर्मशास्त्रीय एवं ज्योतिष ग्रंथों के आधार पर है। दूसरा डाक्टर भाण्डारकर आदि के अनुमानों पर और तीसरा आधुनिक अन्वेषकों के शोध पर आधारित है। इन तीनों में कौन-सा ठीक है, इस जिज्ञासा के समाधानार्थ यहाँ तीनों अभिमतों के हेतुओं का उल्लेख कर देना उचित है, जिससे आलोचकों का मार्ग-प्रदर्शित हो सके।

संस्कृत ग्रंथों में श्री नारायणशरणदेवाचार्य जी द्वारा एक आचार्य-चरित्र ग्रंथ संकलित किया हुआ है, उसके चार विश्रामों में श्री निम्बार्काचार्य का आविर्भाव समय निर्धारित किया गया है।

जब धर्म का ह्रास और अधर्म की अभिवृद्धि होती है, तभी भगवान् अवतीर्ण होते हैं। कपिल, हंस, सनकादि, नारद, ऋषभ, पृथु, व्यास, नरनारायण, दत्तात्रेय एवं सुदर्शन ये सब अवतार धर्म रक्षणार्थ हुए थे। आत्मज्ञान के लिए स्वयं हरि (नारायण) ने हंसावतार धारण किया था। श्रीमद्‌भागवत में इनका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

"हंसस्वरूपवदच्युत आत्मयोगं,
दत्तः कुमार ऋषभो भगवान् पिता नः।
विष्णुः शिवाय जगतां इति शास्त्रमानात्,
नारायणो रुचिर-हंसवपुर्बभूव ॥"

(भा. 11/4/17)

हंसरूप से अवतीर्ण होकर भगवान् ने सनकादिकों को आत्मयोग का उपदेश दिया। सनकादिकों के सम्बन्ध में यही कहा गया है—ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना के लिए तप किया, तब सर्वप्रथम सनकादिकों का आविर्भाव हुआ। पूर्वकल्प में विलुप्त आत्मज्ञान उनके द्वारा फिर से प्रकटित हुआ—

"तप्तं तपो विविधलोक-सिसृक्षया मे,
आदौ सनात्स्वतपसा स चतुःसनोऽभूत्।
प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्म-तत्त्वं,
सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥"

(भा. 2/7/5)

भागवत के प्रथम स्कन्ध में भी ऐसी ही चर्चा है, सनकादिकों का प्रादुर्भाव सबसे पहले हुआ—

"कार्तिके शुक्लपक्षे वै नवम्यां शुभवासरे।
ब्रह्मणो मनसो जाताश्चत्वारः सनकादयः ॥"

(भा. 1/3/6)

सनकादिकों को आत्मज्ञान का उपदेश देने के लिए ही भगवान् ने हंसावतार धारण किया था। "यही योग मैंने अपने शिष्य सनकादिकों को बतलाया था" भगवान् के मुख से यह सुनकर उद्धव जी ने कहा—प्रभो! आपने सनकादिकों को जिस योग का उपदेश दिया, उसे मैं विशद रूप से जानना चाहता हूँ। भगवान् ने कहा—हे उद्धव! ब्रह्माजी के मानस पुत्र सनकादिकों ने उनसे पूछा—त्रिगुणात्मचित्त त्रिगुणात्मक विषयों से पृथक् कैसे हो सकता है? इस प्रश्न का उत्तर ब्रह्माजी नहीं दे सके, उन्होंने प्रभु का ध्यान किया, उसी क्षण हंसावतार हुआ, सनकादिकों ने पूछा—आप कौन हैं? हंस भगवान् बोले—आप आत्मा के सम्बन्ध में पूछते हैं या देह के सम्बन्ध में, दोनों ही प्रकार से प्रश्न नहीं बनता, क्योंकि देह सभी के भौतिक हैं ही, आत्मा भी सब चित्स्वरूप है अतएव समान हैं। जो आप हैं, वही हम हैं, पूछना व्यर्थ। जब सनकादिक कुछ लज्जित दिखाई दिये तब भगवान् ने कहा, तुम्हारा यह प्रश्न ठीक है—दोनों के त्रिगुणात्मक होने के कारण चित्त का विषयों से पार्थक्य कैसे हो? उसका समाधान यही है—चित्त और विषय दोनों मुझे अर्पित कर दिये जायें, हे उद्धव! यही उपदेश मैंने हंसावतार धारण करके सनकादिकों को दिया था—

गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया।
गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत्॥

(भाग. 11/13/27)

सनकादिकों को गोपाल अष्टादशाक्षर मन्त्र देकर हंस भगवान् अन्तर्हित हो गये। विष्णु यामल ग्रंथ में गोपाल अष्टादशाक्षर मंत्र की ऐसी परम्परा मिलती है—

नारायण मुखाम्भोजान्मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः।
आविर्भूतः कुमारैस्तु गृहीत्वा नारदाय च॥

(आचार्यचरित्र प्रथम विश्राम)

सनकादिकों से नारद जी के ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद् के सातवें अध्याय के 26 खण्डों में मिलता है। भगवान् श्री निम्बार्काचार्य ने वेदान्त सूत्रों पर स्वरचित **वेदान्त पारिजात सौरभवृत्ति** में लिखा है—

परमाचार्यैः श्रीकुमारैरस्मद्गुरवे श्रीमन्नारदायोपदिष्टो भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः।

(वेदान्तसूत्र 1/3/8 की वृत्तिः)

श्री निम्बार्क कृत दशश्लोकी (वेदान्त कामधेनु) के विवरणकार श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी ने भी छठे श्लोक के—'**सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं श्रीनारदायाऽखिलतत्त्वसाक्षिणे।**' इस उत्तरार्द्ध के अंतिम पद की व्याख्या में लिखा है—'**श्रीनारदाय इति अस्मद्गुरवे इत्यर्थः। तेनैव मह्यं यदुपदिष्टं तदेवात्रोक्तं मयापीति शेषः। श्रीगुरुं विशिनष्टि—अखिलतत्त्वसाक्षिणे इति। सर्वतत्त्व-विषयक-प्रत्यानुभवाश्रयभूताय सर्वज्ञाय इति।**'

श्री श्रीनिवासाचार्य जी ने वेदान्त सूत्रों पर स्वरचित **वेदान्त कौस्तुभ भाष्य** के आरंभिक—मंगलाचरण में भी श्री हंस सनकादिक, श्री नारद और श्री निम्बार्क इन चारों की वन्दना करके अपनी गुरु-परम्परा का परिचय दिया है—

श्रीहंसं सनकादीन् देवर्षि-निम्बाभाहकरञ्च भजे।
कृपयैषां श्रीकृष्णे परमात्मनि नो भवतु भक्तिः॥

श्री निम्बार्काचार्य श्री सुदर्शन चक्रराज के अवतार हैं। नारद पञ्चरात्र में कहा है, शंख साक्षात् वासुदेव है, गदा संकर्षण रूप है, पद्म प्रद्युम्न और सुदर्शन अनिरुद्ध स्वरूप हैं—इस प्रकार ये चारों आयुध चतुर्व्यूह रूप हैं—

शंखः साक्षाद्वासुदेवो गदा संकर्षणः स्वयम्।
बभूव पद्मं प्रद्युम्नोऽनिरुद्धस्तु सुदर्शनः॥

नैमिष खण्ड में श्री सुदर्शन का त्रेतायुग में हविर्धान रूप से अवतार हुआ था—

हविर्षि धारयन् पुष्णन् हविर्धान इतीर्यते।
वेदानानन्दयेद्यस्मान्नियमानन्द ईर्य्यते॥

हवि को धारण करने से हविर्धान नाम हुआ, फिर द्वापरान्त में समस्त वेदों का समान रूप से समर्थन कर उन्हें आनन्दित करने से **नियमानन्द** नाम हुआ।

औदुम्बराचार्य ने भी लिखा है—प्रथम युग में कभी गोवर्धन के निकट निम्बग्राम में जगन्नाथ जी की धर्मपत्नी श्री सरस्वती देवीजी एवं जयन्ती के उदर से वैशाल शुक्ला तृतीया को साक्षात् सुदर्शन निम्बादित्य नाम से अवतीर्ण हुए थे।

गोवर्धन-समीपे तु निम्बग्रामे द्विजोत्तमः।
जगन्नाथस्य पत्न्यां वै जयन्त्यां प्रथमे युगे॥
वैशाखे शुद्धपक्षे च तृतीयायां तिथौ पुनः।
साक्षात्सुदर्शनो लोके निम्बादित्यो बभूव ह॥

नैमिष खण्ड में लिखा है कि श्री नारद जी ने विप्रपालक सुदर्शन जी को वेदों का सार उद्धृत करके अपनी वाणी से ग्रहण कराया था।

आम्नायरसमुद्धृत्य विप्रपालं सुदर्शनम्।
स्वया भाषा ग्रहासन्नं ग्राहयामास नारदः॥

कांची खंड में—ऐसे ही अभिप्राय का वाक्य मिलता है—

वीणापाणेगुरोर्लब्ध्वा मोक्षोपायं सुदर्शनः।
वेदान्तवेद्य-सद्धर्म्मं समग्राहौ च सर्वशः॥

श्री निम्बार्काचार्य ने तपश्चर्या करते समय केवल निम्बक्वाथ का ही अशन किया था, ऐसा सम्मोहन तन्त्र में कहा गया है—

हविर्द्धानाभिधानस्तु चक्रमासीन्महामुनिः।
सोऽतप्यत तपस्तीव्रं निम्बक्वाथैक-भोजनः॥

उन्होंने दो बीज और लगाकर (अष्टादशाक्षर मंत्र का) बीस अक्षरों का स्वरूप बनाकर श्रीवृन्दावन की माधवी लताओं के मण्डप में बैठकर जप किया था।

आशु सिद्धिकरं मन्त्रं विंशत्वर्णञ्च जप्तवान्।

अनन्तरं मारबीजाद्यग्नारूढ़ं तदेव तु।

दध्यौ वृन्दावने रम्ये माधवी-मंडपे प्रभुः॥

भविष्य पुराण में लिखा है—पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की वर्षा करने एवं श्रीयुगलकिशोर की स्वयं सेवा करने तथा मोक्ष रूपी पुरुषार्थ (पराभक्ति) के कारण ही इनका नाम **निम्बार्क** प्रसिद्ध हुआ है—

पुरुषार्थ-प्रवर्षित्वात्सेवांगी कृतया स्वयम्।

कर्मणा मोक्षरूपेण 'निम्बार्क' इति विश्रुतः॥

कृष्णोपनिषत् की **"गोप्यो गाव ऋचस्तस्य"** इस ऋचा में श्री निम्बार्क के आठ स्वरूपों की झलक मिलती है। वामन पुराण में कहा है कि—बदरिकाश्रम के कर्णक क्षेत्र (कर्ण प्रयाग) ऐरावती के तट पर भी किसी कल्प में श्रीसुदर्शन का अवतार हुआ था—

कर्णकस्य शुभे क्षेत्रे बदर्याश्रम-मंडले।

ऐरावत्यां क्वचिज्जातः प्राक्कल्प इति मे श्रुतम्॥

इस प्रकार वामन, भविष्य पुराण, कांची खंड, नैमिष खंड और औदुम्बर संहिता आदि ग्रंथों के वाक्यों के आधार से श्री निम्बार्काचार्य चरित्र संगृहीत किया गया है, जो आचार्य चरित्र के नाम से ख्यात है।[12]

एक समय बहुत से ऋषि-मुनि मिलकर ब्रह्माजी के पास गये और उनसे प्रार्थना करने लगे। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों प्रकार के वैदिक मार्ग हैं, उनमें प्रथम प्रवृत्त होकर साधक किस प्रकार निवृत्ति पथ का अनुसरण करे? ऋषियों के इस प्रश्न के समाधानार्थ उन्हें साथ लेकर ब्रह्माजी क्षीरसागर के तट पर गये और वहाँ विष्णु भगवान् की प्रार्थना की। तब आकाशवाणी हुई—निवृत्ति मार्ग के उपदेशक सनकादिक एवं नारद आदि हैं, और भी अब एक आचार्य प्रकट होंगे।

आकाशवाणी सुनकर ऋषि-मुनि सब अपने आश्रमों को लौट आये। भगवान् ने अपने परम प्रिय आयुधराज श्रीसुदर्शन चक्रराज को आज्ञा प्रदान की—हे सुदर्शन! भागवत धर्म के प्रचार-प्रसार में कुछ काल से शिथिलता आ रही है, अतः सुमेरू पर्वत के दक्षिण में तैलंग देश में अवतीर्ण होकर आप निवृत्ति लक्षण भागवत धर्म का प्रचार-प्रसार कीजिये। मथुरा मंडल, नैमिषारण्य, द्वारका आदि मेरे प्रिय धामों में निवास कीजिये। भगवान् के आदेश को शिरोधार्य करके तैलंगदेशीय सुदर्शनाश्रम में भृगुवंशीय अरुण ऋषि की धर्मपत्नी सतीसाध्वी श्रीजयंतीदेवीजी के उदर से कार्तिक शुक्ला 15 को सायंकाल आपका अवतार हुआ। उस दिन कृत्तिका नक्षत्र था। चन्द्रमा वृष राशि पर उच्चस्थ था। मंगल मकर का, बृहस्पति कर्क का, शनि तुला का, मिथुन का राहू और धन का केतु, ये छह ग्रह उच्च राशियों पर स्थित थे, शुक्र स्वगृही था। यदि राहु केतु की उच्चावस्था स्वीकृत न की जाये

तो चन्द्र, मंगल, बृहस्पति, शनि ये चारों उच्चस्थ स्वग्रही शुक्र को मिलाकर पाँचों को उच्चस्थ कह सकते हैं।[13]

श्री निम्बार्क के आविर्भूत होते ही चारों दिशायें प्रसन्न हो गईं। आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी। अरुण ऋषि नवजात शिशु का मुख देखकर अपने को धन्य मानने लगे। जातकर्म संस्कार सम्पन्न हुआ।

एक समय अरुण ऋषि बाहर गये हुए थे, बालक को देखने के लिए ब्रह्माजी यति वेष में अरुण ऋषि के आश्रम में आये, जयन्तीदेवी ने भोजन करने के लिए अनुरोध किया, सूर्यास्त का समय जानकर यति ने भोजन करने से इन्कार किया, तब बालक नियमानन्द उनके चरणों में नमन करके बोला—हे स्वामिन्! अभी सूर्यास्त नहीं हुआ, देखिये उस निम्ब के वृक्ष पर कितने ऊँचे सूर्य हैं। यति ने भोजन किया, ज्योंही आचमन करके बैठे तो ज्ञात हुआ रात्रि 4-5 घटिका बीत चुकी है, चकित होकर ब्रह्माजी ने कहा—हे चक्रराज! जिस लिए आपका अवतार हुआ है अब आप वह कार्य कीजिये, थोड़े ही समय बाद यहाँ नारदजी भी आने वाले हैं। आपने मुझे निम्ब पर अपना तेज दिखलाया, अतः अब आप लोक और शास्त्र में **निम्बार्क** नाम से प्रख्यात होंगे। अरुण ऋषि के यहाँ प्रकट होने के कारण आरुणि, जयन्ती के उदर से प्रकट होने के कारण जायन्तेय एवं वेदार्थ का विस्तार करने के कारण आप नियमानन्द नाम से विख्यात होंगे। इसी प्रकार और भी आपके बहुत से नाम होंगे, जिन्हें ऋषि-मुनि प्रयोग में लायेंगे। ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये।

थोड़े ही समय के पश्चात् वहाँ वीणा बजाते हुए श्रीनारदजी पहुँचे। श्री निम्बार्काचार्य ने उनकी पाद्य अर्घ्यादि द्वारा पूजा की और सिंहासन पर विराजमान करके प्रार्थना की—जो तत्त्व आपको श्रीसनकादिकों ने बतलाया था, उसका उपदेश कृपाकर मुझे दीजिये। ऐसी प्रार्थना करने के अनन्तर नारदजी ने श्री निम्बार्काचार्य को विधिपूर्वक पंच संस्कार करके श्रीगोपाल अष्टादशाक्षर मंत्रराज की दीक्षा दी। उसके पश्चात् श्री निम्बार्काचार्यजी ने नारदजी से और भी कई प्रश्न किये, देवर्षि ने उन सबका समाधान किया, जिसका संकलन—**श्रीनारद नियमानन्द गोष्ठी** के नाम से प्रख्यात हुआ।

स्वपुत्र श्री निम्बार्काचार्य के मुख से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करके अरुण ऋषि सन्यस्त रूप से पर्यटन करने लगे। माता को भी इसी प्रकार श्री निम्बार्काचार्य ने धर्मोपदेश किया और स्वयं नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर भारत भ्रमण को निकले। एक नदी में आप स्नान करने लगे तो एक कच्छप से चरणों का स्पर्श हो गया—उसी क्षण कच्छप शरीर छोड़ कर दिव्य रूप बन गया और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगा—

श्रीमन्निम्बार्कमाचार्यं सिंहग्रीवं महाभुजम्।
तमाल-श्यामलांगं तं वन्दे जलज-लोचनम्॥1॥
कैशोरं सुन्दरं रामं लावण्यादि-गुणाकरम्।
पीताम्बरधरं शान्तं वन्दे निम्बार्कमीश्वरम्॥2॥

पक्वबिम्बाधरं सौम्यं सुकपोलं सुनासिकम्।
सुकेशं चारुसर्वाङ्गम् वन्दे निम्बार्कमीश्वरम्।।3।।
रक्तपंकज-पादाग्रं स्वस्तिकासन-संस्थितम्।
ज्ञानमुद्राधरं धीरं वन्दे निम्बार्कमीश्वरम्।।5।।
निम्बग्राम-कृतावासं निम्बद्रुम-तलाश्रयम्।
कालातीतं भवातीतं दिव्य-मांगल्य-विग्रहम्।
सच्चिदानन्द-रूपं तं वन्दे निम्बार्कमीश्वरम्।।8।।

एक समय भ्रमण करते हुए श्रीनिम्बार्काचार्य सेतु दर्शनार्थ दक्षिण दिशा में जा पहुँचे। मार्ग में जो जो भक्त मिले, उन सबकी कामनायें पूर्ण कीं। सेतुबंध रामेश्वर के दर्शन करके गुर्जर प्रदेश में पहुँचे। वहाँ भगवद्भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। नारायण सरोवर पर पहुँचकर देखा तो बहुत से ब्राह्मण अवैष्णव तुलसी कंठीमाला से रहित दिखाई दिये, उन सबको वैष्णव बनाकर तीर्थयात्रा के निमित्त कुरुजांगल प्रदेश में आ गये, वहाँ वायुह्रद पर ठहरे, वहाँ के ब्राह्मण अन्तःकरण से शैव बाहर से शाक्त प्रतीत होते थे, जब कभी कुछ प्राप्ति की आशा दीखे तभी अपने को वैष्णव घोषित कर देते थे। ऐसे नानारूपधारी ब्राह्मणों ने आपका विरोध किया। उसी क्षण गूलर के पेड़ से एक फल आपके पैरों पर पड़ा, वह उसी क्षण मानव आकार में प्रकट होकर आचार्य चरणों की स्तुति करने लगा। आचार्यश्री ने उन्हें आदेश दिया कि **औदुम्बराचार्य** के नाम से तुम लोक में ख्यात होंगे—और अपने नाम से ही संहिता लिखोगे। औदुम्बराचार्य भी खड़े हो, हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। उन्हें आशीर्वाद देकर आप नैमिषारण्य पधारे। वहाँ पर पहुँचने पर शौनकादि ऋषियों ने आपकी स्तुति की। गौरमुख आदि को दीक्षा देकर आप बदरिकाश्रम की ओर चल दिये। वहाँ पर कुछ समय निवास करने के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेरणा से उद्धवजी वहाँ पहुँचे। उन्होंने ब्रजमण्डल में आने के लिए श्रीनिम्बार्काचार्य से अनुरोध किया और भगवान् के आदेश का स्मरण दिलाया। तत्पश्चात् श्रीनिम्बार्काचार्य ब्रज में निम्बग्राम आये। यह ज्ञात होते ही आपके शिष्य सदानन्द भट्ट आदि एकत्रित होकर स्तुति करने लगे। कुछ दिन निवास करने के अनन्तर एक विशिष्ट विद्वान् संन्यासी दिग्विजय करते हुए निम्बग्राम पहुँचा। वह माघ शुक्ला 5 का दिन था, सायंकाल होने ही वाला था। संन्यासी ने भिक्षा की याचना की, किन्तु सूर्यास्त से पूर्व ही भिक्षा प्राप्त होने का अनुरोध किया। तब उसे भी निम्ब वृक्ष पर अपना तेज दिखलाकर भोजन कराया। इस घटना से विस्मित होकर वह संन्यासी आपके चरणों में गिर पड़ा और प्रार्थना की। तब आपने पञ्च संस्कार पूर्वक वैष्णवी दीक्षा दी। उनका श्रीनिवासाचार्य नाम रखा गया। उन्होंने एक लघुस्तव द्वारा गुरुदेव की अर्चना की, आचार्यश्री ने उन्हें स्वरचित वेदान्त कामधेनु, वेदान्त पारिजात आदि देकर कहा—थोड़े दूरी पर ही श्रीराधाकुण्ड है, वहाँ रहकर तुम भजन-साधन करो। **"नमस्ते श्रियै."** इस राधाष्टक का पाठ करो, शीघ्र ही तुम्हें श्रीराधाकृष्ण के दर्शन हो जायेंगे।

"यथा राधाप्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं तथा प्रियः।
इदं जपत भद्रन्ते राधाष्टकमनुत्तमम्।
राधया माधवं देवं शीघ्रं पश्यसि चक्षुषा॥"

आचार्य चरित्र के सप्तम विश्राम तक जो इतिवृत्त दिया गया है, उसका यह सूक्ष्म सार है। भविष्य पुराण प्रति सर्ग पर्व (चतुर्थ खण्ड) अध्याय 6 श्लोक 72-89 तक के संदर्भ में भी इस प्रकार उल्लेख है। इसी से मिलता-जुलता वामन पुराण का एक अध्याय है, जो हस्तलिखित उपलब्ध होता है।[14]

चतुर्वर्गचिन्तामणिकार पं. श्री हेमाद्रि ने भविष्य पुराण का एक और श्लोक अपने ग्रंथ में उद्धृत किया है, वह हेमाद्रि के व्रतखण्ड में इस प्रकार मिलता है—

उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे।
निम्बार्को भगवान्येषा वाञ्छितार्थ-प्रदायकः॥

(हेमाद्रि व्रत खण्ड)

धर्मशास्त्रों में व्रतों की तिथियों की शुद्धि पर विशद विचार किया गया है। प्रायः तिथियाँ दो प्रकार की होती हैं—शुद्धा और विद्धा। शुद्धा तिथि वह कहलाती है, जिसमें पूर्व तिथि का सम्पर्क न हो, जिसमें पूर्वापर तिथियों का सम्पर्क हो वह विद्धा कहलाती है। विद्धा तिथि भी दो प्रकार की होती है, एक पूर्व विद्धा, दूसरी पर विद्धा। वैष्णव धर्म शास्त्रकारों ने पूर्व विद्धा तिथि को त्यागने का आदेश दिया है, और उसे वैष्णवों का लक्षण (स्वरूप) माना है—

"पूर्वविद्धातिथित्यागो वैष्णवस्य हि लक्षणम्।"

हेमाद्रि ने जो श्लोक उद्धृत किया है, वह किसी निम्बार्कीय व्यक्ति का रचा हुआ नहीं है, अपितु श्रीवेदव्यासजी की उक्ति है।[15] उसका तात्पर्य है—जिस सम्प्रदाय में भगवान् श्रीनिम्बार्क वांछित-फलदाता (उपास्य) हों, उस सम्प्रदाय में व्रत-उपवास आदि धर्मकार्यों में उदयव्यापिनी तिथि का ग्रहण करना चाहिये। उदय-व्यापिनी का तात्पर्य है—तिथि का उदय, वह अर्धरात्रि के अनन्तर होता है। उदाहरण—दशमी तिथि यदि अर्धरात्रि के अनन्तर एक पल भी हो तो दूसरे दिन आने वाली एकादशी तिथि विद्धा कहलाती है। इसी का नाम अर्द्धरात्रवेध एवं कपाल वेध है। यह वेध श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय में ही अंगीकृत है, अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में यह नहीं अपनाया गया है।

हेमाद्रि द्वारा उल्लिखित यह श्लोक भट्टोजि दीक्षित ने स्वरचित तिथि-निर्णय में और कमलाकर भट्ट ने स्वरचित निर्णयसिन्धु में उद्धृत किया है। सम्भव है, दाक्षिणात्य कमलाकरभट्ट उत्तर भारत के अनेकों प्रदेशों में व्याप्त श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय से अनभिज्ञ रहे हों, अतः उन्होंने उपर्युक्त श्लोक को (जन्माष्टमी प्रकरण में) उद्धृत करके अंत में लिख डाला—'**इदानीं निम्बादित्योपासनायाः क्वाप्यभावात्।**'

सुदूर दक्षिण प्रदेश के हैदराबाद से पूर्व 6 मील की दूरी पर बसे हुए नगर "अदिलाबाद में उपलब्ध विक्रम की बारहवीं शताब्दी के" श्रीनिम्बादित्य प्रासाद का शिलालेख भी इस बात को प्रमाणित एवं पुष्ट करता है कि विक्रम की 11वीं, 12वीं शताब्दी में श्रीनिम्बार्काचार्य की जहाँ-तहाँ प्रतिमायें पूजी जाती थीं। कई एक ठिकानों पर उनके मंदिर बने हुए थे।

इन सब प्रमाणों के अनुसार निम्बार्क भगवान् का आविर्भाव काल द्वापर के अन्त और कलियुग का आरम्भ ठहरता है। भृगु संहिता में जो श्रीनिम्बार्काचार्य की जन्म कुण्डली मिलती है, उसमें कलि अब्द 15 लिखा है।

इधर आधुनिक आलोचकों में सर्वप्रथम **डॉ॰ आर.जी. भाण्डारकर** ने अपनी **शैविज्म वैष्णविज्म** रचना में लिखा है—श्रीनिम्बार्काचार्य का आविर्भावकाल निश्चित करना कठिन है—आगे चलकर उन्हें दो गुरु परम्पराएँ मिलीं, उनमें एक परम्परा श्रीहरिव्यासदेवाचार्य के शिष्य दामोदर गोस्वामी तक थी। दामोदर गोस्वामी श्रीनिम्बार्काचार्य से तैंतीसवीं संख्या में रहे हैं। भाण्डारकर ने लिखा है कि वह दामोदर गोस्वामी विक्रम संवत् 1806 (ई. सन् 1750) में विद्यमान था। मध्वाचार्य की 33 पीढ़ियाँ 603 वर्षों में हुई हैं, उसी के अनुसार निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों के काल का भी औसत लगाया जाये तो विक्रम सं. 1203 निम्बार्काचार्य का समय निकलता है (प्रत्येक पीढ़ी का 18 वर्ष औसत लगाया गया है) इस प्रकार उन्होंने मध्वाचार्य से कुछ पूर्व और रामानुजाचार्य से कुछ पश्चात् श्रीनिम्बार्काचार्य के समय का अनुमान लगाया था।[16] भाण्डारकर के पश्चात् कई एक लेखकों ने भाण्डारकर का ही अनुसरण करके इसी के लगभग निम्बार्काचार्य का-समय लिखना आरम्भ कर दिया।

स्वामी प्रज्ञानन्द सरस्वती ने अपने "वैष्णवदर्शनेर इतिहास" में तथा डॉ॰ राजेन्द्रनाथ घोष ने भी इन्हीं का समर्थन किया है। अक्षयकुमारदत्त ने 'भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय' नामक ग्रंथ में, जाह्नवीचरण भौमिक एल.एल.बी. ने—'संस्कृत साहित्येर इतिहास' में, पुलिनविहारी भट्टाचार्य एम.ए. ने 'श्रीनिम्बार्काचार्य और ताहार धर्ममत' में, सुशीलकुमार डे एम.ए., डी.लिट्. ने 'जयदेव और गीतगोविन्देरः आलोचना' ग्रंथ में तथा पं. श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी द्विवेदी ने "निम्बार्क भाष्य की भूमिका" में श्रीभाण्डारकर का ही अनुसरण किया है। डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्रा ने तो श्रीवल्लभाचार्यजी से भी श्रीनिम्बार्काचार्य को परवर्ती लिख डाला है। उन्हीं का उद्धरण लेकर डॉ॰ श्रीरमा चौधरी कलकत्ता ने **डॉ॰ औफ्रेक्ट के कैटलोगस् कैटेलौगरम्** में निम्बादित्य नाम के प्रसंग में किसी फ्रांटियर के पुस्तकालय में मिले एक पत्र में **"मध्वमुख-मर्दन"** नामक पुस्तक का नाम देखकर मध्वाचार्य से भी निम्बार्क को परवर्ती होने का संदेह प्रकट किया है। उन्होंने **"वेदान्त पारिजात सौरभ"** का अंग्रेजी अनुवाद किया है और निम्बार्क सम्प्रदाय के सम्बन्ध में एक शोध-प्रबन्ध लिखकर डाक्टरेट उपाधि प्राप्त की है, किन्तु कई स्थलों पर उसमें उन्होंने भूल की हैं। बहुत से ग्रंथों के रचयिताओं के नामों में भी उन्हें भ्रम हुआ है, जिससे अन्य रचयिता के ग्रंथ को वे अन्य रचयिता का मान बैठे हैं।

उपर्युक्त जिन-जिन बंगाली लेखकों ने डॉ॰ भण्डारकर के अनुमान का अनुसरण किया है, उन्होंने अपने अभिमत स्थापना के लिए दलीलें भी बड़ी विचित्र-विचित्र दी हैं, उदाहरणार्थ—पुलिनविहारी भट्टाचार्य कृत "**श्रीनिम्बार्काचार्य और ताहार धर्ममत**" को ही ले लिया जाये, उसके पृ. 52 में श्री भट्टाचार्यजी लिखते हैं—मुसलमानों के आक्रमण के समय जब सभी हिन्दुओं ने कातर स्वर से माँ-माँ पुकार की, उसी समय शक्तिवाद का आविर्भाव हुआ। श्रीनिम्बार्काचार्य ने (ब्र.सू.अ. 2 पाद 2 सूत्र 42 के) भाष्य में शक्तिकारणवाद का खण्डन किया है। साथ ही पृ. 109 पर उन्होंने केनेडी साहब के मतानुसार राधिका शब्द के आविर्भाव का भी समय 11वीं शताब्दी मानकर राधिका उपासक श्रीनिम्बार्क का भी समय 11वीं शताब्दी निश्चित किया है।

वास्तव में श्री भट्टाचार्य का यह महान् भ्रम है, क्योंकि शक्तिवाद उतना ही पुराना है, जितना सनातन धर्म। शाक्त, शैव, गाणपत्य, सौर और वैष्णव ये पाँचों ही सनातन धर्म के अङ्ग हैं। पुरातत्त्व संग्रहालयों में सुरक्षित दो-दो हजार वर्ष पूर्व की सिंहवाहिनी महिषासुरमर्दिनी आदि शक्ति की मूर्तियाँ विद्यमान हैं, तब शक्तिवाद का आविर्भाव 11वीं शताब्दी कैसे सिद्ध हो सकता है? देवी भागवत को किसी भी आलोचक ने 11वीं शताब्दी का नहीं माना है, वह शक्ति उपासना को 11वीं शताब्दी से पर्याप्त प्राचीन सिद्ध करता है। इसी प्रकार 'राधा' शब्द का आविर्भाव 11वीं शताब्दी मानना भी नितान्त भूल है, राधा नाम का उल्लेख पञ्चम शताब्दी के **पञ्चतन्त्र ग्रंथ** में मिलता है, प्रथम शताब्दी की **गाथा सप्तशती** में भी है। इस सम्बन्ध में बंकिमबाबू कृत श्रीकृष्ण चरित्र द्वितीय खण्ड का दसवाँ परिच्छेद द्रष्टव्य है। उसके अतिरिक्त **श्रीबलदेव उपाध्याय कृत 'भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा'**, डॉ॰ द्वारकाप्रसाद मीतल का राधाविषयक शोध-प्रबन्ध आदि ग्रंथ अवलोकनीय हैं।

श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी ने श्रीनिम्बार्क भाष्य की भूमिका[17] में लिखा है—

विष्णुस्वामी प्रथमतो, निम्बादित्यो द्वितीयतः
मध्वाचार्यस्तृतीयस्तु, तुर्य्यो रामानुजःस्मृतः ॥

(भविष्यपुराण परिशिष्ट 21वां अध्याय भगवद्भक्त माहात्म्य प्रसंग)

यह उद्धरण देकर विष्णुस्वामी (उन्हीं के मत से वि.सं. 1199 कालीन) से श्रीनिम्बार्क को परवर्ती होने का अनुमान लगाया है, वह भी ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उपर्युक्त श्लोक किसी आचार्य की पूर्वापरता सिद्ध नहीं करता। अन्यथा रामानुजाचार्य को भी इस श्लोक के अनुसार श्रीमध्वाचार्य से परवर्ती मानना होगा। किन्तु श्रीरामानुज को सभी लेखक श्रीमध्वाचार्य से पूर्ववर्ती ही लिखते हैं। अतः द्विवेदीजी का अनुमान असंगत ही सिद्ध होता है।

श्रीसुधीवर हरवदनराय ने 'श्रीकर भाष्य' की भूमिका (अंग्रेजी) के पृ. 135 में श्रीरामानुज ई. सन् 1138 और श्रीकर ई. सन् 1260 का मध्यकाल श्रीनिम्बार्क का समय

लिखा है। आगे चलकर उसी भूमिका के पृ. 211 पर उन्होंने श्रीनिम्बार्क को श्रीमध्वाचार्य (ई. सन् 1238) से परवर्ती लिख दिया है। यह भी पूर्वापर विरुद्ध लेख है।

सत्येन्द्रनाथ वसु एम.ए.; बी.एल. ने बंगला सन् 1342 ज्येष्ठ मास की **वसुमती** (बंगला पत्रिका) में 'वैष्णवमत विवेक' शीर्षक एक लेख लिखा था, उसमें उन्होंने यह तर्क दिया था कि—यदि श्रीनिम्बार्क शंकर से पूर्ववर्ती होते तो शङ्कराचार्य स्वरचित भाष्य में निम्बार्क के द्वैताद्वैत मत की आलोचना अवश्य करते। दूसरा तर्क उन्होंने यह भी दिया है कि शंकर दिग्विजय में भी निम्बार्क एवं उनके मत का उल्लेख नहीं मिलता।

वसुजी का यह तर्क भी केवल अपलाप मात्र है, क्योंकि यदि वे भाष्यों की तुलना करते तो उन्हें ज्ञात होता। ब्रह्मसूत्र 2/1/14 के शंकर भाष्य में, भेदाभेद की आलोचना स्पष्ट है। बृहदारण्यक उपनिषद् 5/1 भाष्य में श्रीशङ्कराचार्य ने विशद रूप से द्वैताद्वैत की आलोचना की है।[18]

विद्यारण्यकृत 'शंकर दिग्विजय' अथवा 'सर्वदर्शन संग्रह' में श्रीनिम्बार्क और उनके दर्शन का उल्लेख न होने से विद्यारण्य और सर्वदर्शन संग्रह के रचनाकाल से श्रीनिम्बार्क को अर्वाचीन मानना भी विचार विहीन ही कहा जायेगा। क्योंकि यह ग्रंथकार की इच्छा पर निर्भर है; वह चाहे जिसका उल्लेख करे, जिसका न करे। इस उदाहरण के अनुसार तो यह भी कह सकते हैं कि "श्रीनिम्बार्काचार्य" हेमचन्द्र चौधरी (विक्रम की 20वीं शताब्दी) से भी परवर्ती होंगे, क्योंकि हेमचन्द्र चौधरी ने स्वलिखित **"वैष्णव सम्प्रदाय इतिहास"** नामक पुस्तक में श्रीनिम्बार्क का नामोल्लेख नहीं किया। किन्तु इसे कोई भी विचारशील व्यक्ति नहीं मान सकता कि—निम्बार्काचार्य हेमचन्द्र चौधरी से भी अर्वाचीन होंगे।

सर्वदर्शन-संग्रहकार ने भट्टभाष्कर के औपाधिक भेदाभेद का उल्लेख क्यों नहीं किया, भट्टभाष्कर सर्वदर्शन-संग्रहकार से पूर्ववर्ती हैं, वे शङ्कराचार्य के थोड़े ही समय बाद हुए थे। उन्होंने शंकर मत के खण्डनार्थ ही वेदान्त सूत्रों पर टीका लिखी थी। यदि कोई यह कहे कि सर्वदर्शन-संग्रहकार भट्टभाष्कर से अपरिचित थे तो यह भी संगत नहीं कहा जा सकता। कारण सर्वदर्शन-संग्रहकार भट्टभाष्कर से अपरिचित होते तो वे प्रमेय विवरण संग्रह की टीका में भट्टभाष्कर की चर्चा कैसे करते? यह भी नहीं कह सकते कि श्रीनिम्बार्क का प्रचार-प्रसार उत्तर-भारत में रहने के कारण दक्षिण देशवर्ती सर्वदर्शन-संग्रहकार उनके मत से अपरिचित रहे हों—उत्तर-भारत में भी सुदूर काश्मीर देश में प्रचारित "प्रत्यभिज्ञा दर्शन" से सुपरिचित माधवाचार्य मध्यवर्ती ब्रज प्रदेश में सुप्रसिद्ध श्रीनिम्बार्क मत से अपरिचित नहीं रह सकते थे। अतः सर्वदर्शन-संग्रहकार द्वारा स्वाभाविक भेदाभेद एवं औपाधिक भेदाभेद दर्शन का उल्लेख न करने का कोई और ही कारण हो सकता है। इससे यह नहीं सिद्ध होता कि श्रीनिम्बार्क या उनका सिद्धान्त सर्वदर्शन-संग्रहकार से भी परवर्ती है।

डॉ॰ रमा चौधरी को यद्यपि निम्बार्क भाष्य पर अनुसंधान करने से ही डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त हुई है, तथापि उन्होंने घर में बैठकर केवल इधर-उधर की पुस्तकों को देख करके ही वह कार्य किया, सम्प्रदाय के किसी विशिष्ट विद्वान् से उनका सम्पर्क नहीं हो सका, अन्यथा वे "**वेदान्तकारिकावलि**" को श्रीनिवासकृत और सविशेष निर्विशेष **श्रीकृष्ण स्तवराज** को निम्बार्ककृत मानकर उन्हें शङ्कराचार्य से परवर्ती नहीं मानतीं। इसी प्रकार **मध्वमुख-मर्दन** ग्रंथ को निम्बार्क का मानकर उन्हें मध्व से परवर्ती लिखने का साहस न करतीं।

इस सम्प्रदाय में एक-एक नाम के कई व्यक्ति हुए हैं, श्रीनिवास भी 2-3 हुए हैं और पुरुषोत्तम प्रसाद भी 3-4 हुए हैं। उनका समय भिन्न-भिन्न और कृतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। श्रीकृष्ण स्तवराज की तीन टीकाएँ हैं। उनमें श्रुत्यन्त सुरद्रुम टीकाकार पुरुषोत्तम प्रसाद भिन्न हैं, श्रुत्यन्त कल्पवल्ली टीका के लेखक पुरुषोत्तम और वादिभूषण ग्रंथ के लेखक पुरुषोत्तम भिन्न-भिन्न हैं। वेदान्त रत्नमंजूषाकार पुरुषोत्तमाचार्य भिन्न हैं।

मध्वमुख-मर्दन ग्रंथ श्रीनिम्बार्क का क्या किसी भी निम्बार्कीय विद्वान् की कृति नहीं है। अप्पय दीक्षित ने अवश्य **मध्वमुख-मर्दन** ग्रंथ लिखा है। अतः रमाबोस ने किसी तथ्य का शोध न करके उल्टी भ्रांति फैला दी है।

डॉ॰ भाण्डारकर आदि की आलोचना "भारतेर साधना" (बंगला मासिक पत्रिका) बंगाल सन् 1340 आग्रहायन मास के अंक में तथा हिन्दी एवं बंगला सुदर्शन पत्र में भी नृसिंहदास वसु ने की थी वह मार्मिक है। इसी प्रकार बंगला मासिक पत्रिका "भारती" वर्ष 4 अंक 5, 6, 8, 9, 10 और 11 में श्रीविरजाकांत घोष ने विशद ऊहापोह किया है, उन्होंने श्रीनिम्बार्क और श्रीनिवास के वेदान्तभाष्यों का अध्ययन करके उनका रचनाकाल ईसा की छठी शताब्दी स्थिर किया है।

श्रीबलदेव उपाध्याय ने कई ग्रंथ लिखे हैं। पहले वे श्रीनिम्बार्क के समय के सम्बन्ध में डॉ॰ भाण्डारकर के मत से ही सहमत थे। इस सम्बन्ध में उनसे जब पत्र-व्यवहार हुआ तो उन्होंने अपने पत्र में कई तर्क लिखे। उनमें एक श्रीकेशव काश्मीरी भट्टाचार्य और श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु का समागम वाला तर्क भी था, सम्भव है उपाध्यायजी ने ऐसा सुना ही होगा। **चैतन्य चरितामृत** में कविराज कृष्णदासजी के लेख को देखा न होगा। उनका पत्र आते ही निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान आचार्य श्री ने अपने यहाँ के पुस्तकालय में सुरक्षित कविराज कृष्णदास कृत **चैतन्य चरितामृत** (सम्वत् 1890 में नागराक्षरों में लिखित) का पाठ करना आरम्भ किया, किन्तु कहीं भी केशव काश्मीरी भट्टाचार्य की चर्चा नहीं मिली। केवल दिग्विजयी पराभव प्रकरण में केवल—"ऐलो इक दिग्विजयी" मात्र लिखा मिला। आचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज ने श्री बलदेव उपाध्याय जी को पत्र लिखा, कहीं आपने चैतन्य चरितामृत में देखा हो तो वह प्रकरण लिखने की कृपा करें, जिसमें केशव काश्मीरी भट्टाचार्य और चैतन्य महाप्रभु के मिलन की चर्चा हो।

उपाध्यायजी ने भी पूरा चैतन्य-चरितामृत देखा, किन्तु उसमें यह प्रसंग कहीं होता तब तो मिलता। आखिर उन्हें 9 सितम्बर, सन् 1951 ई. के पत्र में लिखना पड़ा कि—"**आपके प्रमाणों से मैंने निम्बार्क मत को वैष्णव सम्प्रदायों में प्राचीनतम मान लिया है।**" श्रीउपाध्यायजी ने सन् 51 के पूर्व भारतीय दर्शन आदि जो पुस्तकें लिखी थीं, उनमें श्रीनिम्बार्क को रामानुज के परवर्ती और उनके भाष्य पर रामानुज भाष्य की छाया लिख डाला था। किन्तु ऊहापोह के पश्चात् उन्होंने भागवत धर्म में यही लिखा कि वैष्णव सम्प्रदायों में निम्बार्क मत प्राचीनतम मत है।

श्रीसुदर्शनसिंहजी चक्र अच्छे विद्वान् लेखक हैं, ब्रह्मचारी श्रीदकुमारशरणजी ने उनसे कुछ लिखवाया था—चक्रजी ने एक स्थल पर बड़े मजे की बात लिख डाली—शङ्कर भाष्य में भेदाभेद की आलोचना मिलने से ही निम्बार्क शङ्कर से प्राचीन सिद्ध नहीं होते, क्योंकि निम्बार्क का सिद्धान्त तो द्वैताद्वैत है, शङ्कराचार्य ने कहीं भी द्वैताद्वैत का उल्लेख नहीं किया।

श्रीचक्रजी ने यह भी नहीं सोचा "द्वैताद्वैत और भेदाभेद" एकार्थक पर्यायवाची हैं—या विभिन्नार्थक। चक्रजी ने ऐसा चक्र चलाकर अपनी योग्यता सूचित की, द्वैताद्वैत और भेदाभेद दोनों ही शब्दों का प्रयोग श्रीनिम्बार्काचार्य, श्रीनिवासाचार्य ने किया है और दोनों ही शब्दों की आलोचना शङ्कराचार्यजी ने की है, यहाँ थोड़ा दिग्दर्शन करा देना आवश्यक है—

"**उभयव्यपदेशात्त्वहि-कुण्डलवत्, (ब्र.सू. 3/2/20)**" इस सूत्र पर वेदान्त पारिजात वृत्ति देखिये—"विश्वं ब्रह्माणि स्वकारणे भिन्नाभिन्न-सम्बन्धेन स्थातुमर्हति।" इसी सूत्र पर श्रीनिवासाचार्य का भाष्य देखा जाये—

"**कार्यस्य कारणेन ब्रह्मणा सह स्वाभाविकौ भेदाभेदौ भवतः।**" इसी प्रकार ब्र.सू. 2/3/42 के भाष्य में श्रीनिम्बार्क और श्रीनिवासाचार्य ने भेदाभेद का नामोल्लेख किया है। शङ्कराचार्य ने भी ब्र.सू. 2/3/43 के भाष्य में लिखा है—"**भेदाभेदावगमाभ्यामंशत्वावगमः।**" यहाँ पर जिस प्रकार भेदाभेद शब्द का प्रयोग किया है, उसी प्रकार ब्र.सू. 3/3/21 आदि सूत्रों के भाष्य में द्वैत प्रपञ्च विलयरूप संकेतादि से द्वैताद्वैत नाम का भी उल्लेख किया है। इसके साथ-साथ यह भी देखा जाता है कि जिन-जिन उदाहरणों द्वारा श्रीनिम्बार्क या श्रीनिवासाचार्य ने द्वैताद्वैत एवं भेदाभेद का समर्थन किया है, उन्हीं उदाहरणों सहित श्रीशङ्कराचार्य ने भेदाभेद एवं द्वैताद्वैत का विरोध किया है।

उदाहरण—"यथा लोके मृत्पिण्डोपादानकानां घटशरावादीनां, सुवर्णोपादानकानां कटककुण्डलादीनां समुद्रोपादानकानां फेनतरंगादीनां, वृक्षोपादानकानां फलपत्रादीनां च कारणऽनन्यत्वेपि परस्परं विभागोऽस्ति तथा ब्रह्मोपादानकत्वेन तदनन्ययोरपि भोक्तु-भोग्ययोः परस्परं विभागः स्यात्, एवं भोक्तृ-नियन्त्रोरपि अविभागेऽपि विभागः स्यात्, यथा मृदोऽभिन्ना अपि स्वभावतो घटशरावादयो मृद्व्यतिरिक्तस्थितिप्रवृत्यभावात्, मृदः सकाशाद्भिन्ना अपि स्वभावत एव। ब्र.सू. 2/1/13" का श्रीनिवास (कौस्तुभ) भाष्य।

इसकी आलोचना ब्र.सू. 2/1/14 सूत्र के शङ्करभाष्य में इस प्रकार की गई है—'नन्वेकात्मकं ब्रह्म यथा वृक्षोऽनेकशाखः, एवमनेक-शक्तिप्रवृत्तियुक्तं ब्रह्म, ब्रह्म अत एकत्वं नानात्वञ्चोभयं सत्यमेव। यथा वृक्ष इति एकत्वं शाखा इति नानात्वम्। यथा च मृदात्मनैकत्वं घटशरावाद्यात्मना नानात्वं, यथा च मृदात्मनैकत्वं घटशरावाद्यात्मना नानात्वम्।

इन संदर्भों से स्पष्ट हो जाता है—श्रीशङ्कराचार्य ने श्रीनिम्बार्क मत की आलोचना की है। ऊपर भेदाभेद के उदाहरण दिये गये हैं। अब श्री शङ्कराचार्य द्वारा द्वैताद्वैत की आलोचना का उदाहरण लिया जाये—

अत्रैके वर्णयन्ति-एवञ्च द्वैताद्वैतात्मकं एकं ब्रह्म यथा किल समुद्रो तरंगफेन-बुद्बुदाद्यात्मकः ननु ब्रह्मणो द्वैताद्वैतात्मकत्वे समुद्रादिदृष्टान्ता विद्यन्ते, (इत्यादि पूर्वपक्ष उठाकर). . .विरोधाच्च द्वैताद्वैतयोरेकस्य। तस्मान्न सुविविक्षितेयं कल्पना, अथाप्यभ्युपगम्य ब्रूमः, द्वैताद्वैतात्मकत्वेऽपि शास्त्रविरोधस्य तुल्यत्वात्। (बृहदारण्यक उपनिषद् 5/1/6 का शांकरभाष्य।)

विवेचनोपरान्त स्पष्ट है—निम्बार्क का मत द्वैताद्वैत ही है, भेदाभेद नहीं, शङ्कराचार्य ने कहीं भी द्वैताद्वैत की आलोचना नहीं की, यह चक्रजी का कथन सत्य है या निराधार असत्य। प्रायः बहुत से लेखक चक्रजी की भाँति ही चक्कर खा गये हैं।

यदि श्रीनिम्बार्क और श्रीनिवास शङ्कराचार्य से पूर्ववर्ती न होते तो शङ्कराचार्य ने "**उत्पत्तिरसम्भवात्**" इस ब्रह्मसूत्र के भाष्य में जो नारद पंचरात्र का खंडन किया है, उसकी आलोचना वे अवश्य करते, जैसे परवर्ती सभी वैष्णव भाष्यकार आचार्यों ने की है।

शङ्कराचार्य से श्रीनिम्बार्क को पूर्ववर्ती होने में एक प्रमाण और भी है—श्रीभाष्करभट्ट और शङ्कराचार्य को (राजेन्द्र घोष) आदि बहुत से लेखक सम-सामयिक मानते हैं, उन्होंने जो ब्रह्मसूत्रों का भाष्य किया है, उसके सम्बन्ध में प्रतिज्ञा की है—मैं यह भाष्य मायावादियों के भाष्य का खंडन करने के लिए ही लिख रहा हूँ—भट्टभाष्कर ने शङ्कर के साथ-साथ श्रीनिवास के वेदान्तकौस्तुभ की कई स्थलों पर आलोचना की है—नित्योपलब्ध्यनुपल. (ब्र.सू. 2/3/31) के भाष्य में श्रीनिवासाचार्य ने लिखा है—"चेतनभूतात्मविभूत्ववादिमते दोष कथनार्थं सूत्रम्", भट्टभाष्कर के अनुसार उपर्युक्त सूत्र की सं. 2/3/32 है, श्रीभाष्करभट्ट ने इस सूत्र का प्रयोजन बौद्धों का निराकरण बतलाया है और जिन भाष्यकारों ने चेतन आत्मा को विभु मानने वाले वादियों के मत में दोष देने के लिए यह सूत्र बतलाया है, उनका खंडन किया है। उनकी वह पंक्ति श्रीनिवासाचार्य की पंक्ति से अक्षरशः मिलती है—

"यत्पुनरात्म-विभुत्व-वादिमते दोषकथनार्थं सूत्रमिति व्याख्यातं, तदयुक्तम्।"—आज जितने भी भाष्य मिलते हैं, किसी भी भाष्यकार की ऐसी अक्षर योजना नहीं मिलती। केवल श्रीनिवासाचार्य और भाष्कर भाष्य की पंक्तियों में ही यह मिलान होता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि श्रीनिवासाचार्य भाष्करभट्ट और तत्समसामयिक श्री शङ्कराचार्य से पूर्ववर्ती थे।

भाष्कराचार्य का एक उदाहरण और भी देखना चाहिये, सभी भाष्यकारों के मत से ब्रह्मसूत्रों की संख्या में भेद है। श्रीनिम्बार्क का अभिमत एक सूत्र है—

अतएव च तद्ब्रह्म. (ब्र.सू. 1/2/15) शङ्कराचार्य इस सूत्र का उल्लेख नहीं करते, रामानुजाचार्य उल्लेख करते हैं, किन्तु उनके भाष्य में सूत्र का पाठ "अतएव च स ब्रह्म" है। इस सूत्र के सम्बन्ध में भाष्कराचार्य लिखते हैं—"अत्रावसरे अतएव च तद्ब्रह्मेति सूत्रमन्ये पठन्ति तत्पुनर्गतार्थमित्यन्यैर्नाभिधीयते" (भाष्कर भाष्य 1/1/14) भाष्कराचार्य की यह आलोचना केवल श्रीनिम्बार्क भाष्य और शङ्कर भाष्य का संकेत करती है, उनका कहना है, हमसे दूसरे भाष्यकार ऐसा सूत्र मानते हैं। अर्थात् श्रीनिवास श्रीनिम्बार्क ऐसा सूत्र मानते हैं, रामानुज की ओर तो वे संकेत करते नहीं, क्योंकि रामानुज भट्टभाष्कर से परवर्ती हैं, बौधायन आदि का संकेत समझें तो उनका पाठ भिन्न है। रामानुज भाष्य में **"स ब्रह्म"** ऐसा पाठ है। दूसरे अन्य शब्द से भाष्कराचार्य ने शङ्कराचार्य का संकेत किया है क्योंकि शङ्कराचार्य ने इस सूत्र की चर्चा नहीं की। अस्तु।

श्री भाण्डारकर ने जो पीढ़ियों का 18 वर्ष का औसत लगाकर श्रीनिम्बार्क के समय का अनुमान लगाया था, वह औसत भी ठीक नही, क्योंकि अन्य सम्प्रदायों में गृहस्थाश्रम भोग के अनन्तर भी संन्यास लेकर आचार्य सिंहासनारूढ़ हो जाते हैं, परन्तु श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य सिंहासन पर नैष्ठिक बाल-ब्रह्मचारी ही आरूढ़ हो सकते हैं। अतः उनका पट्टोपभोगकाल अन्य आचार्यों की अपेक्षा अधिक होता है, उदाहरणार्थ—श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ पर विक्रम संवत् 1670 से 2000 तक 330 वर्षों में श्रीहरिवंश देवाचार्यजी से लगाकर श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्यजी तक 10 पीठिका हुई, उनका 33 वर्ष प्रतिपीठिका औसत लगता है। उनका समय इस प्रकार है—

श्रीहरिवंशदेवाचार्यजी	(वि.सं. 1670 से 1713)
श्रीनारायणदेवाचार्यजी	(वि.सं. 1714 से 1755)
श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी	(वि.सं. 1755 से 1797)
श्रीगोविन्ददेवाचार्यजी	(वि.सं. 1797 से 1814)
श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी	(वि.सं. 1814 से 1841)
श्रीसर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी	(वि.सं. 1841 से 1870)
श्रीनिम्बार्कशरणदेवाचार्यजी	(वि.सं. 1870 से 1894)
श्रीब्रजराजशरणदेवाचार्यजी	(वि.सं. 1894 से 1900)
श्रीगोपीश्वरशरणदेवाचार्यजी	(वि.सं. 1900 से 1928)
श्रीघनश्यामशरणदेवाचार्यजी	(वि.सं. 1928 से 1963)
श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्यजी	(वि.सं. 1963 से 2000 तक)

उपर्युक्त आचार्यों का पट्टोपभोगकाल 2-3 को छोड़कर अन्य सभी का 37-40, 42-43 वर्षों तक रहा है। पूर्ववर्ती आचार्य तो और भी दीर्घायु होते थे, जब साधारण जन ही शतायु हुआ करते थे, तब नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के दीर्घायु होने में किसी प्रकार का संदेह

ही नहीं रहता। कदाचित् इसी औसत के अनुसार भी लगा लें तो श्रीहरिवंशदेवाचार्यजी से 33वें पीठिका पूर्व श्रीनिम्बार्काचार्य हैं, अतः 33 x 33 = 1029 वर्ष होते हैं श्रीहरिवंशदेवाचार्यजी (वि.सं. 1670) से 1029 वर्ष पूर्व श्रीनिम्बार्काचार्य का समय निश्चित हो सकता है। इस औसत के अनुमान से भी वि.सं. 641 से पूर्व श्रीनिम्बार्काचार्य का समय सिद्ध होता है।

इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने श्रीनिवासभाष्य के रचनाकाल के सम्बन्ध में उनके भाष्य के आधार पर ऊहापोह किया है—

ब्रह्मसूत्र अ. 2 पाद 2 सूत्र 28 "**नाभाव उपलब्धेः**" इस सूत्र के भाष्य में श्रीनिवासाचार्य ने विप्रभिक्षु रचित एक निम्नांकित श्लोक उद्धृत किया है—

अप्रत्यक्षोपलम्भस्य नार्थदृष्टिः प्रसिद्धयति।
अविभागोऽपि वुद्धयात्मा विपर्यासित-दर्शनैः॥
ग्राह्य-ग्राहरूप-संवित्तिभेदावानिव लक्ष्यते।

यह विप्रभिक्षु सम्भवतः धर्मकीर्ति ही हो, क्योंकि पहले वह ब्राह्मण था, बाद में बौद्धधर्म को अपना लिया, अतएव उसे विप्रभिक्षु नाम से कहने लग गये। पहला श्लोक सर्वदर्शन संग्रह में धर्मकीर्ति के नाम से दिया गया है। दूसरा श्लोक "अविभागोऽपि बुद्धयात्मा." धर्मकीर्ति रचित प्रख्यात ग्रंथ "प्रमाण वार्तिक" में मिलता है। इससे अनुमान होता है धर्मकीर्ति (ई. छठी सातवीं शताब्दी) और श्रीनिवासाचार्य समसामयिक रहे होंगे। अतः श्रीनिवासाचार्य के गुरुदेव श्रीनिम्बार्काचार्य का समय उससे भी (छठी सातवीं शताब्दी से भी) कुछ पूर्व होना चाहिए। यद्यपि ये सब अनुमान हैं। इन सबसे श्रीनिम्बार्काचार्य का समय निश्चित होना कठिन हो गया है, तथापि श्री भाण्डारकर और उनके अभिमत का समर्थन करने वालों के सब तर्क समाप्त हो जाते हैं। उपर्युक्त विवेचन से ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी से पूर्व पांचवीं-छठी शताब्दी श्रीनिम्बार्क का समय प्रमाणित हो जाता है। इन्हीं आधारों से नवीन लेखकों में भी बहुत से लेखकों ने श्री भाण्डारकर के विपरीत लिखा है। इस सम्बन्ध में डॉ. श्री नारायणदत्त शर्मा, (मथुरा निवासी)—"कृष्ण-भक्ति काव्य में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के हिन्दी कवि", डॉ. अमरप्रसाद भट्टाचार्य (कलकत्ता निवासी) — "**श्रीनिम्बार्क व द्वैताद्वैत दर्शन**", डॉ. श्री रामप्रसाद शर्मा, किशनगढ़ (राज.) का "श्रीपरशुरामदेवाचार्य और उनकी रचनायें" आदि के शोध-प्रबन्ध द्रष्टव्य हैं।

पाश्चात्य लेखकों में डॉ. मोनियर विलियम्स, हैस्टिंग्स साहब, ग्रियर्सन ग्राउस साहब का मथुरा मेमोरियल दर्शनीय हैं। अहमदाबाद के एक पादरी और हंटर साहब भी श्रीनिम्बाकाचार्य की प्राचीनता का ही समर्थन करते हैं।

(5) श्रीनिम्बार्काचार्य से पूर्व आर्यावर्त (भारत) की धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थिति

किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय के विकास की गति अविच्छिन्न रूप से एक ही रूप में नहीं रहा करती। बीच-बीच में ऐसे अवरोध उत्पन्न हो जाया करते हैं, जिनसे उसके

समूल विनाश की संभावना होने लगती है। पर जिसके मूल में मानव के कल्याण की भावनायें हिलोरें ले रही हों, जिसके सिद्धान्त शाश्वत-तत्त्वों पर आधारित हों अथवा जिसकी भित्ति सुदृढ़ हो, वह शक्तिशाली धर्म अथवा सम्प्रदाय उन समस्त अवरोधों को पार करता हुआ गतिशील रहता है। इसकी सत्यता का प्रमाण यह वैदिक धर्म एवं उसके पोषक निम्बार्क-सम्प्रदाय के विकास का इतिहास है। इसमें इतनी जीवट है, इतनी शक्तिमत्ता है, और इसकी भित्ति इतनी सुदृढ़ है कि नाना प्रकार की विघ्न-बाधाओं को रौंदता हुआ यह आज भी गर्वोन्नत है।

वैदिक धर्म के दो प्रबल विरोधी हुए—(1) जैन-धर्म और (2) बौद्ध-धर्म। यद्यपि जैनधर्म बौद्धधर्म से भी प्राचीन है, तथापि व्यापकता एवं प्रभाव की दृष्टि से बौद्धधर्म उससे आगे रहा। इसके मूल प्रवर्तक गौतमबुद्ध, यद्यपि स्वयं एक वैदिकमतावलम्बी थे और इनके सिद्धान्त की मूल भित्ति उपनिषद् ग्रंथ ही रहे, पर बाद में समय के अनुरूप इन्होंने कुछ ऐसी बातों का प्रचार प्रारम्भ कर दिया, जिसका आधार वेदों में नहीं मिलता। बाद में तो इन्होंने वेदों को अप्रामाण्य कोटि में घोषित कर दिया। अशोक का संरक्षण पाकर वह धर्म विदेशों में भी प्रचारित-प्रसारित हुआ। यद्यपि अशोक की दृष्टि समन्वयात्मक थी और उसने बौद्ध भिक्षुओं के सदृश ब्राह्मणों को भी प्रश्रय दिया, पर उसके उत्तराधिकारियों में यह भाव न रहा। फलतः बौद्धधर्म के पक्षपातियों ने इसको पैरों तले कुचलने का पुरजोर प्रयास किया। किन्तु अन्याय अधिक दिन तक नहीं चलता। मौर्य-वंश के पतन के साथ ही ब्राह्मणवंशी पुष्यमित्र ने शुङ्ग वंश की स्थापना की। उसके अयोध्या वाले शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसने दो अश्वमेध यज्ञ किये थे (द्विरश्वमेधयाजिनः)। यह वैदिक धर्म के पुनरुत्थान का प्रतीक था। इसी समय भारतीय सनातन धर्म का वह महनीय ग्रंथ, जिसे हम लोग औषधि की भी औषधि मानते हैं **(यद् वै मनुरवदत्, तत् भैषजं भैषजतायाः)** उस '**मनुस्मृति**' की रचना हुई। इसकी रचना सनातन धर्म की पुनर्जागृति का सूचक है।

परन्तु इसे एक और आघात सहना पड़ा। शुंगों के बाद कुषाणों के समय (वि.सं. 97 से वि.सं. 213 तक) में बौद्धधर्म ने पुनः सिर उठाया। कनिष्क जाति से तो शकवंशीय था, भारत के बाहर का निवासी था, परन्तु बौद्धधर्म का कट्टर पक्षपाती था। इसने बौद्धधर्म की चतुर्थ संगीति कराकर विदेशों में भी इसके प्रचार कराने का प्रयास किया। साथ ही भारत में वैदिक धर्म को समूल नष्ट करने का बड़ा सुनियोजित चक्र चलाया, जिसके परिणामस्वरूप इसके समय में वैदिक धर्म पुनः लुप्त-सा होने लगा।

दूसरी ओर पाशुपत (कापालिक) और शाक्त आदि अन्य वेद-विरोधी मत बड़े वीभत्स रूप में परिणत हो चुके थे, जिनसे सामान्य जन-जीवन संत्रस्त था। इनका स्वरूप उस समय कितना विकृत हो चुका था, इसका संक्षिप्त परिचय हमें श्री श्रीनिवासाचार्य के भाष्य के द्वारा स्पष्टतः मिलता है।

पाशुपत (कापालिक) मत

पाशुपत मत उस समय तक चार विभागों में विभक्त हो गया था—(i) कापाल, (ii) कालामुख, (iii) पाशुपत, (iv) व शैव। इनका आधारग्रन्थ पशुपति द्वारा प्रणीत शास्त्र

है, जिसमें 5 अध्याय हैं और उनमें 5 पदार्थों का निरूपण हुआ है—(i) कारण, (ii) कार्य, (iii) योग, (iv) विधि, (v) दुःखान्त। 'कारण' दो हैं—प्रधान और ईश्वर।

प्रधान इस जगत् का उपादान कारण है, ईश्वर केवल निमित्तमात्र है। 'कार्य' के अन्तर्गत महदादिकों की गणना है। ओंकार के ध्यान करने को 'योग' कहते हैं—'**ओंकारमभिध्यायात्सकृदिति कुर्याद्धारणमिति**' त्रिषबण स्नान आदि गूढ़चर्या पर्यन्त कार्यों की गणना 'विधि' के अन्तर्गत की गई है। दुःख का अंत हो जाना मात्र मोक्ष है। इनमें भी पाशुपत और कापाल लोगों का कहना था कि मोक्ष दशा में आत्मा पाषाण सदृश निःसंज्ञ हो जाता है। परन्तु शैव लोग मुक्तावस्था में भी आत्मा में चैतन्य की सत्ता मानते थे। ये लोग भगवान् की माया से विमोहित होकर यथेच्छ आचरण करते थे और उसे ही श्रेय का साधन मानते थे। जैसे कापाल लोगों का कहना था कि—षट् मुद्राओं को जानने वाला परमुद्रा में कुशल व्यक्ति 'स्त्री-योनि' से सम्पृक्त अपना चिन्तनकर परम निर्वाण पदवी को प्राप्त कर लेता है। कण्ठिका, रुचक, कुण्डल, शिखामणि, भस्म, यज्ञोपवीती—ये छह मुद्रायें हैं। इन मुद्राओं से मुद्रित व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता। इसी प्रकार कालामुख लोगों का कहना था कि कपाल (मनुष्य की खोपड़ी) का पात्र, शवभस्म से स्नान, शव का ही भोजन, लगुड धारण, सुर-कुम्भ का स्थापन और उसी से देवता का पूजन करने से समस्त ऐहिक एवं पारलौकिक सुखों की प्राप्ति हो सकती है। शैवागम में भी कुछ ऐसी ही बातें प्रचलित हो रही थीं, जैसे गले में—रुद्राक्ष, हाथ में कङ्कण, मस्तक पर जटा, मनुष्य की खोपड़ी का पात्र एवं शवभस्म के स्नान से समस्त कामनाओं की सिद्धि हो सकती है।

इन लोगों में एक बात बहुत प्रचलित थी; वह यह कि व्यक्ति चाहे किसी जाति का हो, इनकी दीक्षा-मात्र ले लेने से ब्राह्मण मान लिया जाता था और कदाचित् वह कापालव्रत को स्वीकार कर लेता था, तब तो ये उसे यति की संज्ञा से संबोधित करते थे, जबकि महाभारत आदि सनातन धर्म के ग्रंथों में इस बात का कड़ा विरोध प्रकट किया गया है।

मद्य पीकर लाल-लाल आँखें किये हुए मस्ती में झूमने वाले '**भैरवानन्द**' की यह उक्ति कापालिकों के वास्तविक स्वरूप को सामने लाकर खड़ा कर देती है—

> **'मंतो ण ततो ण अ किंपि जाणं,**
> **झाणं च णो किंपि गुरूप्पसादा।**
> **मज्जं पिआमो महिलं रमामो,**
> **मोक्खं च जामो कुलमग्ग लग्गा॥'**

—अर्थात् मैं मन्त्र नहीं जानता। न तो हमारे जैसा कोई दूसरा ज्ञानी है। मुझे तो केवल एक वस्तु इष्ट है, वह है गुरु का प्रसाद। ध्यान से भी हमें कुछ लेना-देना नहीं।

हम मद्य पीते हैं और रमणियों के साथ रमण करते हैं और कुलमार्ग में अनुरक्त होकर इसी सरल उपाय से हम मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

शाक्तमत

शक्ति उपासना भी बड़ी प्राचीन है। इस मत के प्रतिपादक ग्रंथ आगम या तन्त्र कहलाते हैं। सात्विक आगमों को 'तन्त्र', राजस को 'यामल' तथा तामस को 'डामर' कहते हैं। तान्त्रिक पूजा के तीन प्रधान केन्द्र भारत में थे—केरल, काश्मीर और कामाख्या। मद्य, मांस, मीन, मदिरा, मैथुन—इन पंच मकारों का निवेश तान्त्रिक पूजा में आवश्यक बताया गया था, पर केरल में इनके स्थान में दुग्ध आदि अनुकल्पों का प्रयोग किया जाता था। काश्मीर में केवल इन तत्त्वों की भावना की जाती थी और कामाख्या में इन सबका खुलकर उपयोग किया जाता था। आरम्भ में शक्ति-पूजा बड़े सात्विक ढंग से होती थी, पर इन्द्रियलोलुप उपासकों ने इसे नितान्त घृणित बना दिया था, जिससे समाज में इसके प्रति घृणा की भावना पैदा हो गयी थी।

श्रीनिवासाचार्य जी का कहना है कि शाक्त लोग शक्ति को ही जगत् का कारण मानते थे। वह शक्ति ब्रह्म से निरपेक्ष होकर ही सृष्टि करने में समर्थ है। इसलिए यह मत भी वेद-विरोधी था। क्योंकि वेद तो सर्वशक्ति-सम्पन्न सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण को ही जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण घोषित करता है।

इतना ही नहीं, उस समय बौद्धधर्म, में जो लोकधर्म-सा प्रख्यात हो रहा था, केरल में भी यही पंच मकारों के सेवन का प्रभाव बढ़ रहा था। बौद्ध-तान्त्रिक खुलकर सुरा और सुन्दरी का उपयोग करते थे और इसे ही परमकल्याण का एकमात्र सरल साधन मानते थे। बौद्ध-विहार ऐसी उपासना के केन्द्र थे। इसलिए सामान्य जनता की अब इनमें कोई श्रद्धा न थी। सारे बौद्धधर्म के प्रति लोगों में घृणा की भावना पैदा हो गयी थी। श्रद्धालु जनता को अब कोई सहारा नहीं था। इन दुर्विनीत बौद्धों ने अपने इस आचरण को उचित सिद्ध करने के लिए वैदिक धर्म-ग्रन्थों को समूल विनष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। भगवान् का अस्तित्व तो इन लोगों ने पहले ही समाप्त कर दिया था, जिससे सामान्य जनता निरीह की भाँति आकाश की ओर टकटकी लगाये देख रही थी। बौद्धों का अत्याचार यहाँ तक बढ़ गया था कि वे राज्याश्रय प्राप्तकर वैदिक धर्म के अनुयायियों की सामूहिक हत्या कर देते थे अथवा उन्हें गिन-गिनकर मार डालते थे। बौद्धों का 'अहिंसावाद' अहिंसा के प्रचार-प्रसार के लिए हिंसा के इस स्तर पर उतर आया था। सम्भवतः भगवान् उपवर्ष (200 ई.) द्वारा विरचित पूर्व और उत्तरमीमांसा की वृत्तियाँ इन्हीं लोगों का शिकार बन गईं थीं, जिससे चौथी-पाँचवीं शती में उसकी उपलब्धि की कोई सूचना नहीं मिलती। स्थिति तो यहाँ तक पहुँच चुकी थी कि लोग वेदान्तदर्शन का नाम ही भूल गये थे। बड़े-बड़े विद्वानों को भी इसका पता नहीं था, सामान्य जनता की बात तो दूर रही। उदाहरण के लिए श्रीहरिभद्रसूरि जैन को ही ले लीजिए। ये ईसा की 5वीं शती के उत्तरार्द्ध में हुए थे।

वैसे ये जाति के ब्राह्मण थे। चित्रकूट के निकट चितोभानगर के जितारि नामक राजा के पुरोहित थे। उस समय के प्रकाण्ड विद्वानों में इनकी गणना की जाती थी। इनके द्वारा विरचित अनेकान्त जयपताका, चैत्यवन्दनवृत्ति, षड्दर्शनसमुच्चय आदि अनेक ग्रंथ इनके पाण्डित्य के परिचायक हैं। षड्दर्शनसमुच्चय में इन्होंने छहों दर्शनों की गणना की है—

'बौद्धं नैयायिकं सांख्यं जैनं वैशेषिकं तथा।
जैमिनीयं च नामानि दर्शनानाममून्यहो॥'

इसमें वेदान्तदर्शन की कोई गणना नहीं है। यही नहीं, ईश्वर कृष्ण ने **सांख्यकारिका** लिखी है, जिस पर गौडपाद (श्रीशंकराचार्य के परम गुरु) ने टीका लिखी है, उसमें वेदान्तदर्शन की कोई चर्चा नहीं है और न्यायसूत्रों पर लिखित वात्स्यायन भाष्य में भी वेदान्तदर्शन का कोई उल्लेख नहीं है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पांचवीं शती के आस-पास वेदान्तदर्शन का लोप-सा हो गया था।

इस सम्बन्ध में आठवीं शती में होने वाले श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी की सम्मति भी बड़े काम की है। अपने ग्रंथ **'वेदान्तरत्नमंजूषा'** का प्रारम्भ करते हुए ये लिखते हैं कि—उस समय वेदान्त की **सन्तति** नष्ट हो चुकी थी। स्वयं भगवान् के द्वारा संस्थापित वेदमार्ग लुप्तप्राय हो गया था। लोग अज्ञानान्धकार में भटक रहे थे। इसलिए लोगों को वैदिक मार्ग में पुनः दीक्षित करने के लिए एवं वेदान्त की संतति का पुनः प्रवर्तन करने के लिए भगवान् ने अपनी ही विशिष्ट विभूति स्वरूप श्रीनिम्बार्काचार्य को इस धराधाम पर प्रेषित किया था।

इससे भी पता चलता है कि श्रीनिम्बार्काचार्य के आविर्भाव काल से पूर्व बौद्धों के द्वारा वेदान्तदर्शन मिट्टी में मिला दिया गया था। दूसरे रूप में इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है, कि वैदिक धर्म जो भगवान् की सत्ता में विश्वास करता था, उसको नष्टप्राय कर दिया गया था। जहाँ-तहाँ पूर्व-मीमांसा का उल्लेख अवश्य मिलता है पर वह भी अपनी अंतिम साँसें गिन रहा था।

ऐसे ही विचित्र समय में गुप्त-सम्राटों ने भारत का शासनसूत्र अपने हाथों में संभाला। प्रभुकृपा से ये वर्णाश्रम धर्म के अनुपोषक क्षत्रिय कुलभूषण थे और ब्राह्मणों के द्वारा अनुमोदित रीति से शासनसूत्र का संचालन करते थे। बचे-खुचे ब्राह्मणों ने संगठित होकर कार्य किया। अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा और मर्यादा को प्राप्त करने का एड़ी से लेकर चोटी तक का प्रयास हुआ। गुप्त सम्राट् भी परम वैष्णव निकले। वे अपने नाम के साथ 'परम भागवत' शब्द का प्रयोग बड़े गर्व से करते थे। सनातन वैष्णव धर्म के लिए यह स्वर्ण-युग था।

गुप्त-सम्राटों का प्रोत्साहन पाकर ब्राह्मणों ने पुराणों का नवीन संस्करण तैयार किया। साथ ही वर्णाश्रम धर्म (वैदिक धर्म) की अनुपोषक अनेक-अनेक संहिताओं का प्रणयन किया। इनके सहयोग से गुप्त-सम्राटों ने अनेक यज्ञ-यागादि करवाये जिससे वैदिक

धर्म में कुछ प्राण-संचार हो गया। श्रीप्रभुदयाल मीतल का कहना है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने मथुरा में भी एक वासुदेव कृष्ण का मन्दिर (प्राचीन श्रीकृष्णजन्म-स्थान-मन्दिर)का निर्माण करवाया था। गुप्तकाल (वि. 400 से 600 तक) में भारत के कोने-कोने तक सनातन वैदिक धर्म की एक लहर-सी फैल गयी थी। पर इसका यह मतलब नहीं कि उस समय बौद्ध विद्वान् कान में तेल डालकर सुख की नींद ले रहे थे। राज्याश्रय समाप्त हो जाने के कारण कुछ हतप्रभ तो अवश्य हो गये थे, उनका उन्माद कुछ ठंडा अवश्य पड़ गया था, फिर भी बौद्ध-विद्वानों ने एक बार फिर जोर लगाया। बौद्धधर्म के संरक्षण और विकास में प्रमुख सहायक राजाओं के सहारे अत्याचार और हिंसा का साधन तो छिन चुका था और परम भागवत गुप्त-सम्राट् भी वैष्णव होने के नाते प्रतिक्रियास्वरूप इनकी हत्या नहीं कर सकते थे। इसलिए इन लोगों ने संघर्ष का दूसरा मोर्चा खोला—वह था तर्क और न्याय के सहारे अपने धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन। प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक नागार्जुन, वसुबन्धु, दिङ्नाग और धर्मकीर्ति जैसे उद्भट विद्वानों ने इस मोर्चे को खोला था, जिसका मुँहतोड़ उत्तर वात्स्यायन और उद्योतकर जैसे नैयायिकों ने दिया। इनकी प्रबल युक्तियों के सम्मुख उनकी एक न चली। फिर भी सनातन वैदिक धर्म के उत्कर्ष एवं विकास के लिए मात्र इतना ही पर्याप्त नहीं था। एक विशेष दिशा में ब्राह्मणों की ओर से वेदार्थ की रक्षा का उद्योग नहीं हो रहा था। वह था वैदिक कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का सयुक्तिक मण्डन। इन दोनों विषयों के प्रति बौद्धों ने जो निन्दा और अवहेलना प्रदर्शित की थी, उसे ध्वस्त करने के लिए ऐसे लोगों की आवश्यकता थी जो वैदिक क्रिया-कलापों का औचित्य प्रदर्शित करते तथा वैदिक अध्यात्मशास्त्र की विशुद्धि को उद्घोषित करते।

उधर जैनमतावलम्बियों की ओर से भी विरोध की कमी न थी। उसके अनुयायी भी अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन तथा वैदिक धर्म के खण्डन कार्य में विशेष रूप से संलग्न थे। समन्तभद्र (चतुर्थ शती) तथा सिद्धसेन दिवाकर (पंचम शती) की महत्त्वपूर्ण रचनाओं ने जैन न्याय को पुष्ट कर दिया था। वैदिक आचार के अनेक अंशों में ऋणी होने पर भी जैन लोग श्रुति की प्रामाणिकता नहीं मानते थे। इस प्रकार श्रुति के क्रिया-कलापों पर दोहरा आक्रमण हो रहा था—एक तो बौद्धों की ओर से, दूसरा जैनियों की ओर से। अतः इस सनातन वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए यह बहुत आवश्यक था कि श्रुति के सिद्धान्तों की यथार्थता जनता को भली-भाँति समझायी जाये। श्रुति के कर्मकाण्ड में जो आपाततः विरोध दिखाई पड़ रहा था, उसका उचित परिहार किया जाये तथा यज्ञ-याग की उपयोगिता तर्क की कसौटी पर कसकर विद्वानों के सम्मुख उपस्थित किया जाये। साथ ही सामान्य से सामान्य जनता के सम्मुख भगवदुपासना का सरलतम सात्विक स्वरूप रखा जाये, जिससे वह शैव, शाक्त, कापालिक और बौद्ध तान्त्रिकों की वीभत्स उपासना प्रणाली से मुक्त हो सके।

यद्यपि उस समय समाज में पुराणों के माध्यम से वैष्णवता का प्रचार हो रहा था, गुप्त-सम्राट् स्वयं भी 'परम भागवत' विरुद से विभूषित हो रहे थे, तथापि—

"नहि वैष्णवता कुत्र सम्प्रदाय-पुरःसरा।"

(पद्मपुराण)

—के अनुसार ज्ञात होता है कि वैष्णवों का कोई संगठित स्वरूप न था, उनकी कोई परम्परा नहीं थी। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय पार्षद चक्रराज श्रीसुदर्शन को उस वैष्णव मार्ग को पुनः सुव्यवस्थित करने के लिए धराधाम पर प्रेषित किया, जैसा कि इसी समय में सम्पादित **भविष्यपुराण** के इस वचन से ज्ञात होता है—

"सुदर्शन! महाबाहो! सूर्यकोटि समप्रभ।
अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय॥"

और इन्हीं के साथ अनेक-अनेक भगवद् विभूतियाँ इस धरातल पर आयीं, जिन्होंने इस सनातन वैदिक मार्ग को पूर्ण संरक्षण एवं समर्थन प्रदान कर पुनः सुप्रतिष्ठित कर दिया। इन विभूतियों में श्री श्रीनिवास, भर्तृप्रपंच, भर्तृमित्र, भर्तृहरि, ब्रह्मदत्त, सुन्दरपाण्ड्य, द्रविड़ाचार्य, गौडपाद एवं कुमारिल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ परवर्ती विभूतियों में आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र का नाम भी श्रद्धा के साथ लिया जाता है।

संदर्भ सूची

1. Plato Republic, Book V, p. 252
2. Plato, ibid
3. Rao Venkata M.A., Philosophy in India II, Astrological Magazine, Raman Publications, Benglore - 20 June, 1964 P. 505-506
4. स्वामी करपात्री जी महाराज — 'मार्क्सवाद और रामराज्य', गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 2
5. Plato, Republic, Book VI, p. 485
6. बृहदारण्यकोपनिषद् शा.भा. (4-5, 1-2-3-4-5) गीता प्रेस, गोरखपुर पृ. 1128-1131.
7. Prof. John-Dewey – Democracy and Education, New York Macmillan Co., p. 378
8. भविष्य पुराण, पृ. 93 (मुम्बई वेंकटेश्वर प्रेस संस्करण 1894 शकाब्द)
9. निर्णयसिन्धु, द्वितीय परिच्छेद (मुम्बई वेंकटेश्वर प्रेस का 1894 शकाब्द संस्करण) पृ. 93
10. भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व, चतुर्थ खण्ड, सप्तम अध्याय, श्लोक 77-79
11. भृगु संहिता, तृतीय योगाध्याय, पृ. 175
12. वि.सं. 1917 की हस्तलिखित प्रति श्रीजी मन्दिर के संग्रहालय में है। पडरौना वाली कुञ्ज, श्रीनिम्बार्क कोट आदि स्थलों में भी इसकी प्रतियाँ हैं। इसमें श्रीहंस भगवान् से लेकर श्रीपरशुरामदेवाचार्य तक के आचार्यों के चरित्र संक्षिप्त रूप से वर्णित हैं।

इसका एक भाग भाषा टीका सहित आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व सुदर्शन प्रेस वृन्दावन से प्रकाशित भी हुआ था।

13. रावण-संहिता वाली कुण्डली में शुक्र मीन का है, जो तुला के सूर्य से छठे स्थान में है, सम्भव है यह प्रूफ संशोधन की त्रुटि है, या लेखकों की त्रुटि है, क्योंकि शुक्र सूर्य से इतनी दूरी पर नहीं रहता, यह ज्योतिष शास्त्र का नियम है। भृगु संहिता में जो निम्बार्क की कुण्डली मिलती है, तुला का शुक्र, वृश्चिक के सूर्य से एक घर ही पहले है, अतएव निकट है। उसमें चन्द्र, राहु, गुरु, शनि, केतु एवं मंगल—ये 6 ग्रह उच्च के हैं। राहु केतु को एक मानकर भविष्य पुराण में "उच्चस्थे ग्रह-पञ्चके" कहा है।
14. बाबा श्रीहंसदासजी द्वारा लिखित हंसप्रभा, पं. श्री किशोरदासजी वेदान्तनिधि द्वारा लिखित 'आचार्य परम्परा परिचय' तथा श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र ट्रैक्ट (भाषा)। पं. श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी का "निम्बार्कमहामुनीन्द्र भाषा ट्रैक्ट"। पं. श्रीराधिकादासजी चिड़ावा द्वारा संगृहीत और प्रकाशित पं. श्रीराधिकादासजी लिखित ब्रह्मसूत्र की भूमिका, ब्रजविदेही चतुस्सम्प्रदायी श्रीमहन्त, विविध भाषाविद्, कानून विशेषज्ञ, बाबा श्रीसन्तदासजी काठियाबाबा लिखित वेदान्त दर्शन की भूमिका, सबका यही अभिमत है।
15. यद्यपि उपलब्ध भविष्य पुराण में आलोचक विद्वान् कुछ प्रक्षिप्तांश मानते हैं, सम्भव है विक्रम की बारहवीं शताब्दी में आजकल के भविष्य पुराण से कुछ अन्तर रहा हो, इस कारण प्रचलित भविष्य पुराण में यह श्लोक उपलब्ध न हो, तथापि धर्मशास्त्र में परम्परागत यह श्लोक प्रामाणिक माना गया है।
16. आर.जी. भाण्डारकर लिखित शैविज्म वैष्णविज्म, पृ. 62
17. चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस से वि.सं. 1967 में मुद्रित संस्करण ब्रह्मसूत्र पर 'पारिजात सौरभवृत्ति'।
18. कुछ सज्जनों का कहना है कि शङ्कराचार्य ने यह आलोचना 'भर्तृप्रपंच' के मत की की होगी। परन्तु भर्तृप्रपंच का आज कोई ग्रन्थ उपलबध नहीं होता, वास्तव में ब्र.सू. 2/1/14 के शङ्कर भाष्य का "नन्वनेकात्मकं ब्रह्म." यहाँ से आरम्भ करके "उभयसत्यतायां हि कथमेकत्व-ज्ञानेन नानात्वज्ञानमपनुद्यत इत्युच्यते।" यह संदर्भ ब्र.सू. 2/1/12 के श्रीनिम्बार्क शिष्य श्रीनिवासकृत वेदान्तकौस्तुभ के—"वृक्षोपादानकानां फलपत्रादीनाञ्च कारणाऽनन्यत्वेऽपि विभागोऽस्ति" इत्यादि संदर्भ भी स्पष्ट आलोचनापरक दिखाई देता है। यह अर्थतः ही नहीं, शब्दतः भी मेल रखता है।

द्वितीय अध्याय

निम्बार्क-सम्प्रदाय : दार्शनिक सिद्धान्त, उपासना आदि

(1) निम्बार्क-सम्प्रदाय : भेदाभेद दार्शनिक सिद्धान्त-विवेचन

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त द्वैताद्वैत अथवा भेदाभेद के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीवेदव्यास प्रणीत ब्रह्मसूत्र के भाष्यों में विभिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने दार्शनिक मतों का प्रतिपादन किया है। इन सभी मतवादों में श्रीनिम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत मत अन्यतम है। उनके मतानुसार ब्रह्म का जीव और जगत् से स्वरूपतः भेदपरक एवं अभेदपरक दोनों ही रूपों में सम्बन्ध है। इस मत को द्वैत (भिन्नता मानने वाला) और अद्वैत (अभिन्नता मानने वाला) मत से संबोधित किया जाता है। वास्तव में इस मत में सत्यता भी प्रतीत होती है। कार्य-कारण सबंध पर विचार करने से इस मत की पूर्ण पुष्टि हो जाती है। जैसे कार्य (घट) कारण (मिट्टी) से भिन्न भी है और साथ ही अभिन्न भी। क्योंकि दोनों के नाम, रूप, आकार आदि में भिन्नता है, किन्तु दोनों की सामग्री एक ही होने से अभिन्नता भी है। इसी प्रकार जगत् (कार्य) ब्रह्म (कारण) से भिन्न और अभिन्न उभय रूप है।

विचारपूर्वक यदि देखा जाये तो यह निश्चय होता है कि ब्रह्म अपनी अनन्त शक्ति से जीव और जगत् रूप में प्रकाशित होने के कारण उनसे अभिन्न रूप में प्रतिष्ठापित है। साथ ही अतीत रूप में विद्यमान होने के कारण जीव और जगत् से भिन्न भी है। अतः ब्रह्म, जीव और जगत् में परस्पर भेद (द्वैत) और अभेद (अद्वैत) दोनों ही हैं और यही श्रीनिम्बार्काचार्य का प्रतिपाद्य है। उनके इस द्वैताद्वैतवादी सिद्धान्त को विस्तार से हृदयंगम करने के लिए ब्रह्म, जीव और जगत् सम्बन्धी उनकी मान्यताओं का विस्तृत विवेचन आवश्यक है।

ब्रह्म

श्रीनिम्बार्काचार्य ने ब्रह्म को आनन्दमय कहा है, जिसमें आनन्द की प्रचुरता का ही प्राधान्य है।[1] आनन्दमय का अर्थ विकारवान् कदापि नहीं, उसका आनन्द भूमा की अवस्था में जाकर स्थित होता है।[2] वस्तुतः जीवात्मा को आनन्द देने के कारण भी परमात्मा ही आनन्दमय कहा जायेगा।[3] ब्रह्म जगत् का केवल प्रकृति अर्थात् उपादान कारण नहीं है, वह जगत् का निमित्तकारण भी है।[4] क्योंकि उसके द्वारा अश्रुत, श्रुत हो जाता है। अमूर्त मूर्त हो जाता है। अविज्ञात विशेष रूप से ज्ञात हो जाता है। जैसे एक मिट्टी के ढेले को

देखने से सम्पूर्ण मिट्टी के पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। अतः परमात्मा ही जगत् का कारण है, ऐसा निश्चय होता है। वह सृष्टि का उपादान कारण भी है। क्योंकि 'उसने अभिलाषा की कि मैं बहुत हो जाऊँ' इस वाक्य से भी अभिलाषा प्रकट करने वाला ब्रह्म चैतन्य स्वतंत्र परमात्मा है।[5] वह आनन्दमय, अप्राकृत, सर्वशक्तिमान्, पुरुषोत्तमस्वरूप है। उसे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि जब वह सृष्टि करने की कामना करता है, तो संकल्पमात्र से सृष्टि कर लेता है।[6] श्रुतियों का भी एकमात्र ब्रह्म ही प्रतिपाद्य है। **'रसो वै सः'**, **'आनन्दो ब्रह्म'** आदि उसी के द्योतक हैं। आनन्द उसका ही एक विशिष्ट गुण है, जिसका कि पृथक्-पृथक् रूप से उल्लेख हुआ है। उन सबका उपसंहार उस परमात्मा में ही समझना चाहिए।[7] वह स्वरूपतः अव्यक्त होते हुए भी भक्तियोग में ध्यान द्वारा व्यक्त हो जाता है। ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि होने पर ही विशुद्ध अन्तःकरण में उस ब्रह्म की स्पष्ट झाँकी परिलक्षित होती है।[8]

वह भक्ति से ही सर्वसुलभ है। वह सर्वप्रकार से परिपूर्ण, विद्रूप और विभु है। सम्पूर्ण जीव उसी के चिदंश की किरणों के रूप में विद्यमान हैं। वह अपनी शक्ति का अनुभवमात्र करने से संसार का रूप धारण करता है। वस्तुतः वह ब्रह्म नानारूपी विश्व की सृष्टि, लय आदि का हेतु है। अचिन्त्य शक्तियों का आधार भी वही है। वेदों का प्रतिपाद्य, जगत्-जीवमय विश्वात्मा, सर्वरूप से भिन्नाभिन्नावस्था में रहते हुए, आनन्दमय परमतत्त्व वासुदेव के रूप में प्रतिभासित होता है।[9] वह परमात्म मायाधीश है। जन्म आदि विकारों से शून्य, स्वाभाविक और अचिन्त्य अनेक गुणों का सागर, विभूति सम्पन्न है। वह मुक्त जीवों को ऐश्वर्यानुभूति कराता है।[10] वह सत्यकाम और सत्यसंकल्पवान् है। जीवों के स्वरूप का आविर्भावकर्ता, मुक्ति-प्रदाता भी वही है। उसी की परम कृपा से जीवों को उसकी प्राप्ति होती है। वह अन्तर्यामी रूप से सर्वत्र विद्यमान है। वह सुख-दुःख के भोगने वाले शरीरी जीवों से अधिक उत्कृष्ट है। शरीर का भी कर्ता है। आत्मा के अंदर वह परमात्मा ही शासनकर्ता है।[11] श्रीनिम्बार्काचार्य की दृष्टि में वस्तुतः सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि आदि का कारण ब्रह्म ही है। उसकी अध्यक्षता में ही प्रकृति-चराचरात्मक जगत् की सृष्टि करती है। प्रकृतिस्थ जगत् का एकमात्र अधिष्ठाता ब्रह्म ही है।[12]

जीव

श्रीनिम्बार्काचार्य ने वेदान्तकामधेनु के एक ही श्लोक में जीव के वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन कर दिया है। ये आत्मवेत्ता, जीव को चैतन्य (ज्योतिस्वरूप) शरीर से संयुक्त और वियुक्त होने वाला, अणु परिमाण वाला, सूक्ष्म, अनेक शरीरों में अलग-अलग होने से अनन्त तथा इसे परमात्मा के अधीन कहते हैं—

ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
अणुं हि जीवं प्रतिदेह-भिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यमनन्तमाहुः॥

वेदान्तकामधेनु (दशश्लोकी)

ब्रह्म का अंश होने के नाते जीव भी ब्रह्म ही है, तथापि जीव और ब्रह्म का पूर्णतः अभेद स्वीकार्य नहीं, भेदाभेद सम्बन्ध ही मान्य है। जीव को स्वरूपतः अणु मानते हुए भी श्रीनिम्बार्क ने उसके गुण और ज्ञान को विभु की संज्ञा दी है। अणु, चित् होते हुए उसका ब्रह्म से नित्य सम्बन्ध बना रहता है। इस प्रकार भगवत् साधर्म्य प्राप्त कर जीव सर्वज्ञ की कोटि में पहुँच जाता है। जिस प्रकार महान् गुण के कारण परमात्म महान् है, उसी प्रकार जीवात्मा अणु परिमाण का होकर भी गुण से महान् है।[13] जीवात्मा अणु परिमाण वाला होकर भी शरीर के सुख-दुःख का अनुभव करता है।[14]

जीवात्मा के प्रकाश से ही सारा शरीर प्रकाशित होता है, ठीक वैसे ही जैसे कि कमरे में एक स्थान पर स्थित दीपक सारे कमरे को आलोकित करता है।[15]

श्रीनिम्बार्काचार्य के अनुसार आनन्दमय परमात्मा ही है, जीव नहीं। वस्तुतः ब्रह्म का संयोग पाकर ही जीव आनन्दानुभव करता है। बद्ध जीव को इसीलिए अज्ञ अथवा अल्पज्ञ की संज्ञा दी गई है। ब्रह्म के साथ जीव का क्रमशः विभु और अणु का सम्बन्ध ही स्थापित होता है। जीवात्मा न तो जन्म लेता है और न ही मरता है। वह नित्य और अजन्मा है। इससे जीव की नित्यता भी सिद्ध होती है।[16] मुक्त जीव ब्रह्म का साक्षात्कार करके उसके पूर्ण आनन्द में निमग्न हो जाता है। किन्तु बद्ध जीव को आनन्दात्मक जगत् का अनुभव केवल जड़रूप में ही प्रतिभासित होता है। उसे अपने चिदंशस्वरूप का विस्मरण हो जाता है। श्रीनिम्बार्क ने ज्ञान और जीव में धर्म-धर्मी सम्बन्धरूप से भेदाभेद सम्बन्ध स्थापित किया है। यद्यपि चिदंश-रूप होने के नाते जीव और उसके ज्ञान में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता।[17]

परमात्मा आनन्दयोग से जीवात्मा पर शासन करता है। अर्थात् जीव अन्तर्यामी परमात्मा द्वारा नियन्त्रित होता है। वह उस परमात्मा से भिन्न भी है, जिसके सकाश से आनन्दयोग की स्थिति बनती है। वह परमात्मा रसस्वरूप है, जिस रस की अनुभूति कर जीवात्मा आनन्दित होता है।[18] इस प्रकार जीव और ब्रह्म के बीच स्वरूपतः, गुणतः एवं शक्तितः शाश्वत भेद है। किन्तु भोक्ता जीव और नियन्ता ब्रह्म के बीच यह भेद ठीक वैसा ही है, जैसाकि समुद्र और उसकी तरंग एवं सूर्य और उसकी प्रभा के बीच विद्यमान है।[19] अतः यह ब्रह्म और जीव के बीच अभेदत्व के साथ भेदत्व सिद्ध हुआ। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जीव या चित् ज्ञानस्वरूप और ज्ञानाश्रय है। वह ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है। वह अणु है। मुक्तावस्था में भी वह कर्ता रहता है। उस समय वह ईश्वर से केवल एक बात में भिन्न रहता है। वह यह कि ईश्वर नियन्ता है और जीव नियम्य। अंशांशिभाव रहने से जीव और परमात्मा में भेदाभेद दिखाया गया है। वस्तुतः जीव परमात्मा का अंश है, कारण 'ज्ञ' (सर्वज्ञ) 'ईश' (ईश्वर) और 'अज्ञ' (असर्वज्ञ) 'अनीश' (जीव) दोनों ही 'अज' (जन्मरहित एवं नित्यसत्य) हैं—इस श्रुति वाक्य में जीव और ईश्वर में भेद उपदिष्ट हुआ है।[20]

इस प्रकार श्रीनिम्बार्काचार्य ने ब्रह्म और जीव में भेदाभेद सम्बन्ध स्थापित किया है। इस बात की उन्होंने स्पष्ट घोषणा की है कि जीव ब्रह्म का अंश होने से उनके बीच परस्पर भेदाभेद सम्बन्ध भी नित्य शाश्वत और स्वाभाविक है।

जगत्

श्रुति इस बात का प्रमाण है कि ब्रह्म ही जगत् रूप से प्रकाशित है। श्रीनिम्बार्काचार्य ने '**आत्मकृतेः परिणामात्**' सूत्र के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा है कि सर्वशक्तिमान् परमात्मा स्वशक्ति के विक्षेप से जगत् के आकार में परिणत हो जाता है। वह अव्याकृत स्वरूप में रहकर ही अपनी शक्ति और कृति से जगत् रूप को प्राप्त होता है। ब्रह्म ही निमित्त और उपादान कारण है। जगत् उसी की अनुकृति है।[21]

जगत् ब्रह्म की लीलार्थ की हुई संकल्पमूलक परिणति है। कार्य जगत् का कारण ब्रह्म से अनन्यत्व (अभेद) सम्बन्ध है, अत्यन्त भिन्नत्व (भेद) नहीं है। मृत्तिका सत्य है, क्योंकि उसके द्वारा निर्मित घटादि भिन्न प्रतीत होते हुए भी पृथ्वी के ही विकृत रूप होने के कारण उससे अभिन्न ही है। वस्तुतः यह सारा दृश्यमान जगत् परमात्मस्वरूप ही सत्य प्रतीत होता है। क्योंकि कारण और कार्य में न तो सर्वथा भेद ही होता है और न अभेद ही। भेदाभेद ही नित्यसिद्ध रहता है। कार्य के दोषों से मुक्त होता है। इसी प्रकार जगत् (कार्य) के दोष ब्रह्म कारण में नहीं होते।[22] परमात्मा के व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूप एक साथ ही स्वीकार किए जाते हैं। मूर्त और अमूर्त (स्थूल और सूक्ष्म) विश्व (जगत्) अपने कारण रूप ब्रह्म में भिन्नाभिन्न सम्बन्ध से रह सकता है। ठीक उसी प्रकार से जिस प्रकार सर्प इच्छानुसार कुण्डली बनाकर बैठ जाता है और अपनी इच्छानुसार ही विस्तृत हो जाता है। इसी प्रकार ब्रह्म अपने संकल्पमात्र से ही जगत् की सृष्टि और लय का हेतु है।[23]

उक्त अहि-कुण्डल न्याय से स्थित विश्व को ब्रह्म से भिन्न भी नहीं कह सकते और सर्वथा अभिन्न भी नहीं कहा जा सकता। बद्ध और मुक्त जीवों की आसक्ति और अनासक्ति का कारण भी यह जगत् ही है। ब्रह्म का शक्ति होने के कारण जगत् भी नित्य सत्य है, किन्तु नित्य होते हुए भी वह परिवर्तनशील है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान रूपों से प्रकाशित समग्र जगत् परमात्म ज्ञान में नित्यरूप से प्रतिष्ठापित है। यह जगत् पहले से ही सत्तावान् था। प्रत्येक वस्तु की सत्ता थी, जो कालांतर में जगत् रूप में प्रकट हो गई। यह जगत् भी प्रलय होने पर सूक्ष्म रूप से संकुचित होकर परमात्मा में स्थिर हो जाता है और सृष्टि के समय पुनः इसका विस्तार होने लगता है।[24] जगत् की सृष्टि-आदि तथा नानारूपता में परिणति ब्रह्म की सर्वशक्तिमत्ता द्वारा ही होती है। जगत् का एकमात्र आधार ब्रह्म ही है, क्योंकि वह नियन्ता एवं अन्तर्यामी रूप से सदैव विद्यमान होता है। कुम्हार को घट के निर्माण करने में चक्र, मिट्टी, दण्ड आदि बाह्य उपकरणों का संग्रह करना पड़ता है, किन्तु परमात्मा तो ऐसा नहीं करता। वह तो दूध से दही अथवा जल से बर्फ

की भाँति प्राकृतिक शक्ति से स्वतः जगत्रूप में परिणत हो जाता है।[25] वस्तुतः आनन्दमय, सर्वशक्तिमान् पुरुषोत्तम को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि जब वह सृष्टि करने की कामना करता है तो संकल्प मात्र से जगत् की सृष्टि कर लेता है।यथा—उसने कामना की कि मैं एक से बहुत हो जाऊँ।[26] जिस प्रकार कपड़े को प्रथम समेटकर बाद में पुनः विस्तृत कर दिया जाये, उसी प्रकार परमात्मा भी विश्व को अपने में समेटकर पुनः उसे प्रसारित कर देता है। इससे प्रलय के बाद भी जगत् की सत्ता सिद्ध होती है।[27] पुनः स्पष्ट करते हैं कि जैसे प्राणायाम की क्रिया द्वारा रुककर प्राणवायु अपने संकुचित रूप में अवस्थित रहता है, वैसे ही यह जगत् भी प्रलय होने पर सूक्ष्म रूप से संकुचित होकर परमात्मा में स्थित हो जाता है और सृष्टि के समय पुनः विस्तृत हो जाता है।[28] अतः जगत् और ब्रह्म का कार्यकारण, शक्ति-शक्तिमान् के आधार पर परस्पर भेदाभेद सम्बन्ध का ही प्रतिपादन किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है श्री श्रीनिम्बार्काचार्य ने ब्रह्म को सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में स्वीकार किया है। जीव और जगत् की सत्यता पर भी उन्होंने बल दिया है। उनकी दृष्टि में जीव और जगत् सत्य है, मिथ्या नहीं। श्रीनिम्बार्काचार्य का अद्वैत (ब्रह्म) द्वैत (जीव, जगत्) से पृथक् नहीं है, अपितु जीव और जगत् को ब्रह्म का अङ्गीभूत रूप से एक करके ही है। किन्तु अद्वैत मतावलम्बी अद्वैत (ब्रह्म) में जीव और जगत् का स्थान स्वीकार नहीं करते, इसलिए कि उनके मत में जगत् मिथ्या है और जीव का पृथक् रूप से कोई अस्तित्व ही नहीं है। फिर भी आश्चर्यजनक तो यह है कि अद्वैत (ब्रह्म) की सत्ता का पूर्ण समर्थन करते हुए भी वे (अद्वैतवादी) जीव और जगत् की सत्ता को स्वीकार न कर सके। उन्हें व्यावहारिक भाव से इनकी सत्ता को स्वीकार करना पड़ा। ब्रह्म से भिन्न करने से व्यावहारिक रूप से जीव और जगत् की सत्ता स्वीकार करने के कारण द्वैतवाद की प्रतिष्ठा होती है। अतः अद्वैतवादियों के मत की यथार्थ पुष्टि नहीं होती। वस्तुतः द्वैताद्वैतवादी श्रीनिम्बार्काचार्य ही यथार्थ रूप में अद्वैतवादी हैं, क्योंकि उनके द्वैताद्वैतवाद में अद्वैत (ब्रह्मवाद) और द्वैत (जीव, जगद्वाद) सत्ता का एकपक्षीय द्योतन न होकर उभयपक्षीय द्योतन होता है। यही द्वैताद्वैतवाद की परम विशेषता है। इसमें समन्वय की अभूतपूर्व क्षमता विद्यमान है।

(2) निम्बार्क-सम्प्रदाय में श्रीशालिग्राम एवं राधास्वरूप निरूपण

(i) निम्बार्क-सम्प्रदाय में श्रीशालिग्राम विग्रह

वैदिक एवं शास्त्रानुयायी होने के नाते इस सम्प्रदाय में वेदोक्त क्रियाओं के पालन पर विशेष बल दिया गया है। इनमें त्रैवर्णिकों के लिए श्रीशालिग्राम के पूजन का अत्यधिक महत्त्व है। शालिग्राम पूजा द्विजों के लिए संध्या वन्दन की तरह नित्य माना गया है। जैसे संध्या न करने पर प्रत्यवाय की प्राप्ति होती है, उसी तरह शालिग्राम की पूजा न करने पर पाप लगता है। श्रीशालिग्राम की पूजा, गायत्री का जाप, पुरुषसूक्त का पाठ एवं भगवद्गीता

के पाठ का भारतीय सनातन संस्कृति का कोई भी ग्रन्थ ऐसा नहीं, जिसमें इसका अनुमोदन न हो। याज्ञवल्क्य स्मृति का वचन है, "**दद्यात् पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव वा। अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम्।**" अर्थात् जिसने पुरुषसूक्त के द्वारा पुष्प या जल भगवान् श्रीशालिग्राम को अर्पित कर दिया, उससे समस्त विश्व पूजित हो जाता है। यह वाक्य साधारण ग्रन्थ का नहीं है। याज्ञवल्क्य भारतीय दार्शनिकों एवं धर्मशास्त्रवेत्ताओं में सर्वमूर्धन्य हैं। वे विश्व की सर्वोच्च फिलासफी बृहदारण्यक के प्रधान वक्ता, मिथिला के माननीय विद्वान् थे। शालिग्राम सेवा का विधान समस्त वैष्णव सम्प्रदायों के ग्रन्थों में मिलता है। यह उपासना सृष्टि के आरम्भ से ही है, अतएव प्राचीन है। शालिग्राम पूजा में अनेक सुविधाएँ हैं, न विशिष्ट आभूषणों की आवश्यकता, न वस्त्रादि और न मठ-मंदिरों की जरूरत रहती है। जहाँ कहीं भी रहकर केवल जल और तुलसीदल पुष्ट आदि सर्वत्र सुलभ सामग्री से ही पूजा कर सकते हैं।

प्राचीन समय में जब सृष्टि का विशिष्ट विकास नहीं हुआ था, श्रीसनकादिक आदि दिगम्बर कहलाने वाले लोकाचार्य श्री सनत्कुमार आदि देवर्षि श्रीशालिग्राम की ही उपासना करते थे। **श्रीशालिग्राम (श्रीसर्वेश्वर)** की प्रतिमा में ही अपने आराध्य श्रीयुगलकिशोर की छटा का अनुभव करते थे। उनके अनन्तर उनके परवर्ती आचार्यों को वही शालिग्राम (श्रीसर्वेश्वर) प्रभु की प्रतिमा प्राप्त होती रही, जो आज तक **अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्री 'श्रीजी' महाराज** को परम्परा से सम्प्राप्त है। यह कहना नितान्त अज्ञता है, कि सनकादिकों के पास पूजा की सामग्री और सर्वेश्वर के विराजमान करने के लिए स्थान ही नहीं था, अतएव ये श्रीसर्वेश्वर सनकादिक सेव्य न होकर श्रीहरिव्यासदेवाचार्य के सेव्य थे। इस कथन पर कोई भी विज्ञ व्यक्ति विश्वास नहीं कर सकता, क्योंकि आज भी श्रीसर्वेश्वर प्रभु के विराजने का स्थान आचार्यश्री का कंठ ही प्रधान है और प्रधान उपास्य भी श्रीसर्वेश्वर (शालिग्राम) ही हैं, जिनकी सेवा स्वयं आचार्यचरण विशिष्ट अर्चक ही कर सकते हैं। कच्ची भोजन सामग्री का भोग तो आचार्यश्री के अतिरिक्त अन्य किसी भी अर्चक के हाथ का भोग नहीं लगाया जाता। इसी का अनुकरण सम्प्रदाय के अन्य व्यक्ति भी करते हैं। जिनसे जितनी जैसी सेवा बनती है, वह उतनी वैसी ही श्रीशालिग्राम की अर्चा-पूजा करता है। शालिग्राम शिला में अंगोपांगों का आविर्भाव होना भी अन्याऽन्य सम्प्रदायों में मान्य है, तब श्रीनिम्बार्काचार्यपीठस्थ **श्रीशालिग्राम (सर्वेश्वर)** प्रभु के सम्बन्ध में सम्प्रदाय विद्वेषियों द्वारा शंकाएँ और भ्रान्ति करना व्यर्थ है।

(ii) निम्बार्क-सम्प्रदाय में श्रीराधा स्वरूप

श्रीसनकादिक तथा श्रीनारद भगवान् के अनुसार ही श्रीनिम्बार्क भगवान् ने श्रीराधाजी की उपासना का विशेष आदेश दिया है—वेद, पुराण, तन्त्र आदि शास्त्रों के अनुसार भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने कहा है—परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण के बायें अङ्ग में प्रसन्नतापूर्वक विराजमान श्याम-सुन्दर के अनुरूप परम सुन्दर दिव्य गुणों से सम्पन्न, अनन्त सखियों से

सेवित, समस्त अभीष्टों को पूर्ण करने वाली श्रीवृषभानुनन्दिनी का हम सदा स्मरण करते हैं—यह उनकी प्रार्थनारूप दिव्य आदेश वाणी है—

"अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा,
विराजमानामनुरूप-सौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा,
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥"

इसी आदेश के आधार पर विद्वान् लेखकों ने यह निश्चित किया है, "**धार्मिक क्षेत्र में श्रीराधा का प्रथम प्राकट्य निम्बार्क मत में ही हुआ है।**"[29] उनकी यह भी मान्यता है कि वृन्दावन का आश्रय कर पनपने वाले कृष्णभक्तिपरक सम्प्रदायों में निम्बार्क मत की प्राचीनता अक्षुण्ण है। वेद, उपनिषद्, तन्त्र और पुराणों में श्रीराधाजी का उल्लेख श्री, गोपी, रुक्मिणी आदि अनेकों नामों से हुआ है। अथर्ववेदीय गोपालतापिनी उपनिषद् के गोपाल मन्त्र में गोपी शब्द से ही श्रीराधिका जी का उल्लेख हुआ है। पाञ्चरात्रोक्त मुकुन्द मन्त्र में श्री शब्द से श्रीकिशोरीजी का उल्लेख है। "श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ..." इस यजुर्वेदीय पुरुषसूक्त में लक्ष्मी नाम स्पष्ट है, उनके साथ श्री शब्द से श्रीराधिकाजी का उल्लेख है। इन सब मन्त्रों में श्रीराधाजी और श्रीकृष्ण का वैशिष्ट्य एवं नित्ययोग बतलाया है। उपर्युक्त श्लोक में श्रीनिम्बार्काचार्य ने भी उनका नित्ययोग सूचित किया है। भैष्मी, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि भी श्रीकृष्ण की शक्तियाँ श्रीराधिकाजी की ही अंशरूपा हैं। अतएव विष्णुपुराण में रुक्मिणी शब्द से उल्लेख मिलता है—

"देवत्वे देव-देहे या मानुषत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम्॥
राघवत्वे भवेत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषाऽनपायिनी॥"

यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का उल्लेख विष्णु शब्द से हुआ है। श्रीश्यामसुन्दर समस्त ऐश्वर्य, माधुर्यादि से परिपूर्ण हैं, उनकी अष्ट महापटरानियों में प्रमुख भैष्मी रुक्मिणी ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री हैं। प्रेम की अपेक्षा ऐश्वर्य सुलभ है, अतः ऐश्वर्य की अपेक्षा प्रेम का उच्च स्थान है। यद्यपि श्रीनिम्बार्काचार्य ने अपनी दशश्लोकी के उक्त श्लोक में प्रेमाधिष्ठात्री श्रीराधिकाजी का ही स्पष्ट उल्लेख किया है, सर्वसाधारण को ऐसा सहज प्रतीत हो जाता है, तथापि टीकाकारों का कर्तव्य है कि वे किसी न किसी शब्द से छिपे हुए गूढ़ भाव की भी अभिव्याक्ति करें। इसी दृष्टि से श्रीनिम्बार्काचार्य की चतुर्थ पीठिका में होने वाले श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी ने देवी शब्द से ऐश्वर्याधिष्ठात्री श्रीरुक्मिणी का तात्पर्य निकाला और सूचीकटाह न्याय से प्रथम उन्हीं के सम्बन्ध में लिखा, तत्पश्चात् प्रेम और प्रेमाधिष्ठात्री की उच्चता का दिग्दर्शन कराया। उन्होंने इस श्लोक की व्याख्या से पूर्व जो अवतरणिका दी है, उसमें भी '**श्रीश्चते लक्ष्मीश्च**' इस वेदमन्त्र को उद्धृत करके भी अपनी व्याख्या की शैली व्यक्त कर दी है—वहाँ ही उन्होंने 'श्रुत्युक्त लक्ष्म्यादि वैशिष्ट्यं विधत्ते' इस पंक्ति से स्पष्ट

कर दिया है—यद्यपि श्री शब्दवाची प्रेमाधिष्ठात्री श्रीकिशोरीजी का उल्लेख इस मन्त्र में प्रथम है, और देवी पद से लक्ष्मी का बाद में, तथापि एक-एक अङ्गों के वर्णन के बाद जिस प्रकार अङ्गी का वर्णन किया जाता है, उसी प्रकार पहले ऐश्वर्य की व्याख्या करके तत्पश्चात् प्रेम और प्रेमाधिष्ठात्री का विवेचन इस श्लोक के द्वारा आचार्य श्री करते हैं, यह उनकी अवतरणिका का आशय समझना चाहिए।

कुछ सज्जन निम्बार्क सम्प्रदाय के महत्त्व से कुढ़ने लगे हैं, वे किसी न किसी प्रकार से इसके गौरव को मिटाने के लिए तनतोड़ प्रयत्न में लगे हुए हैं। वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीराधा की उपासना के प्रचार प्रसार करने वालों में 'श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय एवं श्रीनिम्बार्काचार्य सर्वप्रथम हैं।' विद्वान् ऐतिहासिकों की इस मान्यता पर भी कुछ इने गिने व्यक्ति असफल प्रहार करने लगे हैं।

यद्यपि सत्य सत्य ही रहता है तथा ऐसे छली आलोचकों की बातों से साधारण पाठक भ्रम में न पड़ जाये, अतः यहाँ उनकी करतूतों का दिग्दर्शन कराके पाठकों को सावधान कर देना आवश्यक है। इस समय वृन्दावन में, जो निम्बार्क सम्प्रदाय का अशुभचिन्तक गुट पैदा हो गया है, उसके एक सदस्य महोदय श्रीरामदास शास्त्री लिखते हैं—"श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का इतिहास सर्वाधिक विवादास्पद है, कारण पुराणों में भविष्यपुराण की अधिकांश रचना अर्वाचीन है।"

शास्त्री जी को या तो यह पता नहीं या लिखा नहीं—कौन-कौनसी रचनाएँ अर्वाचीन हैं। श्रीकृष्णचैतन्य सम्बन्धी जो पन्ने भरे हैं, वे तो असंगत और अर्वाचीन हैं ही, क्योंकि उनमें श्रीकृष्णचैतन्य से, श्रीशंकर, रामानुज आदि जो उनके कई शताब्दियों पूर्व हो चुके थे, प्रेमभिक्षा माँगना जैसी अनर्गल बातें गढ़ी हुई हैं। किन्तु विक्रम की बारहवीं शताब्दी तक के हेमाद्रि जैसे धर्मशास्त्रीय विद्वानों के लिखे हुए '**चतुर्वर्ग-चिन्तामणि**' जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों में उपलब्ध '**निम्बार्को भगवान्येषां**' इत्यादि भविष्य पुराण के श्लोक अर्वाचीन एवं प्रक्षिप्त नहीं माने जा सकते, शास्त्रीजी कुछ श्रम करके देखते कि हेमाद्रि द्वारा उद्धृत वह श्लोक वर्तमान भविष्य पुराण में है या नहीं। किन्तु कलुषित हृदय में ऐसी शोध की भावना क्यों उत्पन्न हो?

उनकी यह दलील, "रामकृष्ण भाण्डारकर ने बहुत छानबीन के पश्चात् बारहवीं शताब्दी में श्रीनिम्बार्काचार्य के प्राकट्य की बात संकोच के साथ कही है" पूर्वापर विरुद्ध है। छानबीन के पश्चात् संकोच किस बात का? बिचारे भाण्डारकर ने तो असमर्थता प्रकट करके एक अनुमान लगाया था, उसे आज का कोई भी शोधकर्ता नहीं मानता, यहाँ तक कि भाण्डारकर के अनुयायी ही उनके उस अनुमान का आदर नहीं करते।

औदुम्बर संहिता को शास्त्रीजी ने उसके वर्णित विषय से कुछ सौ वर्षों की बनी हुई लिखा है, किन्तु वह कौन सा विषय है? इसकी चर्चा न करके केवल इतना ही लिख दिया, "हमारा उद्देश्य यहाँ इतिहास खोज करना नहीं।" शास्त्रीजी को सम्प्रदाय परम्परा का

तो कुछ भी ज्ञान नहीं लगता है, अन्यथा वेदान्तरत्न मंजूषाकार का नाम श्रीपुरुषोत्तमभट्ट और उन्हें श्रीनिम्बार्काचार्य से सातवीं पीढ़ी में नहीं लिखते। इससे तो यह भी अनुमान होता है कि शास्त्रीजी.ने वेदान्तरत्न मंजूषा की पुस्तक के भी दर्शन नहीं किये होंगे, किसी दूसरे व्यक्ति से सुनकर ही ऐस उल्लेख कर दिया होगा। वेदान्तरत्न-मंजूषा की अधूरी पंक्ति उद्धृत करके भी भ्रांति फैलाने की कुचेष्टा की गई है। उनका मनगढन्त अर्थ किया गया है और असंगत अवतरणिका लिखी है। पाठकजन ध्यान दें, वे लिखते हैं—

"इतना ही नहीं, उन्होंने वृषभानुजा शब्द के प्रयोग पर भी आपत्ति की है। वे लिखते हैं—**अनयोर्मध्ये ऐश्वर्याधिष्ठातृत्वेन लक्ष्म्याः प्राधान्यात् तस्या एव पूर्वोपयोग उचितः** यहाँ अधूरी पंक्ति और उसकी अवतरणिका दोनों में ही छल किया है। सुधीजन विचारें, इस पंक्ति में वृषभानुजा शब्द पर क्या आपत्ति की गई है? जैसे कोई दिनदहाड़े किसी की आँखों में धूल झोंकना चाहे, वैसी ही चेष्टा श्रीशास्त्रीजी कर रहे हैं। वास्तव में पूरी पंक्ति इस प्रकार है—"**यद्यप्यनयोर्मध्ये ऐश्वर्याधिष्ठातृत्वेन लक्ष्म्याः प्राधान्यात् तस्या एव पूर्वप्रयोग उचितस्तथापि व्रजस्त्रियः प्रेमाधिष्ठातृतया तच्चरणस्मरणस्य प्रेमदातृत्वात् पूर्वप्रयोगः।**"

मंजूषाकार ने 'मुदा और विराजमानां' इन दोनों पदों का तात्पर्य 'राधयामाधवोदेवो' इस ऋग्वेद परिशिष्ट श्रुति का प्रमाण देकर श्रीश्यामाश्याम का प्रेमोत्कर्ष और नित्य सम्बन्ध बतलाया है। फिर कहा है—लक्ष्मी ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी हैं और श्रीकिशोरीजी प्रेम की। "प्रेम पंथ अति ही कठिन" यह लोकशास्त्र प्रसिद्ध है, आचार्यदेशिक भी प्रेमभक्ति का उपदेश सर्वसाधारण को नहीं देते, किसी विशिष्ट अधिकारी को ही देते हैं, किन्तु ऐश्वर्य भक्तिरस सरल होने से सर्वसाधारण को उसका उपदेश दिया जा सकता है। सर्वविदित होने से इस आशय को व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है, इसी भाव का स्पष्टीकरण मंजूषाकार ने किया है—यद्यपि ऐश्वर्याधिष्ठात्री लक्ष्मी वाचक देवी शब्द का प्रयोग पहले कर देना उचित प्रतीत होता है तथापि प्रेमाधिष्ठात्री व्रजस्त्री (श्रीराधिका जी) के चरणों का स्मरण करने से प्रेम की प्राप्ति हो जाती है, अतः आचार्य चरणों ने श्रीवृषभानुजा का पूर्व प्रयोग किया है। इसी से शास्त्रीजी के किये हुए समस्त आक्षेप भस्मीभूत हो जाते हैं। श्रीनिम्बार्काचार्य के मूल श्लोकों में स्पष्टरूप से श्रीराधाजी की उपासना का विधान है। उसे कौन मिटा सकता है। इससे आगे '**तथा च रुक्मिणीसत्यभामा व्रजस्त्री विशिष्टः**' इस पंक्ति के अर्थ का अनर्थ करके शास्त्रीजी ने अपने हृदय में भरा हुआ विष उगला है, उनका किया हुआ अर्थ देखिये, "रुक्मिणी, सत्यभामा एवं ब्रजस्त्रियों से विशिष्ट वासुदेव ही निम्बार्कीयों के उपास्य हैं" इतना अनर्थ करके वे अपने उद्देश्य को व्यक्त इस प्रकार करते हैं—"श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में निकुञ्जबिहारी प्रियाप्रियतम की उपासना तो दूर, व्रजबिहारी श्रीकृष्ण की उपासना भी नहीं थी।" किन्तु उनका यह अनर्गल प्रलाप है, क्योंकि एकवचनान्त व्रजस्त्री शब्द से मंजूषा में श्रीराधिकाजी का ग्रहण किया है। किन्तु, शास्त्रीजी उसे बहुवचनान्त बतलाकर व्रजस्त्रियों से विशिष्ट श्रीकृष्ण को निम्बार्कीयों का उपास्य सिद्ध करना चाहते हैं

और व्रजबिहारी की उपासना के अभाव की भी घोषणा करते हैं। यह उनकी बुद्धि की कुशाग्रता कही जाय या दिवालियापन?

निम्बग्राम के सम्बन्ध में भी वे अपना सवाल उछालते हैं—"निम्बगाँव में न कोई राधाकृष्ण की लीलास्थली है और न ही उसकी प्राचीनता का वहाँ कोई चिह्न है। यह ग्राम पाँच सौ वर्ष से अधिक समय का नहीं है।"

शास्त्रीजी ने या तो निम्बग्राम को देखा नहीं या कलेजे की जलन से ऐसा प्रलाप करते हैं। यह नहीं सोचते कि जब गोवर्धन गिरिराज श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का प्रसिद्ध स्थल है, तब उसकी उपत्यकावाला स्थल श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित क्यों नहीं? सुदर्शनकुण्ड आदि प्राचीनता के चिह्न भी विद्यमान हैं। स्वयं शास्त्रीजी जब नीमगाँव को पाँच सौ वर्ष की वसायत स्वीकार करते हैं, तब गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रादुर्भाव से तो इसकी प्राचीनता स्वयं शास्त्रीजी ही मान चुके। ऐसा ही बेसुरा राग उन्होंने श्रीनिम्बाकाचार्य पीठ के सम्बन्ध में अलापा है। वे लिखते हैं, "सम्प्रदाय के अधिकांश व्यक्ति वर्धमान को आचार्यपीठ मानते हैं, इसका कारण फार्मूला, श्रीकेशवकाश्मीरी का चैतन्य महाप्रभु से मिलन बतलाते हैं।"

ज्ञात होता है कि शास्त्रीजी सनक बैठे हैं। श्रीकृष्णचैतन्य और केशवकाश्मीरिभट्टाचार्य के मिलन में कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता। भक्तमाल के सम्पादक ने इस सम्बन्ध में जो तथ्य व्यक्त किये हैं और अकाट्य प्रमाण दिये हैं, उनका खण्डन रामदास शास्त्री सात जन्म में भी नहीं कर सकते। आज बारह वर्ष होने आये, कोई गौड़ीय विद्वान् चूँ तक नहीं कर सका। ऐसी ऊलजलूल बातें तो कोई भी बक सकता है, किन्तु विक्रम सम्वत् 1700 तक गौड़ीय सम्प्रदाय के पुराने ग्रन्थों में कहीं भी दिग्विजयी का नाम केशवभट्ट नहीं मिल सकता। उनका यह लिखना कितना हास्यास्पद है कि "केशवकाश्मीरी तक निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीराधा की उपासना का आरम्भ नहीं हुआ था, क्योंकि उन्होंने कहीं भी राधा का नामोल्लेख नहीं किया।"

वाह रे रामदास शास्त्री? शास्त्री पदवी को ही धूल में मिला दी। अधिक भी नहीं तो कम से कम केशवकाश्मीरीजी के गोविन्दशरणापत्ति आदि स्तोत्रों को ही पढ़ लेते तो उनमें—**भो राधिका हृदय जीवन सुन्दरांग!** हे राधिकाप्रिय! इत्यादि बहुत से प्रयोग मिल जाते। उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा में राग पाठ वाले युगलशतक की प्रतियों के मिलने की बात लिखी है, वह सर्वथा मिथ्या कल्पना है। क्योंकि वहाँ जितनी भी युगलशतक की प्रतियाँ हैं उनके अन्त में राग पाठ वाला दोहा है, न राम पाठ वाला ही। ऐसी धोखेबाजी कुछ राधावल्लभीय लेखकों ने भी की है। आगे चलकर शास्त्रीजी ने ऐसा असम्बद्ध प्रलाप किया है, जैसा कोई सन्निपात ग्रस्त कर रहा हो। पहले तो वे निम्बार्काचार्य श्रीभट्टदेव और श्रीहरिव्यासदेव को निम्बार्की लिखते हैं, फिर सन्देह प्रकट करके उन्हें निम्बार्क सम्प्रदाय से पृथक् सिद्ध करने की कुचेष्टा करते हैं और यह हेतु देते हैं, "श्रीभट्टजी श्रीहरिव्यासदेवजी प्रभृति अपने को सबसे पृथक् रखकर ही श्रीराधा रस का रसास्वादन

करते हैं, ... स्वतन्त्र रूप से गुणगान किया है, वे किसी सम्प्रदाय मत से बंधे नहीं" इत्यादि। अपने इस कथन की पुष्टि 'भगवतरसिकजी के नांही द्वैताद्वैत ही' इन दोहों के द्वारा की है। शास्त्रीजी को लज्जा नहीं आई, श्रीभट्टजी आदि को तो निम्बार्क सम्प्रदाय से पृथक् करते हैं और प्रमाण देते हैं भगवतरसिकजी के दोहे का। स्वामी श्रीहरिव्यासजी को निम्बार्क सम्प्रदाय से पृथक् सिद्ध करने का कुछ स्वार्थी लोगों ने विवाद उठा रखा था, अब रामदास शास्त्रीजी ने श्रीभट्टजी आदि को भी निम्बार्क सम्प्रदाय से पृथक् करने का बीड़ा उठाया है, किन्तु उन्हें यह पता नहीं कि श्रीभट्टदेव और श्रीहरिव्यास रचित ग्रन्थों में उन्होंने अपनी परम्परा और सिद्धान्त किस सम्प्रदाय से सम्बन्धित बतलाये हैं। स्वामी श्रीहरिदास जी के सम्प्रदाय का निर्णय चतुस्सम्प्रदाय के वैष्णवों ने लगभग वि.सं. 1994 में किया था, सभी ने श्रीस्वामीजी को निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत स्वीकार करके हस्ताक्षर किये थे, उनमें रामदासजी के गुरुदेव श्रीकृष्णानन्ददासजी के भी हस्ताक्षर अङ्कित हैं। किन्तु उनके शिष्य शास्त्रीजी आज गुरुदेव के अभिमत के विरुद्ध बाँग मारने लगे हैं। शास्त्रीजी ने इष्टदेव का अपराध करना तो स्वयं स्वीकार किया ही है, उन्होंने अपने सम्पादकीय लेख में लिखा है—राधा रस पर लिखना भयंकर भूल है, फिर भी जान-बूझकर यह अपराध कर बैठा।[30]

यद्यपि ऐसे हरिगुरु विमुख अपराधियों के मुँह लगना अच्छा नहीं तथापि उनकी धोखेबाजियों से पाठक एवं भक्तवृन्द सजग रहें, इसी उद्देश्य से शास्त्री के विषवमन की शान्ति के लिए यहाँ थोड़ा सा समाधान कर दिया है।

(3) निम्बार्कीय दीक्षा का स्वरूप एवं मन्त्रराज महत्ता

(i) निम्बार्कीय दीक्षा-स्वरूप

दीक्षा से दिव्य भाव की प्राप्ति होती है। दीक्षा से समस्त पापों का क्षय हो जाता है। अतएव इसे दीक्षा कहते हैं। दीक्षा का प्रभाव दीक्षा के बाद ही छलहीन दीक्षित को स्वयं प्रतीत होता है। एक अनिर्वचनीय अन्तस्तोष होता है, दीक्षा से। अवश्य ही सभी सम्प्रदायों में दीक्षा का आशय उज्ज्वल होता है। परन्तु वैष्णवी दीक्षा का जितना ऊँचा आदर्श, उदात्त भाव, ईश्वर के प्रति आत्म-समर्पण की ऊँची भावना एवं गुरु के प्रति निष्ठा का भाव होता है, वैसा अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। यहाँ निम्बार्कीय वैष्णव दीक्षा के दिव्य एवं उदात्त स्वरूप का किञ्चित् दिग्दर्शन करा रहे हैं।

दीक्षा के लिए सर्वप्रथम शिष्य में तीव्र भावना (वैराग्य) का उदय होना आवश्यक है। संसार को दुःखालय समझकर प्रथम इससे विरक्ति होनी चाहिए। कारण **'ये हि संस्पर्शजाः भोगा दुःखयोनय एव ते।'** अतएव भगवान् ने जागतिक सुख को **'अनित्यमसुखं लोकं'** कहा है। गीता की भाषा में संसार का नाम ही दुःखालय है। यहाँ की वस्तुओं में केवल सुख की भ्रांति है। सुख रूप तो एकमात्र भगवान् हैं। क्योंकि वे नित्य प्रिय हैं, प्राणीमात्र के परम श्रेष्ठ हैं। संसार के पति-पुत्रादि आर्तिद हैं, अतएव दुःख रूप है। अतः

कुशल व्यक्ति एकमात्र भगवान् में ही रति करते हैं। जगत् का सुख क्षणिक है, सातिशय है, भगवत् सुख शाश्वत है, निरतिशय है। क्योंकि भगवान् **'यतो वाचो निवर्तन्ते'** हैं। संसार का सुख अल्प है, अतएव मर्त्य है। भगवत्-सुख भूमा है, अतएव सनातन है। यहाँ के समस्त सम्बन्ध विनश्वर हैं। यहाँ के माता-पिता स्त्री-पुत्रादि क्षणिक हैं। अतः एक दिन इनका वियोग निश्चित है। इस जगत् में सहस्रों हर्ष के तथा सैकड़ों शोक के स्थान होते हैं, परन्तु ये मूढ़ व्यक्ति को ही प्रभावित करते हैं, पण्डित को नहीं। इन सब बातों को सोचकर भगवत् प्राप्ति की लालसा से प्रथम सद्गुरु की शरण में जाये। **'स गुरुमेवाभिगच्छेत्।'** गुरु का स्वरूप शास्त्रों एवं पूर्वाचार्यों के अनुसार दिखाया है। श्रीगुरु की शरण में जाकर उनसे प्रार्थना करे—'प्रभो! मैं संसाररूप दावाग्नि से जल रहा हूँ। कालरूप व्याल ने मुझे डस लिया है। गुरुदेव! मैं आपकी शरण में हूँ। मेरा उद्धार कीजिये। इसके बाद यदि गुरु उसे अंगीकार करना चाहें तो कम से कम एक वर्ष तक उसकी परीक्षा लें। कारण 'नासम्वत्सरवासिने' यह श्रुति की आज्ञा है। जिसका चारित्र्य परीक्षित नहीं है, उसे कभी भी विद्या का दान नहीं करना चाहिए, क्योंकि जैसे सोने की शुद्धता तपाने या घर्षण से होती है, उसी प्रकार शिष्य को भी कुल शील आदि के द्वारा परीक्षा लेकर ही दीक्षा देनी चाहिए, ऐसी शास्त्राज्ञा है। जैसा कि आचार्यपाद श्रीसुन्दर भट्ट ने कहा है—जाति, गुण स्वभाव आदि के द्वारा अधिकारी-विशेष के धर्मों, अपने प्रति श्रद्धा, विश्वास तथा प्रीति के द्वारा वर्ष भर, छह मास, दो मास या एक मास परीक्षा लेकर उसके अधिकार का निर्णय करके उस गुरुपरायण शिष्य को ब्रह्मविद्या का उपदेश दें।[31]

'अधिकार का निर्णय' दीक्षा में परम आवश्यक वस्तु है। जो जिस भाव का अधिकारी हो, उसे उसी भाव की दीक्षा देनी चाहिए। यदि किसी का शृंगार की ओर आकर्षण नहीं है, बल्कि उस ओर असंभावना विपरीत भावना हो तो ऐसे शिष्य को कथमपि माधुर्य भाव का उपदेश नहीं देना चाहिए। सम्प्रदाय में इस बात का बड़ा कड़ा आदेश है। पर आज ऐसा नहीं दिखायी देता। शृंगार उपासना में लाखों में कोई अधिकारी होता है। जिस पर श्रीजी की कृपा हो जाय, वही मधुर भाव का अधिकारी होता है। जिसका जन्मान्तर का संस्कार होता है, ऐसा हृदय पहचान कर ही उज्ज्वल भाव की दीक्षा का उपदेश देना चाहिए। श्रीगोपाल मन्त्र में सब भाव हैं। व्यापक दृष्टिकोण है। यद्यपि प्रधानता माधुर्य की ही है। शृंगार रस इसके बीज में ओतप्रोत है। निकुञ्ज रस ही 'क्लीं' बीज का ध्येय है। नित्यविहार ही बीजराज का परम लक्ष्य है। श्रीगोपीजनवल्लभ रूप में श्रीकृष्ण का चिन्तन है। कामगायत्री तथा काममाला में साक्षान्मन्मथ रूप में **'रसो वै सः'** का चिन्तन है। फिर भी आचार्यपाद ने सोच-समझकर व्यापक दृष्टि से इसकी व्याख्या की है। श्रीगोपीजनवल्लभ पद से गुरु का अर्थ लेकर आचार्यपाद ने अपने हार्द भाव को गुप्त रखा है। वैसे गोपीजनवल्लभ का शब्दार्थ जगत् प्रसिद्ध है। वस्तुतः यह वस्तु नितरां गोपनीय है। शास्त्र में इसे अत्यन्त गोपनीय रखने का आदेश है। क्योंकि **'गुप्तो हि रसः रसतामेति'** यही सिद्धान्त है। यही कारण है कि श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में इस भाव को

आचार्य श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य तक गुप्त रखने की ही प्रथा थी। इनसे पूर्व के आचार्यों ने बड़ी बुद्धिमानी से अपने भावों को गुप्त रखा है। चाहे मन्त्रों की व्याख्या हो या प्रपत्ति की, उनके माधुर्य का पता लगाना आपको कठिन होगा। यही तो खूबी है, वैशिष्ट्य है।

हाँ, तो अधिकारी तत्त्व का विनिश्चय तो होना ही चाहिए और योग्य अधिकारी प्राप्त होने पर उसे भगवत्सम्बन्ध कराना ही चाहिए। वैष्णवी दीक्षा में मुख्य विषय भगवत्सम्बन्ध ही है। इसकी प्रक्रिया बड़ी आकर्षक है। सर्वप्रथम शिष्य गुरु की शरण में जाकर दण्डवत् प्रणिपात कर उनसे प्रार्थना करे कि प्रभो! मैं त्रिविध तापों से तप्त हूँ। उनसे भयभीत होकर छुटकारा पाने की इच्छा से जैसे दावाग्नि पीड़ित व्यक्ति गंगोदक की शरण में जाता है, उसी तरह मैं आपका शरणागत हुआ हूँ। गुरो! मैं आपका भृत्य हूँ, स्वामी रूप में आपका वरण करता हूँ। मैं सर्वसाधन शून्य हूँ। सर्वथा अकिञ्चन हूँ। मैं पापों से भरा हूँ। मेरी दूसरी कोई गति नहीं है। मुझे केवल अपनी अहैतुकी करुणा से सर्वात्म भाव से स्वीकार कीजिये। मैंने आपके प्रति अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया है। दयालो, सब प्रकार से आप मेरा रक्षक बनकर मुझे अनुगृहीत करने की कृपा करें। इस प्रकार प्रार्थना करे। इसके बाद अकारण करुणालय श्रीगुरुदेव उसकी आर्तवाणी सुनकर उसे अपने समीप बैठाकर उसके हाथ को अपने चरणां में रखवाकर कहें कि यदि तुम संसार से भयभीत हो, मेरी शरणागत हो, तो मैं तुम्हें आत्मसात् करता हूँ। तेरा रक्षक होता हूँ, तू भय मत कर।' इसके बाद उसके मस्तक आदि द्वादश अंगों में **'केशवाय नमः'** आदि द्वादश मन्त्रों से अपने हाथ से तिलक करे और बाद में मंत्रों द्वारा उसकी भुजाओं पर शंख चक्र आदि अंकित कर दे। तत्पश्चात् उसका नामकरण संस्कार करे। नाम ऐसा हो, जिससे उसका भगवत्सम्बन्ध घोषित हो। पश्चात् उसे आचार्य परम्परा का उपदेश दे। तत्पश्चात् शिष्य का स्वराज्याभिषेक करे, जो निम्बार्कीय दीक्षा की सर्वोत्तम विधि है। इसमें श्रीगुरुदेव शिष्य से कहते हैं कि मेरा अंग ही तेरा सिंहासन है। मेरा दाहिना हाथ ही तेरा छत्र है। मेरा बाँया हाथ ही तेरा चामर है। मेरे द्वारा दी गई सपरिकर विद्या (मन्त्रराज) ही तेरी सेना है। भगवद्भावापत्ति ही तेरी जयश्री है। कामादि की निवृत्ति पूर्वक प्रकृति के सम्बन्ध का ध्वंस ही तेरी दिग्विजय है। इस प्रकार शिष्य को आशीर्वाद देकर **'शिष्य पुत्र महाभाग'** आदि पाठ करके शांति मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक शिष्य के दाहिने कान में ब्रह्मविद्या (श्रीगोपाल मन्त्र) देकर आचार्य प्रोक्त श्रीमन्त्ररहस्य षोडशी सुनादे। उसके बाद मुमुक्षु शिष्य उन्हें साष्टांग दण्डवत् करे। तत्पश्चात् गुरुदेव उसे भगवत-चरणों में अर्पित कर उसे सदा के लिए भगवदीय बनादें। फिर उसे अपना चरणोदक एवं प्रसाद देकर आलिंगन करके शिष्य को कहें कि मैंने तुझे सर्वभाव से आत्मसात् कर लिया है। अब तू सब प्रकार से मेरी सेवा करना। फिर 'हाँ महाराज! ऐसा ही करूँगा' इस प्रकार शिष्य से तीन बार उच्चारण कराएँ। इसके बाद उसे भगवत्सम्बन्धी उपदेश दें। तत्पश्चात् उसे सेवा के लिए चित्रपट या भगवान् की किसी प्रकार की मूर्ति विधिपूर्वक पूजा करके उसके शिर पर रख दें और उसे आज्ञा दें कि यही (भगवान्) तुम्हारे स्वामी हैं। सभी प्रकार के सम्बन्धी हैं,

जिनके प्रति तूने अपना सर्वस्व समर्पित किया है। इन सर्वेश्वर प्रभु में आत्मबुद्धि से सर्वविध सम्बन्धों के अनुसार निरतिशय प्रीति करके देश, काल तथा अवस्था के अनुसार इनकी सदा सेवा करते रहना, ऐसी आज्ञा देकर भगवद्विग्रह शिष्य को समर्पित कर दें।

इस निम्बार्कीय दीक्षा की दो सर्वोत्तम विशेषताएँ हैं। पहला स्वराज्याभिषेक, दूसरा समर्पण वाक्य का महत्त्वपूर्ण संकल्प। इन्हीं दो विशेषताओं के द्वारा श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की उपासना सम्बन्धी भावना जानी जा सकती है। इसमें श्रीव्रजसीमन्तिनियों जैसा सर्वात्मभाव से श्रीकृष्णाराधन करने का विधान है। यह रहस्यमीमांसा का संकेत है। सम्प्रदाय के समस्त रसग्रन्थों की व्याख्या करते समय इन उदात्त भावों का ध्यान रखना आवश्यक है। संक्षेप में यही श्रीनिम्बार्कीय दीक्षा का स्वरूप है। विशेष जिज्ञासा की पूर्ति के लिए **मन्त्ररहस्य षोडषी, प्रपन्न सुरतरु-मञ्जरी** तथा **क्रमदीपिका** आदि ग्रन्थ देखने चाहिए।

(ii) मन्त्रराज महत्ता

विभिन्न उपासक-सम्प्रदायों की अपनी-अपनी अलग विशेषताएँ हैं। किसी सम्प्रदाय में सेवा की प्रधानता है तो कहीं पूजा की, कहीं कीर्तन की प्रधानता है तो कहीं पद गायन की। पर निम्बार्क सम्प्रदाय भावना-प्रधान सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय में श्रीराधा-माधव युगल की मानसिक रसमय भावना तथा अष्टयाम चिन्तन की प्रधानता रही है और इसका माध्यम है—**महामहिम मन्त्रराज श्रीअष्टादशाक्षर गोपाल मन्त्र**।

इस सम्प्रदाय में दो मन्त्र देने की प्रथा है, एक शरणागति मन्त्र और दूसरा श्रीगोपाल मन्त्र। शरणागति मन्त्र तान्त्रिक मन्त्र है, जिसका उद्गम श्रीनारद पाञ्चरात्र है। दूसरा अष्टादशाक्षर **श्रीगोपाल मन्त्र**—वैदिक मन्त्र है। अथर्ववेद के पिप्पलाद शाखा की श्रीगोपाल तापिनी उपनिषद् का यह मन्त्र है। इसके कल्प ग्रन्थ हैं—गौतमीय तन्त्र, सनत्कुमार संहिता, आज्ञाकृत संहिता तथा क्रमदीपिका। इन ग्रन्थों में इस मन्त्र की पूरी इतिकर्त्तव्यता निर्दिष्ट है।

आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र की भी इन दोनों मन्त्रों पर व्याख्या है। शरणागति मन्त्र की व्याख्या का नाम **प्रपन्न-कल्पवल्ली** है, जिसमें पचीस श्लोक हैं, जिन पर सम्प्रदाय के मूर्धन्य विद्वान् आचार्य श्रीसुन्दरभट्टजी की विशद व्याख्या है, जिसका नाम '**प्रपन्न सुरतरु मञ्जरी** है। श्रीगोपाल मन्त्र की व्याख्या का नाम—'**मन्त्र-रहस्य षोडशी**' है। इस पर भी श्रीसुन्दरभट्टजी की व्याख्या मंत्रार्थ-रहस्य व्याख्या है। ये दोनों पुस्तकें मुद्रित हैं। पहली पुस्तक पं. श्रीकिशोरदासजी वंशीवट के प्रयास से वर्धमान के महन्त श्रीमधुसूदनशरणदेवाचार्यजी ने छपवाई है। दूसरी पुस्तक दतियावाली कुञ्ज-वृन्दावन के महन्त श्रीरामचन्द्रदासजी ने छपवायी है।

ये दोनों पुस्तकें रहस्य के ग्रन्थ माने जाते हैं। अतः इन्हें रहस्य मीमांसा भी कहते हैं। इन दोनों ग्रन्थों में शरणागति का बहुत सुन्दर विवेचन हुआ है। इनके अतिरिक्त जगद्विजयी आचार्य श्रीकेशवकाश्मीरीजी महाराज की **क्रमदीपिका** में भी मंत्रराज की व्याख्या

है। पुष्पेषु मनु कल्प सौरभ, जो 1945 वि. सं. में लिखी गयी है, में भी बीज मन्त्र का बड़े विस्तार के साथ विवचेन हुआ है। इस पुस्तक में बीज की बड़ी महिमा गायी गयी है। इनके अतिरिक्त वर्तमान समय के सम्प्रदाय के उद्‌भट विद्वान् दार्शनिक सार्वभौम श्रीराधाकृष्णैकजीवन पूज्यपाद गुरुदेव पं. श्रीभगीरथी झा हरिपुर, दरभंगा (बिहार) की भी इस पर बड़ी विस्तृत व्याख्या **वेदान्त तत्त्व-समीक्षा**' है।

अष्टादशाक्षर श्रीगोपाल मंत्र में पाँच पद हैं। अतः इसे **'पञ्चपदी'** कहते हैं। **'एतं पञ्चव्याहृतिमयं कृष्णावभासकं सततमावर्तयेत् सततमावर्तयेत्'** (श्रीगोपालतापिनी) गौतमीय तन्त्र एवं क्रमदीपिका में इसे **वाञ्छाचिन्तामणि** कहा गया है। सम्प्रदाय में इसे मन्त्रराज कहा जाता है। तन्त्र ग्रन्थों में भी इसे वैष्णव मन्त्रों का राजा कहा गया है। इसके पाँच पद पञ्चव्याहृतिमय माने गये हैं। यह महामन्त्र श्रीराधामाधव युगल का प्रकाशक है। इसे अनवरत जप करते रहना चाहिए। विश्व में कोई ऐसा कार्य नहीं, जो इस **मन्त्रराज** के अनुष्ठान से सिद्ध न हो सके। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—कोई पुरुषार्थ ऐसा नहीं, जो इस महामहिम मन्त्रराज के प्रभाव से प्राप्त न हो सके। इसके ऐश्वर्य एवं माधुर्य दो पक्ष हैं। सम्प्रदाय में कई ऐसे प्रभावी आचार्य हुए, जिन्होंने मन्त्रराज के प्रभाव से कई लोकोपकारी अद्‌भुत चमत्कार दिखाये हैं। चौदहवीं सदी में मथुरा में जब यवन फकीरों ने हिन्दुओं के विरुद्ध अत्याचार करने शुरू किये, उस समय सम्प्रदाय के जगद् विख्यात आचार्य श्रीकेशव काश्मीरीजी ने इसी मन्त्रराज के प्रबल प्रभाव से त्रस्त उत्पीड़ित हिन्दु जनता की रक्षा की थी। मनुष्यों की तो बात ही क्या, देवी तक को दीक्षित कर शिष्या बनाने का सामर्थ्य आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजी को इसी मन्त्रराज की देन थी। आधुनिक काल में भी ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी महाराज ने इसी मन्त्र के बल पर अनेकानेक राजाओं को शिष्य बनाया था और उनके द्वारा अनेक विशाल मन्दिर बनवाये थे, जिसके ज्वलन्त उदाहरण वृन्दावन के प्रसिद्ध मन्दिर जयपुर एवं ग्वालियर वाले राजा के मन्दिर हैं। यह सब मन्त्रराज का ही चमत्कार था। यही मन्त्रराज श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का मुख्य धन एवं बल था। इसी के बल पर राजस्थान के समस्त राजा-महाराजा श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों के समक्ष नत-मस्तक होते थे—उनसे दीक्षा ग्रहण करते थे। खेद है कि आज सम्प्रदाय में इसकी ओर ध्यान कम जाता है, पर मन्त्रराज का यह गौण पक्ष है, आनुषङ्गिक फल है। इसका मुख्य पक्ष माधुर्य है। क्योंकि इसमें गोपीजनवल्लभ रूप में श्रीकृष्ण का चिन्तन है। इसका बीज काम बीज है। इसमें साक्षात्-मन्मथ मन्मथ के रूप में श्रीश्यामसुन्दर का चिन्तन है। बीज में नित्यविहार का ध्यान बताया गया है। इसके ककार रसिकशेखर श्रीकृष्ण हैं। ईकार पूर्णानुराग रससागर सारमूर्ति रासेश्वरी श्रीराधा है। लकार, मकार एवं चन्द्रबिन्दु उन दोनों का अनन्त सखी परिकर सहित अन्योन्य रस-विलास का बोधक है। इसके साथ काम-गायत्री के जप का सम्प्रदाय में विधान है। इस प्रकार काम-बीज, काम-गायत्री तथा काम-माला, वृन्दावन योगपीठ तथा श्रीगोपीजनवल्लभ रूप में श्रीकृष्ण का रसमय चिन्तन सम्प्रदाय की रसोपासना में सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है।

इसका एक पक्ष शरणागति अर्थात् सर्वात्म भाव से प्रभु पाद-पद्मों में आत्म-समर्पण भी है, जिसका स्वरूप इस प्रकार है—

पहला पद कामबीज है। आचार्यपाद ने इसका प्रणव के साथ एकत्व बताया है। इसमें तीन अक्षर हैं—क्ल, ई, म्। प्रणव में भी तीन ही वर्ण है—अ, उ, म्। अकार के अर्थ हैं श्रीकृष्ण। '**अकारो वासुदेवः स्यात्**।' 'उ' का अर्थ है गुरु और 'म्' का जीव। ऐसे ही 'क्ल' अर्थ श्रीकृष्ण, 'ई' गुरु तथा 'म्' का अर्थ जीव माना गया है। इस प्रकार प्रणव और बीज में अभिन्नता बतायी गयी है। शेष मन्त्र इसी का विवरण माना गया है। इसमें चरमार्थ (जीव) को हवि एवं मध्यमार्थ (गुरु) को स्रुवा बनाकर प्रथमार्थ वासुदेव श्रीकृष्ण में हवन करने अर्थात् समर्पण करने का विधान किया गया है। इसमें प्रपत्ति का सर्वोत्तम स्वरूप बतलाया गया है। शेष मन्त्र इसी बीजराज की व्याख्या माना गया है। इनमें कृष्णाय-गोविन्दाय—इन दो पदों से बीज के प्रथमार्थ (क्ल) की व्याख्या है, जिनमें प्रथम कृष्णाय पद के द्वारा सर्वेश्वर श्रीकृष्ण का स्वरूप, लक्षण एवं तटस्थ लक्षण के द्वारा चिन्तन किया गया है और द्वितीय गोविन्दाय पद द्वारा परमात्मा श्रीकृष्ण की अखण्ड सत्ता में वेद-लक्षण प्रमाण का अनुसंधान किया गया है।

इस प्रकार औपनिषद्-पुरुष के रूप में अनन्त गुण शक्त्यादि विशिष्ट आराध्य श्रीकृष्ण का अनुचिन्तन हुआ है। चतुर्थ पद गोपीजनवल्लभ में चरमार्थ (जीव) का श्रीगुरुदेव के साथ संयोग बताया गया है और अन्तिम पद स्वाहा से आत्मा आत्मीय रूप समस्त त्वंकार ममकारास्पद वस्तुओं का श्याम-सुन्दर श्रीकृष्ण में समर्पण रूप पराभक्ति चिन्तन हुआ है। इस प्रकार इस दैनिक जाप्य महामन्त्र में संपूर्ण शरणागति वाक्यों, **तत्त्वमसि** आदि महावाक्यों तथा संपूर्ण शारीरिक मीमांसा के उदात्त एवं असमोर्ध्व भावों एवं सम्प्रदायप्रसिद्ध **अर्थ-पञ्चक** का भी अनुशीलन हुआ है। यह है श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का उदात्त, वैदिक शरणागति का दिव्य स्वरूप। पर खेद है कि आज साधक-संतों में इस व्यापक भावना के प्रति समादर दृग्गोचर नहीं होता है।

(4) निम्बार्क-सम्प्रदाय में शरणागति-सिद्धान्त एवं गुरु-महत्ता

(i) शरणागति सिद्धान्त

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय विशुद्ध वैदिक सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय में श्रुति-स्मृति, पुराण, पञ्चरात्र, महाभारत तथा रामायण प्रमाण माने गये हैं। वर्णाश्रम-व्यवस्था तथा सदाचार पर विशेष ध्यान दिया गया है। सम्प्रदाय की वैदिकता, शास्त्रनिष्ठा तथा सदाचारपरायणता आदि की जानकारी के लिए **वेदान्त पारिजात सौरभ, वेदान्तकौस्तुभ, वेदान्तरत्न-मञ्जूषा, वेदान्तकौस्तुभप्रभा, मन्त्ररहस्य षोडशी, प्रपन्नसुरतरुमञ्जरी, वैष्णवधर्मसुरद्रुम—मञ्जरी** तथा **स्वधर्मामृतसिन्धु** आदि ग्रन्थ देखे जा सकते हैं। क्योंकि सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त, उपासना-सिद्धान्त तथा आचार-विचारों की जानकारी के लिए उक्त ग्रन्थ ही मूर्धन्य प्रमाण हैं।

साधना की दृष्टि से सम्प्रदाय में प्रपत्ति या शरणागति का बड़ा महत्त्व है। '**शरणं साधनं विदुः**' (रहस्य मीमांसा) प्रपत्ति भक्ति का सर्वोच्च स्वरूप है। इसके आधार के रूप में उपनिषत् के '**मुमुक्षुर्वै शरणं व्रजेत्**', भगवद्गीता के '**मामेकं शरणं व्रज**' श्रीमद्भागवत के '**याहि सर्वात्मभावेन...**' वाक्यों को विशेष महत्त्व दिया गया है। कहना न होगा कि इसी प्रमाणत्रयी के आधार पर प्रपत्ति का अत्यन्त विस्तृत विवेचन सम्प्रदाय के ग्रन्थों में हुआ है, जिसकी पुष्टि के लिए वेद, रामायण, महाभारत, पाञ्चरात्र तथा विभिन्न तन्त्रवाक्यों से चुने हुए प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। आत्मशान्ति तथा भगवत् प्राप्ति के लिए प्रपत्ति से बढ़कर कोई दूसरा साधन नहीं है। वस्तुतः जैसी शान्ति, आत्मसुख तथा निश्चिन्तता प्रपत्ति से प्राप्त होती है, वैसी शान्ति, आत्मसुख तथा निश्चिन्तता अन्य किसी साधन से सम्भव नहीं। प्रपन्नों की सारी जिम्मेदारी भगवान् की होती है। जो निश्छल भाव से भगवान् के प्रपन्न होते हैं, भगवान् उनका संपूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेते हैं। उनके संपूर्ण योगक्षेम की चिन्ता भगवान् करते हैं—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥"

संसार में सबसे बड़ी दुर्गम भगवान् की माया है। इस माया से विमोहित होकर ही जीव जन्म-मरण के चक्र में फंसा हुआ नानाविध दुःखों को भोगता है। इस अनर्थकारी माया को वही पार कर सकता है, जो भगवान् का अनन्य शरणागत होता है। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण् ने श्रीमुख से कहा है—

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥"

जो दुष्कृतात्मा है, वे ही भगवान् के शरणागत नहीं होते। भगवान् ने उनकी बड़ी निन्दा की है। भगवान् ने उन्हें माया से अपहृत ज्ञान वाले नराधम एवं असुर बताया है—

"न मां दुष्कृतिनो मूढ़ा प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥"

भगवान् श्रीश्यामसुन्दर ने अपनी सर्वशास्त्रमयी गीता में सर्वान्तिम उपदेश एवं गुह्यतम ज्ञान के रूप में अपने परम प्रिय सुहृद अर्जुन को प्रपत्ति का ही उपदेश दिया है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में अपने परम प्रिय उद्धवजी को भी भगवान् ने शरणागति का उपदेश दिया है। विश्व के इन सर्वोच्च ग्रन्थों में शरणागति का सर्वोत्तम साधन के रूप में प्रौढ़ भाषा में प्रतिपादन हुआ है। शरणागति के साथ सर्वभाव का भी इन ग्रन्थों में प्रतिपादन है—'**तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत**'...'**याहि सर्वात्म-भावेन...चोद्धव।**' गीता तथा भागवत में अपने प्रिय सखा अर्जुन एवं उद्धव को सर्वात्म भाव से प्रपन्न होने का ही भगवान् ने स्पष्ट आदेश दिया है। सर्वभाव या सर्वात्मभाव का सर्वोच्च उदाहरण श्रीगोपीभाव ही है। इस भाव के अतिरिक्त किसी अन्य भाव में सर्वात्म भाव नहीं हो सकता। अतः श्रीमद्भगवद्गीता या श्रीमद्भागवत के अनुसार प्रपत्ति

या सर्वात्मभाव के उपासकों में व्रजाङ्गनाओं का ही भक्ति के समस्त आचार्यों ने उदाहरण दिया है—'यथा व्रजगोपिकानाम् यथा व्रजवल्लरीनामित्यादि।'

मेरी दृष्टि से श्रीनिम्बार्कीय साधना की पद्धति एवं भाव का यही मान्य आदर्श है। नित्यविहार, उपासना, रसोपासना या माधुर्य उपासना का प्राण ही सर्वात्मभाव है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में सर्वात्मभाव है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में सर्वात्मभाव, गोपीभाव या माधुर्य भाव की साधना है। सम्प्रति शरणागति या प्रपत्ति का स्वरूप तथा उसके विभिन्न अंगों का स्वरूप बताया जा रहा है—

"आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥"

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में शरणागति के इन छह अंगों की विस्तृत व्याख्या तथा इनके अनुसार साधक को जीवनयापन करने के सम्बन्ध में विशेष बल दिया गया है। शरणागति सम्बन्धी इन अंगों का विशद शास्त्रीय विवेचन रहस्य मीमांसा, प्रपन्न सुरतरुमञ्जरी, मन्त्ररहस्यषोडशी तथा वेदान्तरत्न-मञ्जूषा में किया गया है। उक्त पुस्तकों के ये स्थल देखकर श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की शास्त्रनिष्ठा, भक्तिनिष्ठा, भागवतनिष्ठा तथा सदाचारनिष्ठा का अनुमान किया जा सकता है। आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्र का तो प्रपत्ति विचार में एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही था, जिसकी चर्चा **वेदान्तरत्नमञ्जूषा** आदि ग्रन्थों में है। दुःख है कि वह अमूल्य ग्रन्थरत्न अद्यावधि उपलब्ध नहीं हो सका। काश, यदि वह ग्रन्थ उपलब्ध हो सकता तो साधकों के लिए अपूर्व सामग्री प्राप्त होती।

शरणागति के उक्त छह अंगों में प्रथम अंग '**आनुकूल्यस्य संकल्पः**' है। इस अंग का अत्यन्त विस्तारपूर्वक विवेचन प्रपन्न-सुरतरु-मञ्जरी में हुआ है। इसका सारांश है कि प्राणीमात्र में भगवान् है या यों कहें कि प्राणीमात्र भगवान् के अंश हैं, अतः प्राणीमात्र के अनुकूल चलना, किसी को किसी प्रकार का दुःख न देना, किसी की निन्दा न करना, किसी को अप्रिय वाणी न कहना प्रपन्न का प्रथम कर्त्तव्य है।[32] अथवा '**श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे** ' के अनुसार भगवान् की शास्त्राज्ञा के अनुकूल चलना तथा अपने-अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुसार सन्ध्या, तर्पण, नित्य, नैमित्तिक अनुष्ठान भगवान् की आज्ञा समझकर करना 'अनुकूलस्य संकल्प' का अर्थ है जो कि भगवत् शरणागत का प्रथम कर्त्तव्य है। इसके विपरीत प्राणियों को दुःखी करना, किसी की निन्दा करना आदि भगवदाज्ञा के प्रतिकूलाचरण है। इसका सर्वथा परित्याग कर देना ही '**प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्**' शरणागति का द्वितीय अंग है। इस पृष्ठभूमि में विचार करने पर वैष्णव धर्म ही विश्व का सर्वोत्कृष्ट धर्म सिद्ध होता है। वैष्णव धर्म के समस्त ग्रन्थों में ऊँची भावना का दर्शन होता है। गीता, भागवत आदि वैष्णव धर्म के अमूल्य ग्रन्थरत्नों में उत्तम भागवत के यही लक्षण बताए गए हैं—'**अद्वेष्टा सर्वभूतानां...सर्वभूतेषु चात्मानं भगवद् भावमात्मन**' इत्यादि।

साधक को सदा विश्वास रखना चाहिए कि प्रभु मेरी रक्षा अवश्य करेंगे, क्योंकि उनकी प्रतिज्ञा है—"**कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।**" "**मुच्चितः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात् तरिष्यसि**' इत्यादि। '**रक्षिष्यतीति विश्वासः** प्रपत्ति का तीसरा अंग है। अर्थात् यह प्रपन्न का लक्षण है। किसी प्रकार की मुसीबत या संकट आने पर प्रपन्न को प्रभु से ही प्रार्थना करनी चाहिए, यह प्रपत्ति का चौथा अंग है—'**गोप्तृत्ववरणं तथा**'। हम कोई साधन—जप, पूजा, दान आदि करें, उनमें हमारी अभिमान बुद्धि नहीं होनी चाहिए। कारण, प्रभु तो कृपैकलभ्य हैं। वह साधनों के अधीन नहीं। वे तो सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं—'**यमैवेष वृणुते तेन लभ्यः**' हैं। साधन कृपोदय का ब्याज मात्र है। ऐसी दशा में प्रपन्न को अनवरत साधना संलग्न होने पर भी अपने में दैन्य भावना ही रखनी चाहिए, तभी प्रभु की कृपा का उदय हो सकता है। जैसा कि आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र ने कहा है—"**कृपास्य दैन्यादि युजि प्रजायते**' इत्यादि। तात्पर्य यह है कि उपायोपेय भावेन अर्थात् साधन भी भगवान्, साध्य भी भगवान्, इस दष्टि से भगवान् की भावना या आराधना होनी चाहिए। '**सर्वधर्मान् परित्यज्य**' का भाव भी यही है। इस प्रकार कार्पण्य प्रपन्न का पाँचवाँ महत्त्वपूर्ण अंग है। इन सभी अंगों का अंगी आत्म-निक्षेप, आत्मभर न्यास या आत्म-आत्मीयभर न्यास को माना गया है। जैसा कि आद्याचार्य श्रीपाद का वचन है—'**चरमार्थं हविः कृत्वा मध्यमं चापर्णं तथा। प्रथमार्थे च ब्रह्माग्नावात्मानं जुहुयाद् बुधः।**' यही श्रीनिम्बार्कीय वैष्णव साधना का सर्वोच्च भाव है। यही जीवन का परम फल है, साध्य है एवं प्राप्य है और चिरशांति तथा शाश्वत सुख का एकमात्र साधन है। इस मुख्य अंग की पूर्ति के लिए ही दीक्षा का विधान है। यही अष्टादशाक्षर पञ्चपदी स्वाहान्त श्रीगोपाल मन्त्रराज का परम अभिधेय है। इस पावन कृति की पूर्ति श्रीगुरुदेव की अहेतुकी करुणा से सम्पन्न होती है। कारण श्रीगुरु-रूप स्रुवा के द्वारा ही जीवात्म रूप हवि श्रीकृष्ण-रूप परमात्मा की आहुति होती है, अर्थात् समर्पण होता है—"**एकेन चरमार्थस्य गुरुणा योग उच्यते। चरमेणात्म-होमस्य विधानं परिकीर्तितम्**" (मन्त्ररहस्यषोडशी) यही स्वाहान्त वाञ्छाचिन्तामणि पञ्चपदी मन्त्रराज का तात्पर्य है।

यहाँ आत्मपद आत्मा तथा आत्मीय का उपलक्षण माना गया है। अर्थात् आत्मा के साथ स्त्री, पुत्र, मन, बुद्धि अपना सर्वस्व पुण्यापुण्य, सञ्चित, क्रियमाण, प्रारब्धादि कर्म तथा समस्त अहंकार ममकारास्पद वस्तुओं का प्रभु में विन्यास किया जाता है। जैसा कि रहस्य-मीमांसा का वचन है—

अथात्मने विनिक्षेपः आत्मीयैः सह कर्मभिः।
ज्ञानैश्च विष्णौ कर्त्तव्यो मनोबुद्ध्यादिभिस्तथा॥

श्रीनिम्बार्कीय साधना में प्रपत्ति ही सर्वान्तिम साधना मानी गयी है और इसी में समस्त साधनों का अन्तर्भाव हो जाता है। अतएव जिसने विधिपूर्वक प्रपत्ति की दीक्षा ले ली या भगवत्प्रपन्न हो गया, वह कृतकृत्य हो जाता है। उसके लिए कोई कर्म शेष नहीं रह जाता। क्योंकि श्रीहरि एवं गुरु की आज्ञा के पालन में कर्मयोग, अपने सहित संपूर्ण

विश्व को ब्रह्मात्मकत्वेन अनुसंधान करने में ज्ञानयोग तथा भगवद्विषयक निरतिशय प्रीति में भक्ति योग का अन्तर्भाव हो जाता है। इसी प्रकार अष्टांग योग का भी प्रपत्ति के अंगों में ही अन्तर्भाव हो जाता है। कारण यहाँ आत्मा तथा आत्मीय पदार्थों में निर्वेद ही यम है। श्रीहरि गुरु-विषयक अनुराग ही नियम है। चेतन-अचेतन समस्त पदार्थों में भगवदीयत्व का अनुसंधान तथा उनके प्रति औदासीन्य ही आसन है। सदा भगवन्निष्ठ होकर संसार की अनित्यता का अनुसंधान करते हुए प्रभु में अपनी समस्त अन्तर्वृत्तियों का न्यास ही प्राणायाम है। अनन्त स्वरूप गुण-शक्तियों से बृहत्तम परब्रह्म वासुदेव श्रीकृष्ण में चित्तवृत्तियों का न्यास करके उन्हें अन्तर्मुखी बनाना ही प्रत्याहार होता है। ब्रह्मात्मकत्व के अध्यवसाय की निश्चलता ही धारणा है। ब्रह्मात्मकत्व के अध्यवसाय की निरविच्छिन्न परम्परा को ही ध्यान कहते हैं। भगवद् विषयक ध्यान द्वारा अन्य विषयों का विस्मरण कर सर्वात्म ब्रह्म श्रीकृष्ण में गंगा-प्रवाहवत् निरविच्छिन्न मनोवृत्ति का नाम ही समाधि है। यही ध्रुवा स्मृति है। इस प्रकार समस्त साधनाओं का भगवत् प्रपत्ति में अन्तर्भाव होता है।

इस मंगलमय प्रपत्ति के द्वारा भगवदनुग्रह का उदय होता है और उससे प्रेमलक्षणा या पराभक्ति की प्राप्ति होती है, फिर भगवत्साक्षात्कार होता है। तभी भगवद्भावापत्ति मोक्ष की प्राप्ति होती है। यही श्रीनिम्बार्कीय प्रपत्ति का संक्षिप्त स्वरूप है।

निम्बार्कीय साधना में शरणागतों के लिए सदा स्मरणीय भगवद्गुण

यद्यपि '**विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रावोचं**' के अनुसार भगवान् में अनन्त गुण तथा अनन्त माधुर्य है, जिनका इयत्तावच्छेदेन कोई वर्णन या ध्यान नहीं कर सकता, फिर भी साधकों के कल्याण के लिए भगवान् के बारह गुणों के सदा अनुचिन्तन के लिए श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों ने विशेष आदेश दिया है, जिनका यहाँ वर्णन किया जाता है। सम्प्रदाय में इन्हें नित्यकर्म की तरह सदा अनुसंधान करने का विधान है। जैसाकि **प्रपन्न सुरतरुमञ्जरी** का वचन है—'**ते चानन्यशरणेन नित्यक्रियावन्नित्यमनुसंधेयाः।**'

ये गुण हैं—वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, स्वामित्व, कारुण्य, सौहार्द, मार्दव, शरण्यत्व, कृतज्ञत्व, सत्यप्रतिज्ञत्व, पूर्णत्व, औदार्य आदि। इनमें भगवान् का पहला गुण है—

वात्सल्य—आश्रितजनों के दोषों को न देखने का नाम वात्सल्य है। जैसा कि कहा है—त्वं ह्यज्ञ एवाश्रित दोषदर्शने' अर्थात् भगवान् अपने आश्रितों के दोषदर्शन में अज्ञ बन जाते हैं। भगवान् के इस गुण का भक्तों के अपराध के अनुसंधान जन्य भगवदीय दण्ड की निवृत्ति में उपयोग होता है।

सौशील्य—भगवान् का दूसरा गुण है। इसका तात्पर्य है—जाति, विद्या, कुल आदि की अपेक्षा के बिना दीन-हीन जनों के साथ ही बिना छल कपट के मिलने का स्वभाव। यदि किसी साधक को अपनी जाति, विद्या, कुल तथा सम्पत्ति की हीनता के कारण भगवान्

के न मिलने या उनके द्वारा अंगीकार न करने का भय है, तो उसकी निवृत्ति भगवान् के सौशील्य गुण के अनुसंधान से हो जाती है।

सौलभ्य—भगवान् का तीसरा गुण है। सुखपूर्वक लाभ होने योग्य गुण का नाम सौलभ्य है। भगवान् तो योगीन्द्र दुर्गम गति है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा शुक-सनकादिकों द्वारा अगम्य है। फिर मेरे जैसे सर्वसाधन-विहीन दीन-हीन व्यक्तियों को कैसे प्राप्त हो सकते हैं, इस अनर्थकारी आशंका की निवृत्ति में इस गुण का उपयोग होता है।

स्वामित्व—भगवान् का चौथा गुण है। विश्व की समस्त वस्तुओं के स्वामी भगवान् ही है। जब सब के स्वामी भगवान् हैं, फिर अपनी रक्षा के विषय में चिन्ता करना व्यर्थ है। जब साधारण व्यक्ति को भी अपनी वस्तु की रक्षा की चिन्ता रहती है, फिर भला मेरी रक्षा भगवान् नहीं करेंगे?

कारुण्य—भगवान् का पाँचवा गुण है। आश्रित जनों के दोषों की उपेक्षा कर देने का नाम कारुण्य है। निर्दय व्यक्ति अपने जन की भी उपेक्षा कर देते हैं, इस भय की निवृत्ति में इस गुण का उपयोग होता है।

सौहार्द—भगवान् का छठा गुण है। अपनी शक्ति की परवाह न करके दूसरों की रक्षा करने का नाम सौहार्द है। भगवान् तो जगत् की सृष्टि आदि कार्य में संलग्न रहते हैं, फिर भला मेरी रक्षा क्यों करने लगे, इस आशंका की निवृत्ति भगवान् के सौहार्द गुण के चिन्तन से होती है।

मार्दव—भगवान् का सातवाँ गुण है। अपने आश्रितों के दुःखों को न सह सकने का नाम मार्दव है। अपने अपरिमित दुःख के निवर्तक किसी को न देखने से उत्पन्न होने वाले भय की निवृत्ति भगवान् के इस गुण के चिन्तन से होती है।

शरण्यत्व—भगवान् का आठवाँ गुण है। ब्रह्मा से लेकर कीट-पतंग पर्यन्त के असाधारण उपाय होने का नाम शरण्यत्व है। इससे सभी साधनों से हीन मुझ जैसे अकिञ्चन व्यक्ति का इसमें कैसे अधिकार होगा, इस भय की निवृत्ति होती है।

कृतज्ञत्व—यह नवाँ गुण है। दूसरे के अल्प उपकार, प्रेम या अन्य कृति को बहुत समझने का नाम कृतज्ञत्व है। भगवान् अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक हैं, लक्ष्मीपति हैं। भला वह मेरे द्वारा पुष्पपत्रादि समर्पण करने मात्र से कैसे संतुष्ट होंगे, इस कुशंका की निवृत्ति में यह गुण महान् सहायक होता है।

सत्यप्रतिज्ञत्व—भगवान् का दसवाँ गुण है। असत्य न बोलने का नाम सत्यप्रतिज्ञत्व है। मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूँगा। भगवान् अपनी इस प्रतिज्ञा को पूरी करेंगे या नहीं, इस कुशंका की इसमें निवृत्ति होती है।

पूर्णत्व—भगवान् का ग्यारहवाँ गुण है। प्रत्युपकार की आकांक्षा न होने का नाम पूर्णत्व है। क्योंकि भगवान् आप्तकाम है। भगवान् तो हम पर अहैतुकी दया करते रहते

हैं, पर मुझ में उनका प्रत्युपकार करने की कुछ भी सामर्थ्य नहीं है, इस विचार से होने वाले शोक का नाश होता है, इस गुण के चिन्तन से।

औदार्य—प्रभु का बारहवाँ गुण है। अपने आप तक को दे देने का नाम औदार्य है। जैसा कि श्रुति वाक्य है—'**यः आत्मदा बलदा...**' इससे भगवान् आत्मभावापत्ति अवश्य करेंगे, इस प्रकार के विश्वास की दृढ़ता में इस गुण का उपयोग होता है। इस प्रकार ये बारह गुण शरणागत भक्तों को सदा सर्वदा शुचि-अशुचि सभी अवस्थाओं में अनुसंधान करने चाहिए।

(ii) निम्बार्क-सम्प्रदाय में गुरु-महत्ता

मानव जीवन का परम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति ही है और भगवत्प्राप्ति का साधन है भगवत् प्रपत्ति। जैसा कि भगवान् ने श्रीमुख से कई बार कहा है—"**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**", "**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते**" इत्यादि। इस भगवत्प्रपत्ति का एकमात्र साधन है "वैष्णव दीक्षा"। दीक्षा के द्वारा ही विधिपूर्वक प्रपत्ति सम्पन्न होती है। जिसमें गुरुतत्त्व की मुख्य उपयोगिता होती है। संसार के अनन्तानन्त संतापों से संतप्त, अतएव नितान्त व्याकुल होकर जीव सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव का अन्वेषण करता है और उनकी शरण में जाता है। '**स गुरुमेवाभिगच्छेत्।**' सद्गुरु की प्राप्ति जीव को भगवत्कृपा से ही होती है। ध्रुव तथा प्रह्लाद को देवर्षि नारद की प्राप्ति भगवत्कृपा से ही हुई थी। सद्गुरु निश्छल शरणागत शिष्य को अहैतुकी कृपा करके उसे भगवत्प्रपन्न बनाते हैं। मन्त्रोपदेश करते हैं। साधना बतलाते हैं। ध्यान बताते हैं। सदाचार सिखाते हैं। वैराग्य का उपदेश देते हैं और बनाते हैं भगवान् के अनुरूप रूप का रसिक भी। फिर जीव का कल्याण होता है। यही मार्ग है। कल्याण का साधन है। बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता। बिना आचार्य के विद्या प्राप्त नहीं होती। पुस्तक से किया गया जप सफल नहीं होता। अवैष्णव का दिया मन्त्र अमोघ नहीं होता, जिसका सम्प्रदाय नहीं, परम्परा नहीं, ऐसा मन्त्र मोघ होता है। गंगाजल वही पवित्र होता है, जिसकी परम्परा अविच्छिन्न है। मूल गंगोत्तरी से सम्बन्ध है। इसी तरह मन्त्र भी वही सार्थक होता है, जिसकी अनादि परम्परा है। दीक्षा दिव्य भाव को प्रदान करती है। दीक्षा में आत्म-समर्पण होता है। आत्म-समर्पण सच्चा सुख, सच्ची शांतिप्रदान करता है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव किसी सच्चे सद्गुरु द्वारा निर्दम्भ भगवत्प्रपन्न को होता है।

इस पृष्ठभूमि में हम श्रीनिम्बार्कीय दृष्टिकोण के आधार पर श्रीगुरुतत्त्व का विचार करे। इस सम्प्रदाय में भगवत्प्राप्ति के लिए गुर्वाश्रय को नितान्त आवश्यक माना गया है। गुरूकरण की आवश्यकता पर "**आचार्यवान् पुरुषो वेद**", "**स गुरुमेवाभिगच्छेत्**", "**तस्माद् गुरुं प्रपद्येत**" (भागवत) आदि वाक्यों का उद्धरण दिया जाता है। सम्प्रदाय में गुरु सोच-समझ कर तथा छानबीन कर करने का आदेश है। सम्प्रदाय में त्रैवर्णिक को ही गुरु बनाने का आदेश है, क्योंकि गुरु को श्रोत्रिय, वेद-वेदान्तवेत्ता तथा भगवन्निष्ठ होना अनिवार्य बताया

गया है। जो शब्द ब्रह्म और परब्रह्म दोनों में निष्णात हो, उसे ही गुरु बनाना चाहिये। क्योंकि **अज्ञान रूप अंधकार को नाश करने वाले को ही गुरु कहा गया है।** इसी प्रकार श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में गुरु को आचार्य होना भी आवश्यक बताया गया है। आचार्य का अर्थ **"आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि। स्वयमाचरते यस्मात् तदाचार्य इति स्मृतः"** ऐसा आचार्य होना चाहिए। श्रीनिम्बार्क सिद्धान्तानुसार गुरु उसे बनाना चाहिये, जो वेदसम्पन्न, विष्णुभक्त, रागद्वेषातीत, मन्त्रज्ञ, सदा मन्त्राश्रय, शौचाचार सम्पन्न, स्वयं गुरुभक्तिसमायुक्त तथा जो विशेष रूप से पुराणों का ज्ञाता हो। इसी प्रकार जो सत्यभाषी, जितेन्द्रिय, परमार्थ परायण, क्रोध रहित, पाञ्चरात्रार्थवित् तथा पञ्चकलानुष्ठान परायण हो, उसे ही गुरु करना चाहिये। क्रमदीपिका श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का माना हुआ ग्रंथ है। आचार्य श्रीकेशवकाश्मीरीजी ने उस ग्रंथ में गुरुतत्त्व का बड़ा अच्छा स्वरूप बताया है—**"कामवासना के समूल उन्मूलन से जिसका प्रत्यङ्ग निर्मल हो चुका है, श्रीकृष्ण चरण-कमल में जिसका अहैतुक अनुराग है, निगमागम के विमल पथ का जो भली-भाँति वेत्ता है, संतों में जिसका समादर है, ऐसे को गुरु रूप में आश्रय करे।"** पर यदि वैष्णव न हो तो उसे गुरु नहीं बनाना चाहिये। कारण अवैष्णवोपदिष्ट मन्त्र के द्वारा मनुष्य नरकगामी होता है जैसाकि श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी ने कहा है—**"त्रिषु वर्णेषु सम्भूतो मामेव शरणं गतः। नित्य-नैमित्तिकपरो मदीयाराधने रतः। आत्मीय परकीयेषु समो दैशिक उच्यते। आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः। मन्त्रज्ञे मन्त्रभक्तश्च सदा मन्त्राश्रयः शुचिः। गुरुभक्ति-समायुक्तः पुराणज्ञो विशेषतः। एवं लक्षण-सम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते।"** श्रीपुरुषोत्तमाचार्य ने इसके विपरीत गुरु करने पर दोष बताया है। 'विपर्यये दोष-स्मरणात्।' और कहा है—

> **"भिन्ननावाश्रितः यो यथा पारं न गच्छति।**
> **ज्ञानहीनं गुरुं प्राप्तः कुतो मोक्षमवाप्नुयात्" ॥1॥**

शास्त्र में जैसे गुरु छानबीन करने की आज्ञा है, उसी प्रकार शिष्य भी परीक्षा लेकर ही करने का विधान है। वही भाग्यशाली है, जिसका प्रभु में निश्छल अनुराग है। प्रभु प्राप्ति के लिए जिसकी सच्ची लगन है। जिसका सच्चा अनुराग है। जिसे वस्तुतः विषयों से विराग है, वास्तव में ऐसा व्यक्ति ही शिष्य बनाने योग्य है। ऐसे विषय विरक्त, प्रशान्तचित्त, निर्दम्भ, भगवदनुरागी विरागी को शिष्य बनाने तथा मन्त्रोपदेश देने का सम्प्रदाय में विधान है।

(5) निम्बार्क-सम्प्रदाय में युगलोपासना

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य के अनुसार 'रस' या आनन्द ब्रह्म का ही पर्याय है, जो श्रुति द्वारा '**रसो वै सः**' के रूप में प्रतिपादित किया गया है। श्रीनिम्बार्क ने अपने भाष्य में 'रस-तत्त्व' या परमात्मतत्त्व के अखण्ड आनन्दमयता की स्पष्ट घोषणा की है। उनकी मान्यता के अनुसार इस आनन्दमयता का सम्बन्ध जीव से नहीं, अपितु ब्रह्म से है—

> **आनन्दमयः परमात्मा न तु जीवः कुतः?**
> **परमात्म विषयकानन्द पदाभ्यासात्।'**

'रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति' इति
वाक्येन लब्धृलब्धव्ययोर्भेदव्यपदेशाच्च जीवोऽनानन्दमयः।'
(भाष्य 1/1/13, 18)

इन सूत्रों द्वारा ब्रह्म में आनन्द की अनन्तता की पुष्टि की गई है। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि 'रस' या आनन्द ब्रह्म का स्वरूपात्मक धर्म होते हुए भी चित् या ज्ञान के द्वारा वह आस्वादयनीय है। रस-ब्रह्म का अनुभव ही 'भगवल्लीलारस' है। वस्तुतः परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी परमाह्लादिनी शक्ति श्रीराधा ही इस 'भगवल्लीला-रस' अथवा 'माधुर्य-रस' के केन्द्र हैं। श्रीनिम्बार्काचार्य ने इन्हीं युगलकिशोर की उपासना में अपने माधुर्य-भाव का पुट दिया है। पुराणों में श्रीराधाकृष्ण के लीलामय स्वरूप को शक्ति और शक्तिमान् के रूप में स्वीकार किया गया है। वे 'एक प्राण द्वै देही' हैं। श्रीमद्‌भागवत में श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ आत्मा-आत्माराम एवं बिंबप्रतिबिंब भाव की झाँकी स्पष्ट की गई है—

"रेमे रमेशो व्रज-सुंदरीभि-
र्यथाऽर्भकः स्वप्रतिविम्ब-विभ्रमः। (श्रीमद्‌भागवत 10/33/37)
आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्माराम इति प्रोक्तो मुनिभिर्गूढवेदिभिः॥ (स्कन्दपुराण)

श्रीराधाकृष्ण को उपास्य मानकर चलने वाली धारा में निम्बार्कीय, गौड़ीय, वल्लभीय एवं राधावल्लभीय ये चार धाराएँ ऐसी हैं, जो माधुर्य-भाव की साधना अथवा रसिक साधना में आस्था रखती हैं। पूर्ववर्ती समस्त वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण-भक्ति की माधुर्य-उपासना का सबसे प्राचीन प्रचारक निम्बार्क-सम्प्रदाय है। यद्यपि श्रीनिम्बार्काचार्य के आविर्भाव-काल में पर्याप्त मतभेद है, तथापि उच्चकोटि के विद्वान् निम्बार्क सम्प्रदाय की प्राचीनता को एकमत से स्वीकार करते हैं। इस सम्प्रदाय के उद्‌गम पर विचार करने से भी ऐसे अकाट्य तर्क प्राप्त होते हैं, जिनसे निम्बार्क-सम्प्रदाय की प्राचीनता स्वीकार करने में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। यह भी स्पष्ट रूप से सर्वमान्य है कि श्रीकृष्ण की माधुर्य-उपासना का श्रेय भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य को ही है। उनके सिद्धान्त ग्रन्थों से इस तथ्य की पूर्णरूपेण पुष्टि हो जाती है। श्रुतियों ने जिस रसोपासना की ओर इंगित किया है, वह रसरूप परमात्मा श्रीकृष्ण ही है। उन्हीं की उपासना से जीवों को परम-सुख की उपलब्धि हो सकती है। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए सुदर्शनावतार श्रीनिम्बार्क ने श्रीराधाकृष्ण की माधुर्योपासना पर विशेष बल दिया है। श्रीकृष्ण के चरणों की शरण लिए बिना कल्याण नहीं हो सकता। अस्तु, जीव की एकमात्र गति पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही है। साथ ही उनके वामाङ्ग में विराजमान उन्हीं के समान अनुपम लावण्य से युक्त तथा सहस्रों सखियों से परिवेष्टित सर्वेश्वरी श्रीराधा की आराधना करना परम आवश्यक है। वे अपनी **'दशश्लोकी'** में स्पष्ट **घोषणा करते हैं—**

"अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूप-सौभगाम्।
सखी-सहस्रैः परिसेवितां सदा,
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥1॥"

श्रीनिम्बार्काचार्य के उपास्य तत्त्व की परमोत्कृष्टता इसी स्वरूप में निहित है। श्रीराधा श्रीकृष्ण के वामाङ्ग में सर्वदा ही विराजमान रहती हैं। अथर्ववेदीय राधिकातापनीयोपनिषद् में तो यहाँ तक कहा गया है कि बिना सखी भाव का अवलम्ब लिए कोई भी साधक इस दिव्य-माधुर्य रस का आस्वादन नहीं कर सकता और यह भाव बिना सर्वेश्वरी श्रीराधाजी की कृपा के किसी को प्राप्त नहीं होता। संपूर्ण-भुवन की ओर सहज में ही आकृष्ट करने वाले पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण इन्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानते हुए, प्रेमार्द्र होकर उनकी चरण-रज को शिरोधार्य करने के लिए सदैव लालायित रहते हैं। जिन राधाजी के वशीभूत परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण रहते हैं, उन्हीं की उपासना का सन्देश प्रियतमभाव से श्रुतियों ने दिया है। वस्तुतः श्रीराधाकृष्ण रस के सार-समुद्र एक ही देहधारी हैं, क्रीड़ा करने के लिए ही दो हुए हैं। उनका यह अंग-अंगी सम्बन्ध द्वैताद्वैतभाव का भी पोषक है—

'येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिः देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत्।'[33]

श्रीनिम्बार्काचार्य ने ऐश्वर्यप्रधान भक्ति के स्थान पर माधुर्यप्रधान भक्ति की शिक्षा दी है। उनकी दृष्टि में भगवान् श्रीकृष्ण के ऐश्वर्यमय रूप की ओर आकृष्ट होना तो भक्ति का नहीं, अपितु धर्म-साधना का आरम्भ मात्र है। भक्ति की सर्वोत्कृष्टता एवं सच्ची उपासना तो उसके जीवन्त साहचर्य्य एवं प्रेम में बंधकर उनके माधुर्यमय रूप का आस्वादन करना है। इस माधुर्य भाव की प्राप्ति बिना सर्वेश्वरी राधा की कृपा के संभव नहीं। अतः निम्वार्काचार्य ने '**अंगे तु वामे**' कहकर सर्वप्रथम श्रीराधिका (किशोरी) जू का स्मरण श्रीकृष्ण के साथ कर उनकी कृपा की याचना की है। वे कहते हैं—'हे राधे! तुमने पतंग की भाँति अपने पीछे दौड़ते हुए मुकुन्द को अपने प्रेम रूपी डोरे से बाँध दिया है। श्रीकृष्ण तुम्हारे साथ क्रीड़ा करते हुए सर्वदा विद्यमान रहते हैं—

'मुकुन्दस्त्वया प्रेमडोरेण बद्धः,
पतंगो यथा त्वामनुभ्राम्यमाणः।
उपक्रीडयन् हार्द्दमेवानुगच्छन्,
कृपा वर्तते कारयतौ मयीष्टम्॥ 4॥'
(श्रीनिम्बार्ककृत राधाष्टकात्)

इस प्रकार अपने प्रियतम के प्रेम से प्रफुल्लित अंगों वाली शरीर में स्वेदबिन्दुओं से युक्त, प्रेम-पीयूष की वृष्टि करने वाली तथा कृपाकटाक्ष से देखने वाली रासेश्वरी श्रीराधिका की आराधना किये बिना इस माधुर्य की प्राप्ति असंभव है। श्रीराधाष्टक स्तोत्र के अन्तिम श्लोक में उन्होंने इस बात की पुष्टि की है कि दामोदर की परमप्रिया श्रीराधिका के इस अष्टक के सहारे ही साधक अपनी साधना के क्षेत्र में तत्पर होकर सखीभाव से ही उन युगल के आनन्द का रसास्वादन कर सकता है—

इदं त्वष्टकं राधिकायाः प्रियायाः
पठेयुः सदैवं हि दामोदरस्य।
सुतिष्ठन्ति वृन्दावने कृष्णधाम्नि
सखीमूर्तयो युग्मसेवानुकूलाः ॥ 9 ॥ (श्रीराधाष्टकात्)

'प्रातर्नमामि वृषभानुसुतापदाब्जं' कहकर श्रीनिम्बार्काचार्य वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिका किशोरीजू के चरणारविन्दों की प्रातःकालीन वन्दना करते हुए दिखाई देते हैं। वे अपने 'प्रातःस्मरण स्तोत्र' में कहते हैं 'शयन से उठे हुए, युगलरूप सर्वेश्वर, सुखकारी, रसिकेश्वरेश्वर, परस्पर केलिरस के चिह्नों से चमत्कृत, सखियों से परिवेष्टित, सुरत काम से शोभायमान, सुरत-सार समुद्र के चिह्नों को अपने कपोल तथा नेत्रों पर धारण करने वाले, रति आदि समस्त प्रकार के अलौकिकानन्द को प्रदान करने वाले, दिव्यकाम से युक्त, पुण्यपुञ्ज श्रीराधाकृष्ण का मैं प्रातःस्मरण करता हूँ—

प्रातर्भजामि शयनोत्थित-युग्मरूपं,
सर्वेश्वरं सुखकरं रसिकेशभूपम्।
अन्योन्य-केलिरस-चिह्न-चमत्कृताङ्गम्,
सख्यावृतं सुरत-काममनोहरं च ॥3 ॥
प्रातर्भजे सुरतसार-पयोधि-चिह्नं,
गण्डस्थलेन नयनेन च सन्दधानौ।
रत्याद्यशेष-शुभदौ समुपेत-कामौ,
श्रीराधिकावर-पुरन्दर-पुण्य-पुञ्जौ ॥ 4 ॥
(श्रीनिम्बार्ककृत प्रातः स्मरणस्तोत्रात्)

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि श्रीनिम्बार्काचार्य ने अपनी प्रत्यक्ष माधुर्योपासना का स्पष्ट सन्देश स्वरचित ग्रन्थों में दिया है। श्रीनिम्बार्क पूर्व वैष्णव संप्रदायों में इस प्रकार का सन्देश प्राप्त नहीं होता। उनकी इस माधुर्योपासना का पूरा-पूरा प्रभाव परवर्ती समस्त वैष्णव संप्रदायों पर पड़ा है, जिसके फलस्वरूप व्रज-वृन्दावन में आज भी माधुर्य भक्ति में ओतप्रोत रसमयी-मन्दाकिनी प्रवाहित होती दिखाई देती है।

श्रीनिम्बार्काचार्य के उपरान्त उनके परम्परानुयायी जिन शिष्य-प्रशिष्यों ने उनके द्वारा आरोपित रासोपासना के पादप को पल्लवित और पुष्पित किया, उनमें श्रीऔदुम्बराचार्य और श्रीनिवासाचार्य प्रमुख है। तत्पश्चात् इस परम्परा में रसमय भावभक्ति की वृद्धि होती गई जो 14वीं और 15वीं शताब्दी में श्रीभट्टदेवाचार्य और उनके पट्टशिष्य महावाणीकार श्रीहरिव्यासदेवजी के वाणीसाहित्य में स्पष्ट रूप से पाई जाती है।

युगलशतककार श्री भट्टदेवाचार्यजी माधुर्योपासना के ऐसे अमृतानन्दघन हुए, जिन्होंने अपनी अलौकिक रसवृष्टि द्वारा रसिकों के मन-मयूरों को मत्त बना दिया। **युगलशतक** का रचनाकाल वि. सं. 1352 निर्धारित है। श्रीभट्टदेवाचार्य, श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य के प्रिय

शिष्य थे। निम्बार्कसम्प्रदाय के आचार्य का यह रसिक रूप इतना विख्यात हुआ कि भक्तमालकार श्री नाभादास को लिखना पड़ा—

मधुर भाव सम्मिलित ललित लीला सुवलित छवि।
निरखत हरषित हृदयप्रेम वरषत सुकलित कवि॥

x x x

आनन्दकन्द श्रीनन्दसुवन श्रीवृषभानुसुता भजन।
श्रीभट सुभट प्रगट्यो अघट रसरसिकन मनमोदघन॥

(भक्तमाल छ. 76)

गो. नाभादासजी ने **'रस-रसिकन मन मोदघन'** इन शब्दों में यह संकेत किया है कि श्रीयुगलकिशोर की मधुर लीलाओं का व्रजभाषा में वर्णन करने वाले रचयिताओं में श्रीभट्टजी ही प्रथम रचयिता हैं। श्रीभट्टजी कृत 'युगलशतक' में रूपमाधुर्य, केलिमाधुर्य, रतिमाधुर्य आदि के नित्यविहार निकुञ्जलीला सम्बन्धी पद प्राप्त होते हैं, जो माधुर्य-भक्ति से परिप्लावित हैं। श्रीश्यामाश्याम के अंग-प्रत्यंगों की आनन्दात्मक रसमाधुरी का पान करते हुए श्रीभट्ट जी के नेत्र चकोरवत्-दृष्टि करके पलक मारना भी भूल जाते हैं—

बसौ मेरे नैनन में दोउ चंद।
गौर वरन वृषभानुनंदिनी स्याम वरन नन्दनन्द॥
गोलक रहे लुभाय रूप में निरखत आनन्दकन्द।
जै श्रीभट्ट प्रेमरस बंधन क्यों छूटै दृढ़ फंद॥

(युगलशतक, पद सं. 53)

निम्बार्क संप्रदायान्तर्गत श्रीभट्टजी को **'हितूसखी'** का अवतार माना जाता है। युगलशतक के एक टीकाकार बरसानावासी लडैंतीदास (सं. 1877) ने लिखा है—

'श्रीभट ह्वै हितू सहचरी, प्रगट कियौ शृंगार।
जुगल सत्त विख्यात है, रसिकन कौ आधार॥'

श्रीभट्टजी ने युगलशतक के छहों प्रकरण-सिद्धान्तसुख, व्रजलीला, सेवासुख, सहजसुख, सुरतसुख और उत्साहसुख में श्रीराधामाधव की मधुर-रसमयी लीलाओं का सखीभाव से ही गान किया है। श्रीनिम्बार्काचार्य की भाँति उन्होंने श्री श्रीराधा की उपासना को ही प्रधानता दी है, जिनके चरणों को प्रियतम श्यामसुन्दर भी सदा 'पलोटते' रहते हैं और उनका संवाहन कर स्वयं को कृतकार्य मानते हैं—

प्यारीजू के चरण पलोटत मोहन।
नील कमल के दलन लपेटे, अरुन कमलदल सोहन॥
कबहुँक लैलै नैन लगावत, अलि धावत मानो गोहन।
जै श्रीभट्ट छबीली राधे, होत जगे तें छोहन॥

(युगलशतक, पद 76)

श्रीभट्टदेवजी के प्रधान शिष्य अनन्तरसिक श्रीहरिव्यासदेवजी का प्रादुर्भाव वि. सं. 1460 माना जाता है। आदि व्रजभाषा वाणी युगलशतक के रूप में जिन सरस रसोपासना के सूत्रों की रचना श्रीभट्टजी ने की, उसी का उत्कृष्ट रसमय मधुर महाभाष्य उनके शिष्य श्रीहरिव्यासदेव जी ने अपने **'महावाणी'** नामक ग्रन्थ में किया है। 'महावाणी' में शुद्ध नित्यविहार रस से संवलित उज्ज्वल रस की उपासना पद्धति मधुर रसभीने उत्कृष्ट भाव सरस प्रांजल भाषा में व्यक्त हैं, जिनके कारण यह ग्रन्थ रसिकजनों का कण्ठाभरण बना हुआ है। 'महावाणी' में पाँच सुख—सेवासुख, उत्साह सुख, सुरतसुख, सहजसुख और सिद्धान्तसुख वर्णित हैं। नित्य विहार अथवा निकुञ्जलीला में प्रियाप्रियतम नित्य-केलि में संलग्न रहते हैं और इस केलिरस के पान का अधिकारी वही हो सकता है, जो महावाणी में वर्णित श्रीहरिव्यासदेवजी की आज्ञानुसार चलता है—

जाके दस पैड़ी अति दृढ़ हैं
बिनु-प्रयास कौन तहँ चढ़ि हैं।
पहले रसिक जनन कों सेवै,
दूजी दया हिये धरि लेवै ॥
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि हैं,
चौथी कथा अतृप्त है सुनि है।
पंचमि पद पंकज अनुरागै,
षष्ठी रूप अधिकता पागै ॥
सप्तमि प्रेम हिये विरधावै,
अष्टमि रूप ध्यान गुन गावै।
नवमी दृढ़ता निश्चय गहिवै,
दशमी रस की सरिता बहिवै ॥
या अनुक्रम करि जे अनुसरहीं,
सनै-सनै जगते निरवरहीं।
परमधाम परिकर मधि बसहीं
श्रीहरिप्रियाहितू संग लसहीं ॥ 41 ॥

(श्रीमहावाणी सिद्धान्त-सुख)

इन पंक्तियों में कहा गया है कि रसिकजनों की प्राणीमात्र पर दया, साम्प्रदायिक आचार के प्रति निष्ठा, अमृतमयी कथा का, अतृप्तिपूर्ण श्रवण, पदपंकज में अनुराग, उपास्य रूप में रत होना, हृदय में प्रेम भाव का उदित होना, प्रिया-प्रियतम के रूपध्यान तथा गुणगान साधना में दृढ़भाव और इन सबके फलस्वरूप अन्त में रस की धारा में आपादमस्तक मग्न होना ही साधन-साधना और साधना-लभ्य साध्य की दशा है। महावाणी में अष्टसखी ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, रंगदेवी, सुदेवी, तुंगविद्या और इंदुलेखा का भी उल्लेख

मिलता है। रसिक साधन उक्त प्रकार से साधना करता हुआ अपने लीलोपयोगी रूप (सखीभाव) को प्राप्त करके ही नित्य-विहार लीला का साक्षात्कार कर सकता है।

श्रीहरिव्यासदेवजी ने अपनी साधना के बल से देवी को वैष्णवी दीक्षा प्रदान कर अपनी अपूर्व निष्ठा और सच्ची वैष्णवता का परिचय दिया है। भक्तमालकार गो. नाभादास को लिखना पड़ा—

हरिव्यास तेज हरि भजन बल देवी को दीक्षा दई।
श्रीभट्ट चरणरज परसि कें सकल सृष्टि जाकों नई॥

इसी संप्रदाय के अन्तर्गत श्रीरूपरसिकदेव, रसिक अनन्य नृपति श्रीस्वामी हरिदासजी तथा उनकी शिष्य-परम्परा में अष्टाचार्य और बीसवीं शताब्दी के परम रसिक श्रीमाधवदासजी अलीमाधुरी जैसी विभूतियों ने प्रकट होकर माधुर्यभक्तिपूर्ण रसिक साधना की उत्तरोत्तर परम्परा स्थापित की है। अतः कहना न होगा कि माधुर्योपासना के उद्‌भव और विकास का मूल उत्स **निम्बार्क-सम्प्रदाय** ही है।

(6) निम्बार्क-सम्प्रदाय : समन्वयात्मक दार्शनिक दृष्टिकोण

श्रुतिर्विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः,
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां,
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

इस सिद्धान्त के अनुसार स्मृतियों में, श्रुतियों में भी परस्पर विरुद्ध वाक्य मिलते हैं। निर्णेताओं की वाणी भी इत्थंभूत प्रमाण के रूप में नहीं आ सकती। इस स्थिति में और कोई चारा नहीं है, सिवाय महापुरुषों के आनुगत्य के। महाजनों का मार्ग वेदानुकूल होता है। जब कभी वैदिक मार्ग उच्छिन्न-सा होता है, तब पथ विभ्रान्त लोगों को सदुन्मुख बनाने के लिए महाविभूतियों का इस धराधाम पर अवतार होता है।

ऐसी महाविभूतियों में सर्वप्रथम अवतीर्ण होने वाले चक्रराज सुदर्शन के अवतार भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य हैं, जिनका लोक-वेद-विख्यात द्वैताद्वैत सिद्धान्त है। द्वैताद्वैत सिद्धान्त वेदविहित है। वेदानुकूल धर्मशास्त्र भी इसी का समर्थन करते हैं। **मनुस्मृति** में लिखा है कि—

"श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ"

जहाँ पर श्रुतियाँ दो बातों का प्रतिपादन करती हैं, वहाँ समझ लेना चाहिए कि दोनों धर्म यथार्थ हैं। वेद वाक्य सब समान रूप के हैं, उनमें बाध्य-बाधक भाव की कल्पना करना अन्याय होगा। मानव की निर्मूल कल्पना से सिद्धान्त सिद्ध नहीं हो सकता। वेदमूलक कल्पना ही युक्तिसंगत है। वेद जो कुछ कहते हैं; जिसका प्रतिपादन करते हैं, उनको उसी रूप में मानना आस्तिकता है, और शास्त्रीयता है। वेद पर किन्तु-परन्तु की टीका-टिप्पणी करना, प्रत्यक्षानुवादिनी-परोक्षानुवादिनी कहकर श्रुतियों को खींचातानी में लाना भी उनके

साथ अन्याय करना है, यदि वेद कण्ठरव से ऐसा कहते तो मान भी लिया जाता। वेद तो साफ-साफ द्वैताद्वैत को ही कहते हैं। वेद न केवल द्वैत, न केवल अद्वैत, न विशेषण विशेष्य, न शुद्ध द्वैत न शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन करते हैं, वेद तो जो वस्तुस्थिति है, उसकी घोषणा करते हैं, इसीलिए तो वेदों का स्वतः प्रामाण्य स्वीकार किया गया है। द्वैताद्वैत को समन्वित वैदिक सिद्धान्त समझकर शिरोधार्य किया गया है। उपनिषद्-ब्रह्मसूत्र-गीता के आज तक के भाष्यकारों की सैद्धान्तिक अपनी-अपनी मान्यताएँ भिन्न होने पर भी मूलतः द्वैताद्वैत में समाविष्ट हो सकती हैं।

यद्यपि ईश्वर सब कुछ है, सर्वावस्था में है। **कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं** समर्थ है। ईश्वर को जिस दृष्टि से देखा जाये, समझा जाये, भावना की जाये, तत्तत् स्थितियों में वह है ही। अस्ति में भी ईश्वर है, नास्ति में भी है। अस्ति-नास्ति इस विप्रतिषिद्धावस्था में भी ईश्वर का अपलाप नहीं किया जा सकता। जो है, वह त्रिकालाबाधित है। है को नहीं से अपलाप नहीं किया जा सकता, नहीं कहना केवल वाचारम्भमात्र है, वस्तुस्थिति नहीं है। अतएव ईश्वर की ईश्वरता निरतिशय महिमाशाली है। यदि कहीं किसी अवस्था में न्यूनता (अभाव) आ जाये तो ईश्वर का ईश्वरत्व नहीं रहेगा। अतः "**सदा सर्वत्र सर्वगः**" ईश्वर है। इन दृष्टियों से विचार करने पर तो द्वैताद्वैत, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, अचिन्त्य भेदाभेद, सभी दार्शनिक दृष्टियों में तत्तत् रूप से ईश्वर प्राप्त होगा। ईश्वर तो एक शाश्वत सार्वत्रिक सत्ता है।

किन्तु अब यह विचार करना है कि मूलतः वेद क्या कहते हैं, और शास्त्रसम्मत तर्क क्या कहते हैं? श्रुति-सूत्र-धर्मशास्त्रानुकूल तर्क द्वारा कौन सिद्धान्त युक्तिविरुद्ध नहीं है? इसको भी देखना है। अब हम यहाँ पर द्वैताद्वैत को लेकर विचार करते हैं।

प्रश्न यह उठता है, कि तमः प्रकाशवत् विरुद्ध स्वभाव वाले द्वैत और अद्वैत का सैद्धान्तिक सामञ्जस्य कैसे सम्भव है?

खासकर आलोचकों के द्वैताद्वैत सिद्धान्त में दो प्रश्न होते हैं। द्वैताद्वैत मानने पर समानाधिकरणता न होने से द्वैताद्वैत वादिसम्मत कर्मधारय समास नहीं होगा और एकविज्ञान से सर्वविज्ञान की वैदिक प्रतिज्ञा भी उपपन्न ही नहीं होगी।. . .

द्वैताद्वैत सिद्धान्त आपाततः विरुद्ध प्रतीत होता है, किन्तु विचार करने पर यह सिद्ध होता है, कि विरोध का लेशमात्र भी नहीं है। निम्बार्क-सिद्धान्त में चित्, अचित् और ईश्वर नाम के तीन शाश्वत तत्त्व माने गए हैं, श्रुतियाँ भी "**भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म ह्येतत्**" कहकर इसी सिद्धान्त की पुष्टि करती हैं। चिदचित् का ब्रह्म के साथ स्वाभाविक भेदाभेद (द्वैताद्वैत) सम्बन्ध है। इस बात को समझने के लिए सर्वप्रथम द्वैत और अद्वैत पदार्थ को समझना आवश्यक है।

द्वि+इत शब्द से द्वैत शब्द निष्पन्न होता है। उसके साथ नञ्समास करने पर अद्वैत होता है। पर द्वि शब्द का अर्थ है—दो प्रकार से। इत शब्द का अर्थ है—ज्ञात।

इसका समष्ट्यर्थ हुआ—दो प्रकार से ज्ञात, इस प्रकार द्वैत और अद्वैत का सामञ्जस्य (समानाधिकरणता) जिस पदार्थ या सिद्धान्त में हो, उसको द्वैताद्वैत कहते हैं। जैसे जिसमें शैत्य और पावनत्व युक्त जल हो, उसको गंगा कहते हैं। गंगा का शैत्य और पावनत्व के साथ स्वाभाविक भेदाभेद है। शीतत्वने पावनत्वेन ज्ञात होते हुए भी गंगाधीन शीतत्व पावनत्व के होने से गंगात्वेन भी ज्ञात होता ही है।

ठीक इसी प्रकार चिदचित् का चित्वेन अचित्वेन भेदरूप ज्ञातत्त्व के साथ-साथ चिदचित् की ब्रह्माधीन स्थिति प्रवृत्ति होने के कारण एक ही ब्रह्मात्मकत्व रूप से ज्ञातत्त्व है ही। एक कालावस्था में भी उक्त प्रकार के भेदाभेद सम्बन्ध की समञ्जसता होने से सामान्याधिकरण न होने के कारण कर्मधारय समास नहीं हो सकता, यह शंका निर्मूल हो जाती है।

व्याप्य-व्यापक भाव तथा कार्यकारण भाव से स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध तो सर्वत्र देखा गया है, यह सर्ववादी को मानना ही पड़ेगा।

दीपक की प्रभा, सूर्य का तेजःप्रकाश, वृक्ष की शाखा, गंगा का शैत्य-पावनत्व, स्फटिक मणि की शुक्लता, जपाकुसुम की रक्तिमा, सुवर्ण का कुण्डल, अहि-कुण्डल इत्यादि स्थलों में स्वभावतः भेदाभेद सम्बन्ध स्पष्ट है।

एक सुवर्ण कुण्डल, कटक, मुकुटादि पदार्थ में कुण्डलत्व-कटकत्वादिरूप अनेक प्रकार से ज्ञातत्त्व के साथ-साथ एक सुवर्णत्वेन भी ज्ञातत्त्व विद्यमान है।

दूसरी बात यह है कि 'अहिकुण्डल' इस प्रयोग में देखिए, वलयाकार में विद्यमान सर्पकुण्डल कार्य है, सर्प कारण है। कुण्डल कार्य और परतन्त्र तथा व्याप्य है, सर्प उसकी अपेक्षा स्वतन्त्र व्यापक तथा कारण है। इस स्वातन्त्र्य-पारतन्त्र्य-व्याप्य-व्यापक, कार्यकारणभाव से भेद-सम्बन्ध भी है। सर्प के बिना कार्यभूत कुण्डल की स्थिति-प्रवृत्ति न होने से कुण्डल का सर्प के साथ अभेद सम्बन्ध भी है। इसी प्रकार जीव-जगत् का ब्रह्मशक्तिमत्वेन व्याप्यत्वेन पारतन्त्र्येण ब्रह्म के साथ भेद-सम्बन्ध है और उनकी ब्रह्म व्यतिरिक्त स्थितिप्रवृत्ति न होने से अर्थात् ब्रह्माधीन स्थिति प्रवृत्तिक होने से अभेद सम्बन्ध भी स्वाभाविक है।

वर्णित विवेचन केवल गप्प नहीं है। इस विषय में सहस्रों प्रमाण मिलते हैं। भगवान् मनु ने कहा है—

"एकत्वे सति नानात्वं न नात्वे सति चैकता।
अचिन्त्यं ब्रह्मणो रूपं कस्तद्वेदितुमर्हति॥"

अर्थात् "एकत्वे = सुवर्णत्वे सति नानात्वं कटककुण्डलादित्वं नानात्वे = कटककुण्डलादित्वे सति एकता = सुवर्णतैव" एक ही सुवर्ण को कटक कुण्डलादिरूप अनेक-भूषणों के रूप में भी देख सकते हैं। उसी भूषणादि दर्शनकाल में एक ही सुवर्ण रूप से भी देखा जा सकता है। ठीक इसी प्रकार चिदचित् का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध समझना चाहिए। इस तथ्य को बताने वाले वेद ही हमारी शरण हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि उक्त तत्त्वत्रय को शाश्वत मानने से एकविज्ञान से सर्वविज्ञानवाद की वैदिक प्रतिज्ञा उच्छिन्न हो जाती है। किन्तु यह कहना अदूरदर्शिता का ही परिणाम है। क्योंकि सिद्धान्त में तत्त्वत्रय अत्यन्त भेदरूप में स्वीकृत नहीं है। सब ब्रह्मात्मक है। अतः द्वैताद्वैत (भेदाभेद) सिद्धान्त में ही एकविज्ञान से सर्वविज्ञान की वैदिक प्रतिज्ञा का निर्वाह होना सम्भव है, अन्यत्र नहीं। अद्वैतवाद में तो उक्त प्रतिज्ञा घट ही नहीं सकती। क्योंकि अद्वैतवाद में तो एकविज्ञान से सर्वविज्ञान होने के बजाय सर्वविज्ञान ही सर्वथा लोप हो जाता है। ब्रह्म व्यतिरिक्त मिथ्या ज्ञान को सर्वविज्ञान कहना ही असंगत हो जाएगा।

इसी प्रकार अत्यन्त भेदवाद में भी सर्वविज्ञान की प्रतिज्ञा समन्वित नहीं हो सकती। कहीं ऐसा नहीं देखा गया है, कि घट विज्ञान से पट विज्ञान हो जाये।

अतः सर्वविज्ञान की प्रतिज्ञा द्वैताद्वैतवाद में घट सकती है। श्रीनिम्बार्काचार्यजी की वेदनिष्ठा का ही परिणाम था, जो कहीं भी किसी भी अवस्था में वेदवाक्य को खींचातानी के रूप में नहीं लाया गया, इसीलिए उन्होंने वेदाविरुद्ध द्वैताद्वैत सिद्धान्त को शिरोभूषण माना। श्रुतियाँ द्वैत और अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादन करने वाली हैं। यदि हम विशुद्ध अद्वैतवादी बनते हैं तो द्वैतवादिनी श्रुति बाधित हो जाएगी। हम यदि विशुद्ध द्वैतवादी बनते हैं, तो अद्वैत प्रतिपादक श्रुति का बाध होगा, ऐसी स्थिति में अर्धनास्तिकता आ जाएगी। किसी धर्माचार्य के लिए यह उचित भी नहीं है। वेद तो स्वयं ज्ञानरूप हैं, सर्वज्ञ हैं। उनका तात्पर्य केवलाद्वैतवाद में होता अथवा केवलद्वैत में होता तो एक ही वाद का प्रतिपादन करने वाले वाक्य मिलते। अतः सहृदयों को समझना है कि वेद भगवान् का तात्पर्य स्वाभाविक भेदाभेदवाद में ही है। इसी तथ्य को, वेद की वस्तुस्थिति को समझकर ही आचार्यपाद द्वारा उक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है।

इस वाद का समर्थन सभी आचार्यों द्वारा हुआ है। सबको भेदाभेद सम्बन्ध इष्ट है। भले ही भिन्न-भिन्न नाम से सिद्धान्त का नामकरण किया हो, वस्तुस्थिति में सब द्वैताद्वैत में समाविष्ट हैं। वेद कल्पतरु हैं, उनकी छायाश्रित होने वाले महानुभावों को भिन्न-भिन्न सिद्धान्त प्रतीत होते हैं, उसका ही परिणाम सम्प्रदाय है।

जो भी हो, सभी वादों का समन्वय द्वैताद्वैतवाद में सावकाश हो जाता है।

(i) अद्वैतवाद का समावेश

द्वैताद्वैतवाद में अद्वैतवाद का समावेश तो स्वभावतः है ही। स्वयं श्रीशंकराचार्यजी ने भी ब्रह्मसूत्र के अहिकुण्डलाधिकरण में भेदाभेदवाद को स्वीकार किया है। "तत्रैवमुभय-व्यपदेशे सति यद्यभेद एवैकान्ततो गृह्यते, भेदव्यपदेशो निरालम्बन एव स्यात्। अत उभयव्यपदेशदर्शनादहिकुण्डलवदत्र तत्त्वं भवितुमर्हति" अर्थात् इस प्रकार श्रुतियों में दोनों के व्यपदेश होने पर यदि एकान्ततः अभेद का ही ग्रहण किया जाये तो भेदव्यपदेश निरालम्बन ही हो जाएगा। अतः सर्प इस प्रकार अभेद है, आभोग वक्राकार कुण्डलाकार

आदि तो भेद हैं और अगले सूत्र में कहा है कि—"यथा प्रकाशः सावित्रस्तदाश्रयश्च सविता नात्यन्तभिन्नौ उभयोरति तेजस्त्वाविशेषात्" अर्थात् जैसे सूर्य का प्रकाश और उसका आश्रय अत्यन्त भिन्न नहीं हैं, क्योंकि दोनों में तेजस्त्व समान है। इन दोनों की अत्यन्ताभिन्नता भी नहीं है। दोनों ही भेदव्यपदेश के भागी हैं।

शंकराचार्यजी के उद्धरण पर विचार करने से सिद्ध होता है कि वे भी भेदाभेदवाद से असहमत नहीं हैं। यद्यपि उन्होंने उपक्रम में **"भेदस्तु अविद्याकृतोऽस्ति"** अर्थात् भेद तो अविद्याकृत है, ऐसा कहा है, तथापि भेदाभेदव्यपदेश के समर्थन में जिन श्रुतियों का उद्धरण दिया है, उनमें अविद्याकृत भेद का प्रतिपादन तो क्या उसकी गंधमात्र नहीं है। ध्यातृध्येय-गंतृगन्तव्यता की धारा तो अविच्छिन्न है ही। अविद्या (प्रकृति) को भी उन्होंने सान्त मानने पर भी अनादि माना है। अनादित्व साम्यात् उसका सम्बन्ध ब्रह्म के साथ है ही। सान्त का तात्पर्य यदि सर्वतोभावेन सार्वत्रिक है, तो उसका पुनराविर्भाव नहीं होना चाहिए। अतः सान्त का तात्पर्य है, साधक सम्बन्ध परिहार। इसलिए गीता में भगवान् ने कहा है—**"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते"** भगवत्प्रपत्ति से माया संतरण की शक्ति आती है, माया को एकान्ततः सान्त बनाने की गति नहीं हो सकती।

इन दृष्टियों से विचार करने पर आचार्य श्रीशंकर का अद्वैतवाद भी द्वैताद्वैतवाद में समाविष्ट हो जाता है। 'एकमेवाद्वितीयम्' इन श्रुतियों से भी भेदाभेदवाद में कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि अद्वितीयता का तात्पर्य स्वसमानता के निषेध लोक में यह देखा जाता है कि—"अद्वितीय पण्डित है, अद्वितीय प्रतिभाशाली है" ऐसे प्रयोगों का व्यवहार होता है। यहाँ अद्वितीयता का तात्पर्य पण्डितान्तर के निषेध में नहीं है, प्रत्युत्त स्वसमानता के प्रतिषेध में ही उसका पर्यवसान है।

(ii) विशिष्टाद्वैतवाद का समन्वय

द्वैताद्वैतवाद में विशिष्टाद्वैतवाद का भी समावेश है। इस सिद्धान्त में भी केवलाद्वैत अभीष्ट नहीं है। किन्तु चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म अद्वैत है। चिदचित् विशेषण के होने से भेदाभेद तो गुणगुणी के समान आ गया। इसके लिए यह केवल मेरी ही युक्ति नहीं है, स्वयं श्रीरामानुजाचार्यजी ने अपने पूर्ववद्धा (3/2/28) सूत्र के भाष्य में लिखा है कि—"विशिष्टवस्त्वेकदेशत्वेनाभेदव्यवहारो मुख्यः। विशेष्य-विशेषणयोः स्वरूपस्वभावेन भेदव्यवहारो मुख्यः ब्रह्मणो निर्दोषत्वञ्च रक्षितम्।"

अर्थात् विशेषण-विशेष्यभाव का व्यवहार भेदाभेद रूप से ही होता है। विशेष्य से विशेषण अत्यन्त भिन्न नहीं है विशेष्याधीन विशेषण के होने से अभेद व्यवहार मुख्य है। विशेष्य-विशेषण का स्वरूप-स्वभाव से भेदव्यवहार भी मुख्य है। इन शब्दों पर विचार करने पर सिद्ध होता है कि श्रीरामानुजाचार्य का सिद्धान्त स्वाभाविक भेदाभेदपरक है। केवल सम्प्रदायसिद्धि के लिए दर्शन का नामकरण भिन्न रूप से किया है।

(iii) शुद्धाद्वैतवाद का समावेश

द्वैताद्वैतवाद में शुद्धाद्वैतवाद भी समन्वित हो जाता है। इस सिद्धान्त में ब्रह्म के तीन अंश माने गए हैं। सदंश, चिदंश और आनन्दांश। संक्षेप में सदंश जगत् है, चिदंश जीव है, आनन्दांश ब्रह्म है। ऐसा अंशांशीभाव में सच्चिदंश का आनन्दांश के साथ अभेद होना स्वाभाविक है। सत्वेन चित्वेन विद्यमान वस्तु का भेदत्वेन व्यवहार भी सिद्ध है। इस बात की पुष्टि श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज ने की है। "**प्रकाशाश्रयवद्धा तेजस्त्वात्**" इस सूत्र के भाष्य में लिखा है कि—"एवं च ब्रह्मणः सच्चिदानन्दरूपेण सर्वेषां ब्रह्माभेदः, ब्रह्मणस्तु कार्यलक्षणेन सर्वस्माद्‌भेदः।"

इस प्रकार भेदाभेद सिद्धान्त को श्रीवल्लभाचार्यजी ने भी स्वीकार किया है। यह दूसरी बात है कि सिद्धान्त का नामकरण भिन्न है। यह तो सम्प्रदाय सिद्धि के लिए है।

(iv) भेदवाद का समावेश

द्वैताद्वैतवाद में भेदवाद का प्रवेश होना भी स्वाभाविक है। किन्तु यह भेदवाद वैदिक सिद्धान्त के अनुरूप प्रतीत नहीं होता। अत्यन्त भेद मानने पर एकविज्ञान से सर्वविज्ञान की प्रतिज्ञा भी उच्छिन्न हो जाती है। तथापि ब्रह्म की सर्वस्वता इसमें स्वीकृत है। मध्वाचार्य दर्शन में लिखा है—

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत्तत्त्वतो
भेदो जीवगणा हरेरनुचराः नीचोच्चभावं गताः।

जीवात्मा भगवत् अधीन है, अनुचर है, जगत् भी तदधीन है। ऐसी स्थिति में कण्ठरव से भेदाभेद को घोषित न करने पर भी उसको मानना गलेपतित है ही।

इस प्रकार सभी वादों का समन्वय द्वैताद्वैतवाद में हो जाता है। द्वैताद्वैतवाद विशुद्ध वैदिक है। द्वैताद्वैतवाद तो जो वेद की वस्तुस्थिति है, जो वेद का स्वरस है वह ही है। अतएव भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने कहा है—

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं,
श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं,
त्रिरूपतापि श्रुतिसूत्रसाधिता।

(7) निम्बार्कीय उपासना-पद्धति का वैज्ञानिक दृष्टिकोण

विज्ञान के प्रभाव में आज का समष्टि-मानस अपना प्रेरक और परिचालक बुद्धि को मानता जा रहा है। 'बुद्धि' को अपनी निरपेक्षता में महत्त्व देने वाला समष्टि-मानस विभेदगामी होगा—यह उसकी अनिवार्य परिणति है। बुद्धि की प्रकृति ही है—विभेद की सृष्टि, बुद्धि का कार्य ही है—व्यावर्तन। वर्तमान संसार ऊपर से देश-काल के व्यवधान

को जितना ही दूर करता जा रहा है—मानस का व्यवधान उतना ही बढ़ता जा रहा है—इसीलिए वर्तमान संदर्भ में 'आधुनिकता' (Modernisor) को परिभाषित करने वाले समस्तविध, ह्रासोन्मुखी और विघटनकारी वृत्तियों का उसे संधान बताते हैं। बुद्धिवाद आस्था का घोर-विरोधी है—वह कहीं पर भी टिकना सिखाता ही नहीं—जो है उसके प्रति संदेह उत्पन्न करना और स्वयं संदेह में पड़े रहना उसकी प्रकृति में है। स्थायित्व और बुद्धिवाद प्रसूत आधुनिकता-परस्पर विरोधी हैं आग और पानी की तरह। कंहने का अभिप्राय यह कि वर्तमान संसार का सारा क्लेश सारी दुर्दशा विज्ञान की अधकचरी स्थिति को ही अंतिम स्थिति मानकर बुद्धि को ही अंतिम प्रमाण मानने वाली 'आधुनिकता' के कारण है। आगे बढ़कर तो मैं यह भी कह सकता हूँ कि ये 'आधुनिकतावादी' बुद्धि को प्रमाण मानने वाली बुद्धि में भी अनास्था रखते हैं, फिर भी बुद्धि के सहारे चलते हैं। इस अस्थिर प्रकृति की साम्प्रतिक बुद्धिवादिता समष्टि-मानस में द्वैत, भेद और अनेकता पैदा कर चुकी है—जिसकी परिणति आज विश्व को भुगतनी पड़ रही है। इसीलिए दूसरी ओर इस दुर्दशा से आक्रान्त समष्टिमानस 'एकता' का नारा अनायास लगा रहा है और कह रहा है कि इसकी स्थिति 'भावनात्मक' (Senctional) ही हो सकती है। अर्थात् क्लेशमात्र की निवृत्ति के लिए अपेक्षित 'एकता' को अन्ततः भावनात्मक ही होना पड़ता है। बुद्धिवादी युग में भी भावना को ही महत्ता देनी पड़ती है। भावना या भाव ही बुद्धिवाद से ग्रस्त संसार का उद्धारक हो सकता है—यही सोचकर भारतीय नारायणीय धर्म के अनुयायी साधकों और चिन्तकों ने 'भाव' को दमन नहीं, शोधन की राह दिखाई और उसके बल पर ऐहिक-पारलौकिक-उभयत्र सुख और शांति की स्थापना की।

निम्बार्क मत भी राग-शोधन में आस्था रखने वाला मत है। वह मानता है कि एक ही राग यदि पार्थिव धरातल की ओर से मोड़कर अपार्थिव की ओर कर दिया जाये तो वह आत्यन्तिक सुख और शांति का अजस्र स्रोत होगा। दार्शनिक दृष्टि से विचार करते हुए तो अन्ततः यह भी माना गया है कि रागतत्त्व मूलतः उसी परम प्रेममय परतत्त्व अथवा ह्लादिनी का पार्थिव जगत् में आ पड़ा कण है और यह प्रति व्यक्ति में उसका निजस्वरूप या निजी वैशिष्ट्य के रूप में निहित है। साधनावश 'नित्यविहार' के साक्षात्कार से वह 'रागकण' आस्वाद्य होने लगता है—स्वस्वरूप में साधक प्रतिष्ठित हो जाता है। जिस प्रकार प्रेक्षक मन्त्रस्थ शृंगार को देखता हुआ आत्मनिष्ठ उद्बुद्ध वासना का आस्वाद लेता हुआ शृंगार मग्न हो जाता है—रस मग्न हो जाता है—कि वही स्थिति सखीभाव से सम्पन्न साधक की भी है।

यही सखीभाव और तदनुरूप भावमय देह गुरुनिर्दिष्ट साधना प्रणाली से उपलब्ध हो सकता है।

संदर्भ सूची

1. 'आनन्दमयः परमात्मा एव, न तु जीवः' (—निम्बार्कभाष्य 1/1/13)
2. 'निरतिशय-सुखरूपत्वामृतत्त्वस्वमहिम-प्रतिष्ठितत्त्वादीनां परमात्मन्येवोपपत्तेश्च भूमा परमात्मैव।' (—वही, 1/3/9)
3. 'जीवानन्द हेतुत्वादपि परमात्मैवानन्दमयः' (—वही, 1/1/15)
4. 'प्रकृतिरूपादानकारणं चकारान्निमित्त-कारणं च परमात्मैव।' (—निम्बार्कभाष्य 1/4/23)
5. 'तदैक्षत बहुस्याम्' इत्यादिना तदुपदेशात् ब्रह्मणः स्रष्टृत्वप्रकृतित्वे वर्त्तेते' (—वही,1/4/24)
6. 'कामात् संकल्पादेव, सोऽकामयत बहु स्यामः, इत्यादि श्रुतेः अतः तद्भिन्न आनन्दमयः।' (—वही, 1/1/19)
7. आनन्दादयस्तु गुणाः गुणिनः सर्वत्रैक्यादुपसंह्रियन्ते। (—वही, 3/3 ।13)
8. 'भक्तियोगे ध्याने तु व्यज्यते, ब्रह्मज्ञान-प्रसादेन विशुद्धसत्त्वः ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः।' (—निम्बार्कभाष्य 3/3/24)
9. 'अविभागोऽपि समुद्रतरंगयोरिव, सूर्य तत्प्रभयोरिव तयोर्विभागः स्यात्।' (—निम्बार्कभाष्य 1/1/13)
10. 'सर्वज्ञः सर्वाचिन्त्यशक्तिविश्वजन्मादिहेतुर्वेदैकप्रमाणगम्यः सर्वभिन्नाभिन्नो भगवान् वासुदेवो विश्वात्मैव।' (—निम्बार्कभाष्य 1/1/4)
11. 'जन्मादि विकारशून्यं स्वाभाविकाचिन्त्यानन्तगुण-सागरं सविभूतिकं ब्रह्मैव, मुक्तोऽनुभवति।' (—वही, 4/4/19)
12. 'सुखदुःख-भोक्तुः शारीरादधिकमुत्कृष्टं ब्रह्म जगत्कर्त्तुः ब्रूमः, आत्मानमन्तसेयमयति।' (—निम्बार्कभाष्य 2/1/21)
13. 'कृत्स्नजगत् सृष्ट्यादि व्यापारार्हं ब्रह्मैव, स कारणं कारणाधिपाधिपः सर्वस्यन्त वशी, सर्वस्येशानः, मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।' (−निम्बार्कभाष्य 4/4/20)
14. 'दृष्यते बृहदेव प्राज्ञो गुणैरपि बृहद्भवति दार्ष्टान्ते तु जीवो अणु परिमाणको गुणेन विभुरिति विशेषः।' (—वही, 2/3/28)
15. 'जीवोऽपि प्रकाशयति, अतः कृत्स्न-शरीरे सुखाद्यनुभवो न विरुध्यते।' (—निम्बार्कभाष्य 2/3/23)
16. 'देहे प्रकाशो जीवगुणादेव, कोष्ठे दीपालोकादिवत्।' (—वही, 2/3/24)
17. 'न जायते म्रियते वा विपश्चित् नित्यो नित्यानाम्।' (—वही, 2/3/17)
18. 'जीवतद्ज्ञानयोर्ज्ञानत्वाविशेषेऽपि धर्मधर्मी भावो युक्त एव।' (—वही, 2/3/27)

19. 'तद्योगं आनन्दयोगं शास्ति श्रुतिः "रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति" इति जीवस्य यल्लाभादानन्दं योगः स तस्मादन्यः इति सिद्धम्।' (—निम्बार्कभाष्य 1/1/20)
20. 'अविभागोऽपि समुद्र तरंगयोरिव सूर्य तत्प्रभयोरिव तयोर्विभागः स्यात्।' (—वही, 2/1/13)
21. 'अंशो नाना व्यपदेशादन्यथा चापि दाशंकित-वादित्वयभिधीयत एके।' (अंशांशिभावाज्जीवमात्मनोर्भेदौ दर्शयति, परमात्मनो जीवेंऽशः "ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ" इत्यादि'. .)
22. 'ब्रह्मैव निमित्तमुपादानं च. . .सर्वज्ञं सर्वशक्ति ब्रह्म स्वशक्ति विक्षेपेण जगदाकारं स्वात्मानं परिणमय्य, अव्याकृतेन स्वरूपेण शक्तिमता कृतिमता परिणतमेव भवति।' (—वही, 1/4/26)
23. 'कार्यस्य कारणानन्यत्वमस्ति नत्वत्यन्त भिन्नत्वं. . . एतदात्म्यमिदं सर्वं, तत्सत्यं तत्त्वमसि सर्वं खल्विदं ब्रह्म।' (—निम्बार्कभाष्य, 2/1/14)
24. 'मूर्त्तामूर्त्तस्याप्रतिषेध्यत्वं द्रढयति, मूर्त्तामूर्त्तादिकं विश्वं ब्रह्मणि स्वकारणे भिन्नाभिन्नसम्वन्धेन स्थातुमर्हति भेदाभेद व्यपदेशादहि-कुण्डलवत्।' (—वही, 2/2/27)
25. 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' 'विगत निरोधश्चाञ्जसा तत्तद्रूपेणावगृह्यते तयेदमपि।' (—निम्बार्कभाष्य, 2/1/17, 19)
26. 'यतः क्षीरवत् कार्यकारणे ब्रह्म परिणमते स्वासाधारण-शक्तिमत्वात्।' (—निम्बार्कभाष्य, 2/1/23)
27. 'कामात् संकल्पादेव, 'सोऽकामयत वहुस्यामः' इत्यादि श्रुतेः।' (—वही, 1/1/19)
28. 'यथा च पूर्वे संवेष्टितः पश्चात् प्रसारितः पटस्तद्वद्विश्वम्।' (—वही, 2/1/18)
29. आचार्य बलदेव उपाध्याय, 'भागवत धर्म'
30. भक्तभारत राधा अङ्क पृ. 172, पंक्ति 21-22
31. देखें — मन्त्र, रहस्यषोडशी, पृ. 44
32. किञ्च स्वस्ववर्णाश्रमाधिकारानुसारेण सन्ध्यावन्दनतर्पणमिनिनित्यनैमित्तिकः—क्रियानुष्ठानरूपभगवत् आज्ञापरत्वम् आश्रमाद्यनतिक्रमश्च-'मोक्षार्थी न प्रवर्तेतेत्यादि वचनात्' (प्रपन्नसुरतरुमञ्जरी, पृ. 28)
33. श्रीराधिकातापनीयोपनिषद् 2-7-11

तृतीय अध्याय

निम्बार्क-सम्प्रदाय का सारगर्भित इतिहास

(1) अखिल भारतीय जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) : एक परिचय

यह अति प्राचीन पौराणिक तीर्थ-स्थल पश्चिम रेलवे के स्टेशन किशनगढ़ (राजस्थान) से दस मील उत्तर की ओर परबतसर रोड पर अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्य पीठ, निम्बार्कतीर्थ सलेमाबाद जिला अजमेर-किशनगढ़ (राजस्थान) में विद्यमान है। इस तीर्थ की प्राचीनता के सम्बन्ध में भगवान् वेदव्यास कृत पद्मपुराणान्तर्गत उत्तर खण्ड अध्याय 158 में महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है। यह तीर्थ अरावली पर्वतमाला की विशाल उपत्यका में स्थित तीर्थों के गुरु श्री पुष्करराज क्षेत्रान्तर्गत पिप्पलाद तीर्थ एवं साभ्रमती नदी के समीप विद्यमान है। यह पिप्पलाद तीर्थ आज भी पीपलाद ग्राम के नाम से यहाँ सुविख्यात है, जहाँ पर कई विशाल पीपल के पेड़, शिव मन्दिर एवं गुफादि हैं, जो इसकी प्राचीनता एवं पवित्रता के द्योतक हैं।

इसकी प्राचीनता का उल्लेख श्रीपद्मपुराण में मिलता है, जिसमें महादेव जी अपनी परमप्रिया जगदम्बा भगवती श्री पार्वती को सुना रहे हैं—

"पिप्पलादान्तस्तीर्थात्पिचुमन्दार्कमुत्तमम्।
तीर्थं साभ्रमतीतीरे व्याधिदौर्गन्ध्यनाशनम्॥
पुरा कोलाहले युद्धे दानवैर्विजिताः सुराः।
वृक्षेषु विविशुस्तत्र सूक्ष्मा : प्राणपरीप्समा॥
तत्र बिल्वे स्थितः शंभुः अश्वत्थे हरिरव्ययः।
शिरीषेऽभूत्सहस्राक्षो निम्बे देवः प्रभाकरः।
एवमादि यथायोग्यं वृक्षेषु विबुधास्तथा।
यावत्कोलाहलो दैत्यो विष्णुना प्रभविष्णुना॥
हतो महादेवास्तावत् स्थितास्ते वृक्षमाश्रिताः॥
येन येन हि यो वृक्षो विबुधेन समाश्रितः॥
स तु तन्मयतां यातस्तस्मात्तं न विनाशयेत्।
इति सूर्यस्य विश्रामात्पिचुमन्दार्कमुक्तकम्॥"[1]

अर्थात् महादेव जी पार्वती से कहते हैं कि—

"पिप्पलादतीर्थ से कुछ दूर साभ्रमती नदी के किनारे सम्पूर्ण आधि-व्याधियों का विनाश करने वाला पिचुमन्दार्क (निम्बार्कतीर्थ) है। प्राचीन समय में कोलाहल नामक दैत्य हुआ था। उसके साथ देवताओं का युद्ध हुआ था। उसके प्रहारों से घबड़ाकर अपने प्राणों की रक्षार्थ देवता लोग सूक्ष्म रूप धारण करके वृक्षों पर जा चढ़े। जब तक महाविष्णु ने कोलाहल दैत्य का वध नहीं किया, तब तक शंकर जी विल्व वृक्ष पर, विष्णु जी पीपल वृक्ष पर, इन्द्र भवान् शिरीषपुष्प पर तथा सूर्य नीमवृक्ष पर चढ़े रहे। ये देवता जिन-जिन वृक्षों पर रहे थे, वे वृक्ष तद्देवनाम कहलाये। इसी से इन वृक्षों का काटना निषिद्ध माना जाता है। जिस स्थल पर निम्ब के वृक्ष पर भगवान् सूर्य ने वास किया था, यह निम्बार्कतीर्थ कहलाया।"

इस प्रकार इस पुष्कर क्षेत्र की पावन भूमि में कश्यप, कपिल, जमदग्नि, अगस्त्य, भरद्वाज, विश्वामित्र प्रभृति अनेक ऋषि-महर्षियों ने कन्दमूल फलादि का आहार करके हजारों वर्ष पर्यन्त तपश्चर्या की है। वहाँ की पर्वत-कन्दराएँ एवं कुण्ड आज भी इसका प्रमाण हैं। महर्षि दधीचि ने यहाँ पर केवल पीपल के पत्ते खाकर ही तपश्चर्या की थी। इसी कारण इसका पिप्लाद नाम पड़ा। जहाँ पर विराजमान होकर उन्होंने तप किया, वह स्थान पिप्पलादतीर्थ कहलाया। इस प्रकार साभ्रमती नदी भी यहीं है, जो श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ से पश्चिम की ओर एक मील की दूरी पर करकेड़ी मार्ग में पड़ती है। लेकिन एक समस्या सामने आ सकती है—वह यह है, कि साबरमती तो अहमदाबाद के पास गुजरात में है, यहाँ कहाँ? साभ्रमती शब्द का ही अपभ्रंश होकर साबरमती नाम हो गया होगा। इन प्रश्नों का समाधान भी यहाँ पद्मपुराण के कतिपय प्रमाणों द्वारा स्पष्ट हो जाता है। अरावली पहाड़ी आबू माउण्ट तक ही है, आगे गुजरात में साबरमती के पास नहीं। अरावली पर्वत, पुष्करारण्य पिप्पलादतीर्थ, निम्बार्कतीर्थ यह सब साबरमती के पास कहाँ? यह सब तो इसी साभ्रमती नदी के पास हैं। पद्मपुराण के अन्तर्गत साभ्रमती माहात्म्य में कहा गया है—

"पितृतीर्थ-गयानाम सर्वतीर्थवरं शुभम्।
यत्राऽऽस्ते देवदेवेशः स्वयमेव पितामहः॥"[2]

इस प्रकार उक्त वैद्यनाथ महादेव, गया कुण्ड, नंदा सरस्वती और ब्रह्माणी का मन्दिर—ये सभी पास में बताये गये हैं, अतः ये सब बातें साबरमती के पास गुजरात में कहाँ? ये तो सभी इसी पुष्करारण्य वाली साभ्रमती के पास हैं। अतः पद्मपुराण के प्रमाणानुसार यही साभ्रमती निश्चित है, जो पुष्करारण्य में होकर बहती है। इसी के पास श्रीनिम्बार्कतीर्थ है। पद्मपुराण में लिखा भी है—"तीर्थः साभ्रमती तीरे" साभ्रमती नदी के किनारे पर यह तीर्थ है। इस नदी के चारों युगों में भिन्न-भिन्न नाम रहे हैं, यथा—

'कृते कृतवती नाम त्रेतायां गिरिकर्णिका।
द्वापरे चन्दना नाम 'कलौ साभ्रमती स्मृता'।"

अतः श्री पुष्करारण्य में पिप्पलादतीर्थ से कुछ दूर साभ्रमती के तट पर श्रीनिम्बार्कतीर्थ का जो वर्णन है, वह तीर्थ यही है। इसके अतिरिक्त और एक बात स्मरणीय है, पद्मपुराण

के इस निम्बार्कतीर्थ माहात्म्य में ही आया है कि कोलाहल नामक दैत्य के भय से यहाँ भगवान् सूर्य ने नीम का आश्रय लिया और भगवान् विष्णु ने पीपल वृक्ष का। अतः निम्बार्कतीर्थ के नीम-पीपलादि वृक्षों को काटने का यहाँ कई शताब्दियों से निषेध रहा है। किशनगढ़ राज्य के संस्थापन सं. 1643 या 1664 वि. के पहले भी यहाँ देववृक्षों का काटना निषिद्ध था। किशनगढ़ राज्य के 210 ग्रामों में कहीं भी कोई इन वृक्षों को नहीं काटता था। सूखा या हरा नीमादि देववृक्ष यदि गिर जाता तो राज्य एवं प्रजा जन उसका उपयोग भी नहीं करते थे। उसे भगवत्सेवा के उपयोग में लगाया जाता था। इस प्रकार की मर्यादा बिना किसी बाधा के भारत-स्वतन्त्रता काल अर्थात् सन् 1947 तक चलती रही है।

यह नियम तो सदा से ही है कि यात्रा करने वाले तीर्थ-यात्रा करके जब तक तीर्थगुरु श्रीपुष्करराज में आकर स्नान न कर लें तब तक यात्रा सफल नहीं होती। आज भी इस प्रकार की मान्यता विद्यमान है। चारों धाम, सप्तपुरी, गंगा, यमुना आदि की यात्रा कर पुष्कर स्नान करने के लिए आने वाले जन निम्बार्कतीर्थ में स्नान करके फिर पुष्कर जाते थे। इस प्रकार नित्यप्रति यात्रियों का यातायात देख विक्रम की 16वीं शताब्दी में एक प्रसिद्ध तान्त्रिक सिद्ध मुसलमान फकीर मस्तिङ्गगाह ने निम्बार्कतीर्थ पर अपना अड्डा जमा लिया था। उसके द्वारा धर्म-परिवर्तन आदि अनेक अत्याचारों एवं धर्म-मर्यादाओं पर कुठाराघात देख धार्मिक जनता ने यहाँ का आधिपत्य तत्कालीन श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपति आचार्य-प्रवर जगद्गुरु श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के अधीन जानकर उनसे रक्षार्थ प्रार्थना की, जो मथुरा में श्री नारदटीला पर विराजमान थे। यदि यहाँ उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता, तो धार्मिक जनता इतनी दूर जाकर उनसे ही प्रार्थना क्यों करती और वे ही अपने परमप्रिय शिष्य जो श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा में संलग्न रहते थे, इसकी रक्षार्थ भेजने का अनुरोध क्यों करते?

श्री परशुराम देवाचार्य जी महाराज इस बीहड़ वन में जमकर यहाँ के वातावरण सुधार का कष्ट क्यों करते?

सन्त जन दयालु होते हैं। वे स्वयं कष्ट सहन कर परोपकार में रत रहते हैं। इस प्रकार गुरुजी की आज्ञा से श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी यहाँ आये। उनके यहाँ पहुँचने के बाद यवनों ने धार्मिक जनता पर आतंक फैलाना बन्द कर दिया। इसके बाद भी मथुरा जैसे स्थान को छोड़कर यहाँ पर पीठ की स्थापना का क्या उद्देश्य था? यदि इधर भी पीठ स्थापना का विचार हुआ तो फिर तीर्थराज श्रीपुष्करराज को छोड़कर इस बियावान जंगल में क्यों? अतः यही कहा जा सकता है कि यहाँ पर श्रीनिम्बार्कतीर्थ था और इसका सम्बन्ध आचार्यप्रवर (गुरु) जगद्गुरु श्री हरिव्यास देवाचार्य जी से भी था। इसी कारण यहँ प्रधान श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की स्थापना हुई। अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ के संस्थापक अनन्तश्री विभूषित जगदगुरु श्रीमन्निम्बार्काचार्य **श्री परशुरामदेवाचार्य जी** थे। इसी का कार्यभार परम्परा के 48वें जगद्गुरु श्री **"श्रीजी"श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्यजी** है, जो वर्तमान में श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधिपति हैं। इनके अन्वेषण का श्रेय अधिकारी श्री

ब्रजवल्लभ शरण जी वेदान्ताचार्य, वृन्दावन को है। आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व अधिकारी जी को इसी तीर्थ के सम्बन्ध में **"पिचुमन्दार्क तीर्थ"** के नाम से एक लेख वाराणसी से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र 'गीताधर्म' में प्रकाशित हुआ था। जब श्री निम्बार्काचार्य पीठ में अखिल भारतीय सनातन धर्म सम्मेलन हुआ, तब धार्मिक जनता की माँग पर सलेमाबाद के स्थान पर इसका नामकरण **'निम्बार्कतीर्थ'** किया गया। यह कोई नवीन नामकरण नहीं किया गया है। **"श्रीनिम्बार्कतीर्थ"** की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए पद्मपुराण में लिखा है—

"निर्म्बार्कतः परं तीर्थं न भूतो न भविष्यति।
अत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुक्ति-भागी भवेद् ध्रुवम्॥"[3]

अर्थात्

"पद्मपुराण-उत्तराखण्ड के अध्याय 158 में श्री महादेव जी पार्वती जी को निम्बार्कतीर्थ माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—"हे पार्वती! निम्बार्कतीर्थ से बढ़कर और दूसरा कोई तीर्थ नहीं है और न ही भविष्य में ऐसा तीर्थ होगा, क्योंकि इस तीर्थ में केवल स्नान और आचमन करने मात्र से ही मनुष्य मुक्ति का पात्र बन जाता है।

सलेमाबाद नामकरण

सलेमाबाद नामकरण की मध्यकालिक ऐतिहासिक परम्परा इस प्रकार रही है। यह नाम 1515 वि. संवत् की अजमेर के सूबेदार सांवत सिंह भाटी व उनके वंशजों की तवारिखों में अंकित है। अकबर बादशाह का अजमेर आगमन 1597 वि.सं. के आसपास माना जाता है। अकबर बादशाही से पूर्व सलेमाबाद टकसाल का सलेमाबाद मुद्राङ्कृति ताम्बे के सिक्के भी प्रचलित हुए हैं। जनश्रुति है कि शेरशाहसूरी तथा बादशाह अकबर का इस पीठ पर आगमन हुआ है, यह बात माननीय सन्त ख्वाजा साहब मोईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की जियारत से जुड़ी हुई होने से सत्य हो सकती है। सलेमाबाद के नाम साम्य पर शेरशाह के पुत्र का नामकरण इस्लामशाह उर्फ सलीम होना और स्वामीजी के वरदान से उसका जन्म होना माना जाता रहा है, क्योंकि मन्दिर स्थापना के लिए अपनी ऐतिहासिक गढ़ी समर्पित करने वाले स्वामीजी के प्रमुख शिष्य खेजडला के श्रीगोपालदासजी भाटी के साथ दिल्लीपति शेरशाह सूरी का आगमन तथा राधामाधव के दर्शन की घटना समकालिक सन्त टीलाचार्यजी की वाणी से प्रमाणित है तथा स्वामी द्वारा धूणी से कई दुशाले प्रकट करने की जनश्रुति से भी पुष्ट है—

"सेरसाह दिल्लीपति प्रणम गोपालदास
सेवक सलेमाबाद माधव जस गायो है।"

जनश्रुति यह भी कि मस्तिङ्गशाह नामक तान्त्रिक एवं मायावी सन्त को आचार्य श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी ने परास्त कर विशिष्ट ख्याति प्राप्त की थी। इन सब घटनाओं का सलेमाबाद से सम्बन्ध रहा है, पर सलेमाबाद नामकरण का प्रमुख हेतु वि.सं. 1480 की

के इस निम्बार्कतीर्थ माहात्म्य में ही आया है कि कोलाहल नामक दैत्य के भय से यहाँ भगवान् सूर्य ने नीम का आश्रय लिया और भगवान् विष्णु ने पीपल वृक्ष का। अतः निम्बार्कतीर्थ के नीम-पीपलादि वृक्षों को काटने का यहाँ कई शताब्दियों से निषेध रहा है। किशनगढ़ राज्य के संस्थापन सं. 1643 या 1664 वि. के पहले भी यहाँ देववृक्षों का काटना निषिद्ध था। किशनगढ़ राज्य के 210 ग्रामों में कहीं भी कोई इन वृक्षों को नहीं काटता था। सूखा या हरा नीमादि देववृक्ष यदि गिर जाता तो राज्य एवं प्रजा जन उसका उपयोग भी नहीं करते थे। उसे भगवत्सेवा के उपयोग में लगाया जाता था। इस प्रकार की मर्यादा बिना किसी बाधा के भारत-स्वतन्त्रता काल अर्थात् सन् 1947 तक चलती रही है।

यह नियम तो सदा से ही है कि यात्रा करने वाले तीर्थ-यात्रा करके जब तक तीर्थगुरु श्रीपुष्करराज में आकर स्नान न कर लें तब तक यात्रा सफल नहीं होती। आज भी इस प्रकार की मान्यता विद्यमान है। चारों धाम, सप्तपुरी, गंगा, यमुना आदि की यात्रा कर पुष्कर स्नान करने के लिए आने वाले जन निम्बार्कतीर्थ में स्नान करके फिर पुष्कर जाते थे। इस प्रकार नित्यप्रति यात्रियों का यातायात देख विक्रम की 16वीं शताब्दी में एक प्रसिद्ध तान्त्रिक सिद्ध मुसलमान फकीर मस्तिङ्गगाह ने निम्बार्कतीर्थ पर अपना अड्डा जमा लिया था। उसके द्वारा धर्म-परिवर्तन आदि अनेक अत्याचारों एवं धर्म-मर्यादाओं पर कुठाराघात देख धार्मिक जनता ने यहाँ का आधिपत्य तत्कालीन श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपति आचार्य-प्रवर जगद्गुरु श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के अधीन जानकर उनसे रक्षार्थ प्रार्थना की, जो मथुरा में श्री नारदटीला पर विराजमान थे। यदि यहाँ उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता, तो धार्मिक जनता इतनी दूर जाकर उनसे ही प्रार्थना क्यों करती और वे ही अपने परमप्रिय शिष्य जो श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा में संलग्न रहते थे, इसकी रक्षार्थ भेजने का अनुरोध क्यों करते?

श्री परशुराम देवाचार्य जी महाराज इस बीहड़ वन में जमकर यहाँ के वातावरण सुधार का कष्ट क्यों करते?

सन्त जन दयालु होते हैं। वे स्वयं कष्ट सहन कर परोपकार में रत रहते हैं। इस प्रकार गुरुजी की आज्ञा से श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी यहाँ आये। उनके यहाँ पहुँचने के बाद यवनों ने धार्मिक जनता पर आतंक फैलाना बन्द कर दिया। इसके बाद भी मथुरा जैसे स्थान को छोड़कर यहाँ पर.पीठ की स्थापना का क्या उद्देश्य था? यदि इधर भी पीठ स्थापना का विचार हुआ तो फिर तीर्थराज श्रीपुष्करराज को छोड़कर इस बियावान जंगल में क्यों? अतः यही कहा जा सकता है कि यहाँ पर श्रीनिम्बार्कतीर्थ था और इसका सम्बन्ध आचार्यप्रवर (गुरु) जगद्गुरु श्री हरिव्यास देवाचार्य जी से भी था। इसी कारण यहँ प्रधान श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की स्थापना हुई। अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ के संस्थापक अनन्तश्री विभूषित जगदगुरु श्रीमन्निम्बार्काचार्य **श्री परशुरामदेवाचार्य** जी थे। इसी का कार्यभार परम्परा के 48वें जगद्गुरु श्री **"श्रीजी"श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्यजी** है, जो वर्तमान में श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधिपति हैं। इनके अन्वेषण का श्रेय अधिकारी श्री

ब्रजवल्लभ शरण जी वेदान्ताचार्य, वृन्दावन को है। आज से लगभग 40 वर्ष पूर्व अधिकारी जी को इसी तीर्थ के सम्बन्ध में **"पिचुमन्दार्क तीर्थ"** के नाम से एक लेख वाराणसी से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र 'गीताधर्म' में प्रकाशित हुआ था। जब श्री निम्बार्काचार्य पीठ में अखिल भारतीय सनातन धर्म सम्मेलन हुआ, तब धार्मिक जनता की माँग पर सलेमाबाद के स्थान पर इसका नामकरण **'निम्बार्कतीर्थ'** किया गया। यह कोई नवीन नामकरण नहीं किया गया है। **"श्रीनिम्बार्कतीर्थ"** की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए पद्मपुराण में लिखा है—

"निर्म्बाकतः परं तीर्थं न भूतो न भविष्यति।
अत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुक्ति-भागी भवेद् ध्रुवम्॥"[3]

अर्थात्

"पद्मपुराण-उत्तराखण्ड के अध्याय 158 में श्री महादेव जी पार्वती जी को निम्बार्कतीर्थ माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—"हे पार्वती! निम्बार्कतीर्थ से बढ़कर और दूसरा कोई तीर्थ नहीं है और न ही भविष्य में ऐसा तीर्थ होगा, क्योंकि इस तीर्थ में केवल स्नान और आचमन करने मात्र से ही मनुष्य मुक्ति का पात्र बन जाता है।

सलेमाबाद नामकरण

सलेमाबाद नामकरण की मध्यकालिक ऐतिहासिक परम्परा इस प्रकार रही है। यह नाम 1515 वि. संवत् की अजमेर के सूबेदार सांवत सिंह भाटी व उनके वंशजों की तवारिखों में अंकित है। अकबर बादशाह का अजमेर आगमन 1597 वि.सं. के आसपास माना जाता है। अकबर बादशाही से पूर्व सलेमाबाद टकसाल का सलेमाबाद मुद्राङ्कृति ताम्बे के सिक्के भी प्रचलित हुए हैं। जनश्रुति है कि शेरशाहसूरी तथा बादशाह अकबर का इस पीठ पर आगमन हुआ है, यह बात माननीय सन्त ख्वाजा साहब मोईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की जियारत से जुड़ी हुई होने से सत्य हो सकती है। सलेमाबाद के नाम साम्य पर शेरशाह के पुत्र का नामकरण इस्लामशाह उर्फ सलीम होना और स्वामीजी के वरदान से उसका जन्म होना माना जाता रहा है, क्योंकि मन्दिर स्थापना के लिए अपनी ऐतिहासिक गढ़ी समर्पित करने वाले स्वामीजी के प्रमुख शिष्य खेजडला के श्रीगोपालदासजी भाटी के साथ दिल्लीपति शेरशाह सूरी का आगमन तथा राधामाधव के दर्शन की घटना समकालिक सन्त टीलाचार्यजी की वाणी से प्रमाणित है तथा स्वामी द्वारा धूणी से कई दुशाले प्रकट करने की जनश्रुति से भी पुष्ट है—

"सेरसाह दिल्लीपति प्रणम गोपालदास
सेवक सलेमाबाद माधव जस गायो है।"

जनश्रुति यह भी कि मस्तिङ्गशाह नामक तान्त्रिक एवं मायावी सन्त को आचार्य श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी ने परास्त कर विशिष्ट ख्याति प्राप्त की थी। इन सब घटनाओं का सलेमाबाद से सम्बन्ध रहा है, पर सलेमाबाद नामकरण का प्रमुख हेतु वि.सं. 1480 की

ऐतिहासिक घटना है, जब राव चूँडा को मुल्तान के बादशाह सलीमशाह ने भाटियों और मोहिलों के सहयोग से हराया था, इस योजना को सफल बनाने के लिए ससैन्य जियारत के लिए आने वाले सलीम बादशाह का यहाँ कई वर्षों तक छावनी सहित मुकाम किया जाना विश्वसनीय है। अतः मुल्तान के सलीम बादशाह के आबाद होने से इस स्थान का नाम सलीमाबाद प्रसिद्ध हुआ।

श्रीनिम्बार्कतीर्थ के दर्शनीय स्थल

श्रीसर्वेश्वर भगवान्

यहाँ के प्रमुख पूजा-अर्चावतार विग्रहों में श्रीसर्वेश्वर भगवान् (सर्वेश्वर प्रभु) के दर्शन मुख्य हैं। इस विश्व की एकमात्र प्रतिमा की सनकादिकों से लेकर सभी आद्याचार्यों द्वारा पूजा-अर्चना एवं आराधना की जाती रही है। आचार्यप्रवर जहाँ भी रहते हैं, श्रीसर्वेश्वर प्रभु साथ ही रहते हैं।

ठाकुर श्रीराधामाधव, गोपीजनवल्लभ जी

आचार्यपीठ में विराजमान श्री गोपीजनवल्लभ जी का नामोल्लेख अथर्ववेदीय श्रीगोपालतापिनी के अनुसार है। अतः अष्टादशाक्षर श्री गोपाल मन्त्र की उपासना का सार्थक करने वाली यह प्राचीन सेव्य प्रतिमा है। श्रीराधामाधव जी की छटा दर्शनीय है। एक बार श्रीराधामाधव जी की प्रतिमा के दर्शन हो जाने पर निम्न पदुक्तिचरितार्थ हो जाती है—

"जिन आखिन सों यह रूप लख्यो
उन आँखिन सों अब लखिये का॥"

यह प्रतिमा श्रीगीतगोविन्दकार रसिक-शिरोमणि श्री जयदेव कवि का सेव्य स्वरूप है। यह सं. 1829 वि. ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को यहाँ पधारकर विराजमान हुए। आपके यहाँ पधारने की अद्‌भुत कथा किशनगढ़ राज्य की तवारीख में विशद रूप से उल्लिखित है।

आचार्य मन्दिर

श्रीराधामाधव तथा सर्वेश्वर प्रभु के बायें उत्तर भाग वाले मन्दिर में श्रीगोपीजनवल्लभ जी एवं श्री बाँके जी के दर्शन किये जा सकते हैं व इसके दायें भाग में आचार्य मन्दिर है, जहाँ पर श्रीसनकादिक, श्रीहंस, श्रीनिम्बार्क, श्रीनारद तथा श्रीनिवासाचार्य (इस आचार्य पंचायतन) के सुन्दर दर्शन हैं। आचार्य मन्दिर से दक्षिण पूर्व में 'वेद मन्दिर' हैं जहाँ चारों वेद एक साथ प्रतिष्ठित हैं। दक्षिण में नीचे उतरने पर 'सिद्धपीठ' के दर्शन हैं, यहाँ आचार्य सिंहासन और श्रीपरशुराम देवाचार्यजी महाराज के चित्रमय इतिवृत्तों की झाँकी है।

श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सरोवर)

यह तीर्थ स्थान चारों ओर से ब्रज की प्राचीन लता-वल्लरियों के सदृश सुशोभित है। यह प्रदेश श्री निम्बार्काचार्य पीठ की स्थापना काल से ही प्रायः अज़ल और अरस था। प्रौढ़ लोगों का कहना है कि कुछ समय पूर्व इस तीर्थ के चारों ओर सुन्दर उद्यान

भी था। यहाँ दश-बारह हाथ गहरा गड्ढ़ा खोदने पर ही जल निकल आता था। समय की गतिविधि के कारण वि.सं. 1956 से लेकर सं. 2031 तक अच्छे प्रदेशों में जलाभाव पड़ गया, उत्पादन भी कम हो गया। परन्तु इसी पीठ में सं. 2031 में अखिल भारतीय विराट् सन्त धर्मसम्मेलन होने के पश्चात्वर्ती काल में इतनी वर्षा हुई है कि श्रीनिम्बार्कतीर्थ के चारों ओर जल ही जल हो गया और श्री राधामाधव जी की कृपा से फिर वही सरसता आ गई है। भगवान् की लीला बड़ी विचित्र है।

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) के अन्यान्य देव मन्दिर :

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) के अन्य मन्दिरों में मुख्यतः निम्नलिखित मन्दिर हैं—

(1) श्रीविजयगोपालजी का मन्दिर (यह श्रीआचार्यपीठ के संरक्षण में है)

(2) श्रीबिहारी जी का मन्दिर

(3) श्रीनृसिंह जी का मन्दिर

(4) श्रीआनन्ददानजी का मन्दिर। (यह भी श्री आचार्यपीठ के संरक्षण में है)

(5) श्रीगोपाल जी का मन्दिर

(6) श्री टीलास्वामी जी का मन्दिर

(7) बाल के हनुमान् जी का मन्दिर

(8) तीर्थ हनुमान् जी

(9) सिद्ध गणपति मन्दिर

(10) शीतला मन्दिर एवं प्राचीन शिवालय आदि।

समाधि स्थल

सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के अनन्तर जिन-जिन आचार्यों का यहाँ लीला-विस्तार हुआ, उनमें श्री वृन्दावन देवाचार्य जी महाराज की समाधि पुरानी है। इन समाधियों का आश्रय लेने वाले को तिजारा ज्वर आदि रोगों से भी मुक्ति मिलती है तथा श्रद्धालु भक्तजनों की कामनाएँ भी पूर्ण होती रही है और वर्तमान में हो भी रही हैं।

विशाल-वापिका

नगर में एक विशाल वापिका (बावड़ी) है, जिसका निर्माण सुन्दर पत्थरों के द्वारा किया गया है। यह बोहरे जी की बावड़ी है, किन्तु इसके सम्बन्ध में एक बात प्रचलित है कि इसमें चोर के घुस जाने पर छहमास तक उसके पता न लगने के कारण इसे चोर बावड़ी भी कहते हैं। इसका निर्माण वि.सं. 1715 में यहाँ के कुबेरवत् धनाढ्य नववाणा बोहरा हृदयराम ने कराया था, जिसके सम्बन्ध में शिलालेख पर दोहा आज भी विद्यमान है—

"अविचल काम अनूप जल जाति जुजैन जाय।
प्राज्ञीपति स्याही लगे ब्रह्म हरीची बाय॥"

(संवत् 1715 लिखित बौ. हरदौराम)

श्रीधर-वाटिका

सलेमाबाद निवासी पं. श्रीधर शिवलाल जी ज्ञान सागर छापा-खाना, बम्बई वालों द्वारा निर्मित इस वाटिका में श्री हनुमान जी महाराज के सुन्दर दर्शन हैं। अतः इसे श्री हनुमान जी की बगीची के नाम से भी जाना जाता है। श्री निम्बार्काचार्यपीठ में होने वाले जन्माष्टमी महोत्सव के तीसरे दिन इस बगीची में श्री हनुमान जी का बड़ा भारी मेला लगता है।

पुस्तकालय

आचार्यपीठ में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का भी बृहद सागर (बृहद् भण्डार) है। इस पुस्तकालय में श्री नारद पञ्चरात्र आदि दुलर्भग्रन्थ हैं। महाभारत, भागवत आदि विशाल ग्रन्थ तथा अन्य ग्रन्थ जो एक पत्र में उल्लिखित हैं, अनेक ग्रन्थ अस्त-व्यस्त भी हो गये हैं।

सागरमाला पर्वत

आचार्यपीठ की पश्चिम दिशा में लगभग 2 मील पर यह पर्वत है। इसकी उपत्यकाएँ छह हजार बीघा में विस्तृत थीं, जहाँ पर केवल गौचारण होता था। यहाँ पर प्राणियों का वध करना तो दूर, नरेश भी आखेट नहीं कर सकते थे। पशुपक्षियों पर गोली चलाने वाले की छह मास की सजा हो जाती थी। उस समय यह ऋषियों का तपोवन बना हुआ था। लेकिन विक्रम संवत् 1789 में एक भयंकर सिंह से आक्रान्त होकर महाराज श्री वृन्दावन देवाचार्य जी ने किशनगढ़ नरेश श्री साँवत सिंह को उसका वध करने की आज्ञा दे दी थी। इस पर्वत पर बहुत सी जड़ी-बूटी भी मिलती हैं।

तेजाजी का चबूतरा

तेजाजी का चबूतरा भी दर्शनीय स्थल है। तेजाजी बड़े गौ भक्त थे। इनका चबूतरा सलेमाबाद में बना हुआ है। साँप के डसे हुए व्यक्ति को यहाँ बाँधा जाता है, जिससे साँप का विष उतर जाता है। भाद्रपद शुक्ला दशमी (तेजा दशमी) को सर्वत्र श्री तेजाजी के स्थानों में मेला लगता है व सेवा अर्चना की जाती है।

प्रदक्षिणा (परिक्रमा)

यहाँ आचार्यपीठस्थ श्री राधामाधव सर्वेश्वर भगवान् की अन्दर मन्दिर में तो परिक्रमा होती ही है, उसके बाहर भी दो प्रदक्षिणा होती हैं। एक केवल मन्दिर मात्र की होती है और दूसरी समस्त नगर (पुरी) की प्रदक्षिणा होती है। गिरिराज की परिक्रमा की भाँति यहाँ की परिक्रमा वाले भक्तों की कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

शिला लेख

एक हजार वर्ष पूर्व इस निम्बार्कतीर्थ के सन्निकट एक बहुत विशाल नगर बसा हुआ था, जिसे बहवलपुर कहते थे। दैवयोग से इस नगर का ध्वंस हो गया। आचार्यपीठ

के चारों ओर 2-2, 1-1 मील की दूरी पर शिलालेख प्राप्त हुए हैं, जिनसे प्राचीन नगर का प्रमाण सिद्ध होता है। इसी प्रकार आचार्यपीठ एवं निम्बार्कतीर्थ ने भी अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। इसका यवन, हूण, चोल आदि आतंकवादियों के काल से ध्वंस एवं पुनरुद्धार होता रहा है। फिर भी यह प्राचीन पुनीत "हंसावतार स्थल' श्रीनिम्बार्कतीर्थ अखिल भारतीय जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठ जन कल्याण में अग्रसर है।

अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद की पारमार्थिक संस्थाएँ

अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ से सम्बन्धित पारमार्थिक संस्थाएँ निम्न हैं—

(i) 'श्रीसर्वेश्वर' मासिक पत्र

यह शोधपूर्ण धार्मिक, मासिक पत्र विगत तीस वर्षों से आपश्री (वर्तमान श्री श्रीजी महाराज) के संरक्षण में श्री 'श्रीजी' मन्दिर वृन्दावन से प्रकाशित हो रहा है। इसके अनेक विशेषांक प्रायः सभी के लिए संग्रहणीय हैं।

(ii) श्रीनिम्बार्क मुद्रणालय

इस प्रेस में पीठ का धार्मिक साहित्य प्रकाशित होता है। भक्त जनों ने अपना-अपना प्रकाशन सम्बन्धी कार्य भेजकर इसको प्रगतिशील बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

(iii) 'श्रीनिम्बार्क' पाक्षिक पत्र

यह पत्र पाक्षिक रूप से अंग्रेजी मास की 1 और 15 तारीख को प्रतिपक्ष प्रकाशित होता है। इसके मुख पृष्ठ पर सदुपदेश के अतिरिक्त धार्मिक लेख, कविता एवं जीवनोपयोगी सुन्दर सामग्री रहती है।

(iv) श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय

राजस्थान सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त इस विद्यालय में छात्रों को माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर द्वारा निर्धारित प्रवेशिका, उपाध्याय एवं संस्कृत विश्वविद्यालय की शास्त्री आदि की परीक्षाएँ दिलाई जाती हैं।

(v) श्रीनिम्बार्क दर्शन महाविद्यालय

इस विद्यालय में सभी राज्यों के छात्रों को (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) की प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री एवं आचार्य की परीक्षाएँ दिलाई जाती हैं। यह संस्था उक्त वाराणसी विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त है।

(vi) श्रीसर्वेश्वर वेद विद्यालय

इसमें वेद-शास्त्रों का अध्ययन गुरुकुल पद्धति से कराया जाता है। यह भारत सरकार से मान्यता प्राप्त रहा है।

(vii) श्रीराधासर्वेश्वर छात्रवास

इस छात्रावास में प्रायः दोनों महाविद्यालयों (संस्कृत महाविद्यालय एवं दर्शन महाविद्यालय) के कुल मिलाकर 50 छात्रों के रहने की व्यवस्था है। भोजन, वस्त्र, पुस्तक, प्रकाश, परीक्षा शुल्क एवं परीक्षा देने हेतु आने-जाने का मार्गव्यय भी आचार्यपीठ की ओर से देय होता है।

(viii) श्रीनिम्बार्क पुस्तकालय

यह एक बहुत प्राचीन पुस्तकालय है, इसमें लगभग 2000 प्रकाशित एवं अप्रकाशित (हस्तलिखित) ग्रन्थ हैं। इसमें संस्कृत एवं दर्शन के अप्राप्य एवं दुर्लभ ग्रन्थों की सुलभता है।

(ix) श्रीहंस वाचनालय

इस वाचनालय में श्री आचार्यपीठ द्वारा संचालित सर्वेश्वर मासिक तथा निम्बार्क पाक्षिक के अतिरिक्त मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक एवं दैनिक समाचारादि पत्र-पत्रिकाएँ आती है। यहाँ पर बैठकर पढ़ने की सार्वजनिक उत्तम व्यवस्था है।

(x) श्रीहरिव्यास औषधालय

इस औषधालय द्वारा अनाथ, असहाय एवं दरिद्र रोगियों की निःशुल्क सेवा-शुश्रूषा की जाती है और प्रतिदिन साधारण रोगियों के लिए भी निःशुल्क औषधि वितरित की जाती है।

(xi) श्रीराधामाधव गौशाला

श्रीराधामाधव गऊशाला में गायों के आवास की समुचित व्यवस्था है। यहाँ का गोदुग्ध एवं गोघृत प्रतिदिन भगवत् सेवा-पूजा के कार्य में लाया जाता है। गोबर खाद के रूप में कृषि की उपयोगिता में लाया ज.ाता है।

संलग्न संस्थाएं

आचार्यपीठ की उक्त संस्थाओं के अतिरिक्त कुछ संलग्न संस्थाएँ भी हैं, जिनका विवरण निम्न प्रकारेण है—

(1) श्रीसर्वेश्वर प्रेस, मुद्रणालय, श्री वृन्दावनधाम
(2) श्रीसर्वेश्वर संस्कृत शोध विद्यालय, श्रीधाम, वृन्दावन
(3) श्रीसर्वेश्वर छात्रावास, श्रीधाम, वृन्दावन
(4) श्रीसर्वेश्वर पुस्तकालय, मदनगंज (किशनगढ़)
(5) श्रीराधामाधव पुस्तकालय, निम्बार्क कोट, अजमेर
(6) श्री निकुंज पुस्तकालय, वृन्दावन
(7) श्रीसर्वेश्वर शोध प्रकाशन, वृन्दावन

(8) श्रीनिम्बार्क ग्रन्थमाला निम्बार्ककोट, अजमेर

(9) श्रीसर्वेश्वर मासिक, वृन्दावन

(10) श्रीसर्वेश्वर सत्संग प्रचार केन्द्र मदनगंज (किशनगढ़)

(11) श्रीनिम्बार्क सत्संग मण्डल, अजमेर

(12) श्रीनिम्बार्क भजनाश्रम, परशुरामद्वारा पुष्कर

(13) श्री निकुंज सत्संग मण्डल, वृन्दावन

इन संस्थाओं के अतिरिक्त मधुकरी द्वारा सन्तों की सेवा की जाती है। सन्त सेवा स्थलों में श्री निम्बग्राम, वृन्दावन, श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद), पुष्कर एवं श्रीनिम्बार्कनगर (कुम्भ के पर्वपर) विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के दर्शनीय उत्सव-महोत्सव

1. **अक्षय तृतीया**—इस दिन भगवान् श्रीराधामाधव की चन्दन-शृङ्गार युक्त मनोहर झाँकी के दर्शन होते हैं।

2. **श्रीराधामाधवजी का पाटोत्सव**—भगवान् का मनोहर फूल-बंगला में दर्शन।

3. **रथ-यात्रा महोत्सव**—निज मन्दिर के बाहर जगमोहन में पुजारीगण एवं आचार्यश्री के करकमलों द्वारा रथों की अनुपम दौड़।

4. **श्रीगुरु-पूर्णिमा**—आज के दिन बृहद् रूप में भक्त समुदाय एकत्रित होकर श्रीआचार्य का चरण पूजन करते हैं।

5. **झूलनोत्सव**—यह उत्सव भी दर्शनीय है, पर आचार्यश्री इस समय श्रीवृन्दावन में विराजते हैं।

6. **श्रीकृष्ण जयन्ती महोत्सव**—यह तो यहाँ का ऐतिहासिक दर्शनीय मुख्य महोत्सव (बृहद्मेला) है। पीठ के संस्थापक श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी का पाटोत्सव भी इसी के अन्तर्गत है।

7. **शरत्पूर्णिमा**—नख शिख-पर्यन्त सुन्दर शृङ्गार युक्त श्रीराधामाधव की मनोहर दिव्य झाँकी के दर्शन।

8. **विजयादशमी**—सुदर्शनादि समस्त आयुधों की पूजा के साथ-साथ शमी पूजन एवं श्रीरामलीलानुकरण होता है।

9. **दीपोत्सव**—दीप-माला की परम मनोहर सुन्दर सजावट की जाती है।

10. **अन्नकूट**—श्रीगोवर्धन पूजा एवं छप्पन-भोग के दर्शन होते हैं।

11. **फूल-डोल**—फूलों के हिंडोले में श्रीप्रिया-प्रियतम के दर्शन एवं रंग भरी पिचकारियों की बहार आयोजित की जाती है।

इन स्थानीय उत्सवों के अतिरिक्त आचार्यश्री के तत्त्वावधान में ही श्रीराधाजयन्ती, श्रीराधासर्वेश्वर मन्दिर मदनगंज, श्रीमद्भागवत जयन्ती, निम्बार्ककोट, अजमेर तथा श्रीहंस-सनकादि जयन्ती और श्रीनिम्बार्क जयन्ती परशुरामद्वारा श्रीपुष्करराज में बड़े समारोह पूर्वक मनाए जाते हैं।

(2) निम्बार्क-सम्प्रदाय : पीठाचार्य-परम्परा

वैष्णव चतुःसम्प्रदायों में श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय अति प्राचीन सम्प्रदाय है। इसका प्रादुर्भाव श्रीब्रह्माजी के मानस पुत्र श्रीसनकादि-महर्षियों से होता है। जैसाकि द्रष्टव्य है —

"सनकः श्रीब्रह्म रुद्र सम्प्रदायचतुष्टयम्"

सनकादि मुनिजन, श्री (लक्ष्मी), ब्रह्माजी और भगवान् शंकर ये ही चारों वैष्णव चतुःसम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। इस सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा श्रीहंस भगवान् से प्रारंभ होती है। श्रीहंस भगवान् ने सनकादिकों के प्रश्न का समाधान कर उन्हें वैष्णवी दीक्षा प्रदान की थी। उपासना में श्रीसर्वेश्वर शालग्राम भगवान् की सेवा-पूजा करने की आज्ञा प्रदान की थी। वह शुभ दिन था युगादि तिथि कार्तिक शुक्ला नवमी (अक्षय नवमी)। हंस भगवान् के अवतार का मुख्य उद्देश्य था, श्रीसनकादिकों के प्रश्न का समाधान कर उन्हें वैष्णवी दीक्षा प्रदान करना। अतः कार्तिक शुक्ला नवमी (अक्षय नवमी) श्रीहंस-सनकादि जयन्ती तथा श्रीसर्वेश्वर भगवान् का प्राकट्य दिवस भी उसी दिन मनाया जाता है।

श्रीहंस-सनकादिकों का यह प्रसङ्ग श्रीमद्भागवत (एकादश स्कन्ध अध्याय 13 श्लोक संख्या 16 से श्लोक सं. 42 तक) में वर्णित है।

श्रीहंस भगवान् के शिष्य सनकादि मुनिजन हैं और श्रीसनकादिकों के शिष्य देवर्षि नारद तथा श्रीनारद मुनि के शिष्य हैं श्रीचक्रसुदर्शनावतार आद्याचार्य जगद्गुरु भगवान् श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्र।

श्रीहंस भगवान्, श्रीसनकादि मुनिजन तथा देवर्षि श्रीनारद ये तीनों तो देवस्वरूप में हैं। अतः प्रायः करके कई सम्प्रदायों की परम्परा में इनका नाम आ जाता है, किन्तु इनके पश्चात् श्रीनिम्बार्क भगवान् आचार्य रूप में इस भूतल पर प्रकट हुए थे, अतः यह सम्प्रदाय '**श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय**' के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ।

भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र प्राकट्य युधिष्ठिर शके 3 में दक्षिण भारत तैलङ्ग (आन्ध्र प्रदेश) वैदूर्यपत्तन मुँगी पट्टन (वर्तमान पैठण) गोदावरी तटवर्ती अरुणाश्रम में हुआ था। आपके पिता का नाम श्रीअरुण मुनि और माताश्री का नाम श्रीजयन्ती देवी था। जन्मकालीन नाम 'श्रीनियमानन्द' था। "**नहि वैष्णवता कुत्र संप्रदाय-पुरस्सराः**" श्रीमद्भागवत माहात्म्य में इस श्रीनारदोक्त वचनानुसार द्वापर के अंत में जब वैष्णव धर्म का ह्रास होने लगा, तब भक्तजनों की करुणा भरी पुकार पर भगवदादेश पाकर श्रीचक्रराज सुदर्शनजी ने ही नियमानन्द के रूप में अवतार लिया। इनकी समय समीक्षा तथा श्रीनियमानन्द से 'श्रीनिम्बार्क' नाम से व्यवहृत करने का इतिहास उनके चरित्र में यथास्थान परिवर्णित है।

श्रीहंस भगवान् के बाद आचार्य परम्परा में रसिकराजराजेश्वर महावाणीकार जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज 34 पीठिका में श्रीनिम्बार्काचार्य-पीठासीन हुए। आचार्यवर्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के द्वादश शिष्य थे। सभी की भावनानुसार आचार्यश्री ने अपने द्वादश शिष्यों में श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी को सम्प्रदाय परम्परानुसार श्रीसनकादि संसेवित श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा प्रदान कर उन्हें अपने आचार्यपीठ के उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित किया।

श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के उन द्वादश शिष्यों के नाम तथा देवी की दीक्षा प्रदान करना आदि वर्णन आगे श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के प्रसंग में यथास्थान वर्णित है। अब यहाँ श्रीहंस भगवान् से लेकर अद्यावधि वर्तमान आचार्यचरण तक आचार्यपीठ परम्परा का संक्षिप्त इतिवृत्त प्रस्तुत है—

श्रीहंस भगवान्

"हंसस्वरूपं रुचिरं विधाय, यः सम्प्रदायस्य प्रवर्तनार्थम्।
स्वतत्त्वमाख्यत्सनकादिकेभ्यो, नारायणं तं शरणं प्रपद्ये ॥"

परिचय

अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक, करुणा-वरुणालय, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार श्रीहरि के मुख्य 24 अवतारों में श्रीहंस भगवान् भी एक अवतार हैं। आपका प्राकट्य सत्ययुग के प्रारम्भ काल में युगादि तिथि कार्तिक शुक्ला नवमी (अक्षय नवमी) को माना जाता है। आपके अवतार का मुख्य प्रयोजन यही मान्य है कि एक बार श्रीसनकादि महर्षियों ने पितामह श्रीब्रह्माजी महाराज से प्रश्न किया कि—

गुणेष्वाविशते चेतो गुणांश्चेतसि च प्रभो।
कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ॥

पितामह! जबकि चित्त विषयों की ओर स्वभावतः जाता है और चित्त के भीतर ही वासना रूप से विषय उत्पन्न होते हैं, तब मुमुक्षुजन उस चित्त और विषयों का परित्याग कैसे करें?

यह चित्तवृत्ति-निरोधात्मक गम्भीर प्रश्न जब ब्रह्माजी के समझ में नहीं आया तब महादेव ब्रह्मा ने भगवान् श्रीहरि का ध्यान किया। इस प्रकार ब्रह्माजी की विनीत प्रार्थना पर "**ऊर्जे सिते नवम्यां वै हंसो जातः स्वयं हरिः**" कार्तिक शुक्ला नवमी को स्वयं भगवान् श्रीहरि ने हंसरूप में अवतार लिया। भगवान् ने हंसरूप इसलिए धारण किया कि जिस प्रकार हंस नीर-क्षीर (जल और दूध) को पृथक् करने में समर्थ है, उसी प्रकार आपने भी नीर-क्षीर विभागवत् चित्त और गुणत्रय का पूर्ण विवेचन कर परमोत्कृष्ट दिव्य तत्त्व के साथ-साथ पंचपदी ब्रह्मविद्या श्रीमन्त्रराज का सनकादि महर्षियों को सदुपदेश कर उनके संदेह की निवृत्ति की। यह प्रसङ्ग श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध अध्याय 13 में श्रीकृष्णोद्धव संवादरूप से विस्तारपूर्वक वर्णित है।

श्रीसर्वेश्वर और लोकाचार्य

श्रीसनकादि महर्षि

यदीयपादाब्जयुगाश्रयेण, भक्तिर्वरिष्ठात्ववती विशुद्धा।
उदञ्चती श्रीभगवत्यजस्रं, नमाम्यहं श्रीसनकादिकं तम्॥
जय जय सनक-सनन्दन, सनातन-सनत-कुमार।
रूप चतुष्टय पद-कमल, वन्दौं बारम्बार॥

भगवत्परायण, बाल-ब्रह्मचारी, सिद्धजन, तपोमूर्ति ये चारों भ्राता सृष्टिकर्ता श्रीब्रह्मदेव के मानस पुत्र हैं। इन चारों के नाम हैं—सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार। इनके उत्पन्न होते ही श्रीब्रह्माजी ने इनको सृष्टि विस्तार की आज्ञा दी, पर इन्होंने प्रवृत्ति मार्ग को बंधन जानकर परम श्रेष्ठ निवृत्ति मार्ग को ही ग्रहण किया।

इन महर्षियों ने श्रीहंस भगवान् द्वारा कार्तिक शुक्ला नवमी को वैष्णव पंचपदी ब्रह्मविद्या श्रीगोपाल मन्त्रराज की दीक्षा संप्राप्त कर लोक में निवृत्ति धर्म का प्रचार-प्रसार किया। अतः ये **लोकाचार्य** के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्रीसनकादि मुनिजन ही निवृत्ति धर्म एवं मोक्ष मार्ग के प्रधान आचार्य हैं। पूर्वजों के पूर्वज होते हुये भी ये सदा ही पाँच वर्ष की अवस्था में रहकर भगवद्‌भजन में ही संलग्न रहते हैं। श्रीसर्वेश्वर प्रभु इन्हीं के संसेव्य ठाकुर हैं, भगवान् द्वारा सम्प्राप्त श्रीगोपाल मन्त्रराज का सतत अनुष्ठान करना इनका परम लक्ष्य है। जैसे—

नारायणमुखाम्भोजान्मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः।
आविर्भूतः कुमारैस्तु गृहीत्वा नारदाय च॥
उपदिष्टः स्वशिष्याय निम्बार्काय च तेन तु।
एवं परम्पराप्राप्तः मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षरः॥

यह अष्टादशाक्षर श्रीश्रीगोपाल मन्त्रराज श्रीहंसरूप नारायण द्वारा श्रीसनकादिकों को प्राप्त हुआ। श्रीसनकादिकों से देवर्षि श्रीनारद को मिला और श्रीनारद द्वारा सुदर्शनचक्रावतार भगवान् श्रीनिम्बार्क को संप्राप्त हुआ। इस प्रकार संप्रदाय में यह परम्परागत मंत्र है। जो 'गोपालतापिन्युपनिषद्' का वैदिक मन्त्र है। इसका वर्णन विभिन्न पुराणों एवं तन्त्रों में भी भली प्रकार उपलब्ध है। श्रीसनकादिकों द्वारा लिखी हुई 'श्रीसनत्कुमार संहिता' प्रसिद्ध है। इनका पाटोत्सव (आविर्भाव-दिवस) कार्तिक शुक्ला नवमी को मनाया जाता है।

सनकादि-संसेव्य-भगवान् - श्रीसर्वेश्वर प्रभु

कारुण्यसिंधुं स्वजनैकबन्धुं, कैशोरवेषं कमनीयकेशम्।
कालिन्दिकूले कृतरासगोष्ठीं, सर्वेश्वरं तं शरणं प्रपद्ये॥

परिचय

श्रीसनकादिक संसेव्य (परमाराध्य) श्रीसर्वेश्वर भगवान् गुञ्जाफल सदृश अति सूक्ष्म श्रीशालिग्राम स्वरूप श्री विग्रह हैं। इसके चारों ओर गोलाकार दक्षिणावर्तचक्र और किरणें

बड़ी ही तेज पूर्ण एवं मनोहर प्रतीत होती हैं। मध्य भाग में एक बिन्दु है और उस बिन्दु के मध्य भाग में युगल सरकार श्रीराधाकृष्ण के सूक्ष्म दर्शन स्वरूप दो बड़ी रेखायें हैं। जो सूर्य के प्रकाश में भी कभी किसी भाग्यशाली सज्जन को ही दिखाई पड़ती हैं।

यह श्रीसर्वेश्वर भगवान् की प्रतिमा श्रीसनकादिकों ने देवर्षि श्रीनारदजी को प्रदान की थी और श्रीनारदजी ने भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र को। इस तरह यह श्रीसर्वेश्वर भगवान् की शालिग्राम प्रतिमा क्रमशः परम्परागत अद्यावधि अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) में विराजमान है। विश्व में इतनी प्राचीन एवं सूक्ष्म चमत्कारपूर्ण श्रीशालिग्राम मूर्ति और कहीं पर भी नहीं है। जब श्रीआचार्यचरण धर्म-प्रचारार्थ अथवा किन्हीं भक्तजनों के परमाग्रह पर यत्र-तत्र पधारते हैं, तब, यही श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा साथ रहती है। श्रीसर्वेश्वर भगवान् श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के परमोपास्य इष्टदेव हैं। श्रीनिम्बार्काचार्यों की परम्परागत परमनिधि श्रीसर्वेश्वर प्रभु के दर्शन मात्र से समस्त पातक दूर होते हैं। इसी कारण श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के भक्तजनों में परस्पर मिलने-जुलने पर 'जय श्रीसर्वेश्वर' करने की प्रणाली सदा से चली आ रही है।

भगवान् श्रीराधामाधव

सर्वेष्टं जयदेव-भक्तकविना नित्यं समाराधितं,
श्रीवृन्दावन-कुञ्ज-केलिरमणं श्रीरंगदेव्यर्चितम्।
श्रीनिम्बार्कमुनीन्द्रपीठविलसत्कारुण्यपूरं परं,
राधामाधवपादपद्मयुगलं वन्दे गिरा कर्मणा॥

परिचय

श्रीराधामाधव प्रभु श्रीनिम्बार्क-वीथि-पथिक रसिक-शिरोमणि श्री जयदेव कवि संसेव्य ठाकुर हैं। वर्तमान श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ में विराजने से पहले बंगाल से आकर ब्रजमण्डल में श्रीराधाकुण्ड (श्रीनिवासाचार्यजी की बैठक) पर विराजते थे। इन्होंने वि.सं. 1823 में जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी महाराज को स्वप्न में आदेश दिया था कि हमें पुष्कर क्षेत्रस्थ श्रीआचार्यपीठ, सलेमाबाद ले चलो। आचार्यश्री ने पूछा—"कैसे किस प्रकार से ले चलें?" तब श्रीमाधवजी ने कहा कि—"अपने रथ में बिठा ले चलो।" प्रभु की आज्ञा के अनुसार रथ में विराजमान करके प्रस्थान किया। पीछे से श्रीराधा कुण्ड के ब्रजवासी और बंगाली भक्तों ने विचार किया कि भगवान् को ब्रज से बाहर नहीं ले जाने देना चाहिये। वे सबके सब संगठित होकर चलें। रथ भरतपुर पहुँचा, वहाँ सेवा हो रही थी, पीछे से आये हुए नर-नारियों ने आचार्यश्री से प्रार्थना की—"श्रीमाधव भगवान् ब्रज में ही विराजें, बाहर न पधारें।" भरतपुर नरेश से भी अनुरोध किया गया। नरेश को विश्वास था कि—आचार्यश्री को प्रभु का आदेश हुआ है स्वयं वे अपनी इच्छा से पधार रहे हैं। उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं हो सकता। यह चित्त में निश्चित करके भरतपुर नरेश ने निर्णय दिया कि आप सब रथ को खींचकर ले जाइये, यदि माधवजी की

इच्छा होगी तो वे पुनः वृन्दावन पधार जायेंगे। अगर आप से रथ न चले और आचार्यश्री के घोड़े भी रथ न खींच सकें तो श्रीमाधवजी यहाँ भरतपुर में विराजेंगे। सैंकड़ों ब्रजवासियों ने रथ को खींचा, खूब जोर लगाया, परन्तु वह रथ अत्यन्त बल लगाये जाने पर तनिक भी न हिल सका। फिर जब आचार्यश्री के घोड़े जुतवाये और आचार्यश्री ने प्रार्थना की तो वह रथ चल पड़ा। सभी दर्शक चकित हो गये, जय-जयकार की ध्वनि से गगन गूँज उठा। वि.सं. 1823 ज्येष्ठ शुक्ला 4 का वह दिन भरतपुर और ब्रजमण्डल के उपस्थित सभी नर-नारियों के हृदय-पटलों पर बहुत दिनों तक अङ्कित रहा। इस घटना का उल्लेख कृष्णगढ़ राज्य के इतिहास रजिस्टरों में जयलाल कवि ने भी किया है। आचार्यपीठ (सलेमाबाद) के मार्ग में जितने नगर आये, उनके नागरिकों ने श्रीमाधव प्रभु और आचार्य चरणों का हार्दिक स्वागत किया। कृष्णगढ़ के नरेन्द्र और प्रजावर्ग को महान् हर्ष हुआ। आचार्यपीठ (सलेमाबाद) और यहाँ के निकटवर्ती ग्रामों की जनता के हर्ष का तो पारावार ही नहीं रहा। पुनीत दिवस ज्येष्ठ शु. 10 (गङ्गादशहरा) को बड़े समारोहपूर्वक श्रीसर्वेश्वर प्रभु के सन्निकट श्रीमाधवजी विराजमान हुये।

वि.सं. 1860 के लगभग देश में अराजकता छाई हुई थी। मुस्लिम शासन कमजोर हो चुका था। अंग्रेज शनैःशनैः देश को हथिया रहे थे। कई शक्तिशाली फौजी लूट-मार कर रहे थे। ऐसी स्थिति में वि.सं. 1868 में श्रीमाधवजी रूपनगर के किले में पधराये गये। आचार्यपीठ के विशाल मन्दिर को यवन लुटेरों ने ध्वंस कर डाला, तब कुछ दिनों बाद संगमरमर का नया मन्दिर बना। जोधपुर नरेश की ओर से मकराना से संगमरमर पत्थर भेंट रूप में अर्पित हुआ। वि.सं. 1872 में श्रीमाधवजी रूपनगर से आचार्यपीठ (सलेमाबाद) पधारे, उसी समय श्रीकिशोरीजी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराई गई। तब से श्रीराधामाधवजी अचल रूप से आचार्यपीठ (सलेमाबाद) में विराजमान हैं। ऐसी अद्‌भुत छवि के शायद ही कहीं अन्यत्र दर्शन मिल सके। प्रेमीजन श्रीराधामाधवजी के दर्शन कर तृप्त हो जाते हैं। गद-गद् हृदय से वे कह उठते हैं कि—

"सुन्दरता निरखत फिर्‌यो, दैव योग ते आय।
राधामाधव देखि छवि, अब न अनत चित जाय॥"

श्रीसूरदासजी के शब्दों में—

"जिन आँखिन सों यह रूप लख्यो उन आँखिन सो अब देखिये का।"

देवर्षिवर्य श्रीनारदजी

सुधाकरे स्वेच्छतनुत्वभाजं, स्वर्णापिवीतित्वमुपैति वासम्।
प्रवर्तयन्तं हरिभक्ति-योगं, श्रीनारदं तं शरणं व्रजामि॥

परिचय

भक्ति-ज्ञान-वैराग्य प्रभृति समस्त साधनों का समस्त लोक-लोकान्तरों में सर्वत्र विचरण कर प्रचुर प्रचार-प्रसार करने वाले, कीर्तन कला-विशेषज्ञ, वीणाधर देवर्षिवर्य श्रीनारदजी

महाराज के नाम को कौन नहीं जानता। आपका परदुःख-दुखित्व भाव बहुत प्रसिद्ध है। भगवत्कृपा से आपकी सर्वत्र अबाध गति थी। आप सभी जीवों पर समान भाव रखते हुए सबका हितचिन्तन किया करते थे। आपने श्रीहंस वंशावतंस ब्रह्मपुत्र श्रीसनत्कुमारजी से पञ्चपदी ब्रह्मविद्या अष्टादशाक्षरी श्रीगोपाल मन्त्रराज की दीक्षा ग्रहण कर लोक में सर्वत्र वैष्णव धर्म की विजय-पताका फहराई। ध्रुव-प्रह्लाद आप ही के कृपापात्र थे। दक्ष प्रजापति के हर्यश्व एवं सबलाश्व नामक सहस्राधिक पुत्रों को आपने दिव्योपदेश प्रदान कर सृष्टि-रचना विषयक कर्म-बन्धन से छुड़ाकर निवृत्ति-पथ-परायण बनाया। इसी प्रकार प्राचीन राजा बर्हि को भी हिंसात्मक कर्मों की ओर से हटाकर भगवद्‌भक्ति की ओर प्रवृत्त किया। तात्पर्य यह है कि अहर्निश आपका भगवद्‌गुणगान तथा परोपकार में ही समय व्यतीत होता था। महर्षि वाल्मीकि तथा श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास को संक्षिप्त रामचरित एवं चतुःश्लोकी भागवत का ज्ञान कराकर वाल्मीकि रामायण और श्रीमद्‌भागवत जैसे अनुपम ग्रन्थों का निर्माण करवाना आप ही का आयोजन था। ब्रजमण्डल में आकर श्रीगोवर्धन के समीप श्रीअरुणाश्रम में श्रीचक्र सुदर्शनावतार श्रीनियमानन्द (श्रीनिम्बार्क) को आपने ही श्रीसनकादि मुनिजनों द्वारा संप्राप्त पंचपदी ब्रह्मविद्या श्रीगोपाल मन्त्रराज की दीक्षा प्रदान कर सनकादि संसेव्य भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा समर्पण की थी। आप सभी शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता थे। श्रीसनकादिकों के पूछने पर आपने बताया था कि—मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, वेदविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, सर्पविद्या और देवयजन विद्या आदि सभी विद्यायें पढ़ी हैं, फिर भी हे महर्षे! न जाने क्यों चिन्ताग्रस्त हूँ। अतः आत्मशान्त्यर्थ आपकी शरण में आया हूँ।

देवर्षि श्रीनारदजी के इस कथन से हमको यह भी शिक्षा मिलती है कि—श्रीहरिगुरु परायण (शरणागत) हुये बिना अर्थात् भगवद्‌भक्ति बिना चाहे जितनी विद्यायें पढ़कर ज्ञानी बन जांय, पर वास्तविक शांति प्राप्त नहीं होती।

आपके द्वारा निर्मित अनेक शास्त्रों में 'श्रीनारद पञ्चरात्र' व 'श्रीनारद-भक्ति-सूत्र' प्रधान हैं। आपका जयन्ती दिवस (पाटोत्सव) मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशी तिथि माना जाता है।

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य

यत्सम्प्रदायाश्रयणान्नराणां श्रीराधिकाकृष्णपदारविन्दे।
प्रेमागरीयान्सहसाभ्युदैति निम्बार्कमेतं शरणं प्रपद्ये॥

सामान्य परिचय

आपका आविर्भाव युधिष्ठिर शके 6 में कार्तिक शुक्ला 15 को सायंकाल मेष लग्न में हुआ था। जन्म समय चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु और शनि ये पाँच ग्रह उच्च स्थान में थे। माता का नाम श्रीजयन्ती देवी तथा पिता का नाम श्रीअरुण मुनि था। जन्म-स्थान दक्षिण प्रान्त गोदावरी तटवर्ती श्रीअरुणाश्रम माना जाता है। यह स्थान वैदूर्यपत्तन (मूँगी पट्टन) जो कि आन्ध्रप्रदेश दक्षिण हैदराबाद राज्य में आजकल 'पैठण' के नाम से प्रसिद्ध

है। आपका जन्मकालीन नाम '**श्रीनियमानन्द**' था। भक्तजनों की करुणा भरी पुकार पर गोलोकबिहारी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने परम प्रिय आयुध श्रीचक्रसुदर्शनजी को आदेश देते हुए कहा था कि—

"सुदर्शन-महाबाहो! कोटिसूर्यसमप्रभ!
अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय॥"

हे कोटि सूर्य सदृश दिव्य तेजधारी महाबाहो चक्रराज! आप शीघ्र ही भूतल पर अवतरित होकर अज्ञान रूप घोर अंधकार में डूबे हुए जीवों को वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार द्वारा भक्ति का पथ-प्रदर्शन कीजिये।

इस भगवदादेशानुसार श्रीचक्रराज सुदर्शन ने उपर्युक्त द्रविड़ देश में बालक नियमानन्द के रूप में अवतार लिया था।

यह निम्बार्क सम्प्रदाय अति प्राचीन है। युधिष्ठिर शके 6 को आज पाँच हजार वर्षों से अधिक चल रहा है। जैसे—धर्मराज युधिष्ठिर शके प्रमाण 3044 वर्ष तत्पश्चात् विक्रम सम्वत् के इस समय 2060 वर्ष इन दोनों का योग मिलाकर 5104 वर्ष हुए, जिसमें युधिष्ठिर शके 6 में आपका जन्म होने के कारण 6 वर्ष कम करने से 5098 वर्ष होते हैं। अर्थात् विक्रम सं. 2060 में आपके प्राकट्य समय को 5098 वर्ष हुए थे जो कि कई स्थानों (ग्रन्थ या व्रतोत्सव पत्रों) पर श्रीनिम्बार्काब्द के आगे अंकित रहता है।

एक बार आपने अपने आश्रम में दिवाभोजी दण्डी महात्मा के रूप में आये हुये श्रीब्रह्माजी को रात्रि हो जाने पर भोजन करने से निषेध करते देखकर नीम वृक्ष पर अपने तेज-तत्त्व श्रीसुदर्शनचक्र को आवाहन कर सूर्य रूप में दर्शन कराकर उन्हें भोजन कराया। निम्ब (नीम) के वृक्ष पर अर्क (सूर्य) के दर्शन कराने पर ब्रह्माजी द्वारा आपका श्रीनियमानन्द से '**निम्बार्क**' रखा गया और आपके द्वारा प्रसारित सम्प्रदाय को **श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय** के नाम से प्रसिद्ध किया। आपने देवर्षि श्रीनारदजी द्वारा इसी स्थान (श्रीगोवर्धन) की उपत्यका अरुणाश्रम-वर्तमान श्रीनिम्बग्राम (नीमगाँव) में पञ्चपदी ब्रह्मविद्या गोपाल मन्त्रराज की दीक्षा ग्रहण कर श्रीहंस-सनकादि द्वारा परम्परागत स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त और युगलकिशोर श्रीराधाकृष्ण की युगल उपासना का लोक में प्रचार-प्रसार किया। आपका सिद्धान्त और उपासना संक्षिप्त में इस प्रकार है—

श्रीनिम्बार्क सिद्धान्त में तत्त्वत्रय (ब्रह्म, जीव और प्रकृति) अनन्त और अनादि हैं। ब्रह्म स्वतंत्र है। जीव और प्रकृति परतंत्र (ब्रह्म के अधीन) हैं। बद्ध, बद्धमुक्त और मुक्त सामान्यतः जीवों के ये तीन प्रभेद हैं, जो प्रकारान्तर से अनेक हो जाते हैं, जो सिद्धान्त-शास्त्रों द्वारा जाने जा सकते हैं। समस्त चराचर जगत् ब्रह्म का अंश एवं परा-परात्मिका प्रकृति शक्ति होने के कारण सत्य है। जीव और प्रकृति रूप से चराचरात्मक सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्म से भिन्न है, किन्तु उसका अंश एवं शक्ति होने के कारण स्वभावतः अपृथक्

सिद्ध अभिन्न भी है। यही **स्वाभाविक द्वैताद्वैत** (भेदाभेद तथा भिन्नाभिन्न नामक) सिद्धान्त है। इस सम्प्रदाय में जीव को सखी भाव द्वारा नित्य किशोर निकुञ्जबिहारी प्रिया-प्रियतम लाल श्रीराधाकृष्ण की पंचकालानुष्ठान विधि से उपासना करने का विधान है। श्रीनित्यनिकुञ्ज में आप रङ्गदेवी जू के नाम से सेवा में रहते हैं।

आपके द्वारा रचित अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध ग्रन्थ इस प्रकार हैं—बादरायण कृत ब्रह्मसूत्रों पर **'वेदान्त पारिजात सौरभ'** नामक भाष्य, **वेदान्त दशश्लोकी, मन्त्र रहस्य षोडशी, प्रपन्नकल्पवल्ली, राधाष्टक** और **प्रातः स्मरणादि स्तोत्र**।

आचार्यवर्य श्रीनिवासाचार्य

शंखावतारः पुरुषोत्तमस्य, यस्य ध्वनिः शास्त्रमचिन्त्यशक्तिः।
यत्स्पर्शमात्राद् ध्रुवमाप्तकामस्तं श्रीनिवासं शरणं प्रपद्ये॥

परिचय

ये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कर-कमलांकित श्रीपाञ्चजन्य शंख के अवतार हैं तथा श्रीनिम्बार्क भगवान् के प्रमुख शिष्य हैं। इनका निवास-स्थान ब्रजमण्डल में श्रीगोवर्द्धन के समीप श्रीराधाकुण्ड ललिता संगम पर है। यह स्थान श्रीनिवासाचार्यजी की बैठक के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान पर आपके चरण-चिह्न हैं, जिनकी नियमित रूप से सेवा-पूजा होती है। आपके शंखावतार होने का प्रमाण आप ही के पट्टशिष्य श्रीविश्वाचार्यजी महाराज द्वारा निर्मित उपर्युक्त श्लोक में निर्दिष्ट है। आपके द्वारा निर्मित ब्रह्मसूत्रों पर बृहद्भाष्य **'वेदान्त कौस्तुभ'** के नाम से सुप्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें केवल **'लघुस्तवराज'** मिलता है, **अन्य-ख्याति निर्णय, पारिजात सौरभ भाष्य, रहस्य प्रबन्ध, कठोपनिषद् भाष्य** आदि अनुपलब्ध हैं।

आचार्यरूप में आप श्रीपाञ्चजन्य शंखावतार हैं और निकुञ्ज उपासना में श्रीनव्यवासा (प्रियाप्रियतम श्रीयुगलकिशोर की नित्य सहचरी) के अवतार माने जाते हैं। आपका पाटोत्सव दिवस माघ शुक्ला पंचमी (बसन्त पंचमी) को मनाया जाता है।

श्रीआचार्य—पञ्चायतन

श्रीमद्धंसं कुमारांश्च नारदं मुनिपुङ्गवम्।
निम्बार्कं श्रीनिवासञ्च वन्दे आचार्य-पंचकम्॥

श्रीहंस भगवान् से लेकर श्रीनिवासाचार्य पर्यन्त इन पाँचों आचार्यों को **आचार्य-पञ्चायतन** के नाम से कहा गया है। श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ सलेमाबाद एवं श्रीवृन्दावन धाम आदि कई एक संस्थानों में इन पाँचों की कहीं चित्रपट रूप में तथा कहीं शैली प्रतिमाओं के रूप में स्थापना कराई हुई है। नित्यप्रति सेवा-पूजन का क्रम भी भगवदर्चा के समान ही चलता है।

द्वादश आचार्य एवं अष्टादश भट्ट

श्रीनिवासाचार्य से लेकर श्रीदेवाचार्य पर्यन्त इन निम्नांकित आचार्यों की '**द्वादशाचार्य**' संज्ञा है तथा श्रीसुन्दरभट्टाचार्य से लेकर श्री श्रीभट्टाचार्य पर्यन्त अट्ठारह भट्टों की '**अष्टादश भट्ट**' संज्ञा है। उनके नाम, ग्रन्थ एवं पाटोत्सव आदि का परिचय इस प्रकार है—

(6) श्रीविश्वाचार्य

इनके द्वारा रचित कई एक ग्रन्थ हैं, उन ग्रन्थों में '**श्रीकृष्णास्तवराज**' इन्हीं की रचना मानी जाती है तथा अन्य ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। पाटोत्सव फाल्गुन शुक्ला 4 (चतुर्थी) का मान्य है।

(7) विवरणकार श्रीपुरुषोत्तमाचार्य

इनके भी निर्मित ग्रन्थ अनेक मिलते हैं। उनमें '**वेदान्त-कामधेनु दशश्लोकी**' पर विस्तृत भाष्य '**वेदान्तरत्नमञ्जूषा**' इनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। 'वेदान्तरत्नमञ्जूषा' की भूमिका में इनका विस्तृत चरित्र उल्लिखित है। पाटोत्सव चैत्र शुक्ला 6 (षष्ठी) का होता है।

(8) श्रीविलासाचार्य — पाटोत्सव — वैशाख शुक्ला 8 (अष्टमी) ।

(9) श्रीस्वरूपाचार्य — पाटोत्सव — ज्येष्ठ शुक्ला 7 (सप्तमी) ।

(10) श्रीमाधवाचार्य — पाटोत्सव — आषाढ़ शुक्ला 10 (दशमी) ।

(11) श्रीबलभद्राचार्य — पाटोत्सव — श्रावण शुक्ला 3 (तृतीया) ।

(12) श्रीपद्माचार्य — पाटोत्सव — भाद्रपद शुक्ला 12 (द्वादशी) ।

(13) श्रीश्यामाचार्य — पाटोत्सव — आश्विन शुक्ला 13 (त्रयोदशी) ।

(14) श्रीगोपालाचार्य — पाटोत्सव — भाद्रपद शुक्ला 11 (एकादशी) ।

(15) श्रीकृपाचार्य — पाटोत्सव — मार्गशीर्ष शुक्ला 15 (पूर्णिमा) ।

(16) जाह्नवी (ब्रह्मसूत्र भाष्य) कार श्रीदेवाचार्य

इनके अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। जिसमें कुछ मुद्रित भी हैं। इनका विशेष परिचय मुद्रित 'जाह्नवी' की प्रथम तरङ्ग की भूमिका में द्रष्टव्य है। आपने 'ब्रह्मसूत्र' पर जाह्नवी नामक बड़े ही सुन्दर सरस अनुपम भाष्य की रचना की है। श्रीनिम्बार्क भगवान् कृत 'ब्रह्मसूत्र भाष्य' 'वेदान्त पारिजात सौरभ' की भाँति यह भाष्य परम मननीय है। **पाटोत्सव माघ शुक्ला 5 बसन्त-पञ्चमी है।**

(17) सेतुका (जाह्नवी व्याख्याकार) श्रीसुन्दरभट्टाचार्य

इनके भी रचित ग्रन्थ विपुल मात्रा में मिलते हैं। बहुत से मुद्रित भी हैं। आपने ब्रह्मसूत्रों पर श्रीदेवाचार्यजी महाराज द्वारा निर्मित जाह्नवी टीका पर 'सेतु' नामक विस्तृत व्याख्यान लिखा है। नाम के अंत में भट्ट पदवी इन्हीं आचार्य चरण से प्रारम्भ होती है। **पाटोत्सव मार्गशीर्ष शुक्ला 2 (द्वितीया) है।**

(18) श्रीपद्मनाभ भट्टाचार्य — पाटोत्सव — वैशाख कृष्णा 3 (तृतीया) ।
(19) श्रीउपेन्द्र भट्टाचार्य — पाटोत्सव — चैत्र कृष्णा 4 (चतुर्थी) ।
(20) श्रीरामचन्द्र भट्टाचार्य — पाटोत्सव — वैशाख कृष्णा 5 (पञ्चमी) ।
(21) श्रीवामन भट्टाचार्य — पाटोत्सव — ज्येष्ठ कृष्णा 6 (षष्ठी) ।
(22) श्रीकृष्ण भट्टाचार्य — पाटोत्सव — आषाढ़ कृष्णा 9 (नवमी) ।
(23) श्रीपद्माकर भट्टाचार्य — पाटोत्सव — आषाढ़ कृष्णा 8 (अष्टमी) ।
(24) श्रीश्रवण भट्टाचार्य — पाटोत्सव — कार्तिक कृष्णा 9 (नवमी) ।
(25) श्रीभूरि भट्टाचार्य — पाटोत्सव — आश्विन कृष्णा 10 (दशमी) ।
(26) श्रीमाधव भट्टाचार्य — पाटोत्सव — कार्तिक कृष्णा 11 (एकादशी) ।
(27) श्रीश्याम भट्टाचार्य — पाटोत्सव — चैत्र कृष्णा 12 (द्वादशी) ।
(28) श्रीगोपाल भट्टाचार्य — पाटोत्सव — पौष कृष्णा 11 (एकादशी) ।
(29) श्रीबलभद्र भट्टाचार्य — पाटोत्सव — माघ कृष्णा 14 (चतुर्दशी) ।
(30) श्रीश्रीगोपीनाथ भट्टाचार्य — पाटोत्सव — श्रावण शुक्ला 7 (सप्तमी) ।
(31) श्रीकेशव भट्टाचार्य — पाटोत्सव — चैत्र शुक्ला 1 (प्रतिपदा) ।
(32) श्रीगाङ्गल भट्टाचार्य — पाटोत्सव — चैत्र कृष्णा 2 (द्वितीया) ।

अनन्तश्रीविभूषित श्रीचक्रसुदर्शनावतार आद्याचार्य जगद्गुरु भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र से लेकर जगद्विजयी प्रस्थानत्रयी भाष्यकार **श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्यजी** पर्यन्त सभी आचार्य चरण पञ्चद्राविड़ (दाक्षिणात्य ब्राह्मण कुलोत्पन्न) ब्राह्मण थे। तदनन्तर श्री श्रीभट्टदेवाचार्यजी से लेकर वर्तमान आचार्य चरण (श्री 'श्रीजी' महाराज) पर्यन्त सभी आचार्य चरण पञ्च गौड़ (गौड़ ब्राह्मण कुलोत्पन्न) ब्राह्मण ही पीठासीन होते आ रहे हैं।

श्रीसनकादि संसेव्य भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु जगद्गुरु आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यजी को देवर्षि श्रीनारदजी से संप्राप्त हुये थे, जो कि श्रीनिम्बार्काचार्यजी से लेकर वर्तमान आचार्यचरण श्री 'श्रीजी' महाराज पर्यन्त उपर्युक्त इन सभी आचार्य चरणों (पूर्वाचार्यों) द्वारा संसेवित होते आ रहे हैं। अतः यह श्रीविग्रह अति प्राचीन और चमत्कारपूर्ण है।

वही सनकादि संसेव्य, सभी पूर्वाचार्यों द्वारा संपूजित, अति प्राचीन, सूक्ष्म शालिग्राम श्रीविग्रह, भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु, अद्यावधि (आज भी) अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद, अजमेर (राजस्थान) में विद्यमान हैं जो कि श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के परमाराध्य एवं कुलदेव हैं। यही कारण है कि इन्हीं श्रीसर्वेश्वर प्रभु की श्रीनिम्बार्काचार्य से लेकर वर्तमान आचार्य पर्यन्त परम्परागत सेवा चली आने के कारण श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय में एकमात्र जगद्गुरु (आचार्यगादी) अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद ही है एवं सम्बन्धित शाखा स्थान भारत में यत्र-तत्र सहस्रों की संख्या में विद्यमान हैं।

(33) आचार्यवर्य श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य

काश्मीरि की छाप पाप तापनि जगमंडन।
दृढ़ हरिभक्ति कुठारआन धर्म विटप विहंडन॥
मथुरा मध्य म्लेच्छ वाद करि बरबट जीते।
काजी अजित अनेक देखि परचै भय भीते॥
विदित बात संसार सब सन्त साखि नाहिन दुरी।
'श्रीकेसौभट' नर मुकुटमनि जिनकी प्रभुता विस्तरी॥

— (श्रीनाभास्वामी कृत भक्तमाल)

परिचय

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य, दिग्विजयी, प्रस्थानत्रयी-भाष्यकार श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य इस आचार्य परम्परा में श्रीहंस भगवान् से 33वीं संख्या में श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ पर विराजमान थे। आपका आविर्भाव तैलङ्ग देशस्थ वैदूर्यपत्तन (मुँगीपट्टन) श्रीनिम्बार्काचार्यजी की वंश परम्परा में ही हुआ था। आपका स्थितिकाल 13वीं शताब्दी माना जाता है। आपने भारत-भ्रमण कर कई बार दिग्विजय किया था। काश्मीर में अधिक निवास करने के कारण आपके नाम के साथ 'काश्मीरि' विशेषण प्रसिद्ध हो गया था। काश्मीर में ही आपने वेदान्त सूत्रों पर '**कौस्तुभ प्रभा**' नामक विशद भाष्य लिखा और उज्जैन में कुछ दिनों स्थाई निवास कर श्रीमद्भागवत पर 'तत्त्व-प्रकाशिका' नामक टीका लिखी, किन्तु उसमें 'वेदस्तुति' वाला संदर्भ ही उपलब्ध है। इसी प्रकार आपका एक '**क्रमदीपिका**' नामक ग्रन्थ भी है,जिसमें मन्त्रानुष्ठान का विधिपूर्वक वर्णन है। श्रीमद्भगवद्गीता एवं उपनिषदों पर भी आपकी विस्तृत संस्कृत टीका है। आपका **पाटोत्सव ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्थी** को मनाया जाता है।

(34) आचार्यवर्य श्री श्रीभट्टदेवाचार्य

मधुर भाव संमिलित, ललित लीला सुवलित छवि।
निरखत हरषत हदै, प्रेम बरषत सुकलित कवि।
भव निस्तारन हेतु, देत दृढ़ भक्ति सबनि नित।
जासु सुजस ससि उदै, हरत अतितम भ्रम श्रम चित॥
आनंदकंद श्रीनंदसुत, श्रीवृषभानुसुता भजन।
श्रीभट्ट सुभट्ट प्रगट्यो अघट, रस रसिकन मन मोद घन॥

— (भक्तमाल)

परिचय

आपका आविर्भाव गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ था। आपके पूज्य माता-पिता मथुरापुरी ध्रुव टीला पर निवास करते थे। आचार्य-परम्परा में श्रीहंस भगवान् से आप श्री 34वीं संख्या में विद्यमान थे। प्रस्थानत्रयी भाष्यकार जगद्विजयी श्रीकेशवकाश्मीरि जैसे श्रीगुरुदेव

तथा महावाणीकार रसिकराजराजेश्वर **श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी** महाराज जैसे शिष्य आपकी दिव्य गरिमा के द्योतक हैं। इससे आपके प्रखर वैदुष्य तथा दिव्य तप का सहज ही पता लग जाता है। संस्कृत एवं हिन्दी दोनों ही भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार था। आपके द्वारा निर्मित अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें भाषा ग्रन्थ '**श्रीयुगलशतक**' का रसिक समाज तथा भक्त समाज में विशेष प्रचार है। यह ग्रन्थ ब्रज-भाषा की 'आदिवाणी' नाम से कहा जाता है। ब्रज-भाषा में सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ का निर्माण हुआ था। इस ग्रन्थ में श्रीप्रिया-प्रियतम की नित्य निकुञ्ज लीलाविहार की सुललित रसमयी लीलाओं से सुसम्पन्न सौ पद हैं। अष्टयाम सेवा और वर्षभर के सभी उत्सवादिकों का अत्यन्त मनोहर रसमयपूर्ण हृदयग्राही वर्णन है। एक समय श्रीभट्टदेवाचार्यजी ने "**भीजत कब देखौ इन नैना**" इत्यादि पद से युगल सरकार का ध्यान किया। ध्यान करते ही तत्काल श्रीप्रभु ने अभिलाषानुसार दर्शन दिये। भगवान् श्रीराधा-कृष्ण इनकी गोद में विराजमान रहा करते थे तथा विविध प्रकार की इनके साथ क्रीड़ा किया करते थे। श्रीधामवृन्दावन में आपकी अगाध निष्ठा थी। वे अपने आपको तथा आराध्य देव भगवान् श्रीराधाकृष्ण को श्रीवृन्दावन से बाहर देखने की बात नहीं करते थे। उन्होंने एक पद में यही बताया है कि—

रे मन! वृन्दाविपिन निहार।
यद्यपि मिले कोटि चिन्तामनि तदपि न हाथ पसार॥
विपिन राज सीमा के बाहर हरि हूँ को न निहार।
जय 'श्रीभट्ट' धूरि धूसर तनु यह आसा उर धार॥

धाम निष्ठा की भाँति वे अपने आराध्यदेव की अनन्य निष्ठा के सम्बन्ध में भी कह रहे हैं। यथा—

सेव्य हमारे हैं सदा, वृन्दाविपिन विलास।
नंद नंदन वृषभानुजा, चरण अनन्य उपास॥

आपका स्थितिकाल 13वीं शताब्दी का अंत और 14वीं शताब्दी का प्रारम्भकाल था। आप अपने '**श्रीयुगल शतक**' के अंतिम एक दोहे में बता रहे हैं कि—

नयन बाण पुनि राम शशि, गनों अङ्क गति वाम।
प्रगट भयो श्रीयुगलशत, यह संवत अभिराम॥

इस प्रकार इस ग्रन्थरत्न का रचनाकाल विक्रम सम्वत् 1352 बताया जाता है। इनका **पाटोत्सव आश्विन शुक्ला 2 (द्वितीया)** को मनाया जाता है।

(35) आचार्यवर्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य

जय जय श्रीहरिव्यासजू, रसिकन हित अवतार।
महावानीरच सबनि को, उपदेस्यो सुख सार॥
श्रीभट्ट चरन रज परस तें सकल सृष्टि जाको नई।
हरिव्यास तेज हरिभजन बल देवी को दीच्छा दई॥

— (भक्तमाल)

परिचय

आप इस परम्परा में 35वीं संख्या में आचार्य पीठासीन थे। आपके भी संस्कृत एवं ब्रज-भाषा में विरचित अनेक ग्रन्थ हैं। जिनमें '**महावाणी**' प्रधान ग्रन्थ है। यह रस ग्रन्थों में सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। यह महावाणी श्रीभट्टदेवाचार्यजी कृत श्रीयुगलशतक का मानों बृहद् भाष्य ही है। श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज विशेषतया मथुरापुरीस्थ नारद टीला पर निवास किया करते थे। अधिक समय तो आप लोक कल्याणार्थ भ्रमण में ही रहा करते थे। भ्रमण काल में वैष्णव धर्म का आपने सर्वाधिक प्रचार-प्रसार किया। सर्वत्र वैष्णव धर्म की विजय वैजयन्ती फहराई।

श्रीसर्वेश्वर प्रभु की राजभोग सेवा के पश्चात् स्थान पर या भ्रमणकाल में सर्वत्र वैष्णव सेवा भी मुख्यतया आपके यहाँ बृहद् रूप से हुआ करती थी। शरणागत जनों को जहाँ-तहाँ पञ्च संस्कारपूर्वक वैष्णवी दीक्षा देकर परमार्थ की ओर अग्रसर करते हुए भगवद्भक्ति का प्रचार करना ही आपका मुख्य लक्ष्य था।

शिष्य-परम्परा

श्रीरसिकराजेश्वर महावाणीकार नित्यनिकुञ्जेश्वर युगल-किशोर श्रीश्यामाश्याम की नित्य विहारमयी लीलाओं के उज्ज्वल रसोपासक प्रबल प्रताप परमयशस्वी ख्यातनामा अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य स्वामी श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के मुख्यतया 13 शिष्य थे। जिनमें **श्रीवैष्णवी देवी** भी सम्मिलित थी। इनमें आचार्य गद्दी आचार्यश्री ने शिष्य परिकर में अपने कृपापात्र **श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज** को दी। साथ ही अपनी निजी सेवा, पूर्वाचार्यों द्वारा परम्परागत श्रीसनकादि संसेव्य शालिग्राम विग्रहस्वरूप ठाकुर श्रीसर्वेश्वर प्रभु (आराध्यदेव) की सेवा भी प्रदान की।

तत्पश्चात् अन्य शिष्यों ने भी अपने प्रखर वैदुष्य तथा तपस्या द्वारा भक्ति का प्रचार-प्रसार करते हुये जहाँ-तहाँ मठ, मन्दिर की संस्थापना की, जो कि उनकी 'द्वारा गादी' के नाम से प्रसिद्ध है। वे भी बड़े-बड़े विशाल मठ, मन्दिर हैं। इस प्रकार श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज एवं उनके शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा भारत में सर्वत्र भावपूर्ण वैष्णव धर्म का वहुत ही सुन्दर प्रचार-प्रसार हुआ।

श्रीस्वामी हरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज के तेरह शिष्यों का नामोल्लेख अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीनारायणशरणदेवाचार्यजी महाराज ने स्वनिर्मित '**श्रीआचार्य चरितम्**' नामक ग्रन्थ के 14वें विश्राम के अंत में श्लोक संख्या 43 के अंत में किया है, वह इस प्रकार है—

श्रीमद्व्यासपदारविन्दमधुपं श्रीपरशुरामं तथा
गोपालं मदनादिकञ्च तमहं बाहूबलं मोहितम्।
वन्दे केशव-माधवोद्धव-हृषीकेशं स्वयं भ्वादयान्
सर्वान् ज्ञानविरागभक्तिनिकरान्श्रीलापरं चंडिकाम्॥

(श्रीआचार्यचरित विश्राम, 14 श्लो. 43)

श्रीहरिव्यासदेवाचार्यचरण - चञ्चरीक-श्रीपरशुरामदेवाचार्य, श्रीगोपालदेवाचार्य, श्रीमदगोपालदेवाचार्य, श्रीबाहुबलदेवाचार्य, श्रीमोहितदेवाचार्य, श्रीकेशवदेवाचार्य, श्रीमाधवदेवाचार्य, श्रीउद्धव (घमंड) देवाचार्य, श्रीहर्षीदेवाचार्य, श्रीस्वभूरामदेवाचार्य, श्रीलपरागोपालदेवाचार्य, और श्रीमुकुन्ददेवाचार्य इन सभी महात्माओं को, जो कि भक्ति और ज्ञान का प्रकाश करने वाले थे, मैं सादर दण्डवत् करता हूँ और इनके साथ ही साथ श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज की परम शिष्या श्रीहरि भक्ति परायणा श्रीचण्डिका (श्रीदेवीजी) को भी प्रणाम करता हूँ।

यह देवी आजकल काश्मीर जम्बू के सन्निकट वैष्णवी देवी के नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ जीव-हिंसात्मक बलि न होकर मिष्ठान्न भोग लगाया जाता है।

इस प्रकार रसिक राजराजेश्वर जगद्गुरु निम्बार्काचार्य स्वामी श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज की ख्याति देश में सर्वत्र हो गई थी। आज भी इस सम्प्रदाय के लोग एवं संतजन जहाँ-तहाँ अपने आपको हरिव्यासी के नाम से कहा करते हैं। आपका **पाटोत्सव कार्तिक कृष्णा 12 (द्वादशी)** को मनाया जाता है।

सखी-भाव की उपासना में आप 'श्रीहरिप्रिया' सहचरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपके द्वारा रचित 'श्रीमहावाणी' के पदों में 'श्रीहरिप्रिया' शब्द का ही प्रयोग किया गया है। श्रीमहावाणी श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की अमूल्य निधि है। इसमें आपने श्रीप्रिया प्रियतम को नित्यनिकुंजोपासना में सखी भाव को ही मान्यता प्रदान की है, जैसे—

प्रातः कालहि ऊठिके, धार सखी को भाव।
जाय मिले निज रूप में, याकौ यहै उपाव॥

(36) जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी अ.भा.श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ (परशुरामपुरी—सलेमाबाद) के संस्थापक

ज्यों चन्दन को पवन निम्ब पुनि चन्दन करई।
बहुत कालतम निविड़ उदै दीपक ज्यों हरई॥
श्रीभट पुनि हरिव्यास सन्त मारग अनुसरई।
कथा कीरतन नेम रसन हरिगुन उचरई॥
गोविन्द भक्ति गद रोग गति, तिलक दाम सद वैदहद।
जंगली देश के लोग सब श्रीपरशुराम किये पारषद॥

— (भक्तमाल)

सामान्य-परिचय

आचार्यवर्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य महाराज के पश्चात् आचार्य पद पर श्रीपरशुरामदेवाचार्य महाराज अभिषिक्त हुये। इनका समय पन्द्रहवीं शताब्दी है। ये बड़े

ही प्रतिभासम्पन्न उच्चकोटि के सिद्ध आचार्य थे। इनकी कीर्ति और महिमा सर्वत्र फैली हुई थी। इन्होंने अपने श्रीगुरुदेव के आदेश से **'पद्मपुराण'** में परिवर्णित निम्बार्कतीर्थ नामक परम पावन मरुस्थल में पुष्कर क्षेत्र के समीप एक मस्तिगशाह नामक यवन फकीर को परास्त कर वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार किया था।

जहाँ पर आजकल श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ स्थित है, वह स्थान आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व भयंकर बीहड़ वन था। उस जंगल में एक प्राचीन परम मनोहर अति सुन्दर जल पुष्प और लता वृक्षों से समन्वित आश्रम था, जिस आश्रम को एक पैशाचिक सिद्धि सम्पन्न दुष्ट यवन फकीर मस्तिगशाह ने अपने आधिपत्य में कर लिया था। उस आश्रम के सन्निकट होकर ही द्वारका धाम जाने का प्रधान मार्ग था। यह मदान्ध फकीर उस मार्ग से जो कोई धार्मिक जन यात्रा के लिए निकलता तो उन्हें बड़ा ही दुःख पहुँचाया करता था। एक समय कुछ साधु-सन्त महात्मा इसी मार्ग से द्वारका धाम को जा रहे थे। जब ये फकीर के निवास-स्थान के सन्निकट पहुँचे तो फकीर ने इन सभी सन्तों को अपनी पैशाचिक सिद्धि के बल पर रोक लिया और विभिन्न प्रकार का उनके साथ दुर्व्यवहार करते हुये तंग किया, जिससे सन्तों को महान् कष्ट हुआ। जैसे-तैसे उस नर-पिशाच से जान बचाकर वे वहाँ से लौट पड़े और उस यवन फकीर द्वारा किये गये दुष्कृत्य का सम्पूर्ण वृत्तान्त श्री हरिव्यासाचार्य जी को सुनाया। श्रीचरणों को यह जानकर बड़ा ही दुःख हुआ। आपने अपने कृपापात्र (शिष्य) श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी को आदेश दिया कि उस दुष्ट यवन को जाकर परास्त करो। तुम में उसको परास्त करने का पूर्ण सामर्थ्य एवं सिद्धि बल भी है। आचार्यश्री की आज्ञा पाकर कुछ सन्तों को साथ लेकर श्रीपरशुरामदेवजी ने उस यवन फकीर को परास्त करने एवं साधु-महात्माओं के तथा धर्मप्राण जनता के दुःख दूर करने और वैष्णव धर्म के प्रचार निमित्त प्रस्थान किया। सर्वप्रथम तीर्थगुरु श्रीपुष्करराज पहुँच कर स्नान किया। वह यवन यहाँ से 12 कोस की दूरी पर रहता था। एक दिन संत मण्डली सहित वहाँ पहुँच गये, जहाँ पर वह संतद्रोही दुष्ट फकीर था। आये हुये सन्तों को देख उस यवन फकीर ने अपनी सिद्धि द्वारा सबको मूर्छित करना चाहा, किन्तु कई बार प्रयोग करने पर भी वह सफल नहीं हो पाया। साथ ही उसके सम्पूर्ण देह में विद्युत् प्रहार की भाँति जलन पैदा होने लगी। उस यवन के पास तीन पैशाचिक सिद्धियाँ थीं, जिनको श्रीपरशुरामदेवजी महाराज ने क्रमशः हरण कर लीं थीं। जब उसने सभी प्रकार से अपने आपको असहाय एवं असमर्थ पाया तो करुण-क्रन्दन कर क्षमा-याचना करने लगा। बहुत अनुनय-विनय करने के अनन्तर श्रीचरणों ने उसे क्षमा करके अन्यत्र चले जाने को कहा। आज्ञानुसार उसने वैसा ही किया। वह वहाँ से चला गया, किन्तु अंतिम समय में उसने फिर वहीं आकर अपने शरीर का इस आश्रम से कुछ दूर पर अंत किया। जिसकी कब्र अद्यावधि श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ परशुरामपुरी (सलेमाबाद) से कुछ दूरी पर दक्षिण दिशा में विद्यमान है। यह यवन पीछे परम भगवद्भक्त हो गया था।

श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी ने द्वारका धाम के मार्ग को निष्कण्टक बनाकर इस भयंकर मरुस्थल प्रदेश (रेतीले स्थान) में वैष्णव धर्म का प्रचार करते हुए श्रीनिम्बार्कतीर्थ में कुछ दिन पर्यन्त निवास कर पुनः मथुरापुरी की ओर गमन किया। श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी ने इनके कार्यकौशल तथा सिद्धिबल के प्रभाव को देखकर परम प्रसन्नता प्रकट की और सब प्रकार से योग्य समझकर इन्हें अपने पद पर प्रतिष्ठित करके तथा भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा देकर अंतिम बार यही आदेश प्रदान किया कि उसी मरुस्थल प्रदेश में जाकर वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार करो। श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी पुनश्च श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा सहित श्रीआचार्यवर्य के आदेशानुसार मरुस्थल प्रदेश में आकर भगवद्भक्ति की गङ्गा बहाने लगे। ये कभी-कभी अपने निवास-स्थान से पुष्कर जाकर अनेक दिवस पर्यन्त नागेश्वर पर्वत की कन्द्राओं में भी निवास करते थे और फिर अपने आश्रम लौट आते थे। इन्होंने अपने निवास-स्थान के लिए किसी भी प्रकार के घर का निर्माण नहीं किया, केवल एक पीलू वृक्ष के नीचे रहकर तपश्चर्या धूनी (हवनकुण्ड) कर श्रीयुगल आराधना करते थे। इनका निर्मित **'परशुराम सागर'** नामक विशाल ग्रन्थ है। इसकी रचना दोहे, चौपाई, छन्द, वरवा, छप्पय और पद आदि अनेक छन्दों में हुई है। यह विशाल ग्रन्थ 4 भागों में प्रकाशित हुआ है। इसका सम्पादन विद्वद्वर डॉ॰ श्रीरामप्रसादजी शर्मा एम.ए., पी-एच.डी. प्रवक्ता हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय किशनगढ़ (राजस्थान) ने किया है। यह ग्रन्थ परम उपादेय मनन करने योग्य है, छपाई-सफाई चित्ताकर्षक है।

इन श्रीआचार्य चरण ने यवनों के प्रबलतम आक्रमण के समय, जबकि इन दुष्ट यवनों ने सम्पूर्ण भारत को अपने आधिपत्य में कर लिया था, और हिन्दू जनता को विविध प्रकार से दुःखित करते थे, मन्दिरों को ध्वस्त तथा देव मूर्तियों को खण्डित करते थे। सर्वत्र यावनीय बर्बरता ने त्राहि-त्राहि मचवा दिया था, तब इन दुष्टों को जहाँ-तहाँ सर्व प्रकार से परास्त कर वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार कर हिन्दू जनता का कल्याण किया था। आचार्यश्री ने जन-कल्याणार्थ सदा के लिए पुष्कर क्षेत्र में ही निवास किया था। कभी आप पुष्कर निवास करते तो कभी श्रीपरशुरामपुरी तथा कभी अन्यान्य प्रान्तों में परिभ्रमण कर सनातन धर्म का उत्थान करते थे।

आपका **जयन्ती महोत्सव भाद्रपद कृष्णा 5 (पञ्चमी)** का है। यह उत्सव श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) में बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है। अन्यत्र वृन्दावन, जयपुर आदि अनेक स्थलों पर भी यह उत्सव बहुत सुन्दर रूप से सम्पन्न होता है। निम्बार्कतीर्थ में इस जयन्ती महोत्सव के दिवस को समस्त जन-समुदाय श्रीस्वामीजी की पञ्चमी अथवा गुरुपञ्चमी के नाम से पुकारते हैं।

अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ का श्रीजन्माष्टमी महोत्सव बहुत प्रसिद्ध है। यह आयोजन प्रतिवर्ष भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदा से लेकर भाद्रपद कृष्णा 9 (नवमी) पर्यन्त अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज के तत्त्वावधान में बड़े ही समारोहपूर्वक मनाया जाता है, जिसमें श्रीमद्भागवत सप्ताह प्रवचन, रासलीलानुकरण, श्रीस्वामीजी महाराज की

जयन्ती, श्रीकृष्ण जन्मोत्सव, नन्द महोत्सव आदि के साथ-साथ बधाई गान, संगीत गोष्ठी, अष्टयाम सेवा, समागत सन्त-महन्त एवं विद्वानों के प्रवचन तथा आचार्यश्री के सदुपदेश आदि-आदि कार्यक्रमों का विशेष आयोजन रहता है—

कृष्णजन्मोत्सवो लोके सर्वमङ्गलदायकः ।
निम्बार्काचार्यपीठे स द्रष्टव्यः प्रीतिपूर्वकम् ॥

(37) आचार्यवर्य श्रीहरिवंशदेवाचार्य

"सर्वेश्वरं समाश्रित्य, जीवा अभयमाप्नुयुः ।
एवं दिशन् हरिवंश—देवाचार्यो जयत्विह ॥"

परिचय

अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ (निम्बार्कतीर्थ—सलेमाबाद) संस्थापक अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज के पश्चात् श्रीहरिवंशदेवाचार्यजी महाराज श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ पर आसीन हुये। ये आचार्य चरण भी बड़े ही प्रतिभा-सम्पन्न थे। इनके प्रखर वैदुष्य, भगवद्जन तथा सदुपदेशों द्वारा भक्ति का अपूर्व प्रचार-प्रसार देख जयपुर, उदयपुर, भरतपुर, बीकानेर, किशनगढ़, बूँदी आदि सभी रियासतों के राजा-महाराजा पूर्ण प्रभावित थे। आप दया, धर्म के अपूर्व भण्डार थे। प्राणीमात्र के प्रति सदा हित-चिन्तन आपका प्रधान लक्ष्य था। **"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिदुःख भाग्भवेत् ॥"** यह उदार भावना आप में प्रत्यक्ष रूपेण चरितार्थ थी। आपका सभी के प्रति यह उद्घोष था कि श्रीसर्वेश्वर प्रभु का समाश्रय ग्रहण करो। संसार से निर्भय होने का एकमात्र यही उपाय है। आपका **पाटोत्सव मार्गशीर्ष कृष्णा 7 (सप्तमी)** है।

आपके पट्ट शिष्य श्रीनारायणदेवाचार्यजी महाराज के अतिरिक्त अन्यतम शिष्यों में एक श्रीब्रजभूषणशरण जी भी बड़े भजननिष्ठ विद्वान्, प्रतिभा-सम्पन्न एवं त्याग-मूर्ति सिद्ध महात्मा थे, जिन्होंने राजस्थान, जयपुर मण्डलान्तर्गत हस्तेड़ा नामक ग्राम के ठाकुर श्रीअनूपसिंहजी को शिष्य बनाकर वहाँ एक सुन्दर मन्दिर की स्थापना करवाई। इसी के शाखा-स्थान किशनगढ़-रैनवाल आदि में भी है। हस्तेड़ा और किशनगढ़ इन दोनों स्थानों के एक ही महन्त होते आ रहे हैं। वर्तमान महन्त **श्रीहरिवल्लभदासजी** साहित्य-दर्शनशास्त्री की विद्वत्ता, भजन-साधन-निष्ठा, साधु-सेवा एवं मिलनसारी आदि सद्गुणों द्वारा आज यह स्थान उन्नतशील है।

(38) आचार्यवर्य श्रीनारायणदेवाचार्य

'येनाचार्यचरित्रं, सुरगविरचितं, मनोहरं सरसम्।
तं नारायण—देवाचार्यपूज्यं, जगद्गुरुं वन्दे ॥'

परिचय

श्रीहरिवंशदेवाचार्यजी महाराज के पश्चात् श्रीनारायणशरणदेवाचार्यजी महाराज ने श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ को समलंकृत किया। आप भी बड़े ही प्रतिभा-सम्पन्न आचार्य थे।

विक्रम संवत् 1850 के आसपास महाराणा श्रीजगत्सिंहजी के पूर्ण आग्रह पर उदयपुर पधारे और कुछ समय तक निवास कर भक्ति का खूब प्रचार-प्रसार किया। जिनकी प्रतिभा-सम्पन्न उज्ज्वल कीर्ति के द्योतक आज भी वहाँ 'श्रीप्रयागदासजी का स्थल' तथा 'श्रीबाईजीराज का कुण्ड' आदि कई एक स्थान विद्यमान हैं। 'स्थल' के वर्तमान महन्त **श्रीमुरलीमनोहरशरणजी शास्त्री** आयुर्वेदाचार्य तथा श्रीबाईजीराज कुण्ड के वर्तमान महन्त **श्रीराधावल्लभशरणजी** आदि की सुव्यवस्था एवं विद्वत्ता से इन दोनों स्थानों की पूर्ण ख्याति है।

श्रीनारायणशरणदेवाचार्यजी महाराज द्वारा रचित '**श्रीआचार्यचरितम्**' नामक संस्कृत भाषा में अनुपम ग्रन्थ है, जिसमें सभी आचार्यों के जीवन का संक्षिप्त परिचय है। आपका **पाटोत्सव पौष शुक्ला 9 (नवमी)** को मनाया जाता है।

श्रीनारायणशरणदेवाचार्यजी महाराज से लेकर श्रीगोपीश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज पर्यन्त इन आठ पीठिकाओं में होने वाले आचार्य चरणों ने श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद के अतिरिक्त मथुरा, वृन्दावन, भरतपुर, उदयपुर और जयपुर आदि नगरों में अनेक नरेशों द्वारा विशेष रूप से आमन्त्रित होकर श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा की तथा वहाँ विराजे। मठ-मन्दिरों का निर्माण हुआ और उनके आधीन राज्य द्वारा जागीरें निकाली गईं। फलस्वरूप इन सदियों में श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का राजस्थान प्रदेश में पूर्ण प्रभाव रहा है।

(39) आचार्यवर्य श्रीवृन्दावनदेवाचार्य

"गीतामृतमयी गङ्गा, येन लोके प्रवाहिता।
तं श्रीवृन्दावनं देवा– चार्यं वन्दे जगद्गुरुम्॥"

परिचय

वि.सं. 1754 में आप आचार्यपीठ सिंहासनासीन हुये और श्रुति—स्मृतिपुराण प्रतिपादित भक्तिपूर्ण अपने सदुपदेशों के द्वारा अनुपम लोकहित किया। आपकी सादगी, सरलता, विद्वत्ता, तपश्चर्या और त्याग आदि से जयपुर, जोधपुर, किशनगढ़, बीकानेर, भरतपुर आदि राज्यों की तवारिखों में विक्रम सम्वत् 1754 से 1797 तक आपके पुनीत नाम का उल्लेख मिलता है। कृष्णगढ़ाधीश महाराजा श्रीसाँवतसिंहजी (श्रीनागरीदासजी) सपरिकर आप ही के शिष्य थे। आपकी परम कृपा से उन्हें मानसिक उपासना और दृढ़ निष्ठा प्राप्त हुई थी।

विक्रम सं. 1756 में आमेर नरेन्द्र महाराजा सवाई श्रीजयसिंहजी (द्वितीय) के विनय पत्र आने पर आप आमेर पधारे। नरेन्द्र ने बहुमान सम्मानपूर्वक अगवानी सत्कार करके अपने श्रीगुरुदेव को राजमहलों में पधराया। इन श्रीगुरुदेव की आज्ञानुसार महाराजा श्रीजयसिंहजी ने वि.सं. 1769 और 1775 के बीच में दो महान् यज्ञ किये। वह यज्ञस्थल आमेर से बाहर श्रीपरशुराम द्वारा के निकट है, जो आज भी विद्यमान है। उन यज्ञों में अग्रपूज्य श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज ही रहे। उन्हीं के आदेशानुसार वि.सं. 1784 माघ कृष्णा 5 (पञ्चमी) बुधवार पूर्वाह्ण के समय में भारत के एक दर्शनीय महानगर जयपुर

शहर बसाने की नींव लगी। उस शहर में निवास करने के लिए वैष्णव सम्प्रदायों के आचार्य एवं महत्तम महानुभाव भी आमन्त्रित किये गये। उनके लिए मठ मन्दिरादिकों का भी निर्माण हुआ।

आप संस्कृत, हिन्दी, ब्रज-भाषा, बङ्ग भाषा एवं मिथिला आदि अनेक भाषाओं के पूर्ण विद्वान् थे। आपके द्वारा निर्मित '**श्रीगीतामृतगङ्गा**' ब्रजभाषा में बड़ा ही अनुपम ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ द्वारा संचालित '**श्रीसर्वेश्वर**' मासिक के प्रथम वर्ष के विशेषांक रूप में प्रकाशित हो चुका है।

आपके समय के विद्वान् कवियों ने आपके कलिमलापह कलेवर में अलौकिक ऐश्वर्य का अनुभव किया। आचार्य श्रीवृन्दावनदेवजी में श्रीवृन्दावन विहारी का साक्षात्कार होने पर उनका वाग्देवी ने भी यही प्रकाशित किया—

श्रीवृन्दावनदेवाय गुरवे परमात्मने।
मनो मंजरी रूपाय युग्म-संगानुचारिणे॥
भजेऽहं वनाधीशदेवं महान्तं, महासौम्यरूपं जनानां सुशान्तम्।
सदा-प्रेममत्तं महाप्रेमगम्यं, मुखे राधिका-कृष्ण-लीलासुरम्यम्।

— (पं. शेष श्रीजयरामदेव)

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के अति सन्निकट होने के कारण 'रूपनगर' 'किशनगढ़' के राजा-महाराजाओं का आचार्य पीठ एवं श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी के चरणों में और भी विशेष अनुराग बढ़ा। आचार्य चरणों के सम्पर्क में इस राजकुल के तत्कालीन राजा, राजमहिला एवं राज-परिकर और प्रजाजनों में भगवद्‌भक्ति का अनुपम विकास हुआ। महाराजा श्रीराजसिंहजी, राजमहिषी श्रीबाँकावतीजी, कुँवर श्रीसाँवतसिंह (श्रीनागरीदासजी), राजकुमारी श्रीसुन्दरकुंवरिजी और इनके दास और दासियाँ भी विशिष्ट भक्त कवि बने। इन सभी भक्त कवियों द्वारा अनेक भक्तिपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण हुआ, जिससे भक्ति का खूब प्रचार-प्रसार हुआ।

(40) आचार्यवर्य श्रीगोविन्ददेवाचार्य

"सर्वेश्वरार्चने लीनं, भक्तिमार्गोपदेशकम्।
श्रीगोविन्ददेवाचार्यं, प्रणतोऽस्मि जगद्गुरुम्॥"

परिचय

अनन्तश्रीविभूषित जगद्‌गुरु निम्बार्काचार्य श्रीगोविन्ददेवाचार्यजी महाराज का स्थितिकाल विक्रम की 18वीं शताब्दी माना जाता है।

वि.सं. 1800 से 1814 तक आपने आचार्य सिंहासन को अलंकृत किया। आपके समय में आचार्यपीठ की यथेष्ट उन्नति हुई।

जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज के धामवास हो जाने पर जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा, करौली आदि के नरेशों ने एक मत होकर श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ

पर महाराष्ट्र देशीय **शेषजयरामजी** को अभिषिक्त करना चाहा। यह संघर्ष बहुत जोर-शोर से चला, किन्तु, भक्त समुदाय और सम्प्रदाय के विरक्त संत, महन्तों ने राजाओं का विरोध किया। अंत में राजाओं को अपना विचार बदलना पड़ा और विक्रम सं. 1800 में श्रीगोविन्ददेवाचार्यजी महाराज को आचार्यपीठ के सिंहासन पर अभिषिक्त किया गया। आप संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान् और विशिष्ट कवि थे। आपकी पद रचना बड़ी ही सुललित है। एक पद के अंत में देखिये जिसमें कि भगवान् श्रीसर्वेश्वर का नामोल्लेख भी है।

"जयति वृषभानु—नन्दिनी जगवन्दिनी, कृष्णहियचन्दिनी रंग-सेवी।

प्रणत 'गोविन्द' नंद नंद सुख कन्द, सर्वेश निजदास हरि प्रिया देवी॥"

श्रीनिम्बार्काचार्य पीठासीन होने के पश्चात् आप अनेक संतों की जमात एवं विद्वानों को लेकर विशेषतः भ्रमण किया करते थे। अधर्म का दमन एवं धर्म की स्थापना करते हुये जीवों को वैष्णव धर्म में दीक्षित कर हरि सम्मुख करना ही एकमात्र आपके भ्रमण का मुख्य उद्देश्य था। इन आचार्य चरणों को बड़े-बड़े राजा एवं बादशाह निमन्त्रण देकर अपने यहाँ बुलाने में अपना सौभाग्य समझते थे। एक समय धर्म प्रचारार्थ आप दिल्ली पधारे। आप में कई एक ईश्वरीय गुण विद्यमान थे। **'आचार्यं मां विजानीयात्'** यह उद्धव के प्रति स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है। आपकी गुण-गरिमा श्रवण कर नगर निवासियों की भीड़ उपदेशादि श्रवण एवं दर्शन करने के लिए आने लगी। इनके उपदेशामृत की प्रशंसा सर्वत्र होने लगी। रसिक महानुभावों में एक अपूर्व भावों की विशेषता होती है, जिनकी भावपूर्ण भजन शैली एवं पराभक्ति के द्वारा जागतिक जीवों के लिए लौकिक एवं शारीरिक सम्बन्धी सभी आसक्तियों का सहज ही छुटकारा हो सकता है। आपकी प्रशंसा श्रवण कर नूरजहाँ ने भी दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। बादशाह जहाँगीर इन्हें सादर लेने के लिए पधारे। बादशाह के आग्रह से आप महल में पधारे और अपने भक्तिरूप उपदेशामृत द्वारा सभी परिवार को कृतार्थ किया।(यह कथन ऐतिहासिक तथ्यों के विपरीत है—लेखक)

किशनगढ़ के नरेश श्रीसाँवतसिंहजी (श्रीनागरीदासजी) और उनके छोटे भ्राता बहादुरसिंहजी में परस्पर अनबन रहती थी। कई राजा-महाराजाओं ने भी उन्हें कई बार समझाया, किन्तु कलह शांत नहीं हुआ। विक्रम सं. 1814 के आश्विन शुक्ला 9 शुक्रवार को रूपनगर से श्रीसाँवतसिंहजी और किशनगढ़ से श्रीबहादुरसिंहजी आपके कुशल समाचार पूछने आये। उस समय आप अस्वस्थ थे। दोनों भाई आचार्य चरणों के निकट बैठे थे। दोनों ने ही कुशल समाचार पूछे। इस पर महाराजश्री ने कहा—"जब तक रूपनगर और कृष्णगढ़ राज्य का कलह शांत न होगा, हमारा स्वास्थ्य नहीं सुधर सकेगा।" दोनों ही ने ही कहा क्या आज्ञा है? महाराज बोले रूपनगर की राज्यगद्दी पर सरदारसिंहजी को और कृष्णगढ़ की गद्दी पर बहादुरसिंहजी को अभिषिक्त करके आप (सावंतसिंहजी) श्रीवृन्दावनवास कीजिये। दोनों ने आज्ञा मानकर वैसी ही व्यवस्था की। सच है, महापुरुषों के वचनों में

एक प्रबल शक्ति होती है, जिसके द्वारा बड़े से बडे कार्य भी सहज ही में सुसम्पन्न हो जाते हैं। वे समदर्शी होते हैं। उनमें सदा एकता की भावना बनी रहती है। वे द्वेष करने वालों में भी परस्पर प्रेम-भावना उत्पन्न करा देते हैं। एक कवि ने कहा है कि—

कैंची आरा दुष्टजन जुरे देत विलगाय।
सुई सुहागा सन्त-जन बिछुरे देत मिलाय॥

इनके द्वारा रचित '**श्रीयुगलरसमाधुरी**' परमोत्कृष्ट ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुका है। आचार्यों के मङ्गल बधाई एवं अन्य फुटकर पद भी बहुत हैं। श्रीवृन्दावन के समाज में जहाँ-तहाँ गाये जाते हैं। आपकी रचनाओं का एक बड़ा भारी संकलन '**हरि गुरु सुयश भास्कर**' के नाम से प्रख्यात है। सम्पूर्ण वाणी अनुपलब्ध है। इसकी हस्तलिखित एक प्रति भरतपुर राज्य में किसी काश्तकार के घर पर जैनमुनि श्रीकान्तिसागरजी को प्राप्त हुई थी, जो अभी तक अप्रकाशित है। आपका **पाटोत्सव दिवस कार्तिक कृष्णा 5 (पञ्चमी)** है।

(41) आचार्यवर्य 'श्रीजी' श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्य जी

"जयपुरेशं विस्माप्य श्रीजीत्याख्यामवाप्तवान्।
गोविन्दशरणो देवाचार्यः, स जयतादिह॥"

परिचय

आचार्य श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी महाराज बड़े ही प्रतिभा-सम्पन्न आचार्य थे। विक्रम सं. 1814 से 1841 तक आप श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ पर विराजमान थे। आपने ही बंगाल के सुप्रसिद्ध कवि श्रीजयदेव के आराध्य ठाकुर श्रीराधामाधवजी को, जो कि बहुत वर्षों से ब्रज-मण्डलस्थ श्रीराधाकुण्ड (श्रीनिवासाचार्यजी की बैठक) पर विराजमान थे, वि.सं. 1823 में लाकर वर्तमान श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ, सलेमाबाद में प्रतिष्ठापित किया था। इस प्रसङ्ग का विस्तृत विवेचन हम श्रीराधामाधवजी के परिचय में कर आये हैं।

श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश आचार्य चरणों की श्री '**श्रीजी**' संज्ञा भी आपके समय से ही प्रचलित हुई थी। पूर्ववर्ती आचार्यों के नाम राजा-महाराजाओं के यहाँ से प्राप्त पत्रों एवं पट्टों में श्रीस्वामीजी तथा श्रीमहाप्रभुजी आदि विशेषणों से ही प्रयुक्त होता आ रहा था।

श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी महाराज के कितने ही पूर्ण चरित्र मिलते हैं। आपका '**बृहद् वाणी**' ग्रन्थ भी है, जिसका कुछ भाग श्रीसर्वेश्वर मासिक पत्र वर्ष 18 के विशेषांक रूप में 'श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी की वाणी' के नाम से प्रकाशित भी हो चुका है। इस ग्रन्थ की ललित पदावली का मनोरम शब्द गुम्फन बड़ा ही आकर्षक और अलंकारपूर्ण है, जुगलकिशोर श्यामाश्याम की रसमयी लीलाओं का चित्रण बड़ा ही भावयुक्त और परम-सरस है, जिसके अवलोकन मात्र से ही हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। आपकी प्रखर विद्वत्ता और सिद्धि-सम्पन्नता सर्वविदित है। आपने अपने तपोबल से अनेक विधर्मियों को परास्त कर वैष्णवधर्म की विजय पताका फहराई। राजस्थान के अनेक राजा-महाराजा और प्रजा आपके

अनुगत होकर वैष्णव धर्म में परम आस्था रखने लगे थे। इस प्रकार श्रीआचार्यवर्य की इस महत्त्वपूर्ण अलौकिक घटना से सभी को दिव्य और सात्विक प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी। भगवान् श्रीसर्वेश्वर के गुण-गान युक्त एक पद आपकी वाणी से समुद्भूत है—

करहुं नाथ सर्वेश्वर दीन जानि करुना।
कीजिये सनाथ मोहि आय पर्‌यो सरना॥
मैं अनादि सिद्ध दास तुम अनादि स्वामी।
विरसरत क्यों कृपा सिन्धु जानि कुटिल कामी॥
अपनी दृढ़ भक्ति साधु सङ्ग मोहि दीजै।
लीला गुन रूप नांव रसना रस पीजै॥
ऊँच-नीच जोनिनि मैं दुःख अपार पायो।
'गाविन्द सरन' दीनबन्धु जानि सरन आयो॥

इस प्रकार ऐसे प्रतापी आचार्यश्री ने 27 वर्ष तक आचार्यपीठ को सुशोभित कर विक्रम सम्वत् 1841 के चैत्र मास में श्रीयुगलकिशोर की नित्य निकुञ्ज लीला में प्रवेश किया। **पाटोत्सव कार्तिक कृष्णा 8 (अष्टमी)** को मनाया जाता है।

(42) आचार्यवर्य 'श्रीजी' श्रीसर्वेश्वर शरणदेवाचार्य

"श्रीमद्‌भागवताख्यं पीयूषं पिबन् पाययन् सततम्।
श्रीसर्वेश्वरशरणो देवाचार्यः सदा जयति॥"

परिचय

आप अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की आचार्य परम्परा में श्रीहंस भगवान् से 42वीं संख्या में विद्यमान थे। आपका जन्म जयपुर मंडलान्तर्गत सराय नामक ग्राम के समीप सूरपुरा नामक ग्राम के सुप्रसिद्ध गौड़ ब्राह्मण पं. श्रीभवानीरामजी जोशी के घर हुआ था। आपके माता-पिता भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु के अनन्य भक्त थे। माता-पिता ने श्रीसर्वेश्वर प्रभु श्रीशालिग्राम स्वरूप हैं, अतः उनकी आराधना से संप्राप्त होने के कारण पिता ने इस बालक का नाम भी शालिग्राम ही रख दिया। इनके पीछे प्रभु कृपा से दूसरा भाई और हो जाने पर माता-पिता ने इनको भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा में ही समर्पण कर दिया। आचार्यश्री (जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्य महाराज) के चरणाश्रित होकर दीक्षा के समय 'श्रीसर्वेश्वरशरण' यह नाम निर्धारित किये जाने के पश्चात् आपका अध्ययन प्रारम्भ हुआ। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' वाली कहावत आपके लिए पूर्णरूपेण चरितार्थ हो जाती है। थोड़े समय के बाद ही आप हिन्दी, संस्कृत भाषाओं के ज्ञाता होकर पूर्ण (प्रकाण्ड) विद्वान् हो गये। वि.सं. 1841 में आप श्रीनिम्बार्क-पीठासीन हुये।

वैसे तो जयपुर बसने के पूर्व आमेर नरेश सवाई जयसिंहजी (द्वितीय) ने राज्यगद्दी पर आसीन होते ही अपने गुरुदेव अनन्तश्रीविभूषित श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज को आचार्यपीठ (सलेमाबाद) से आमेर पधराया था। आपश्री की सम्मति से और अन्य भी

अनेक विद्वानों व महात्माओं को आमन्त्रित किया था तथा आपश्री की आज्ञानुसार महाराज श्रीजयसिंहजी ने विक्रम सं. 1784 में जयपुर नगर की स्थापना की थी। इस प्रकार आचार्य चरणों का आमेर व जयपुर नरेशों से सम्पर्क निरन्तर बना रहा था। इसी परम्परा में श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज से चतुर्थ पीठिका में श्रीसर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी एवं सवाई जयसिंहजी (द्वितीय) की चतुर्थ पीठिका में महाराज श्रीप्रतापसिंहजी वर्तमान थे।

इस समय में महाराज सवाई प्रतापसिंह जी ने श्रीसर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज की अनुमति से वैष्णवों की चारों सम्प्रदायों की स्थायी रूप से स्थापना की।

जयपुर-राज सम्मानित विद्वद्वर कवि मण्डन भट्ट ने विक्रम सं. 1878 में '**जय साह सुजश प्रकाश**' नामक ग्रन्थ की रचना की है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि—

"माधव महीन्द्र सुत श्रीप्रताप, बुलवाय किये गुरु करि मिलाप।
निज महल बिच मन्दिर बनाय, ता में पधराये शिर नवाय॥
राधा-नंदनंदन भक्ति भाव, सीखे प्रताप नृप रचि सुभाव।
कर दिये रघुकुल के गुरु गनेश, साँचे सेवक ह्वै प्रतापेश॥
तिन गुरु चरनन को योग पाय, दिये सम्प्रदाय चारों बनाय॥"

ब्रजनिधि श्रीप्रतापसिंहजी के पौत्र श्रीजयसिंहजी (तृतीय) के जन्मोपलक्ष्य में 'श्रीजी' श्रीसर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज का जयपुर राज्य की ओर से महान् स्मृति-महोत्सव सम्पन्न हुआ था, जिसमें राज्य कोष से लाखों रुपयों का व्यय किया गया था। यह उन धार्मिक राजाओं की श्रीगुरुचरणों में अपूर्व निष्ठा थी।

आपश्री द्वारा निर्मित अनेक स्तोत्र हैं, जिनमें कुछ मुद्रित भी हो चुके हैं। जयपुर के संस्थान श्री 'श्रीजी' की मोरी में मन्दिर के ठाकुरजी का नाम श्रीगोपीजनवल्लभजी होने के कारण उनके नाम पर निर्मित '**श्रीगोपीजनवल्लभाष्टक**' आप ही की सुमधुर कृति है। आप अपने समय के श्रीमद्भागवत के अद्वितीय विद्वान् थे।

प्रायः देखा जाता है कि विद्वत्ता, प्रभुता और भक्ति रूप त्रिवेणी का सङ्गम एक स्थान पर होना सुदुर्लभ है, किन्तु यहाँ तो उपर्युक्त तीनों धारायें समान रूप से निर्बाध प्रवाहित थी। जयपुर के सुप्रसिद्ध महाकवि श्रीरसिकगोविन्दजी आप ही के कृपापात्र थे। कवि लोग निर्भीक हुआ करते हैं। वे आलोचना करने में नहीं डरते। पर आपकी विद्वत्ता पूर्ण सुमधुर शैली से तो वे भी प्रभावित होकर बोल उठे कि मैंने कथा तो और भी अनेक वक्ताओं के मुख से सुनी है, किन्तु मुझे वास्तविकता इन्हीं की कथा में मिली है—वे अपनी कविता में लिखते हैं—

"जनक को ज्ञान, शुकदेव को विराग पूजा
पृथु की, सुभक्ति चैतन्य भक्त-राज की।
गोपिन को प्रेम, श्रीगोविन्दजू को माधुरज,
दासता हनू की, राजनीति रघुराज की॥

सत्य दशरथ कौ, युधिष्ठिर को धर्म-धैर्य,
काव्य-वाल्मीकि, जयदेव कवि-राज की।
नारद की सीख, सनकादिक की साधुताई,
कथा 'श्रीसर्वेश्वरशरण' महाराज की॥"

* * *

देवनि के देव गुरूदेव सर्वेश्वरशरण,
भू पर प्रकट अवतार जौन धरतौ।
श्रीभागोत पुरान पुरुषोत्तम की,
ऐसी भाँति कहो कोविद उचरतौ॥
कौन साधु सेतौ जस लेतौ दान देतो कौन,
'गोविन्द' गरीब को कलंक कैसे हरतौ।
छाय जाति मूढता पलाय जाती प्रेम भक्ति,
पातकी अनेक तिन्हें पावन कौन करतौ।

(महाकवि रसिक गोविन्द)

आप अपनी प्रखर विद्वत्ता के अतिरिक्त सिद्धि बल सम्पन्न भी थे।

(43) आचार्यवर्य 'श्रीजी' श्रीनिम्बार्कशरणदेवाचार्य

"श्रीसर्वेश्वर—वन्दारुं, देश-रक्षा—दृढ़-व्रतम्।
श्रीमन्निम्बार्कशरण— देवाचार्यं नतोऽस्म्यहम्॥"

परिचय

आपका नाम श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा में 43वीं संख्या में आता है। वि.सं. 1870 में आप आचार्यपीठासीन हुये थे।

जयपुर महाराजा **जगत् सिंह जी** के कोई संतान नहीं थी। वि.सं. 1875 में उनका स्वर्गवास हो गया। उनकी एक रानी गर्भवती थी, किन्तु जयपुर राज्य के परिकर के कुछ सामन्तों ने मोहनसिंह नामक एक व्यक्ति के राज्याभिषेक का निश्चय कर लिया था। कुछ सामन्तों ने उसको यह कहकर रोका कि रानीजी के प्रसव की प्रतीक्षा की जाये। इस पर दोनों पक्ष सहमत हो गये। महारानी भटियानी श्रीआनन्दकुमारीजी ने श्रीनिम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज से प्रार्थना की और उनकी आज्ञानुसार पुत्र प्राप्त्यर्थ श्रीसर्वेश्वर प्रभु की विशेष आराधना आरम्भ हुई। श्रीस्वामी परशुरामदेवाचार्यजी के हवनकुण्ड (धूनी) पर हवन करवाया गया। प्रंभु कृपा से रानी साहिबा के राजकुमार का जन्म हुआ। उनका नाम जयसिंहजी (तृतीय) रखा गया। जयपुर राज्य की ओर से पूज्य गुरुदेव श्री 'श्रीजी' श्रीसर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज का विशिष्ट-स्मृति महोत्सव (मेला) किया गया। उसमें राज्य की ओर से एक लाख रुपये खर्च हुये। आचार्यपीठ की ओर से भी इतना ही व्यय हुआ। वह मेला (भण्डारा) एक ऐतिहासिक था। घृत के लिए कुण्ड बनवाया गया था।

चारों धामों के साधु-सन्तों को आमन्त्रित किया गया था। जयपुर के सुप्रतिष्ठित मण्डन कवि ने इस भण्डारे का विशद वर्णन किया है। उस पुस्तक का नाम **'जय साह सुजस प्रकाश'** है।

विक्रम सम्वत् 1878 में वृन्दावन धाम में एक विशाल मन्दिर की नींव लगी। इकावन हजार घनफुट जमीन पर पाँच वर्ष के सतत परिश्रम से जयपुर के शिल्पियों ने अनुपम मन्दिर का निर्माण किया। उस समय इस मन्दिर की उपमा पाने वाला वृन्दावन में कोई दूसरा मन्दिर नहीं था। रङ्ग मन्दिर, लाला बाबू, टिकारी मन्दिर, शाह बिहारी आदि विशाल मन्दिर इसके पश्चात् ही बने हैं। केवल मदनमोहन, गोविन्द, गोपीनाथ, राधावल्लभ आदि 5-7 ही विशाल प्राचीन मन्दिर थे, किन्तु उनकी आकृति शैली भिन्न थी। जयपुर की राजमाता भटियानी रानी आनन्दकुमारीजी ने अपने गुरुदेव श्री 'श्रीजी' श्रीनिम्बार्कशरणदेवाचार्यजी महाराज के आदेशानुसार यह मन्दिर बनवाकर अपने नाम को भी प्रभु से संलग्न रखने के लिए विक्रम सम्वत् 1883 ज्येष्ठ शुक्ला 9 को ठाकुर श्रीआनन्द मनोहर वृन्दावनचन्द्रजी महाराज की प्रतिष्ठा करवाई, पूजा सेवा के लिए तीन ग्राम भेंट किए और श्री 'श्रीजी' महाराज की सेवा में अर्पित कर दिये, जो कि श्री 'श्रीजी' महाराज की बड़ी कुञ्ज के नाम से प्रसिद्ध है।

महारानी जी और स्व. नरेश की कृपापात्र रूपाँ बडारन ने भी इसी के साथ एक छोटा मन्दिर बनवाकर इसी दिवस श्रीरूपमनोहर वृन्दावनचन्द्रजी की प्रतिष्ठा करवाई। मध्य द्वारों पर संगमरमर के सुन्दर हाथी श्रीवृन्दावनचन्द्रजी के इन्हीं दोनों मन्दिरों में मिलते हैं। आचार्य श्री द्वारा विरचित कुछ फुटकर पद उत्सव संग्रहों में उपलब्ध होते हैं। आपकी प्रौढ़ विद्वत्ता एवं अपने आराध्य देव श्रीसनकादि संसेव्य भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु के श्रीचरणों में अगाध निष्ठा कैसी थी, यह तो आपके द्वारा निर्मित **श्रीसर्वेश्वर प्रपत्ति-स्तोत्र** से सहज ही विदित हो जाता है।

भक्ति क्षेत्र सम्बन्धी अनेक चरित्रों के अतिरिक्त स्वदेश की सुरक्षा एवं स्वतंत्रता पर भी आपश्री की पूर्ण भावना थी। जब ब्रिटिश शासनकाल में अंग्रेजों द्वारा भरतपुर पर आक्रमण हुआ था, उस समय आपने अपने प्रिय शिष्य महाराजा श्री भरतपुर की मदद के लिए 300 साधुओं की सेना श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ से भरतपुर के धर्मयुद्धार्थ भेजकर भारतीय संस्कृति-परम्परा का संपोषण किया था। इस प्रकार आपके इस जीवन-चरित्र से सभी को भगवद्भक्ति एवं देश-प्रेम की शुभ-प्रेरणा संप्राप्त होती है।

(44) आचार्यवर्य 'श्रीजी' श्रीव्रजराजशरणदेवाचार्य जी

"ब्रह्म-जीव-जगत्तत्त्वं सदा सत्यमिति ब्रुवन्।
श्रीव्रजराजशरणो देवाचार्यो जगद्गुरुः॥"

परिचय

'श्रीजी' श्रीनिम्बार्कशरणदेवाचार्यजी के पश्चात् श्रीव्रजराजशरणदेवाचार्यजी महाराज श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ पर अभिषिक्त हुये। आपके द्वारा रचित संस्कृत के अनेक स्तोत्र भी

मिलते हैं। आप भी अपने समय के प्रतिभा-सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान् थे। आप अपने चित्र में अंगुष्ठ और तर्जनी अंगुली को मिलाकर उपदेशमयी मुद्रा द्वारा शेष तीनों अंगुलियों को ऊपर उठाकर मानों यह संदेश दे रहे हैं कि—ब्रह्म, जीव और जगत् ये तीनों तत्त्व अनन्त और अनादि तथा सत्य हैं। ब्रह्म स्वतन्त्र है, जीव और प्रकृति ब्रह्म के अधीन है। ब्रह्म और जीव का सेव्य-सेवक भाव ही परमोपादेय है। आपके द्वारा '**श्रीसर्वेश्वर प्रणति पद्यावली**' नामक स्तोत्र बड़ा ही सुललित है।

आपकी चरण पादुका श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ में विद्यमान है। **पाटोत्सव ज्येष्ठ शुक्ला 5 (पञ्चमी)** को मनाया जाता है।

(45) आचार्यवर्य श्रीगोपीश्वरशरणदेवाचार्य

सर्वेश्वरार्चनारूढं, शान्तं वैभव-निस्पृहम्।
श्रीमद्गोपीश्वराचार्यं, त्यागमूर्तिं गुरुं नुमः॥

परिचय

धर्मनिष्ठ, त्याग-तपोमूर्ति, परम निस्पृही, महान् यशस्वी आचार्यपाद 'श्रीजी' श्रीगोपीश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज का जन्म जयपुर मण्डलान्तर्गत हस्तेड़ा नामक ग्राम में गौड़ ब्राह्मण वंश में हुआ था। आप श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ परम्परा में श्रीहंस भगवान् से 45वीं संख्या में विद्यमान थे। आपने अपने धर्म पर आये हुए विपरीत वातावरण को देखकर जयपुर की लाखों रुपये की सम्पत्ति का तृणवत् परित्याग कर दिया था।

विक्रम सम्वत् 1900 में आप श्रीनिम्बार्काचार्य पीठासीन हुये। आपके समय जयपुर के राज्य सिंहासन पर महाराज सवाई श्रीरामसिंहजी (द्वितीय) आसीन थे।

यह प्रसिद्ध है कि आपके साथ हाथी, घोड़े, रथ, पालकी और ऊंट आदि सवारियाँ और श्रीसर्वेश्वर प्रभु के दुग्धाभिषेक वाली सुरभियाँ (गायें), ये सब सङ्ग चलते थे, किन्तु आप इन सब को श्रीसर्वेश्वर प्रभु का वैभव समझकर श्रीसर्वेश्वरजी को गले में धारण करके और हाथी पर भगवान् श्रीराधाकृष्ण की वाङ्मयी मूर्ति श्रीमद्भागवत को विराजमान करके पुष्कर आदि राजस्थान के पुनीत तीर्थस्थलों में स्वयं पैदल यात्रा करते थे। श्रीआचार्य चरणों के तपोमय इस आदर्श से सम्पूर्ण राजस्थान के भक्तजन अत्यन्त श्रद्धा-भाजन बने हुये थे। वास्तव में आपमें महाराजा मनु द्वारा निर्धारित आचार्य के लक्षणों का प्रत्यक्ष दर्शन होता था।

इस प्रकार विक्रम सम्वत् 1901 से वि.सं. 1928 तक अनादि-वैदिक सद्धर्म का प्रचार-प्रसार करते हुये आचार्यपदारूढ़ रहकर आपने अनुकरणीय आदर्श की रक्षा करके श्रीनित्यकुञ्जविहारी सर्वाधार श्रीराधासर्वेश्वर प्रभु की नित्य लीला में प्रवेश किया। आपका **पाटोत्सव माघ कृष्णा 10 (दशमी)** को मनाया जाता है।

(46) आचार्यवर्य 'श्रीजी' श्रीघनश्यामशरणदेवाचार्य

"हृदि सर्वेश्वरो यस्य, करे जपवटी तथा।
तं घनश्यामशरणदेवाचार्यं हृदाऽऽश्रये ॥"

सामान्य-परिचय

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्कपीठाधिपति श्रीघनश्यामशरणदेवाचार्यजी महाराज बड़े शांत, सरल, समदर्शी एवं सौम्य मूर्ति थे। आपका जन्म भी जयपुर मण्डलान्तर्गत हस्तेड़ा नामक ग्राम के उस गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ था, जिस वंश परम्परा में आपके पूज्य गुरुदेव श्रीगोपीश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज का था। इस परम्परा के घर आज भी हस्तेड़ा में विद्यमान हैं। आप विक्रम सम्वत् 1928 से विक्रम सम्वत् 1963 तक आचार्यपीठ पर विराजमान थे। आपके समय में हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी, ऊँट, बैल, गायें आदि सब प्रकार से वैभव का पूर्ण साम्राज्य था।

आप भगवान् श्रीराधामाधव तथा श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा के अतिरिक्त हरिनामस्मरण एवं जप-साधन में सतत संलग्न रहा करते थे। श्रीमद्भागवत का नित्य स्वाध्याय तथा वैष्णव सेवा आपका प्रधान लक्ष्य था। जोधपुर, बीकानेर, बूँदी आदि राज्यों में भी बड़े समारोहपूर्वक आपश्री की पधरावनी तथा कई बार तीर्थाटन आदि के आयोजन भी बड़े ठाठ-बाटपूर्वक होते रहे। आपके वचन में पूर्ण सिद्धि बल था। आपके शुभाशीर्वाद द्वारा कई भक्तों के मनोरथ पूर्ण हुये हैं। यहाँ भगवान् श्रीराधामाधव एवं श्रीसर्वेश्वर प्रभु के दर्शनों के अतिरिक्त इस तपस्थली में श्रीस्वामीजी (श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी) महाराज की धूनी की विभूति और नालाजी का जल श्रद्धालु जनों की मनोभिलाषा पूर्ण करते हैं। आचार्य श्री घनश्यामशरणदेवाचार्यजी महाराज वाक् सिद्ध थे। इनके शुभाशीर्वाद से अनेकानेक भक्तों के मनोरथ पूर्ण हुए हैं।

आपका **पाटोत्सव आश्विन कृष्णा षष्ठी** को मनाया जाता है।

(47) आचार्यवर्य 'श्रीजी' श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्य

"जगद्गुरु-श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधिराजितम्।
श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्यं सदाऽऽश्रये ॥"

परिचय

आपका आविर्भाव विक्रम सं. 1917 के चैत्र कृष्णा त्रयोदशी सोमवार को जयपुर राज्यान्तर्गत चाकसू तहसील के 'पूरण की नागल' नामक ग्राम में एक परम पावन गौड़ ब्राह्मण वंश में हुआ था। आपके पिताश्री का नाम **पं. श्रीगोपालजी शर्मा गौड़** था और माता श्री का नाम **श्रीललितादेवी** था। विक्रम संवत् 1963 चैत्र कृष्णा द्वादशी सोमवार को 46 वर्ष की अवस्था में आप श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ पर सिंहासनारूढ़ हुये।

आचार्यप्रवर श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्यजी महाराज का वैदुष्य और सारल्य अनुपम था। श्रुति-स्मृति पुराणादि शास्त्रों, भक्तिपरक ग्रन्थों तथा स्वसाम्प्रदायिक-वेदान्त-उपासना

ग्रन्थों पर आपका अनुशीलन अनुपम एवं गम्भीर था। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता तो आपश्री के कर कमलों से पृथक् ही नहीं होती थी। 'श्रीसुदर्शन कवच' आदि का पठन प्रायः चलता ही रहता था। श्रीगोपालमन्त्रराज का जाप तो प्रतिदिन अनुष्ठान के रूप में दशांश हवन के साथ चलता ही रहता था। सूर्य के प्रखर ताप में सभी ऋतुओं में आपश्री प्रतिदिन खड़े-खड़े श्रीमन्त्रराज का जाप क्रम एक घन्टे से भी अधिक समय तक सूर्य की ओर बिना पलक गिराये एक दृष्टि रखते हुय किया करते थे। ऐसी कठोर उपासना आपकी यावज्जीवन चलती रही।

वस्तुतः आपकी शांति, कांति, दयालुता, गम्भीरता इतनी सराहनीय थी कि जिसे स्मरण करते ही आज भी प्रत्यक्ष की भाँति अनुभूति होने लगती है। इस प्रकार का महान् गुण गरिमापूर्ण जीवन जहाँ-तहाँ मिलना दुर्लभ है। आपके परमोच्चतम आदर्शमय जीवन से प्रभावित होकर अनेक शास्त्राचार्यों, मनीषीजनों ने आप श्री के शरणापन्न हो, शिष्यत्व ग्रहण किया था। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के लब्धप्रतिष्ठ महामनीषी पण्डित प्रवर श्रीरामप्रतापजी शास्त्री (प्रोफेसर नागपुर) ब्यावर राजस्थान निवासी ने आप से शरणागति प्राप्त कर अपना परम सौभाग्य माना था। पं. श्रीलाडिलीशरणजी ब्रह्मचारी न्याय-व्याकरण-काव्यतीर्थ भी आप श्री के ही शिष्य थे, जो कि आचार्यपीठ के अधिकारी पद पर भी रहे। जोधपुर के महान् यशस्वी बैरिस्टर श्रीहंसराजजी सिंघवी भी आपश्री ही के कृपापात्र थे। जोधपुर, बीकानेर, बूँदी आदि उच्चतम राज्यों के राजा-महाराजा, राजरानियाँ, मन्त्रीगण आपश्री के शिष्य-प्रशिष्य थे। मारवाड़ के प्रायः सभी जागीरदार आप में परम श्रद्धा रखते हुये शरणापन्न हो होकर कृतार्थता का अनुभव करते थे।

इसी प्रकार जब आचार्यश्री का दक्षिण यात्रा में हैदराबाद पधारना हुआ, तब हैदराबाद स्टेट के नवाब ने आपश्री की विराट् शोभायात्रा का आयोजन किया और स्वयं ने भावनायुक्त होकर अपनी श्रद्धा समर्पित की। राजस्थान निवासी सैनिक कमाण्डर श्रीहनुमानसिंहजी राठौड़ ने हैदराबाद की उस शोभायात्रा स्वागत समारोह में अतीव तत्परता से भावनायुक्त होकर अपनी सेवा प्रस्तुत की थी।

आप श्री के आचार्यत्व काल में ही अजमेर राज्य के सुप्रसिद्ध ठिकाना खरवा के राव साहब श्रीगोपालसिंहजी तथा श्रीमोडसिंहजी से अजमेर राज्य के तत्कालीन कमिश्नर साहब का सेना सहित इसी आचार्यपीठ में मिलना हुआ था। कारण यह था कि ये दोनों ही सरदार क्रांतिकारी विचारों के थे और देश को स्वतन्त्र बनाने हेतु अंग्रेजों से विरुद्ध हो प्रच्छन्न रूप से जहाँ-तहाँ रहते हुए अपने कार्य में पूर्ण संलग्न थे।

ये दोनों सरदार श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ से ही दीक्षित थे। अपने इस गुरुद्वारे में इनकी बड़ी श्रद्धाभावना थी। एक दित रात में घूमते हुये ये कहीं से यहाँ आ गये और यहीं रात्रि विश्राम किया। यह देख किसी गुप्तचर ने अजमेर कमिश्नर को खबर कर दी। प्रातःकाल होते-होते ही पुलिस एवं फौज के जवानों ने घोड़ों पर चढ़कर मन्दिर को चारों ओर से घेर लिया। यह स्थिति देख ये दोनों सरदार भी अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र सम्भाल

कर लड़ने को तैयार हो गये। जब आचार्यश्री को यह बात मालूम हुई तो ऐसा करने से उन्हें रोक दिया और कहा कि ऐसा करने से आपके इस स्थान को भारी क्षति पहुँचेगी। आप किसी प्रकार का विचार न करें, भगवान् अच्छा ही करेंगे।

इधर कमिश्नर साहब ने महाराजश्री से पूछकर भीतर आकर उनसे मिलना चाहा। तब महाराजश्री ने कहलवाया कि आप बिना शस्त्र के आवें और ये भी आपसे बिना शस्त्र ही मिलेंगे। इस पर कमिश्नर आये और महाराजश्री के माध्यम से मर्यादानुसार उनसे मिले और बातचीत कर सम्मानपूर्वक उन्हें अजमेर लाकर बाद में खरवा पहुँचा दिया।

जब आप दोनों सरदार मन्दिर से चलने लगे तो अपने हथियार और ऊँट ये सब भगवान् को भेंट कर दिये थे, जिनमें से कुछ हथियार तो वर्तमान आचार्यश्री ने भारत चीन के युद्धकाल में भारत सरकार के सुरक्षाकोश में जमा कराये थे।

उदयपुर (मेवाड़) के हिज हाईनेस महाराणा साहब श्रीभोपालसिंहजी भी आप श्री के चरणों में अगाध निष्ठा रखते थे।

अनन्तश्री समलंकृत आचार्यवर्य ने 83 वर्ष पर्यन्त इस धरातल को सुशोभित किया और श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ को 36 वर्ष तक विभूषित कर वि.सं. 2000 ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदा को ऐहिक लीला संवरण कर श्री सर्वेश्वर राधामाधव प्रभु के नित्यदिव्य चिन्मय धाम में प्रवेश किया। आपका **पाटोत्सव चैत्र कृष्णा द्वादशी** को मनाया जाता है।

(48) आचार्यवर्य श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज

आपश्री वर्तमान में निम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ, (सलेमाबाद), वाया किशनगढ, जिला अजमेर (राजस्थान) के अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु पद पर पीठासीन हैं, आपश्री का बृहद् वर्णन आपके **व्यक्तित्व एवं कृतित्व** सम्बन्धी चतुर्थ अध्याय में परिवर्णित है।

आपश्री ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में शास्त्रोक्त विधि-विधान पूर्वक, एवं निम्बार्क-सम्प्रदाय-परम्परा नियमानुसारेण **श्री श्यामशरण जी** का युवराज पद के लिए अभिषेक किया है। युवराज श्री श्यामशरण जी सौम्य, प्रत्युत्पन्नमति, नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा सम्पन्न, सुसंस्कारित, भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत के समुपासक हैं। वर्तमान में आप 14 वर्षीय बालरूप में हैं। आपका अध्ययन, मनन निदिध्यासन वृन्दावन धाम में श्री पं. वैद्यनाथ जी झा जैसे विलक्षण विद्वानों के सानिध्य में चला है। आप कुशाग्र बुद्धि के धनी हैं। वर्तमान में आपकी उच्च शिक्षा निम्बार्कपीठस्थ 'गंगासागर' में सम्पन्न हो रही है।

(3) निम्बार्क-सम्प्रदाय के परवर्ती प्रमुख आचार्य

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने इस उपासना के अपने प्रमुख शिष्यों द्वारा तीन केन्द्र बनाये। उन्होंने मध्य ब्रज-प्रदेश (श्रीवृन्दावन) में अपने प्रमुख शिष्य श्रीनिवासाचार्य को स्थित रहने का आदेश दिया। तदनुसार श्रीनिवासाचार्य उनके सन्निकट ही रहे। श्रीराधाकुण्ड (ललिताकुण्ड) आपकी प्राचीन तपस्थली मानी जाती है,जो कि श्रीनिम्बार्क और श्रीनारदजी की तपस्थली के मध्यवर्ती है। आपने कई ग्रन्थ लिखे, उनमें **'वेदान्तकौस्तुभ भाष्य'**,

'**लघुस्तवराज**' आदि ग्रन्थ मिलते हैं। आप निकुञ्ज उपासना में श्रीनव्यवासा (श्रीयुगलकिशोर की नित्य सहचरी) के अवतार माने जाते हैं, और आचार्य रूपेण 'पाञ्चजन्य' (भगवान् के दिव्य नित्य आयुध) के अवतार कहे जाते हैं, आपके शिष्य श्रीविश्वाचार्य जी के एक श्लोक में ऐसा उल्लेख मिलता है। आपके रचे हुए अनुपलब्ध ये 4 अन्य ग्रन्थ भी हैं—(1) '**ख्यातिनिर्णय**' (सेतुका से ज्ञात), (2) '**पारिजात सौरभ भाष्य**' (सेतुका से ज्ञात), (3) '**रहस्य प्रबन्ध**' (अध्यात्म सुधा तरंगिणी तथा पञ्चकालानुष्ठान मीमांसा से ज्ञात), (4) '**कठोपनिषद्भाष्य**' (श्रीमानदास कृत कठोपनिषद् प्रकाशिका के मङ्गल से ज्ञात)।

श्रीऔदुम्बराचार्य

श्रीऔदुम्बराचार्य को आपने उत्तर दिशा (कुरुक्षेत्र) में भेजा। कुरुक्षेत्र के सन्निकट 'पपनावा' उन्हीं का आश्रम कहा जाता है। '**औदुम्बर संहिता**', '**निम्बार्क विक्रान्ति**' आदि आपके कई ग्रन्थ मिलते हैं। औदुम्बराचार्य ने अपने प्रादुर्भाव और आचार्य चरण की चमत्कारपूर्ण जीवनी का भी संक्षेप से चित्रण किया है।

श्रीगौरमुखाचार्य

श्रीगौरमुखाचार्य को पूर्व दिशा (नैमिषारण्य) में स्थित रहने का आदेश दिया था। आपने भी कई ग्रन्थों का प्रणयन किया है, जिनमें '**श्रीनिम्बार्क सहस्रनाम**', '**निम्बार्कस्तव**', '**निम्बार्क कवच**' आदि ग्रन्थ उपलब्ध हैं, बहुत से प्राप्त नहीं होते।

श्रीविश्वाचार्य

श्री श्रीनिवासाचार्य के सिंहासन को उनके प्रमुख शिष्य श्रीविश्वाचार्य ने अलंकृत किया और परम्परा प्राप्त युगल उपासना पद्धति का प्रसार किया। आपने भी कई एक ग्रन्थ लिखे, उनमें '**विश्वघाटी**' आदि कुछ स्तोत्र ही उपलब्ध होते हैं, **प्रपत्ति-चिन्तामणि** की टीका (सेतुका से ज्ञात) आज उपलब्ध नहीं।

आपने अपने श्रीगुरुदेव की वन्दना निम्नोक्त पद्य से की है—

शंखावतारः पुरुषोत्तमस्य,
यस्य ध्वनिः शास्त्रमचिन्त्यशक्तिः।
यत्स्पर्शमात्राद्ध्रुव आप्तकाम-
स्तं श्रीनिवासं शरणं प्रपद्ये॥

आचार्य-चरित्र (संस्कृत में अमुद्रित) ग्रन्थ के अनुसार आपका **पाटोत्सव प्रतिवर्ष फाल्गुन शुक्ला 4 को** मनाया जाता है। निकुञ्ज उपासना के अनुसार आप श्रीविश्वाभा सखी के अवतार माने जाते हैं। अतः आपका रहस्यनाम '**विश्वाभा**' है।

श्रीपुरुषोत्तमाचार्य

श्रीविश्वाचार्य के पश्चात् श्रीनिम्बार्क पीठ को श्रीपुरुषोत्तमाचार्य ने अलंकृत किया। आपका एक ग्रन्थ उपलब्ध है, जो वेदान्त रूपी रत्नों के लिए वस्तुतः **मञ्जूषा** ही है। यह

ग्रन्थ श्रीनिम्बार्क कृत **वेदान्त-कामधेनु (दशश्लोकी)** का बृहद् विवरण है। इसके चार कोष्ठकों में श्रीव्यास कृत वेदान्त सूत्रों के चारों अध्यायों का सार भर दिया गया है। इन्होंने दशश्लोकी और रहस्यप्रबन्ध का सर्वप्रथम विवरण किया। इसलिए इनका **विवरणकार** नाम से भी स्मरण किया जाता है।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के ग्रन्थों में अन्यान्य मतों की आलोचना का सूत्रपात इसी मञ्जूषा ग्रन्थ से हुआ है। इस ग्रन्थ में अद्वैत मतानुसार निर्गुणवाद, प्रतिबिम्व, अवच्छेद, आभास आदि वादों की विशद समीक्षा की गई है।

सिद्धान्त-क्षीरार्णव, रहस्य-विवरण आदि (सेतुका तथा पञ्चकालानुष्ठान से ज्ञात) अनुपलब्ध हैं।

आपका **पाटोत्सव चैत्र शु. षष्ठी** को मनाया जाता है। आपकी एक उक्ति के आधार पर यह सम्भावना की जाती है कि आप श्रीविश्वाचार्य के साक्षात् शिष्य न होकर, उनके परम्परानुवर्ती शिष्य प्रशिष्यों में एक विशिष्ट प्रभावशाली आचार्य हुए होंगे। रहस्य नामावली में आपका '**उत्तमा**' नाम से स्मरण किया जाता है।

श्रीविलासाचार्य

आपका जीवनवृत्त आचार्य चरित्र में संक्षिप्त रूप से मिलता है। विद्वानों का अनुमान है कि 25 श्लोकी '**सविशेष निर्विशेष श्रीकृष्णस्तवराज**' आपकी ही कृति है। आप **वैशाख शु. अष्टमी** को पीठासीन हुए थे। उसी दिन आपका **पाटोत्सव** मनाया जाता है।

सखी भाव की उपासना में आप उच्चकोटि पर पहुँचे हुए थे। आप अत्यन्त निरपेक्ष एवं निस्पृही थे। निरन्तर वृन्दावन में ही रहा करते थे।

श्रीस्वरूपाचार्य

आपके सम्बन्ध में भी संस्कृत ग्रन्थों में संक्षिप्त ही उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि आप स्वरूप एवं पर (उपास्य) स्वरूप में ही निरन्तर निमग्न रहते थे। निकुञ्ज उपासना पद्धति से आप '**सरसा सखी**' के अवतार हैं। अतः सखी परम्परा में आपका '**सरसा**' नाम है। आचार्य पीठासीन होते हुए भी आप श्रीवृन्दावन से बाहर पर्यटन करने नहीं गये। **पाटोत्सव ज्येष्ठ शु. प्रतिपदा है।**

श्रीमाधवाचार्य

श्रीस्वरूपाचार्य के सिंहासन को आपने अलंकृत किया। **आषाढ़ शु. दशमी** को आपका **पाटोत्सव** मानाया जाता है। यद्यपि आपका रचा हुआ अभी तक कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है तथापि यह निश्चित है, कि आप एक उच्चकोटि के विद्वान् थे। आपका जन्म एक उच्च ब्राह्मण कुल में हुआ था। आपके पिता एक अच्छे राज्य के अधिपति थे, किन्तु आपने उस राज्य को त्याग दिया। गुरुदेव से वैष्णवी दीक्षा प्राप्त कर भजन करने लगे। गुरुदेव के वृन्दावन वास होने पर उनके सिंहासन पर आप विराजे। साधु-सन्तों सहित

वृन्दावन से एक बार तीर्थाटन करते हुए काशी पहुँचे। वहाँ गोविन्द नाम के बड़े गुणग्राही सच्चे जिज्ञासु पच्चीस वर्ष वयस्क एक दण्डी संन्यासी थे। आचार्य का आगमन सुनकर वेष बदलकर उनके निकट पहुँचे। गेरुआ वस्त्र उतार कर उन्होंने श्वेत वस्त्र पहन लिए। गले में तुलसी की कण्ठी और भाल पर सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र लगा लिया। आचार्य ने इस भेद को जान लिया और दण्डी से कहा "आपने अच्छा किया जो बंधन रूप दण्ड-कमण्डल को छोड़कर इस निरबंधन भाव को अपनाया।" दण्डी ने बड़ी प्रार्थना की, क्षमा माँगी और कहा, "प्रभो ! आपने ही आन्तरिक प्रेरणा कर मुझ से वेश बदलवाया। अब मुझे आप अपनी शरण में ले लें। मैं आपकी शरण में हूँ।" श्री माधवाचार्य ने उन्हें दीक्षा दी। वे ही आगे **बलभद्राचार्य** हुए। श्रीमाधवाचार्य ने 60 वर्षों तक अवनितल पर श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ को अलंकृत किया। उनके पश्चात् श्रीबलभद्राचार्य पट्टासीन हुए। रहस्य परम्परा में आपका '**श्रीमधुराजी**' नाम है।

श्रीबलभद्राचार्य

आपने स्वतन्त्र भक्ति भाव का उपदेश करते हुए 60 वर्षों तक सिंहासन को अलंकृत किया। आपका **पाटोत्सव श्रावण शु. तृतीया** को मनाया जाता है।

आप ऐसे अलौकिक आचार्य हुए, जो अधिकतर श्रीवृन्दावन में ही रहकर अखण्ड भजन में निरत रहे। कभी किसी विशेष प्रसंग पर ही आप पुष्कर आदि तीर्थों की यात्रा करते थे। कहा जाता है कि आप 60 वर्ष तक आचार्य सिंहासन पर विराजे किन्तु भगवद्भक्ति में इतने निरत रहे कि एक भी गृहस्थ को दीक्षा नहीं दी। श्रीपद्माचार्य आदि अपने शिष्यों को ही मन्त्रोपदेश करने की आज्ञा प्रदान कर दी। आप स्वयं तो श्रीवृन्दावन की रज में ही लेटे रहते।

रहस्य (सखी) परम्परा में आपका '**श्रीभद्राजी**' के नाम से स्मरण किया जाता है। अनन्तरामजी ने एक पद्य द्वारा आपकी वन्दना की है—

बलेन भद्रं वितनोति पुंसां,
भक्त्या कृतार्थीकृतजीवसंघः।
तन्नामधेयं शरणं प्रपद्ये,
कारुण्यवात्सल्यदयादिसिन्धुम्॥

श्रीपद्माचार्य

श्रीबलभद्राचार्य के पश्चात् आपने श्रीनिम्बार्कपीठ को अलंकृत किया। आप माथुर (मथुरा के चतुर्वेदी) कुल के दीपक माने जाते हैं। जन्म से ही आप में अद्भुत अलौकिक गुण दिखाई देते थे। ज्यों ही किशोरावस्था आई कि आपको संसार से विराग हो गया। 16वें वर्ष में ही आप श्रीगुरुदेव की शरण में श्रीवृन्दावन आ गये।

गुरुदेव के चरणों में गिरकर आपने अपने मनोभाव सुनाये। आचार्य ने जान लिया कि यह अवश्य ही नित्यसिद्ध परिकर में से है। वैष्णव पञ्च संस्कारों से संस्कृत कर

मन्त्रोपदेश दिया। जैसे दीपक से दीपक के जल जाने पर उसका भी वैसा ही प्रकाश हो जाता है, वैसे ही श्रीबलभद्राचार्य के सम्पर्क से आपका प्रकाश बढ़ा। पद्माचार्य नामकरण कर गुरुदेव के चित्त में भी बड़ी शान्ति हुई। श्रीबलभद्राचार्य किसी गृही (विषयी) को शिष्य नहीं बनाते थे। ऐसे जो जीव शरणागत होते, उनको श्रीपद्माचार्य सत्पथ दिखाने लगे। आपका ज्ञान, प्रतिभा, प्रकाश और यश अधिक से अधिक बढ़ने लगा। गुरुदेव की विद्यमानता में ही आपने आचार्योचित कार्यभार सम्भाल लिया। गुरुदेव के पश्चात् आप चालीस वर्ष तक आचार्य सिंहासनासीन रहे। आपने कई एक ग्रन्थ भी लिखे, किन्तु आज वे अनुपलब्ध हैं। **अर्चिरादि पद्धति** में आपके द्वारा रचित श्रीवृन्दावन वर्णन का एक श्लोक मिलता है—

कुञ्जगुल्मादिरूपत्वं श्रीमद्वृन्दावनस्य च।
कृष्णक्रीडाकृते ज्ञेयं चिद्घनस्य विचित्रता॥

इससे पता चलता है कि आपने वृन्दावन और श्रीयुगल उपासना सम्बन्धी विशिष्ट ग्रन्थ की रचना की थी।

आपका **पाटोत्सव भाद्रपद शुक्ला द्वादशी** के दिन मनाया जाता है। आपकी वन्दना के रूप में एक श्लोक श्रीअनन्तरामजी का मिलता है, जिसमें आपके उपरोक्त जीवनवृत्त के भी दर्शन होते हैं—

"पद्मायते यो हि निजाश्रिते जने,
पद्मागुणैर्वत्सलतादयादिभिः।
आचारयन् ज्ञानविराग-भक्तिकं,
पद्माभिधं तं प्रणतोऽस्मि देशिकम्॥"

श्रीश्यामाचार्य

आपके जीवन-वृत्तान्त के सम्बन्ध में संस्कृत ग्रन्थों में अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन मिलता है। आचार्य चरित्र **'गुरुनति वैजयन्ती'** आदि ग्रन्थों में केवल वंदना और उनके पाटोत्सव दिवस का परिचय मात्र मिलता है। भाषा ग्रन्थों में श्रीकिशोरदासजी ने भी विस्तृत उल्लेख न करके संक्षिप्त ही परिचय दिया है। कहा जाता है कि आपका भी माथुर (चतुर्वेदी) कुल में ही जन्म हुआ था। आप उत्कट विरागवान् थे। किसी भी तनधारी से सम्बन्ध नहीं रखते थे। प्रतिदिन श्रीयमुनाजी ही इन्हें प्रसाद खिलाती थीं। किसी से मिलते भी थे तो अनमिल जैसे ही रहते थे। गोकुल में अधिक रहते थे। जब इच्छा होती थी तभी श्रीवृन्दावन आ पहुँचते थे और निधुवन में निवास किया करते थे। यहाँ के क्षण-क्षण में श्रीप्रिया-प्रीतम के अद्‌भुत अलौकिक लीला-विलासों का प्रकाश देखा करते थे।

अत्यन्त विराग के कारण ही आपने किसी प्रकार का संग्रह नहीं किया। इसी से आपकी जीवनी का विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता।

श्रीअनन्तरामजी के एक श्लोक से भी यही आशय व्यक्त होता है कि आप निरन्तर श्रीश्यामसुन्दर को निहारा करते थे। इसी से गुरु प्रदत्त आपका श्यामाचार्य नाम चरितार्थ हुआ।

श्यामं पश्यति हृत्सरोजमनिशं कृष्णं सदा शिक्षयन्
स्वीयांस्तं कमलाभिलालितपदं सौन्दर्य-रत्नाकरम् ॥
ब्रह्मेशेन्द्रमहर्षिवन्दितपदं वेदान्तवेद्यं च यः
तं श्यामाख्यसमाख्यया हि विदितं चाचार्यमीडे मुदा ॥

आपका पाटोत्सव **आश्विन शु. त्रयोदशी** को मनाया जाता है।

श्रीगोपालाचार्य

आप एक परम रसिक और बड़े सरस हृदय आचार्य थे। कन्नौज आपका जन्म स्थान था और कान्यकुब्ज द्विजकुल में प्रकट हुए थे। आपके माता-पिता परम भागवत थे, किन्तु और सारा परिवार शाक्त था। इनके व्यवहार से वे खिन्न रहा करते थे और प्रभु से प्रार्थना किया करते थे। एक दिन स्वप्न में भगवान् ने उन्हें आदेश दिया कि घबड़ाओ मत, तुम्हारे पुत्र रूप से एक मेरी विशिष्ट विभूति का अवतार होगा। उसके प्रकट होते ही सब परिवार की वृत्ति परिवर्तित हो जायेगी। थोड़े ही दिनों के अनन्तर आपका जन्म हुआ। उसी दिन से परिवार में एक दूसरी ही लहर पैदा हो गई। आपके अंग में विलक्षण चिह्न और एक अद्‌भुत तेज था। आपकी बारह वर्ष की अवस्था होने तक केवल परिवार ही नहीं, नगर के बहुत से नर-नारी श्रीराधाकृष्ण के भक्त हो गये। माता-पिता से फिर किसी प्रकार का विपरीत भाव नहीं करता था। आप माता-पिता की अनुमति लेकर वृन्दावन आये और श्रीश्यामाचार्यजी के दर्शन किये। श्रीश्यामाचार्यजी ने अपना अन्तरङ्ग परिकर समझकर वैष्णवी दीक्षा दी और व्रजयात्रा करने की आज्ञा दी। तदनुसार आज ज्योंही वृन्दावन से बाहर निकले, एक विमान दिखाई पड़ा, उसमें श्रीराधाकृष्ण युगल विराजमान थे। आगे चले तो एक वन में भगवान् के बालरूप में दर्शन हुए। माता-पिता उनका लाड़-चाव कर रहे हैं। गाय-बछड़े, बैलों के झुण्ड दिखाई दे रहे हैं। आगे चले तो देखा कि भगवान् पौगण्ड रूप मे लीला कर रहे हैं। गोवर्धन पहुँचे तो वहाँ किशोर रूप से भगवान् के दर्शन हुए। वहाँ अद्‌भुत कुञ्जें और लता-पता, तरुवर, सखी-सहेलियाँ और उनकी सभी ऋतुओं की लीलाएँ देखीं। वापिस वृन्दावन श्रीनिधुवन में आकर श्रीगुरुदेव से सभी लीलाओं का वर्णन किया। फिर गुरुदेव ने श्रीवृन्दावन का रहस्य समझाया और अपना पद प्रदान कर अपनी ऐहिक लीला संवरण की।

आपका **पाटोत्सव भाद्रपद शु. एकादशी** को मनाया जाता है।

श्रीअनन्तराम जी ने एक वन्दनात्मक पद में संक्षिप्त रूप से आपके चरित्र का दिग्दर्शन इस प्रकार कराया है—

गोपायिता यो हि निजाश्रितानां,
गवां गणस्याऽपि विमोक्षकर्ता।
नियोजयामास स्वभक्तियोगं,
गोपालमार्यं प्रणतोऽस्म्यहन्तम् ॥

श्रीकृपाचार्य

आप बड़े प्रतापी आचार्य थे। यद्यपि आपका जीवन वृत्तान्त विशद रूप से उपलब्ध नहीं होता है, तथापि **'सिद्धान्त जाह्नवीकार'** जैसे प्रसिद्ध प्रतापी पट्ट शिष्य होने के कारण यह निश्चित होता है कि वे भी अवश्य विशिष्ट तेजस्वी विद्वान् रहे होंगे। श्रीअनन्तराम वेदान्तकेशरी ने इन्हें साक्षात् मुकुन्द भगवान् का ही अवतार बताया है—

> **दीनाऽनुकम्पी भगवान् मुकुन्दो,**
> **विलोक्य संसारदवाग्निदग्धान्।**
> **कृपावशाद्यः शिवरूपधारी**
> **कृपाऽभिधं श्रीगुरुमानतोऽस्मि॥**

श्री किशोरदासजी कृत निजमत सिद्धान्त ग्रन्थ में आपके जन्मस्थल अयोध्या और सारस्वत द्विजकुल का उल्लेख मिलता है। उन्होंने लिखा है कि यज्ञोपवीत होते ही आप अयोध्या से भागकर वृन्दावन आ गये। उस समय श्रीगोपालाचार्य जी मान-सरोवर पर विराज रहे थे। ये भी यमुनाजी का दर्शन, स्पर्श, मज्जन और पान करके वहाँ जा पहुँचे। दण्डवत् प्रणाम करके अपना हार्दिक भाव व्यक्त किया। इनका अनुरोध और योग्यता देख आचार्यश्री ने इन्हें पञ्च संस्कार कर वैष्णवी दीक्षा दी और कृपाचार्य नाम रखा। गुरु की आज्ञानुसार ब्रज भ्रमण करके आप वृन्दावन लौटे। फिर समस्त जीवन पर्यन्त वृन्दावन में ही रहे। **पाटोत्सव मार्गशीर्ष शु. पूर्णिमा।**

श्रीदेवाचार्य

श्री श्रीनिवास आदि द्वादश आचार्यों में आपकी अन्तिम गणना है। आपके ग्रन्थों से आपका प्रकाण्ड पाण्डित्य स्पष्ट अवगत होता है। आपके रचे हुए ग्रन्थों में से **'जाह्नवी'** (ब्रह्मसूत्रों की वृत्ति) दो तरंगों तक उपलब्ध होती है। वह मुद्रित है, शेष अलभ्य। **'भक्ति रत्नाञ्जलि'** (अनन्तराम वेदान्त केशरी के एक श्लोक द्वारा अवगत) भी अप्राप्य है। अमुद्रित प्राचीन संक्षिप्त आचार्य चरित्र में, **माघ शुक्ला पञ्चमी को इनका पाटोत्सव** और भगवान् के हस्त कमलाश्रित पद्म का इन्हें अवतार माना है—

> **"माघे शिते पञ्चदिनेऽवतीर्य,**
> **विनिर्जिता येन दिशश्च सर्वाः।**
> **निराकृताः शास्त्रविरुद्धतर्काः,**
> **देवार्यकं तं शरणं प्रपद्ये॥**
> **पद्मावतारः पुरुषोत्तमस्य,**
> **यद्धायुगन्धेन नशंति तापाः।**
> **तनोति सौख्यं परतत्त्वबोधा-**
> **न्नमामि तं देवमाचार्यरूपम्॥**

श्रीअनन्तराम कृत **आचार्य परम्परा स्तोत्र** और **श्रीकिशोरदास** जी कृत **निजमत सिद्धान्त** में भी ये दोनों श्लोक थोड़े से हेरफेर के साथ ऐसे ही मिलते हैं। एक स्वल्प

कलेवर संस्कृत ग्रन्थ और मिलता है, जिसमें आपकी दिग्विजय यात्रा के सार का उल्लेख है। सम्भवतः वह **श्रीसुन्दर भट्ट** कृत विस्तृत **'देवाचार्य दिग्विजय'** का ही सूक्ष्म सारांश होगा।

भाषा ग्रन्थों में श्रीकिशोरदास जी ने इस प्रकार वर्णन किया है—कश्यपपुर (काश्मीर) में सारस्वत कुल में आपका आविर्भाव हुआ। श्रीगुरुदेव की शरण में आकर आप बारह वर्ष वृन्दावन रहे। उनके परमधाम पधारने पर आप आचार्य पीठासीन हुए। किन्तु एकान्त 'काष्टवाड़' (काठियावाड़) पर्वत की गुफा में आप जा बैठे। कहा जाता है, कि काश्मीर के भिन्न-भिन्न मतवादियों में किसी समय एक विवाद उत्पन्न हुआ कि इन सब शैव आदि मतों में कौन श्रेष्ठ है। एक वृद्ध ब्राह्मण के कथनानुसार सब मतों के नाम भिन्न-भिन्न पत्रों में लिखकर गणपति की मूर्ति के सम्मुख रखे गये। यह निश्चित किया गया था कि जिस मत के नाम का पत्र पहले हाथ में आ जाय, वही मत सर्वश्रेष्ठ माना जाय। दैवयोग से हरिभक्तों (वैष्णव धर्म) के नाम का पत्र ही सर्वप्रथम हाथ लगा। सभी ने वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता स्वीकार की।

वैष्णवाचार्य की खोज होने लगी। अन्वेषक उसी 'काष्टवाड़' (काठियावाड़) में पहुँचे और श्रीदेवाचार्यजी को काश्मीर लिवा लाये। जैसे ही वहाँ के प्रसिद्ध गणपति मन्दिर में आचार्य पहुँचे, गणपति मूर्ति ने स्वयं उत्थित हो आचार्य का सम्मान किया। सारे नगर में यह आश्चर्य छा गया। उस समय आपके साथ श्रीव्रजभूषणजी भी थे, उन्होंने वहाँ ही पर्वत में गुफा बसाई। आचार्यश्री के कमण्डलु के जल से वहाँ के कूकट-नाग में एक पुनीत सरिता का भी आविर्भाव हुआ था। अमरनाथ में लाखों मनुष्यों को आपकी कृपा से शिव के दर्शन हुए। देवों ने भी आपका सम्मान किया। इसी से आपका देवाचार्य नाम चरितार्थ हुआ। कुछ विद्वेषियों ने एक दिन ऐसा विचार किया—हम लोग आचार्य के सन्निकट चलकर जोर जोर से ऐसी क्लिष्ट संस्कृत में बोलें, जो उनकी समझ में न आवे, जिससे वे निरुत्तर होकर परास्त हो जायं।

इस मनोरथ से ज्यों ही वे आचार्य के सन्निकट पहुँचकर बोलने लगे तो उनकी वाणी ही बदल गई। आचार्य के प्रभाव को समझकर वे बड़े लज्जित हुए। त्राहि-त्राहि कहकर सब चरणों में गिर पड़े और क्षमा याचना की। आचार्यश्री की कृपा से उनकी वाणी में पूर्ववत् सुधार हुआ। उन्होंने और वहाँ की बहुत सी जनता ने दीक्षा ग्रहण कर वैष्णव धर्म अङ्गीकार किया।

वहाँ से आचार्यश्री पुनः उसी काष्टवाड़ पर्वत पर आये।

वहाँ के राजा ने आपके प्रभाव को जानकर अपने देश में केशर की उपज के लिए प्रार्थना की। आचार्य ने प्रसन्न होकर कहा—यहाँ से जहाँ तक दृष्टि पहुँचती है, उतनी भूमि में केशर उत्पन्न होती रहेगी।

फिर वहाँ से आप वृन्दावन आ गये। नब्बे वर्ष तक आचार्य पीठासीन रहे।

x x x

श्री श्रीनिवासाचार्य के पश्चात् श्रीदेवाचार्य तक ग्यारह आचार्यों ने श्रीवृन्दावन धाम एवं व्रजमण्डल को ही अपना केन्द्र बनाये रखा। उनमें कई एक आचार्य तो श्रीवृन्दावन आने के पश्चात् फिर इधर-उधर पर्यटनार्थ भी नहीं पधारे। कुछ आचार्यों ने लोकोपकारार्थ धर्मोपदेश करते हुए अन्यान्य तीर्थों का भ्रमण किया।

इन आचार्यों के आविर्भाव और अन्तर्धान का समय 12वीं शताब्दी से पूर्व का है, अधिक पता नहीं लगता।

श्रीसुन्दर भट्टाचार्य

श्रीदेवाचार्यजी **से इस** सम्प्रदाय में दो शाखाएँ चलती हैं—एक श्रीसुन्दरभट्टाचार्यजी की और दूसरी श्रीव्रजभूषणदेवजी की। श्रीसुन्दरभट्टाचार्य ने आचार्य सिंहासन को अलंकृत किया और कई एक ग्रन्थों की रचना की। उससे आपका प्रौढ पाण्डित्य स्पष्टतया अवगत होता है। उन ग्रन्थों में केवल तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं—(1) '**सेतुका**' (सिद्धान्त जाह्नवी की विस्तृत व्याख्या) प्रथम तरंग पर्यन्त लब्ध और मुद्रित, शेष अनुपलब्ध। (2) '**प्रपन्न-सुरतरु-मञ्जरी**' (प्रपन्न कल्पवल्ली की विस्तृत टीका) मुद्रित। (3) '**मन्त्रार्थरहस्य**' (रहस्य षोडशी की व्याख्या)। सेतुका से आपके तीन और ग्रन्थों का पता चलता है—(1) '**गोपालोपनिषद् का भाष्य**', (2) '**कालनिर्णय सन्दर्भ**' और (3) '**प्रपन्नवृत्तिनिर्णय सन्दर्भ**' ये तीनों ही ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। कुछ विद्वानों की धारणा है कि '**पञ्चकालानुष्ठानमीमांसा**' ही सम्भवतः प्रपन्नवृत्तिनिर्णय होगा या उसका विभाग होगा।

श्रीअनन्तरामजी ने एक वन्दनात्मक पद्य द्वारा आपकी विद्वत्ता का दिग्दर्शन कराया है—

भटति परमरूपं सुन्दरं रुक्मवर्णं,
द्यति च कुमतिपक्षांस्तर्कमूलान्महात्मा।
नयति पदमजस्रं विष्णुमार्गेण स्वीयान्
स जयति परमौजाः सुन्दराख्यो हि भट्टः॥

आपका **पाटोत्सव मार्गशीर्ष शु. द्वितीया** को मनाया जाता है।

रहस्य परम्परा मे आपका '**सुन्दरी**' नाम है।

श्रीपद्मनाभ भट्टाचार्य

आपका **पट्टाभिषेक उत्सव वैशाख कृष्णा तृतीया** को मनाया जाता है।

जैसे भगवान् के नाभि-कमल से चतुर्मुख ब्रह्माजी का आविर्भाव हुआ था और उनका लोक वेद में पद्मनाभ नाम प्रसिद्ध हुआ, उसी प्रकार आपकी नाभि अर्थात् मुख पद्म द्वारा समन्वय, अविरोध, साधन और फल इस शास्त्रार्थ रूप चतुर्मुख का प्रकाश हुआ। भगवान् के स्वरूप, गुण, शक्ति, विग्रह एवं जीवात्म, परमात्म, प्रकृति तथा परमधाम विषयक विचारों का आपने विशेष प्रसार किया। आपके इतिवृत्त का सूक्ष्म रूप परिचय अनन्तरामजी के निम्नांकित पद्य से मिलता है—

"पद्माभिपद्मादभवच्चतुर्मुखः
शास्त्रार्थरूपः परमार्थगोचरः।
तस्मादमुं भव्यजनाभिवन्द्यं,
श्रीपद्मनाभेति वदन्ति भट्टम्॥"

आपकी विद्वत्ता और साधन सम्पन्नता लोक में अपूर्व मानी जाती थी।

श्रीउपेन्द्र भट्टाचार्य

आपका विक्रम उपेन्द्र (त्रिविक्रम) सदृश था। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति योग के द्वारा आपने भक्त साधकों को लोकपालों, अनेक मन्त्रकारों के सिद्धान्त और तदनुसार प्राप्य लोकों से भी ऊर्ध्वलोक (मोक्ष) की प्राप्ति कराई।

त्रिविक्रमैर्ज्ञानविरागयोगै-
राक्रम्यलोकान् सहलोकपालान्।
मोक्षाख्यमैन्द्रं प्रददौ स्वकेभ्यः
उपेन्द्रभट्टं प्रणतोऽस्मि देवम्॥

आपका **पाटोत्सव चैत्र कृष्णा चतुर्थी** को मनाया जाता है।

श्रीरामचन्द्र भट्टाचार्य

आप भग्वद्‌भक्तियोग के विशिष्ट उपदेष्टा थे। अतएव जिस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्र ने सेतु बाँधकर साधु-सन्त तथा भक्तों को दुःख देने वाले राक्षसों के सहित रावण को मारकर धर्मत्राण और सज्जनों की रक्षा की, उसी प्रकार भगवद्‌भक्ति का सेतु बाँधकर, बोध रूपी बाणों से अनादि पुण्यापुण्यात्मक कर्मरूपी रावण को मारकर अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश एवं आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, त्रिविधताप रूपी राक्षसों द्वारा अवरुद्ध जीवों को मुक्त बनाया।

"बद्ध्वा सेतुं भक्तियोगं च विष्णोः,
रुद्धं जीवं राक्षसैः क्लेशजालैः।
कर्माख्यं वै रावणो बोधबाणै
र्हत्वा भक्तं मोचयामास देवः॥"

आपका **पाटोत्सव आचार्य चरित्रानुसार वैशाख शु. पञ्चमी** को मनाया जाता है।

श्रीवामन भट्टाचार्य

जैसे कोई सद्वैद्य परदत्त विष को अथवा सर्प काटने पर चढ़े हुए विष को मणिमन्त्र औषधादि द्वारा वमन कराकर रोगी को बचा लेता है, उसी प्रकार श्रीवामनभट्टाचार्य जी ने ज्ञान, मन्त्र, वैराग्य और भक्ति आदि औषधियों से शरणागतों के अनादि कर्मात्मक विष की वमन द्वारा निवृत्ति कराई। ऐसे दयालु, परम ज्ञानी और परमगुरु श्रीवामनभट्टाचार्य जी महाराज के चरणों की शरण लेना हितकर है।

"यो वामयत्यखिलकर्मविषं च वैद्यः,
संसारसर्पप्रभवं स्वपदं प्रपन्नैः।
वैराग्यज्ञानमनुना निजशिक्षितेन,
तं वामनं गुरुमहं प्रणतोऽस्मि भट्टम्॥"

आपका पाटोत्सव ज्येष्ठ कृष्णा षष्ठी को मनाना चाहिए।

श्रीकृष्ण भट्टाचार्य

आचार्य चरित्र में आपका **पाटोत्सव आषाढ़ कृष्णा 9** का लिखा है।

श्रीअनन्तराम जी ने परम्परा-स्तोत्र में आपको भगवान् श्रीकृष्ण की उपमा दी है। जिस प्रकार भगवान् ने मृत गुरु-पुत्रों को लाकर गुरु के अर्पण किया था, उसी प्रकार श्रीकृष्णभट्टाचार्यजी ने शरणागतों को मृत्युमुख से बचाकर भगवान् को अर्पित किया।

"यो वै मृत्युमुखात्प्रमादवपुषो ह्यात्मप्रपन्नान्प्रभु-
रानीय स्वदयावशेन हरये दास्वान् कृपासिञ्चनात्।
तं श्रीकृष्णसमं च कर्मविभवैः कृष्णाख्यभट्टं गुरुम्,
वन्देऽहं मनसा गिरा च वपुषा कारुण्यसिन्धुं हरिम्॥"

श्रीपद्माकर भट्टाचार्य

आप बड़े प्रतापी आचार्य हो गये हैं। ब्रह्मविद्या का आपने इस प्रकार प्रसार किया था, जैसे कोई हाथों से धन को बाँटता हो, इसीलिए आपका पद्माकर भट्ट नाम चरितार्थ हुआ। '**ब्रह्मविद्या च देवीत्वं**' इस '**विष्णुपुराण**' के वचनानुसार 'पद्मा' ब्रह्मविद्या का भी नाम है। आपकी वन्दना श्रीअनन्तरामजी ने इस प्रकार दी है—

"विद्याज्ञपराश्रेयउपायभूता,
मुमुक्षुभिः सेव्यतया प्रसिद्धा।
पद्माभिधा यस्य करे मिता वै,
पद्माकरं भट्टमहं भजामि॥"

आपका **पाटोत्सव आषाढ़ कृष्णा अष्टमी** को मनाया जाता है।

श्रीश्रवण भट्टाचार्य

आप श्रीनिम्बार्काचार्य के पश्चात् 20वें पीठासीन आचार्य हुए हैं। श्रवण, मनन द्वारा आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार कर अपने शरणगतों को श्रवण कराया और अज्ञान अंधकाररूपी अर्गल (कर्मबंधन) से उन्हें मुक्त बनाया। आप निरन्तर शास्त्रानुशीलन में ही संलग्न रहा करते थे। श्रीअनन्तराम वेदान्तकेशरी के एक पद्य से यह प्रमाणित है—

"श्रुत्वाऽत्मतत्त्वं ह्यनुभूय नित्यं,
संश्रावयामास निजप्रपन्नान्।
विमोचयामास तमोर्गलाद्य-
स्तमाश्रये श्रीश्रवणेशभट्टम्॥"

आपका **पाटोत्सव कार्तिक कृष्णा नवमी** को मनाया जाता है। आपके रचे हुए ग्रन्थों का अभी तक पता नहीं चला है।

श्रीभूरि भट्टाचार्य

श्रीअनन्तरामजी ने एक पद्य में आपके नाम की सार्थकता दिखलाते हुए कहा है कि बहुत से भावुकजनों को अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक श्रीश्यामसुन्दर के धाम का साक्षात्कार कराकर आपने उनका उद्धार किया—

"भटत्यसौ भूरिमहानुभावः
श्रुत्यन्ततत्त्वं विशदं जनेभ्यः।
भजाम्यनन्तस्य पदस्य दाता,
यो भूरिभट्टं गुरुमीश्वरं तम्॥"

आपका **पाटोत्सव आश्विन कृष्णा दशमी** को मनाया जाता है।

श्रीमाधव भट्टाचार्य

आपके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में यद्यपि विशेष पता नहीं चलता, तथापि परम्परा प्राप्त आचार्य पीठासीन पूर्वाचार्यों की भाँति आपकी भी उदारता प्रसिद्ध है। वेदान्तकेशरी ने संक्षेप में उनके जीवन का दिग्दर्शन कराते हुए इस प्रकार स्तुति की है—

"श्रीमाधवं भटति सर्वजगन्निदानं,
वेदान्तवेद्यचरणं शरणं निजेभ्यः।
यस्तं गुरुं परमतत्त्वप्रदं महान्तं,
श्रीमाधवं हि सततं प्रणतोऽस्मि भट्टम्॥"

आपका **पाटोत्सव कार्तिक कृष्णा एकादशी** को मनाया जाता है।

श्रीश्याम भट्टाचार्य

श्रीमाधव भट्टाचार्य की भाँति ही श्रीश्यामभट्टाचार्य एक प्रख्यात प्राचार्य हुए हैं, जैसा कि श्रीअनन्तरामजी व्यक्त करते हैं—

"श्यामं हिरण्यपरिधिं सततं भटं तं,
गोविन्दमादिपुरुषं श्रुतिसारगम्यम्।
श्यामं हि भट्टमनिशं गुरुमीशमीडे,
मोक्षप्रदं स्वदयया चरणानुगानाम्॥"

आचार्य-चरित्र के उल्लेखानुसार प्रतिवर्ष **चैत्र कृष्णा द्वादशी को आपका पाटोत्सव** मनाया जाता है।

श्रीगोपाल भट्टाचार्य

आप जैसे वैदिक धर्म के संरक्षक, शरणागतों के पालक, पूर्ण विज्ञानी एवं वैराग्य, दया आदि के समुद्र थे, वैसे ही वत्सलता और क्षमा भी अगाध थी। आचार्य-परम्परा स्तोत्र में आपकी स्तुति का एक श्लोक यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"गोप्ता श्रुतीनां परतत्त्ववक्ता,
त्राताश्रितानां च भवार्णवाद्यः।
गोपालभट्टं तमहं प्रपद्ये,
विज्ञानवैराग्यदयादिपूर्णम्॥"

आपका **पाटोत्सव पौष कृष्णा एकादशी** को होता है।

श्रीबलभद्र भट्टाचार्य

जैसे श्रीबलभद्रजी ने प्रलम्ब दैत्य का वध कर भक्तों का त्राण किया था, वैसे ही आपने आश्रितजनों की कर्मात्मिका अविद्या का निवारण कर उन्हें स्वरूप का ज्ञान कराया, जिससे उनका जीवन सार्थक हुआ। आपके सम्बन्ध में यह पद्य प्रसिद्ध है—

"कर्मादिरूपो बलवान् प्रलम्बः,
पदाश्रितानां निहतश्च येन।
तं देवमीडे बलभद्रभट्टं,
क्षमादया-ज्ञानविरागयुक्तम्॥"

आपका **पाटोत्सव माघ कृष्णा चतुर्दशी** को मनाया जाता है।

श्रीगोपीनाथ भट्टाचार्य

श्रीबलभद्रभट्टाचार्य के सिंहासन को श्रीगोपीनाथ भट्टाचार्य ने अलंकृत किया। शास्त्रीय प्रमाणों से वेद-विरोधियों की शंकाओं का निराकरण कर श्रीगोविन्द का साक्षात्कार कराया। आपकी स्तुति रूप अनन्तरामजी का एक पद्य यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"गोपीनाथं भटति सततं शास्त्रमानेन यो वै,
श्रीगोविन्दं परमपुरुषं दर्शयामास शिष्यान्।
गोपीनाथं परमसुखदं भट्टमीडे गुरुं तं,
प्रेमानन्दं मृदुलहृदयं ब्रह्मविज्ञानमूर्तिम्॥"

आपका **पाटोत्सव श्रावण शुक्ला सप्तमी** को मनाया जाता है।

श्रीकेशव भट्टाचार्य

वेदान्तवेद्य ब्रह्म-शिवादिवन्दित, भगवान् केशव के ही अंशावतार श्रीकेशवभट्टाचार्य थे। वेदान्तकेशरी श्री अनन्तराम ने आपके सम्बन्ध में कहा है—

"श्रीकेशवं व्रजपतिं द्रुहिणादिवन्द्यं,
कृष्णं भटतमनिशं श्रुतिसारगम्यम्।
भक्तस्य तापशमनाय निबद्धकक्षं,
भट्टं च केशवमहं शरणं व्रजामि॥"

आपका **पाटोत्सव चैत्र शुक्ला प्रतिपदा** को मनाया जाता है।

श्रीगांगल भट्टाचार्य

शरणागतजनों के लिए, जैसे गंगा को ला रहे हों, इस प्रकार आपकी पुनीत वाणी से भावुक भक्त संतृप्त रहा करते थे। शुद्धहृदय जनों को भगवान् के चरण कमलों तक पहुँचाने के लिए, आप साक्षात् जाह्नवी रूप थे। गंगाजी जिस प्रकार इधर-उधर से आये हुए जल को समुद्र तक पहुँचा देती हैं, उसी प्रकार आपने भी अनेक जीवों को भगवान् के चरणकमलों की सन्निधि में पहुँचाया। आपकी वन्दना अनन्तरामजी ने इस प्रकार की है—

"गंगास्पदं चरणपंकजमीश्वरस्य,
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलांछनाढ्यम्।
यो लाति स्वाश्रितजनाय कृपाभियोगात्,
तं गांगलं च प्रणतोऽस्मि गुरुं हि भट्टम्॥"

आपका **पाटोत्सव चैत्र कृष्णा द्वितीया** को मनाया जाता है।

x x x

श्रीसुन्दरभट्टाचार्यजी से श्रीगांगलभट्टाचार्य तक सोलह आचार्यों की वन्दना के भिन्न भिन्न कवियों की कृति रूप कितने ही स्तोत्र मिलते हैं। किन्तु उनमें अत्यन्त संक्षिप्त नाम, धाम, गुण आदि का ही उल्लेख मिलता है। श्रीसुन्दरभट्टाचार्य के कई एक संस्कृत ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उनके परवर्ती रामचन्द्रभट्टाचार्य के भी **'गोष्ठी-रहस्य'** आदि ग्रन्थ मिले हैं, किन्तु अन्य आचार्यों की कृति अनुपलब्ध है। अतः यहाँ उनका नाम स्मरण मात्र ही किया गया है। श्रीगांगलभट्टाचार्य के पीठासीन श्रीकेशवकाश्मीरीभट्टाचार्य के भी कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं और उनके इतिवृत्त की भी कुछ सामग्री मिलती है, तदनुसार उनका समय 13वीं शताब्दी निश्चित है। विक्रम की बारहवीं शताब्दी तक क्रमशः उक्त आचार्यों का समय है।

श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य

समस्त भारत में पर्यटन करके आपने वैष्णव धर्म की पताका फहराई थी। आपका जन्म स्थान भी वही तैलंग देशस्थ वैदूर्य्य पत्तन (मूँगीपट्टन या पैठण) है। श्रीनिम्बार्काचार्य के वंश में ही आपका आविर्भाव हुआ था। श्रीरङ्गवेंकटाचल, तोताद्रि, काँची, रामाश्रम होते हुए आपने हेमगोपाल के दर्शन किये। कन्याकुमारी से हिमालय तक जहाँ-जहाँ आप गये, वहाँ के निवासियों ने आपका बड़ा सन्मान किया।

उज्जैन में कुछ दिन स्थायी निवास कर भागवत पर **'तत्त्व-प्रकाशिका'** टीका लिखी। वहाँ से रैवत पर्वत, कर्दमाश्रम होते हुए द्वारका पहुँचे।

जब पुष्कर आये, तब उनके साथ 14 हजार शिष्य थे। आपने पाखण्डियों का दमन कर वैदिक धर्म के ध्वज को उन्नत बनाया। स्यमंत पंचक, वायुह्रद और ब्रह्म सरोवर तथा प्राची सरस्वती आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए नृसिंहाश्रम पहुँचे। वहाँ से काश्मीर मण्डल गये। उस समय वहाँ मांसाहारी म्लेच्छों का दल बहुत बढ़ा हुआ था। उन अत्यन्त दम्भी, पापी और अनित्य वस्तुओं में ही नित्यबुद्धि रखने वालों का यूथपति बड़ा बलवान् एक यवन था।

ज्योंही चौदह हजार शिष्य सन्तों सहित **श्रीकेशवकाश्मीरिभट्ट आचार्य** का वहाँ प्रवेश हुआ, घड़ी, घण्टे बजने लगे और शङ्खों की तुमुलध्वनि हुई तो तांत्रिक यवनों का टोल का टोल सामने चढ़ आया और अपनी आसुरी माया फैलाई, जिससे बहुत से साधु सन्त घबरा गये। किन्तु आचार्यश्री के सन्मुख आते ही उनके तेज से यवनों में भगदड़ मच गई। वे ऐसे बिलविला गए, जैसे सूर्य के उदय होते ही अंधकार विलीन हो जाता है। यूथपति मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, मुख से रुधिर बहने लगा। उसका छोटा भाई जो आया, उसे अपने तन्त्र बल से चारों ओर अंधकार फैला दिया। आचार्य ने सूर्य का आवाहन कर उसे नष्ट कर दिया।

यवन-समाज के आतङ्क को दूर कर काश्मीर में ही उन्होंने वेदान्तसूत्रों पर **'कौस्तुभप्रभावृत्ति'** लिखी। यहाँ से बद्री, केदार, काशी, बंगाल होते हुए गंगासागर पहुँचे। कुछ लेखकों ने बंगाल में आपसे श्रीकृष्ण चैतन्य के मिलने की भी चर्चा की है, किन्तु वह निराधार कल्पना है।

जब आप नैमिषारण्य पहुँचे तो यह सुना कि मथुरा मण्डल में म्लेच्छों ने बड़ा आतंक फैला रखा है और हिन्दुओं को यवन बुरी तरह सता रहे हैं। धर्म रक्षा के लिए उसी क्षण चौदह हजार शिष्यों सहित आचार्यश्री ने प्रस्थान कर दिया। ध्रुव क्षेत्र (मथुरा ध्रुव टीला) पहुँचे। वहाँ विश्रान्त घाट पर यवनों ने एक ऐसा यन्त्र लगा दिया था, जिसके नीचे होकर निकलने से या उसके देखने मात्र से ही हिन्दू मुसलमानों जैसे अङ्गहीन (सुन्नत वाले) और शिखा हीन हो जाते थे। मथुरावासी बड़े भयभीत हो रहे थे। सब हिन्दू हाथ जोड़कर आचार्यश्री के चरणों में गिर पड़े। उनकी विनती सुनकर आपने सबको सान्त्वना दी और समस्त शिष्यों सहित स्नान के निमित्त विश्राम घाट पर पधारे, जहाँ वह यन्त्र लगा हुआ था। उनके तेज से यवन ऐसे भागे, जैसे सिंह के आगमन मात्र से ही वन के पशुओं में भगदड़ मच जाती है। उनकी वह माया भी ऐसी विलीन हो गई, जैसे सूर्य के उदय होते ही अंधकार। आचार्यश्री ने यन्त्रराज की स्थापना की। उसके देखने से ही यवन (म्लेच्छ) मूर्च्छित होने लगे, उनके पुरुष प्रधान चिह्न लुप्त हो, स्त्री प्रधान चिह्न प्रकट होने लगे। लज्जित होकर अपने अधीश सहित समस्त यवन आचार्य श्री के चरणों में गिर पड़े। कृपालु आचार्यश्री ने यमुना जल के छींटे मार मार कर उन्हें शुद्ध बनाया, जिससे वे क्रूरता छोड़कर हरिभक्ति परायण बन गये।

आपकी संस्कृत रचनाएँ प्रचुर मात्रा में हैं। उनमें से कुछ लुप्त हो गईं और बहुत सी उपलब्ध भी हैं। आपके यमुना-स्तोत्र के कुछ श्लोकों से यह आशय अभिव्यक्त होता है—

हे यमुने! मोर, पिक, शुक आदि के कलरव से गुञ्जायमान इस वृन्दावन धाम में गौ, वत्स, गोप-बालकों से आवृत, गोपियों को आनन्ददायक, व्रजाङ्गनाओं के यूथों से परिवृत, रासोत्सव में उल्लसित लीलानृत्यादि के कौतुकी, ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादि देवों द्वारा पूजित

करोड़ों कामदेवों को मोहित करने वाले मुरली मनोहर श्रीश्यामसुन्दर मुझे कब दर्शन देंगे और मैं इन चक्षुओं से टकटकी लगाकर उन्हें यहाँ कब देखता रहूँगा ?

उस समय ब्रजवासियों की आप में अनन्यनिष्ठा थी। उस समय का एक प्राचीन लेख है, जिससे यह स्पष्ट होता है—"इसी परम्परा के आचार्यों को सब व्रजजन पूजते आये हैं और भविष्य में भी इसी श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की यहाँ प्रधानता रहेगी।"

श्रीब्रजभूषणदेवजी

श्रीदेवाचार्यजी से इस सम्प्रदाय में एक शाखा और चली, जिसमें आगे चलकर रसिकशेखर श्री स्वामी हरिदास जी महाराज का आविर्भाव हुआ। इस शाखा के प्रथम आचार्य श्रीब्रजभूषणदेवजी (श्रीदेवाचार्य के द्वितीय शिष्य) हैं। निजमतसिद्धान्त के अवसान खण्ड में ग्रन्थकार ने आपके इतिवृत्त पर विशेष प्रकाश डाला है। आप मानसरोवर पर ही श्रीगुरुदेव का चरित्र सुनकर श्रीवृन्दावन आये और 25 वर्ष यहाँ विराजकर निकुञ्जवास प्राप्त किया।

श्रीब्रजजीवनदेवजी

आपका एक अच्छे जमींदार द्विज घर में आविर्भाव हुआ था। आप राज-काज छोड़कर वैष्णव बन गये और बीस वर्ष तक यहाँ विराजे।

श्रीजनार्दनदेवजी

आपका जन्म सम्भव नगर में हुआ था। गुरु शरणागत होकर 60 वर्ष तक उनकी गद्दी पर विराजे।

श्रीवंशधरदेवजी

आप श्रीवृन्दावन में वंशीवट के नीचे ही रहा करते थे और नित्य रास का दर्शन किया करते थे। पैंतीस वर्ष तक आपका यहाँ निवास रहा।

श्रीभूधरदेवजी

गुरुदेव में आपकी प्रगाढ़ निष्ठा थी। जिस समय गुरुदेव निकुञ्जवासी हुए, उस समय आप उनके दर्शन नहीं कर पाये थे। गुरुदेव का निकुञ्जवास ज्ञात होते ही उनके वियोग में उसी क्षण आपका शरीर छूट गया।

श्रीहरिवल्लभदेवजी

आप वृन्दावन निधुवन में कुटी बनाकर भजन साधन करते थे। गुरुदेव के निकुञ्जवास के पश्चात् आप सत्तर वर्ष उनकी गद्दी पर विराजे।

श्रीमुकुन्ददेवजी

आप तैलंग ब्राह्मण एवं काशी के निवासी थे। काशी से मथुरा और वहाँ से वृन्दावन आकर श्रीहरिवल्लभदेवजी से वैष्णव दीक्षा ग्रहण की। वृन्दावन की द्रुम बेलियों को

श्यामसुन्दर की सखी रूप सुनकर उनके दर्शनों की बड़ी उत्कट इच्छा हुई और उनके सखी रूप में दर्शन होने पर तल्लीन रहने लगे। आप चौबीस वर्ष गुरुदेव की गद्दी पर विराजे।

श्रीललितभानुदेवजी

बीजापुर (दक्षिण) के द्रविड़ ब्राह्मण नृसिंहाचार्यजी अयोध्या आ बसे थे। उनके ही पुत्र ललितभानुदेवजी हुए। आपके चरण में पद्म का चिह्न था। पिता के देहावसान होने पर माता के सदुपदेश से वृन्दावन आकर श्रीमुकुन्ददेवजी के शिष्य बन गये। निधुवन के रंगमहल से श्रीरसिकबिहारीजी का प्राकट्य हुआ। एक समय गुजरात से एक कृपाराम ब्राह्मण आया और शिष्य बनकर आपकी सेवा करने लगा। श्रीरसिकबिहारीजी की आज्ञानुसार वह गिरनार चला गया। वहाँ के राजा और उनकी रानी दोनों कृपाराम के शिष्य बन गये। उन्होंने वृन्दावन आकर श्रीरसिकबिहारी जी और ललितभानुजी के दर्शन किये। ठा. श्रीरसिकबिहारीजी की उसने खूब सेवा की। श्रीललितभानुदेवजी अस्सी वर्ष तक गद्दी पर रहे।

श्रीकह्लरदेवजी

मत्स्यदेश के बैराठ नगर (विराटनगर) में सारस्वत द्विजकुल में आपका जन्म हुआ था। किशोर अवस्था में ही वृन्दावन आकर गुरु शरणागत हो गये। आप करवागुदड़ी के प्रवर्तक कहे जाते हैं। साठ वर्ष तक वृन्दावन में गुरुदेव के सिंहासन पर विराजे।

श्रीवासुदेवजी

आप भी सारस्वत ब्राह्मण थे और वृन्दावन वंशीवट के विशेष अनुरागी थे। अन्य भावुक सन्तों को भी आपने वंशीवट का अनुभव करवाया। आप भी साठ वर्ष तक भूतल पर विराजे।

श्रीसुरतभानजी

आप द्रविड़ ब्राह्मण थे। धर्मपुरी से चलकर वृन्दावन आये, अच्छे विद्वान् थे। गुरुदेव से दीक्षा लेकर वृन्दावन ही रहने लगे। एक बार वृन्दावन में तार्किकों का दल आया। वह आप से पराजित हो गया। उनमें एक के चित्त में विशेष अनुराग था। उन्हें दीक्षा देकर उपासना पद्धति बतलाई और पीताम्बरदेव नाम रखा। चालीस वर्ष आप इस गद्दी पर विराजे।

श्रीपीताम्बरदेवजी

आप मधुर रस के बड़े रसिक सन्त हो गये हैं। सदा भगवद्भागवत सेवा में ही परायण रहते थे। पैंसठ वर्ष व्यक्त रूप से रहकर धाम को प्राप्त हुए।

श्रीचिन्तामणिदेवजी

कृष्णावेणी के निकट आपको भगवद्भक्ति का आदेश मिला। स्मार्त परिवार में विवाद बढ़ा, उनका समाधान कर एक भावुक को आपने शिष्य बनाया। वृन्दावन में सत्तर वर्ष तक आप रहे।

श्रीयुगलकिशोरदेवजी

आप दक्षिणी ब्राह्मण थे। आप बड़े प्रभावशाली आचार्य हुए। डेढ़ सौ वर्ष तक आपने निधुवन में निवास किया।

श्रीदामोदरदेवजी

आपका औदुम्बर द्विजकुल में जन्म हुआ था, किन्तु वर्ण का अभिमान नहीं था। आपने साठ वर्ष तक निवास कर जीर्ण वस्त्र की भाँति तन का त्याग किया।

श्रीकमलनयन स्वामी

आप तैलंग ब्राह्मण थे। एक समय उज्जैन में शाक्तों ने भगवान् रामचन्द्र की अवज्ञा की। जल पर शिला तैराने वाली गाथा को वे असत्य बतलाने लगे। दैवयोग से आप भी वहाँ जा पहुँचे। आपने कहा—भगवान् राम की तो अपार महिमा है, जिनके हृदय में भगवद्भक्ति हो, उनके नाम से ही शिला तैर सकती है।

ब्राह्मणों ने दस-बीस पत्थरों पर 'कमल नयन' नाम लिखकर उन्हें जल में छोड़ दिया। सब पत्थर तैरने लगे। वादी चकित हो गये और चरणों में गिर पड़े। आप वहाँ से वृन्दावन आ गये। नब्बे वर्ष फिर आप यहाँ ही रहे। आप सखीरूप में रहकर श्रीयुगल सरकार को लाड़ लड़ाते थे।

श्रीगोवर्धनदेवजी

आप गौड़ ब्राह्मण थे। बचपन से ही गुरुदेव की शरण में आकर निधुवन में रहने लगे। भगवत् सेवा में ही तल्लीन रहते थे। आप जब पद गान करते तो श्रीयुगलकिशोर उठकर नृत्य करने लग जाते थे। आप में उत्कट सखी भाव था। आप चौरासी वर्ष तक व्यक्त रूप में यहाँ विराजे।

श्रीश्यामदेवजी

आप भी गौड़ ब्राह्मण थे। गुरुदेव के परमधाम वास होने पर उनके विरह में व्याकुल होकर व्रज के वनों में फिरने लगे। कोकिलावन में श्रीयुगलकिशोर के दर्शन हुए। शान्ति से कुछ दिन वहाँ निवास किया। सत्तर वर्ष आप इस धरा धाम पर रहे।

श्रीहृषीकेशजी

आप गढ़ा वालेर के सनाढ्य ब्राह्मण थे। सोलह वर्ष की आयु में ही वृन्दावन आ गये थे। कोकिला वन में श्रीश्यामदेवजी से दीक्षा लेकर भजन करने लगे। आपने तीर्थों की यात्रा की। बीस वर्ष पश्चात् वृन्दावन लौटे। गुरुदेव के आसन पर साठ वर्ष विराजे।

श्रीमधुसूदनदेवजी

आपका कान्यकुब्ज द्विज वंश में जन्म हुआ था। आप मानसरोवर पर रहा करते थे। एक दिन ब्राह्मण वेश में नारदजी ने आकर मानसरोवर का रहस्य और गोपीश्वर का

स्थान बतलाया। गोपीश्वर ने आप को वृन्दावन के अव्यक्त स्थल भी बतलाये। आप एक सौ बारह वर्ष तक व्यक्त रूप से वृन्दावन में रहे।

श्रीगोपदेवजी

आप भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। दीक्षा लेकर व्रज के वन उपवनों का दर्शन किया और सरोवरों पर निवास किया। आप संगीत के भी मर्मज्ञ थे। आपके द्वारा सम्प्रदाय का भी विशेष प्रचार हुआ था। आप पचास वर्ष व्यक्त रूप से यहाँ विराजे।

श्रीरूपनिधानजी

आपका माथुर ब्राह्मण कुल में जन्म हुआ था। बड़े होने पर जब ब्याह शादी की तैयारी होने लगी तो कंकण बाँधे हुए ही वृन्दावन भाग आये। परिवार के समझाने पर भी जब न माने, तब आपकी दृढ़ प्रतिज्ञा देखकर श्रीगोपदेवजी ने मन्त्रोपदेश दिया।

आप निरन्तर प्रभु के ध्यान में निमग्न रहा करते थे। निकुञ्जवास के समय आपके सहचरी रूप में दर्शन हुए। आपने चालीस वर्ष तक व्यक्त रूप में यहाँ निवास किया।

श्रीजनहरियाजी

आप भी माथुर (चतुर्वेदी) ब्राह्मण ही थे। एक दिन शंकरजी ने प्रसन्न होकर इनसे वर माँगने को कहा, तब आपने नित्यकिशोर की अनन्य भक्ति का वर माँगा। शंकरजी ने कहा—रूपनिधानजी के पास जाकर वैष्णवी दीक्षा लो, फिर वहाँ ही रहकर प्रभु की आराधना करो। उनके आदेशनुसार वैसा ही किया। पैंतीस वर्ष वृन्दावन रहे।

श्रीमथुरानाथजी

आप वटेश्वर के सारस्वत ब्राह्मण थे। वानप्रस्थ काल में श्रीवृन्दावन आकर जनहरियाजी से मंत्रोपदेश लिया। आप वेदों के अच्छे ज्ञाता थे, किन्तु सदा माधुर्य रस में अनुरक्त रहा करते थे। बावन वर्ष वृन्दावन निधुवन में रहकर निकुञ्जवास किया।

श्रीप्रेमनारायणजी

आपका गौड़ ब्राह्मण कुल में जन्म हुआ। माता-पिता के परमधामवास होने पर आपके चित्त में उत्कट वैराग्य अभिव्यक्त हो गया। वृन्दावन आकर श्रीमथुरानाथजी से दीक्षा ली और निधुवन छोड़कर कहीं भी नहीं गये। पचहत्तर वर्ष आप व्यक्त रूप से वृन्दावन में रहे।

श्रीअनन्यदेवजी

आप भी गौड़ ब्राह्मण थे। गुरुनिष्ठा इतनी बढ़ी-चढ़ी हुई थी कि पहले गुरुजी की खडाऊँ की सेवा कर लेते थे, तब फिर भगवान् की सेवा करना आरम्भ करते। इस रहनी से निधुवन वृन्दावन में आप 112 वर्ष विराजे।

श्रीश्यामखोजी जी

आप चम्पावती के गौड़ ब्राह्मण थे। पिताजी के संग वृन्दावन पहुँचते ही अनुराग बढ़ा, पिता-पुत्र दोनों ही वृन्दावन में रह गये। पिता के परमधाम वास होने पर आप विरक्त वैष्णव बन गये। श्रीअनन्यदेवजी ने इन्हें मन्त्र देकर जमुना तट पर रहने की आज्ञा दी। तदनुसार आप यमुनाजी के तट पर ही रहने लगे, किन्तु ऐसा व्रत करलिया कि किसी से भी भोजन की याचना नहीं करनी चाहिए। आठ दिन बैठे-बैठे बीत गये, तब श्रीकृष्ण ने स्वयं आकर इन्हें प्रसाद पवाया। आपने प्रभु को पहिचान लिया। प्रभु ने युगलरूप दर्शन कराया और कहा ऐसा हठ फिर कभी मत करना। आपका शरीर बावन वर्ष तक रहा।

श्रीलघुवीठलजी

आपका दिल्ली में गौड़ ब्राह्मण के कुल में जन्म हुआ था। उत्कट वैराग्य उद्‌भूत होने के कारण घर छोड़कर श्रीवृन्दावन आ गये। श्रीश्यामखोजी जी की सेवा करने लगे। योग्य अधिकारी जानकर उन्होंने दीक्षा दी, आप नित्यकिशोर मन्त्र को जपने लगे। गुरुदेव के निकुञ्जवास होने पर आप उनकी गद्दी पर विराजे और साठ वर्ष वृन्दावन रहे।

श्रीमोहनदेवजी

आप थानेश्वर के गौड़ ब्राह्मण थे, घर द्वार छोड़कर वृन्दावन आ गये। श्रीलघुवीठलजी के दर्शन कर बड़े प्रभावित हुए। आपसे वैष्णवी दीक्षा लेकर भजन करने लगे। आपकी कीर्ति चारों दिशाओं में फैल गई।

आप अस्सी वर्ष तक निधुवन में इस रहनी से रहे, फिर निकुञ्जवास हुआ।

श्रीत्रिभंगदेवजी

आप बड़नगर (गुजरात) के नागर ब्राह्मण थे। आपका घराना बड़ा धन-सम्पन्न था, किन्तु सबको छोड़कर आप वृन्दावन आ गये।

श्रीमोहनदेवजी से दीक्षा ग्रहण कर उनकी सेवा करने लगे।

श्रीहरिविलासदेवजी

आप ब्राह्मण थे, सांसारिक प्रपंचों से ऊबकर नारायण सरोवर की यात्रा करने गये वहाँ ही—

निरखे देव त्रिभंग प्रसंसी।
भये शिष्य निम्बारक वंसी॥

गुरुदेव के लीला विस्तार होने पर आप वृन्दावन आकर निधुवन में रहने लगे। बावन वर्ष आप यहाँ विराजे।

श्रीयशुदानन्दनदेव जी

आप गौड़ ब्राह्मण थे। अपने गुरुदेव के उत्तराधिकारी होकर आप नित्य विहार की उपासना किया करते थे। महीनों तक तो आप जमुना जल में ही रहा करते थे। आपकी

रहनी बड़ी अलौकिक थी। बानवे वर्ष व्यक्त रूप से श्रीधाम में विराज कर नित्य नवीन उत्सव करते रहे।

श्रीजयदेवजी

वृन्दावन-वैभव के रसमय गायक श्रीजयदेवजी साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के अंश थे। उन्होंने श्रीजगन्नाथ भगवान् की आज्ञा से श्रीयशुदानन्दनदेवजी से दीक्षा ली। माता-पिता ने भी उन्हें गुरुदेव के अर्पण कर दिया। अपने गुरुदेव के संग वे वृन्दावन निधुवन में आये। श्रीवन की छटा देखकर श्रीजयदेवजी बड़े प्रसन्न हुए। कुछ दिनों पश्चात् जब गुरुदेव का निकुञ्जवास हो गया, तब ये उनके विरह में व्याकुल हो चल पड़े। पुरुषोत्तम के यह अनूप वचन सुनकर कि 'श्रीराधामाधव ही प्रगट स्वरूप हैं' ये श्रीराधामाधव का पूजन करने लगे और अनुपम भोग लगाकर साधु सन्तों को प्रसाद बाँटने लगे।

बहुत से सेवक भी आपके साथ में चले।अतः सबके उपयुक्त धन भी संग ले चले। मार्ग में दुष्टों ने सारा धन छीन लिया और हाथ-पैर काटकर जयदेवजी को कूप में डाल दिया। राजा को खबर मिलते ही उसी क्षण इन्हें कुएँ से निकलवाया और सतगुरु मानकर अपने महलों में ले गया, जयदेवजी ने राजा से कहा—"राजन्! तुम सन्तों की सेवा किया करो।" राजा ने गुरु आज्ञा के अनुसार सन्त सेवा करना आरम्भ कर दिया।

एक दिन कुछ दुष्ट साधु वेश बनाकर आ गये, किन्तु जयदेवजी ने राजा द्वारा उनकी पूजा और सत्कार ही करवाया। उन कृतघ्नियों ने अपनी प्रकृति के अनुसार जब अभद्र व्यवहार करना चाहा तो उन्हें वैसा ही फल मिला।

उनकी दशा पर परम दयालु श्रीजयदेवजी के चित्त में बड़ी करुणा हुई। प्रभु की लीला बड़ी विचित्र है। जयदेवजी के हाथ-पैर पूर्ववत् हो गये। उन्हें देखकर राजा प्रेम विभोर हो उनके साथ हो लिया।

राधामाधव के निकट, निरख अठारा रूप।
मिले आनि जयदेव मधि, लखि नृप कृत्य अनूप॥

आपने भगवान् के भोग लगाकर ज्यों ही शयन कराया, उसी क्षण प्रभु प्रेरित पद्मावतीजी वहाँ पहुँची। श्रीजयदेवजी ने उज्ज्वल भाव से उनको वहाँ रखा। आकाशवाणी हुई और श्रीराधामाधव की आज्ञानुसार उन्होंने **'गीत-गोविन्द'** बनाया। उसमें प्रियाजी के उत्कर्ष की पुष्टि के सम्बन्ध में श्रीजयदेव के चित्त में कुछ विचार उत्पन्न हुआ तो श्रीठाकुरजी ने स्वयं अपने कर-कमलों से छन्द-पूर्ति कर दी, तब जयदेवजी को श्रीप्रियाजी की प्रधानता का निश्चय हो गया। गीत-गोविन्द का स्वर्ग में भी गान होने लगा। जहाँ कहीं भी गीत-गोविन्द का गायन हो, वहाँ स्वयं श्रीपुरुषोत्तम उसे सुनने के लिए आते हैं। आपने एक सौ पाँच वर्ष तक इस धरातल को अलंकृत किया और नित्य विहार के सार की अभिलाषा रखी। यह आपका संक्षिप्त जीवन है। वास्तव में—

"कृष्णरूप जयदेव हैं, कवि न करत निर्धार।
यश अपार सूछम कह्यो, छाँड़ि सकल विस्तार॥"

श्रीजयदेवजी के पश्चात् क्रमशः श्रीजनगोपालजी, श्रीमाधवदेवजी, विष्णुदेवजी, बालगोविन्ददेवजी, रामकृष्णदेवजी, परमानन्ददेवजी, भागवतदेवजी, जनभगवानजू, नन्दलालजू, हरिदेवजू और आशुधीरदेवजू इन ग्यारह के पश्चात् श्रीस्वामी हरिदासजू प्रकट हुए थे।

(4) श्रीनिम्बार्काचार्य के पूर्ववर्ती व समसामयिक वेदान्ताचार्य

श्रीनिम्बार्काचार्य के पूर्ववर्ती वेदान्ताचार्य

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य से पूर्ववर्ती (वेदान्त के) आचार्यों का परिचय जानने का प्रमुख आधार है—भगवान् बादरायण व्यास रचित ब्रह्मसूत्र। जिसके अनुशीलन से ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में अनेक आचार्यों ने वेदान्त-दर्शन के विषय में अपने-अपने अभिमत निर्धारित कर रखे थे। संभवतः इनके विरचित ग्रन्थ भी रहे हों, जिनके आधार पर भगवान् बादरायण ने इनके मतों का उद्धार किया है, परन्तु दुर्भाग्यवश आज वे सब काल-कवलित हो चुके हैं। केवल जैमिनि का सूत्र ग्रन्थ ही उपलब्ध है, पर उसकी गणना पूर्वमीमांसा के अन्तर्गत की जाती है। बादरायण के द्वारा उल्लेख किये जाने के कारण इतना तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनका वेदान्त के विषय मे विशेष प्रभाव था। इनमें से कई आचार्यों का नामोल्लेख तो जैमिनि ने भी किया है। इन्हीं के सहारे इनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है—

आश्मरथ्य

आश्मरथ्य का नाम ब्रह्मसूत्र में दो बार आता है।[4]

(1) प्रसंग 'प्रादेशमात्र' शब्द की व्याख्या का है। परमेश्वर को प्रादेशमात्र कहने का क्या अभिप्राय है? आश्मरथ्य का कहना है कि परमात्मा वस्तुतः विभु है, सर्वव्यापक है। फिर भी अनन्यशरण भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए वही भगवान् श्रीकृष्ण उनके हृदयकमल में नित्य आनन्द स्वरूप अप्राकृतविग्रह से उसी प्रादेशमात्र में अभिव्यक्त होकर उनकी इच्छा की पूर्ति करते हैं। जैसे—उन्होंने स्तम्भ में ही नृसिंह स्वरूप से प्रकट होकर भक्त प्रह्लाद की कामना पूर्ण की थी। भक्तों की इच्छा के अनुरूप ही इनके हृदय अथवा अन्य भावना स्थलों में तत्तत् रूपों में अभिव्यक्त होते हैं। तत्तत् स्थलों में अभिव्यक्त होने के कारण वेद में उसे 'प्रादेशमात्र' कहा गया है।

(2) आश्मरथ्य के मतानुसार परमात्मा और जीवात्मा में कार्यकारकण भाव से स्वाभाविक भेदाभेद सम्बन्ध है। **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'** इत्यादि सृष्टि विधायक श्रुतियों में जीव की गणना भी भूतों में कर ली गई है। परिणामतः इसे भी कार्य मान लिया जाता है। ब्रह्म कारण है। कार्यकारण होने के कारण इनमें वेद ही मुख्य हैं। यहाँ द्वैत प्रतिपादक श्रुतियाँ समन्वित हो जाती हैं। लेकिन कार्य तज्जत्वादि हेतुओं से कारण अभिन्न भी रहता है, इसलिए अभेद भी मुख्य है। यहाँ अद्वैत प्रतिपादक श्रुतियाँ सार्थक हो जाती हैं। इस प्रकार उभयविध वाक्यों का स्वार्थ में प्रामाण्य होने से जीव और ब्रह्म का भेदाभेद सम्बन्ध स्वाभाविक है। यहाँ कार्यवाचक शब्दों का कारणपरक भी अर्थ होता

है। घट और भूमि में कार्य-कारण भाव से 'घट' शब्द का भूमिपरक भी अर्थ किया जाता है। इस भाँति 'एकविज्ञातेन सर्वविज्ञातं' वाली प्रतिज्ञा भी सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वाभाविक द्वैताद्वैत के सबसे प्राचीन आचार्य आश्मरथ्य हैं। मीमांसादर्शन में भी इनका नाम एक बार आया है।[5]

आचार्य औडुलोमि

आचार्य औडुलोमि का नाम ब्रह्मसूत्र में तीन बार आया है।[6] ये भी भेदाभेदवादी थे।

(1) इनके मतानुसार **'न जायते म्रियते वा विपश्चित्' 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः'** आदि श्रुति-स्मृति के द्वारा प्रतिपादित जीवन श्रवण-मनन-निदिध्यासन करके जब परमात्मा का साक्षात्कार करके शरीरेन्द्रिय संघात से उत्क्रमण करता है, तो वह ब्रह्मभावापन्न हो जाता है। उस अवस्था में 'जीव' शब्द से परमात्मा का ही अभिधान होता है। अर्थात् वृद्धावस्था में भेद और मुक्तावस्था में अभेद है—ऐसा जीव और ब्रह्म का भेदाभेद[7] आचार्य औडुलोमि स्वीकार करते हैं।

(2) कर्माङ्गाश्रित उपासना के सम्बन्ध में आचार्य औडुलोमि का स्पष्ट मत है, कि कर्माङ्गाश्रित उद्गीथादि की उपासना करना ऋत्विक् का कर्त्तव्य है, क्योंकि यजमान दक्षिणा देकर साङ्गोपाङ्ग कर्म करने के लिए ऋत्विक् का क्रय कर लेता है। ऋत्विक् जो-जो अभिलाषायें करता है, उन सबका फल यजमान को मिलता है, ऋत्विक् को नहीं।

(3) मुक्त पुरुष के सम्बन्ध में आचार्य औडुलोमि का मत है कि ब्रह्मभावापन्न जीवात्मा चिन्मात्र रूप से ही अभिव्यक्त होता है। क्योंकि इनके मत में जीवन केवल चिन्मात्र (चैतन्य मात्र) है उसमें और कोई गुण नहीं है। आचार्य औडुलोमि के मत में अपहतपाप्मा' आदि श्रुतिप्रोक्त विशेषण भी जीव के विकारादि व्यावृत्ति के सूचक ही हैं।

आचार्य काशकृत्स्न

आचार्य काशकृत्स्न का नाम ब्रह्मसूत्र में केवल एक बार आया है।[8] इनका कहना है कि **'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्'** इत्यादि श्रुतियों में प्रसिद्ध परमात्मा अपने नियम्यभूत जीवात्मा में नियन्तृरूप से अवस्थित रहता है। अतः जीव शब्द से परमात्मा का भी बोध होता है। इस प्रकार नियम्यनियन्तृ भाव से काशकृत्स्न आचार्य भी भेदाभेद[9] स्वीकार करते हैं।

आत्रेय

आत्रेय का नाम ब्रह्मसूत्र में केवल एक बार आया है।[10] सूत्र उपासना-सम्बन्धी है। अंगाश्रित उपासना दोनों प्रकार से हो सकती है—यजमान के द्वारा तथा ऋत्विक् के द्वारा। पर आचार्य आत्रेय का अभिमत है कि फल तो यजमान को मिलता है, इसलिए अंगाश्रित उपासना भी उसे ही करनी चाहिए।

मीमांसा-सूत्र में भी आत्रेय का नाम दो बार उल्लिखित हुआ है—

फलमात्रे यो निर्दिशेत् अश्रुतौ ह्यनुमानं स्यात्। (मीमांसादर्शन 4-3-18)

निर्देशाद्वा त्रयाणां स्यादग्न्याधेये ह्यसम्बन्धः क्रतुषु ब्राह्मणश्रुतिरित्यात्रेयः।

(मीमांसा दर्शन 6-1-26)

महाभारत में भी निर्गुण ब्रह्मविद्या के उपदेशक रूप मे एक आत्रेय का नाम पाया जाता है (13-130-3) परन्तु ये आत्रेय ब्रह्मसूत्र में निर्दिष्ट आत्रेय से भिन्न हैं या अभिन्न, इसका निर्णय यथावत् नहीं किया जा सकता।

कार्ष्णाजिनि

इनका नाम भी ब्रह्मसूत्र में केवल एक ही बार आया है।[11] पुनर्जन्म के सम्बन्ध में इनका मत है कि अनुशयभूत कर्मों के द्वारा प्राणियों को नई योनि प्राप्त हुआ करती है। 'अनुशय' से अभिप्राय उन कर्मों से है, जो भोगे गये कर्मों के अतिरिक्त भी बचे रहते हैं। अतः इनके मत से ये कर्म ही नयी योनि के कारण हैं, आचार या शील नहीं। श्री श्रीनिवासाचार्य ने इनके मत को इस भाँति उपस्थित किया है—

"यस्मादियं चरणाख्या चारश्रुतिः कर्म्मोपलक्षणार्थेति कार्ष्णाजिनिराचार्यो मन्यते, पुण्यापुण्यलक्षणकर्माभावे केवलादाचारात् शुभाशुभयोनि-प्राप्त्यसंभवात्।"

मीमांसा-सूत्र में भी इनका नामोल्लेख उपलब्ध होता है।[12]

जैमिनि

भगवान् बादरायण ने जैमिनि का नामोल्लेख ब्रह्मसूत्र में 11 बार किया है।[13] इतना अधिक और किसी का नामोल्लेख नहीं हुआ है। इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि ये जैमिनि कर्म-मीमांसा के सूत्रकार ही हैं। जैमिनि और बादरायण परस्पर एक दूसरे के मत का उद्धरण देते हैं, इससे प्रतीत होता है कि दोनों समसामयिक थे। प्राचीन जनश्रुति भी है कि जैमिनि व्यास के शिष्य थे। इनका मत प्रसिद्ध है, इसलिए यहाँ विशेष विवरण देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

आचार्य बादरि

इनका नामोल्लेख ब्रह्मसूत्र में चार बार हुआ है।[14] मीमांसा-सूत्रों में भी इनका नामोल्लेख मिलता है।[15] ब्रह्मसूत्र में उल्लिखित स्थानों का अध्ययन करने से इनका मत कुछ इस प्रकार का प्रतीत होता है—

(1) उपनिषदों में सर्वव्यापक परमात्मा को 'प्रादेशमात्र' भी बतलाया गया है। इसकी व्याख्या भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। बादरि का मत था कि आराधक के हृत्पुण्डरीक में परमात्मा का प्रादेशमात्र रूप से आविर्भाव होता है तथा द्युलोकादिकों में जो मूर्द्धा आदि की कल्पना की गयी है, वह उपासना की सुविधा के लिए है।

(2) छान्दोग्य उपनिषद में पुनर्जन्म के सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध श्रुति है—**तद्य इह रमणीयचरणा...इत्यादि**। इस श्रुति में पठित 'चरण' शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में आचार्यों में गहरा मतभेद दृष्टिगोचर होता है। आचार्य बादरि के मत में सुकृत और दुष्कृत कर्म ही चरण शब्द से कहे गये हैं। अतः 'रमणीय चरणाः' शब्द का अर्थ सुकृत कर्म करने वाले एवं 'कपूयचरणाः' का दुष्कृत कर्म करने वाले पुरुष होगा। आचार्य श्रीनिम्बार्क ने एक वाक्य में ही कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है—

"सुकृतदुष्कृते कर्म्मणी चरणशब्देनोच्येते इति बादरिः।"

(3) छान्दोग्य उपनिषद् (4-15-5) में एक वाक्य है **'स एनान् ब्रह्म गमयति'**। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि इस श्रुति में पठित 'ब्रह्म' शब्द का क्या अभिप्राय है। 'ब्रह्म' शब्द से परब्रह्म का ग्रहण किया जाय या कार्यब्रह्म का। जैमिनि के मत से तो यह परब्रह्म ही है परन्तु बादरि का कहना है, कि नहीं, यहाँ कार्यब्रह्म (हिरण्यगर्भ) ही 'ब्रह्म' शब्द का वाच्य है क्योंकि यही देशविशेष में रहता है। इसलिए गति की उपपत्ति होगी, यही गंतव्य है।

(4) मुक्त पुरुष के शरीर और इन्द्रियाँ होती हैं या नहीं? इस विषय में बादरि का मत है कि मुक्तावस्था में शरीरादि समस्त कारणों का नितान्त अभाव रहता है।

(5) मीमांसा-सूत्रों में वैदिक कर्मों के अधिकारी के विषय में इनका एक विलक्षण विप्लवकारी मत उल्लिखित किया गया है। इनकी सम्मति में वैदिक कर्मों में सबका अधिकार है—द्विजों का तथा शूद्रों का भी। परन्तु जैमिनि ने इसका बड़े आग्रह से खण्डन किया है और दिखलाया है कि यज्ञानुष्ठान में शूद्रों का अधिकार कथमपि नहीं है। जब शूद्रों को वेदाध्ययन का ही निषेध किया गया है तो यज्ञों में उनके अधिकार का खण्डन स्वतः हो जाता है।

बादरायण

इन सबके मत का तो कुछ परिचय मिला, किन्तु भगवान् बादरायण का अपना क्या मत था, इसे भी जान लेना चाहिए। वैसे संपूर्ण ब्रह्मसूत्रों पर दृष्टिपात करने पर यही ज्ञात होता है कि विवादास्पद विषयों पर बादरायण ने समन्वय का मध्यम मार्ग ही अपनाया है फिर भी जीव आदि के विषय में बादरायण का मत कुछ ऐसा प्रतीत होता है।[16]

जीव—ब्रह्म की अपेक्षा जीव परिमाण में अणु प्रतीत होता है। यह ब्रह्म के साथ बिल्कुल अभिन्न नहीं है और साथ ही साथ उससे बिल्कुल भिन्न भी नहीं है। जीव ब्रह्म का अंश है। जीव चेतन स्वरूप है। यह ज्ञाता है अथवा ज्ञान को उसका धर्म कह सकते हैं, जीव क्रियाशील है। उसका यह कर्त्तव्य ब्रह्म से ही आविर्भूत होता है।

ब्रह्म—ब्रह्म ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण है। ब्रह्म चेतन रूप है तथा चेतन और अचेतन उभय प्रकार के पदार्थों का वही कारण है। ब्रह्म जगत् का

उपादान कारण है, साथ ही साथ निमित्त कारण भी है। ब्रह्म की उपासना करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है और यही ज्ञान मुक्ति-प्रदान करता है। ब्रह्म एक है, उसमें ऊँच-नीच का किसी प्रकार का भेद नहीं।

कारण—कारण का ही परिणाम कार्य है। सूत्रकार परिणामवाद के पक्षपाती प्रतीत होते हैं, विवर्तवाद के नहीं। '**आत्मकृतेः परिणामात्**' में परिणाम शब्द का स्पष्ट निर्देश है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए श्रुति ही हमारा प्रधान साधन है। ब्रंह्म तर्क का विषय नहीं हो सकता। श्रुति के अनुकूल होने पर ही तर्क का आदर है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीनिम्बार्काचार्य के मत में कोई ऐसी बात नहीं, जो आचार्य बादरायण के मत के विपरीत पड़ती हो।

आचार्य बादरायण के बाद और श्रीनिम्बार्काचार्य से पूर्व एक और वेदान्ताचार्य का पता चलता है, जिनका नाम उपवर्ष है, इसलिए इनका भी संक्षिप्त परिचय जान लेना अनिवार्य है।

उपवर्ष

ये श्रीनिम्बार्क पूर्व वेदान्त के प्रख्यात आचार्य थे। इन्होंने पूर्वमीमांसा और उत्तर-मीमांसा—दोनों पर वृत्तियाँ लिखी थी। शबर-स्वामी (200 ई.) ने मीमांसासूत्र के भाष्य (1-1-5) में इन्हें 'भगवान् उपवर्षः' कहकर उल्लिखित किया है। आचार्य शंकर कहते हैं कि भगवान् उपवर्ष ने अपनी मीमांसा-वृत्ति में कहीं-कहीं पर शारीरक सूत्र पर लिखी गयी वृत्ति की बातों का उल्लेख किया है—"इत एव चाकृष्य शबरस्वामिना आचार्येण प्रमाणलक्षणे वर्णितम्, अतएव च भगवतोपवर्षेण प्रथमे तन्त्र आत्मास्ति त्वाभिधानप्रसक्तौ शारीरके वक्ष्यामः इति उद्धारः कृतः।"

आचार्य शंकर ने यह उद्धरण शबरस्वामी के भाष्य से उद्धृत किया है। इसी प्रकार एक जगह और भी इनके मत को उपस्थित किया है—'**वर्णा एव तु शब्दाः इति भगवानुपवर्षः**।' पर इन उद्धरणों में कोई भी उनके उत्तर-मीमांसा का नहीं है, जिससे ज्ञात होता है, कि आचार्य शंकर के समय में इनका ग्रन्थ लुप्त हो गया था। अन्यथा आत्मास्तित्व के सम्बन्ध में उनके शारीरिक वृत्ति का ही उद्धरण देते। इतना दूर क्यों जाते। यही नहीं, श्री श्रीनिवासाचार्य भी इनकी कोई चर्चा नहीं करते हैं, जबकि अपने समय में विद्यमान आचार्य धर्मकीर्ति का उद्धरण देते हैं एवं सिद्धान्त विरोधी होने के कारण उसका खण्डन भी करते हैं। इसलिए ऐसा निश्चित प्रतीत होता है कि भगवान् उपवर्ष ने उत्तरमीमांसा पर वृत्ति अवश्य लिखी होगी, पर वह श्री श्रीनिवासाचार्य के समय तक कालकवलित हो चुकी थी।

इनके समय का निर्धारण भी किया जा सकता है। शबर स्वामी के द्वारा उद्धृत होने से यह स्पष्ट है कि इनका समय 200 ई. से पीछे नहीं हो सकता। इन्होंने वैयाकरणों के **स्फोटवाद** का खण्डन किया है। यह तो प्रसिद्ध है, कि व्याकरण आगम में भगवान् पतंजलि ने ही पहले-पहल स्फोट शब्द को वाचकत्व का आश्रय और अर्थ का प्रत्यायक

माना है। महाभाष्य में ही स्फोट के सिद्धान्त का प्रथम पल्लवीकरण हुआ है। अतः प्रतीत होता है कि उपवर्ष ने पतंजलि के सिद्धान्त का ही उस स्थान पर खण्डन किया है। पतजंलि का समय ईसापूर्व द्वितीय शतक है। इसलिए ये इनसे पहले नहीं हो सकते। कृष्णदेव निर्मित **'तन्त्र-चूडामणि'** नामक ग्रन्थ में लिखा है, कि शाबरभाष्य के ऊपर उपवर्ष की एक वृत्ति थी।[17] यदि कृष्णदेव के वचन को भी प्रामाणिक मान लिया जाय तो भी शबर स्वामी और उपवर्ष के पारस्परिक उल्लेखों से दोनों समसामयिक ठहरते हैं। अर्थात् भगवान् उपवर्ष का समय 200 ई. के आसपास का है।

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य के समसामयिक वेदान्त के आचार्य

विश्व में यह बात प्रायः समान रूप से दृष्टिगोचर होती है कि जब भी किसी देश का जनमानस अत्यधिक संत्रस्त हो उठता है, तभी प्रतिक्रिया स्वरूप वहाँ किसी ऐसी विभूति का जन्म होता है, जिसका अनुगमन कर वहाँ की जनता पुनः सुख-शान्ति का अनुभव करने लगती है।

पाँचवी-छठी शताब्दी की बात है। भारत का जनमानस अत्यन्त क्षुब्ध था। यह क्षोभ राजनैतिक कारणों से उतना नहीं था, जितना कि धार्मिक कारणों से। एक ओर बौद्धों-जैनों के सम्मिलित प्रयास ने आस्तिकता को मिट्टी में मिला दिया था तो दूसरी ओर शैव-शाक्त, पाशुपत-कापालिक एवं बौद्ध तान्त्रिकों ने सामाजिक वातावरण को दूषित कर दिया था। सामान्य जनता भगवान् को भूल चुकी थी, वेदों के प्रति उसकी कोई विशेष अभिरुचि न थी, उसके सम्मुख कोई उच्च आदर्श का आधार न था। फिर भी 'भारतीय रक्त' आकाश की ओर मुख किये किसी अदृश्य सत्ता से सहायता की आशा में टकटकी बाँधे खड़ा था। दयालु परमात्मा ने इन आर्त जनों की पुकार सुनी। द्रवित हो अपने प्रिय पार्षद चक्रराज श्रीसुदर्शन को इस अज्ञानान्धकार को मिटाने, सनातन वैष्णव धर्म को संगठित करने एवं सरस सात्त्विक भक्ति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए इस धराधाम पर भेजा। साथ ही सहयोग के लिए अनेक अनेक विभूतियों को देश के कोने-कोने में पैदा कर दिया, जिनके सम्मिलित प्रयास से भारत में पुनः सुख-शान्ति का साम्राज्य छा गया था। यहाँ हम उन्हीं विभूतियों की कुछ चर्चा करेंगे जिनके सहयोग से चक्रराज सुदर्शन (श्रीनिम्बार्काचार्य) को अपने कार्य मे इतनी अधिक सफलता मिली।

भर्तृप्रपञ्च

ऐसे लोगों की गणना में भर्तृप्रपंच का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण है। लेकिन दुर्भाग्य है कि अभी तक इनका कोई विशेष परिचय ज्ञात नहीं हो सका है और न कोई ग्रन्थ ही उपलब्ध है। आचार्य श्रीशंकर ने बृहदारण्यक भाष्य में कहीं-कहीं पर **'औपनिषदम्मन्य'** कहकर इनका उपहास किया है, तथापि यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि उस समय दार्शनिक क्षेत्र में उनका पाण्डित्य तथा प्रभाव कुछ कम नहीं था। इसी कारण आचार्य शंकर के पट्टशिष्य श्रीसुरेश्वराचार्य अपने वार्तिक में 'सम्प्रदायवित्', 'ब्रह्मवित्' एवं 'वेदवित्' कहकर इनकी प्रशंसा करने को बाध्य हुए हैं।

श्रीशंकराचार्य और श्रीसुरेश्वराचार्य ने इनका नाम-निर्देश कहीं भी नहीं किया है, मात्र उपहास अथवा प्रशंसासूचक शब्दों का प्रयोग किया है, तथापि इन दोनों के ग्रन्थों में प्रयुक्त ऐसे शब्दों की व्याख्या करने वाले प्रसिद्ध टीकाकार श्री आनन्दगिरि (विक्रम की 12वीं शती) ने इनका नाम निर्देश कर दिया है। इनसे भी पूर्व श्रीयमुनाचार्यजी (918-1038 ई.) ने '**सिद्धित्रय**' नामक ग्रन्थ में अपने समय में प्रचलित मत के वेदान्ताचार्यों की गणना करते हुए भर्तृप्रपंच के नाम का उल्लेख किया है। परन्तु 'सिद्धित्रय' के उल्लेख से इनके मत पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। मात्र इतना ज्ञात होता है कि इनका मत श्रीयमुनाचार्य के मत से कुछ विरुद्ध पड़ता था।

भर्तृप्रपंच ने अपने सिद्धान्त की स्थापना के लिए ब्रह्मसूत्रों पर भी कोई स्वतन्त्र भाष्य लिखा था, इसका कोई प्रमाण नहीं। हाँ, इनके **बृहदारण्यक-भाष्य** एवं **कठोपनिषद् भाष्य**—इन दो ग्रन्थों का पता अवश्य चलता है। पर संप्रति ये भी काल-कवलित हो चुके हैं। इसलिए इनके मत की जानकारी के लिए आचार्य श्रीशंकर द्वारा उपस्थित पूर्वपक्ष एवं उस पर वार्तिक लिखने वाले श्रीसुरेश्वराचार्य तथा इन दोनों की टीका करते हुए प्रस्तुत पूर्वपक्ष को भर्तृप्रपंच का बतलाने वाले श्री आनन्दगिरि ही एकमात्र आधार हैं। इनके आधार पर भर्तृप्रपंच के मत को स्थित करने से पूर्व इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि किसी के मत का खण्डन करने वाला व्यक्ति केवल उसके उसी पक्ष को प्रस्तुत करता है, जिसमें स्पष्ट रूप से कोई दोष-दौर्बल्य दिखाई पड़ता है, वह उसके सामञ्जस्य (समन्वय) को प्रस्तुत नहीं करता। यदि कुछ अंश प्रस्तुत भी करता है तो भी वह उसके पूर्ण स्वरूप को उद्घाटित नहीं करता। इसलिए समीक्षकों के सम्मुख यह एक विकट प्रश्न है कि वास्तव में भर्तृ-प्रपंच का क्या मत था और उन्होंने आपाततः विरोधी प्रतीत होने वाली बातों का किस प्रकार समाधान प्रस्तुत किया था। मूल ग्रन्थों के अभाव में श्रीशंकराचार्य, सुरेश्वराचार्य और श्री आनन्दगिरि के आधार पर भर्तृप्रपंच के मत को मोटे तौर पर इस प्रकार का कह सकते हैं—

भर्तृप्रपंच भी स्वाभाविक द्वैताद्वैत के पोषक वेदान्त के एक आचार्य थे। इनके मतानुसार भेद प्रतिपादक एवं अभेद प्रतिपादक उभयविध श्रुतियाँ समान बलवती हैं। इनमें कौनसी गौण हैं और कौनसी प्रमुख, भेद और अभेद—दोनों ही स्वाभाविक हैं। सृष्टि, स्थिति, प्रलय—तीनों कालों में पूर्णता रहती है और यही पूर्णता कार्य-कारण रूप में द्वैत रूप से भी व्यपदिष्ट होती है। इस प्रकार द्वैताद्वैतात्मक एक ही ब्रह्म है। जैसे—समुद्र जल तरंग फेन बुद्बुद आदि के रूपों में एक ही है। यहाँ पर जल सत्य है और उसमें उत्पन्न आविर्भाव तिरोभाव धर्मवाले तरङ्ग फेन बुद्बुद आदि भी समुद्रात्मक होने से परमार्थ रूप से सत्य हैं। इस प्रकार जल तरङ्ग स्थानीय समस्त द्वैतप्रपंच एवं समुद्रजलस्थानीय पर ब्रह्म—दोनों परमार्थ रूप से सत्य हैं।

अत्रैके वर्णयन्ति—पूर्णात्कारणात्पूर्णं कार्यमुद्रिच्यते। उद्रिक्तं कार्यं वर्तमानकालेऽपि पूर्णमेव परमार्थवस्तुभूतं द्वैतरूपेण। पुनः प्रलयकाले पूर्णस्य कार्यस्य पूर्णतामादायाऽऽत्मनि धृत्त्वा पूर्णमेवावशिष्यते कारणरूपम्। एवमुत्पत्तिस्थितिप्रलयेषु त्रिष्वपि कालेषु कार्यकारणयोः पूर्णतैव। सा चैकेव पूर्णता कार्यकारणयोर्भेदेन व्यपदिश्यते। एवं च द्वैताद्वैतात्मकमेकं ब्रह्म। यथा किल समुद्रो जलतरंग-फेन-बुद्बुदाद्यात्मक एव। यथा च जलं सत्यं, तदुद्भवाश्च तरङ्गफेनबुद्बुदादयः समुद्रात्मभूता एवाऽऽविर्भाव तिरोभावधर्मिणः परमार्थ सत्या एव। एवं सर्वमिदं तं परमार्थ-सत्यमेव जलतरङ्गस्थानीयं समुद्रजल स्थानीयं तु परं ब्रह्म।[18]

इनके मत में कार्यकारण रूप से स्वाभाविक भेदाभेद है। यही बात श्रीसुरेश्वराचार्यजी भी कहते हैं—

> **"जनिस्थितिलयेष्वेवं त्रिषु कालेषु पूर्णता।**
> **कार्यकारणयोर्ज्ञेया द्वैताद्वैतस्वभावयोः॥"**

(बृहदारण्यकभाष्यवार्तिक 5-1-55)

भर्तृप्रपंच के मत में जीव कर्त्ता, भोक्ता तथा ज्ञाता है। वह सर्वदा परमात्मा के अधीन रहता है। जीव ब्रह्म का स्वाभाविक अंश है। इनके मत में जीव अनेक हैं। परमात्मा की अन्यतम शक्ति माया उसी से अभिव्यक्त होकर जीव को अभिभूत कर लेती है। पर परमात्मा जीव और माया—दोनों के गुण-दोषों से अभिभूत नहीं होता।

इनके मत में मुक्ति दो प्रकार की है—(1) अपरमोक्ष अथवा अपवर्ग (2) परामुक्ति अथवा ब्रह्मभावापत्ति।–इसी देह में ब्रह्म साक्षात्कार होने पर प्रथम प्रकार का मोक्ष आविर्भूत होता है, यह जीवन्मुक्ति के अनुरूप है; इसका नाम **अपवर्ग** है। वस्तुतः यह आसङ्ग त्याग-निमित्तक संसार-निवृत्ति मात्र है। देहपात न होने से ब्रह्म में लय नहीं हो सकता, परन्तु देहपात के अनन्तर दूसरे प्रकार के मोक्ष का—परममोक्ष का आविर्भाव उदय होता है। यह जीव की **ब्रह्मभावापत्ति** रूप है।

ब्रह्म अनेक अवतार धारण कर इस सृष्टि का नियमन करता है। वही अन्तर्यामी रूप से जीव को भी नियन्त्रित करता है। एक प्रकार से वही जीव रूप में भोक्ता होकर एवं मूर्तामूर्त के रूप में भोग्य होकर अवस्थित है।

ये सम्पूर्ण श्रुतियों का प्रामाण्य स्वीकार करते हैं। किसी का गौणत्व या मुख्यत्व स्वीकार नहीं करते। कर्मकाण्ड की श्रुतियों को ज्ञान प्राप्ति में सहायक मानते हैं।

ब्रह्म सर्वव्यापक तथा अनन्तशक्ति सम्पन्न है। सृष्टि, स्थिति, प्रलय तीनों अवस्थाओं में द्वैताद्वैतात्मक ब्रह्म अवस्थित है। मोक्षावस्था में भी जीव और ब्रह्म का यही सम्बन्ध बना रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भर्तृप्रपंच का अधिकांश मत आचार्य श्रीनिम्बार्क के स्वाभाविक द्वैताद्वैत से मिलता जुलता है। एक बात और ध्यान देने की है कि जो आनन्दगिरि

बृहदारण्यक भाष्य की टीका करते समय यह कहते हैं कि ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए भर्तृप्रपंच ने बृहदारण्यक पर विस्तृत भाष्य लिखा था, वही ब्रह्मसूत्रों के शांकरभाष्य में आये हुए—

"अनेकात्मकं ब्रह्म, यथाऽनेकशाखः वृक्षः, एवमनेकशक्तिप्रवृत्तियुक्तं ब्रह्म। अत एकत्वं नानात्वञ्चोभयमपि सत्यमेव। यथा वृक्ष इत्येकत्वम्, शाखा इव नानात्वम्। यथा च समुद्रात्मनैकत्वम्, फेनतरङ्गाद्यात्मना नानात्वम्। यथा च मृदात्मनैकत्वम्, घटशरावाद्यात्मना नानात्वम्।..."

(शांकरभाष्य ब्र.सू. 2-1-14)

तथा—

"यत्तूक्तं शास्त्रार्थवत्त्वादिभिर्हेतुभिः स्वाभाविकमात्मानं कर्त्तृत्वमिति।"

(शांकरभाष्य ब्र.सू. 2-3-40)

और—

"अस्मिन्नेव संराध्यसंराधकभावे मतान्तरमुपन्यस्यति स्वमतविशुद्धये।"

(शांकरभाष्य ब्र.सू. 3-3-27)

एवं—

"केचित्पुनः पूर्वाणि पूर्वपक्षसूत्राणि भवान्त्युत्तराणि सिद्धान्तसूत्राणीत्येतां व्यवस्थामनुरुध्यमानाः परविषया एव गतिश्रुतिः प्रतिष्ठापयन्ति।"

(शांकरभाष्य ब्र.सू. 4-3-14)

इत्यादि अनेक भेदाभेदपरक स्थलों की टीका करते हुए कहीं भी यह नहीं कहते कि यह भर्तृप्रपंच का मत है अथवा भर्तृप्रपंच के मत का आचार्य शंकर खण्डन कर रहे हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि भर्तृप्रपंच ने भेदाभेदपरक ब्रह्मसूत्रों का कोई भाष्य नहीं लिखा था। फिर यह विचारणीय है कि ब्रह्मसूत्रों पर स्वाभाविक द्वैताद्वैतपरक भाष्य लिखने वाले कौन थे, जिनकी ओर आचार्य शंकर अनेक बार संकेत करते हैं और भर्तृप्रपंच ने किसका अनुसरण करते हुए बृहदारण्यक भाष्य में यह मत व्यक्त किया है। दर्शन शास्त्रों के इतिहास में कहीं भी यह मत नहीं व्यक्त किया जाता है कि भर्तृप्रपंच भेदाभेदवाद के प्रवर्तक आचार्य थे। केवल इतना ही उल्लेख मिलता है कि ये भी भेदाभेदवादी थे। हाँ, स्वतन्त्र आचार्य एवं प्रवर्तक के रूप में **आचार्य श्रीनिम्बार्क** का नाम अवश्य लिया जाता है। आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र भाष्य में जिस भेदाभेद का खण्डन किया है, वह आचार्य श्रीनिम्बार्क का है। श्रीनिम्बार्काचार्य ने ब्रह्मसूत्रों पर एक वृत्ति लिखी है, जिसमें **स्वाभाविक द्वैताद्वैत** का स्पष्ट प्रतिपादन है, पर अत्यन्त संक्षिप्त है। इसके शिष्य श्री श्रीनिवासाचार्य ने उसी का अनुसरण करते हुए बृहद्भाष्य **(वेदान्त-कौस्तुभ)** लिखा है।

सम्भव है, भर्तृप्रपंच ने इन्हीं (श्री श्रीनिवासाचार्य) का अनुसरण करते हुए बृहदारण्यकभाष्य में अपने मत का प्रतिपादन किया हो, सुरेश्वराचार्य ने जिसके कारण इन्हें

सम्प्रदायवित् कहा है। इस बात के कितने ही प्रमाण उपलब्ध हो चुके हैं कि आचार्य श्रीनिम्बार्क श्रीशंकराचार्य से लगभग 100 वर्ष पूर्व हुए थे। अब हम यह देखने की चेष्टा करेंगे कि भर्तृप्रपंच और श्रीनिम्बार्क के मत में कितना सादृश्य है—

	भर्तृप्रपंच	आचार्य श्रीनिम्बार्क
1.	स्वाभाविक द्वैताद्वैत	स्वाभाविक द्वैताद्वैत।
2.	भेद-अभेद प्रतिपादिक समस्त श्रुतियों का प्रामाण्य माना गया है।	भेद-अभेद प्रतिपादक समस्त श्रुतियों का प्रामाण्य स्वीकृत है।
3.	भेद और अभेद—दोनों ही सत्य हैं और सदा (मुक्तावस्था में भी) समभाव से वर्तमान रहते हैं।	भेद और अभेद—दोनों पारमार्थिक हैं। सदा सृष्टि, स्थिति, प्रलय तीनों अवस्थाओं में भी एककालावच्छेदेन वर्तमान रहते हैं।
4.	ब्रह्म ही जगत् का अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है। मकड़ी का दृष्टान्त दिया जाता है।[19]	ब्रह्म अभिन्ननिमित्तोपादान कारण स्वीकृत है। उदाहरण के लिए ऊर्णनाभि का दृष्टान्त दिया जाता है।
5.	जीव कर्त्ता, भोक्ता, ज्ञाता एवं नाना माने गये हैं।	जीव को कर्त्ता, भोक्ता, ज्ञातृत्ववान्, प्रतिदेह भिन्न एवं अनन्त-संख्यक स्वीकार किया है।
6.	जीव नित्य है, ब्रह्म का अंश है, कूटस्थ एवं ब्रह्म का परिणाम है।	जीव को अजन्मा एवं अनादि स्वीकार किया गया है, परमात्मा का स्वाभाविक शक्ति-रूप अंश बताया गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि ब्रह्म ही स्वतः भोक्ता, भोग्य एवं नियंतृरूप से त्रिधावस्थित है। जीव में कूटस्थ नित्यता है।
7.	जगत् भी सत्य है, अनादि है।	जगत् प्रवाह रूप में (सूक्ष्म रूप से) सत्य है, अनादि है, पर उसका वर्तमान रूप परिणामी है, विनाशी है।
8.	भगवद्भावापत्ति रूप मोक्ष स्वीकृत है।	भगवद्भावापत्ति रूप मोक्ष अभीष्ट है।

9.	इसी देह में ब्रह्म साक्षात्कार होने पर अमरमोक्ष होता है, यह जीवन्मुक्ति के अनुरूप है। इसका एक नाम अपवर्ग भी है। वस्तुतः यह आसङ्ग त्याग निमित्तक संसार निवृत्ति मात्र है। देहपात न होने से ब्रह्म में लय नहीं हो सकता, परन्तु देहपात के अनन्तर दूसरे प्रकार के मोक्ष का—परममोक्ष का आविर्भाव होता है जिसे ब्रह्मभावापत्ति कहते हैं।	इसी देह में ब्रह्म साक्षात्कार होने पर संचित एवं क्रियमाण कर्म का विनाश हो जाता है, परन्तु प्रारब्ध अवशिष्ट रहता है। इसलिए शरीर तो रहता है, पर एक तरह से वह व्यक्ति संसार से निवृत्त हो जाता है। इस अवस्था को 'विद्रूपावस्था' के नाम से सम्बोधित किया गया है। ऐसे 'विद्वान्' की स्थिति जीवन्मुक्त की ही भाँति होती है। परममोक्ष अथवा भगवद्भावापत्ति तो तब होती है, जब चरम साक्षात्कार होकर शरीर का भी विनाश हो जाता है।
10.	ब्रह्म मुख्यरूप से तीन रूपों में परिणत हो जाता है—(1) परमात्मराशि, (2) जीवराशि, (3) मूर्तामूर्तराशि।	निम्बार्क मत में भी ब्रह्म ही भोक्ता, भोग्य एवं नियन्ता होकर त्रिधा अवस्थित है—ऐसा माना गया है।
11.	तादात्म्य भाव से भेद एवं अभेद के एकत्र अवस्थित होने पर भी कोई विरोध या आपत्ति नहीं होती।	व्याप्य-व्यापक भाव, आधाराधेय भाव, तदधीन स्थितिप्रवृत्तिकत्व, तादात्म्य आदि कारणों से भेद एवं अभेद एकाधिकरण में ही रह लेते हैं। कोई विरोध नहीं होता।

इतना अधिक मत सादृश्य होने के कारण यह सम्भावना अत्यन्त प्रबल हो जाती है, कि भर्तृप्रपंच भी श्रीनिम्बार्काचार्य किंवा श्री श्रीनिवासाचार्य के समकालिक होंगे और इन्हीं स्वाभाविक द्वैताद्वैत प्रवर्तक आचार्य की प्रेरणा से इनके मत के अनुरूप ही बृहदारण्यक भाष्य की रचना की होगी।

ब्रह्मदत्त (600-700 ई.)

ब्रह्मदत्त का नामोल्लेख श्रीयामुनाचार्य ने शंकर पूर्व वेदान्त दर्शन के प्रख्यात आचार्यों में किया है। इनकी रचना का कुछ पता नहीं चलता है। सम्भव है इनका भी किसी उपनिषद् पर भाष्य रहा हो या ब्रह्मसूत्रों पर व्याख्या रही हो। पर निश्चित रूप से कुछ भी कहना नितान्त असम्भव है। इनके मत का उल्लेख आचार्य शंकर ने उपनिषद्भाष्य में, सुरेश्वर ने बृहदारण्यक भाष्य-वार्तिक में तथा वेदान्तदेशिक ने 'तत्त्वमुक्ताकलाप' की 'सर्वार्थसिद्धि' टीका में किया है।

मणिमञ्जरी (6-2-3) में ब्रह्मदत्त और शंकराचार्य के मिलन की चर्चा होने से ये शंकराचार्य के समसामयिक प्रतीत होते हैं। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि ब्रह्मदत्त उस समय काफी वृद्ध थे। ब्रह्मदत्त के मत से जीव अनित्य है, एकमात्र ब्रह्म ही नित्य पदार्थ है।[20] ब्रह्मदत्त कहते हैं जीव तथा जगत्—दोनों ही ब्रह्म से उत्पन्न होकर ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं।इस प्रकार उत्पत्ति और लय होने के कारण ये बिल्कुल अनित्य हैं। यह मत बहुत ही विलक्षण प्रतीत होता है तथा वेदान्त में माने गये मत से एकदम विरुद्ध पड़ता है। महर्षि श्रीवेदव्यास ने स्वयं ब्रह्मसूत्र में **[नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः (2-3-17)]** इसके विरुद्ध मत का प्रतिपादन किया है कि आत्मा स्वयं नित्य है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि इन्होंने ब्रह्मसूत्रों पर कोई भाष्य नहीं लिखा था, अन्यथा ऐसा मत कैसे व्यक्त करते ?

श्रीनिम्बार्कभाष्य (1/4/20) के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आचार्य आश्मरथ्य के मत से **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'** इत्यादि श्रुतियों में जीव की भी गणना भूतों में करके उसे कार्य मान लिया गया है और ब्रह्म को सबका कारण। कार्यकारण भाव से भेद मुख्य है। यहाँ द्वैतप्रतिपादक श्रुतियाँ सार्थक होती हैं। कार्य भी तज्जत्व (उसी से उत्पन्न, उसी में स्थित एवं विनष्ट होने के कारण) उससे अभिन्न ही रहता है, इसलिए अभेद भी मुख्य ही है। इस प्रकार उभयविध वाक्यों के स्वार्थ में प्रामाण्य होने के कारण जीव और ब्रह्म में भेदाभेद सम्बन्ध स्वाभाविक है। यहाँ कार्य वाचक शब्दों का कारणपरक अर्थ भी सम्भव है। जैसे—घट और भूमि में कार्यकारण भाव होने से घट शब्द का अर्थ भूमिपरक भी लगाया जाता है। इस प्रकार एक विज्ञान से सर्वविज्ञान वाली प्रतिज्ञा सिद्ध होती है—ऐसा आश्मरथ्य का मत है।

यहाँ पर आपाततः ऐसा प्रतीत होता है कि जीव ब्रह्म का कार्य होने से विनाशी होगा, पर ऐसी बात नहीं है। इसका अभिप्राय श्रीनिम्बार्कभाष्य में श्री श्रीनिवासाचार्य द्वारा इस भाँति व्यक्त किया गया है कि प्रलयकालिक स्वास्थ्य के परित्याग के साथ देहादि के संयोग से जीव के ज्ञान का विकास होता है और यही जीव की उत्पत्ति कहलाती है। इस प्रकार जीव को कार्य मानने पर भी वह विनाशी नहीं माना जा सकता। 'सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इत्यादि श्रुतियों का अभिप्राय यह है कि अनभिव्यक्त नाम-रूप शक्ति वाला स्वसमानातिशय शून्य कारणस्थ ब्रह्म ही कार्यकाल में अभिव्यक्त नाम-रूप शक्तिवाला होकर स्वयं ही भेक्ता, भोग्य एवं नियन्ता के रूप में त्रिविधि अवस्थित हो जाता है, ऐसा मानने पर किसी भी श्रुति का विरोध नहीं होता।[21] वास्तव में न चिदंश जीव अनित्य है और न अचित् जगत् ही। अचित् भी परमात्मा की एक शक्ति है और प्रवाह रूप से परिणामी होते हुए भी नित्य है। जीव कूटस्थ नित्य है, यह वैशिष्ट्य है।

ब्रह्मदत्त के अनुसार ज्ञान की अपेक्षा उपासना का महत्त्व कहीं अधिक है। उपनिषदों का अभिप्राय **'तत्त्वमसि'** आदि महावाक्य में नहीं है, अपितु **'आत्मा वारे द्रष्टव्यः'** आदि उपासनापरक वाक्यों के प्रतिपादन में है। आत्मतत्त्व का चिन्तन करना ही साधक का मुख्य

कर्तव्य है। इस उपासन के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। इस प्रकार ज्ञान अंग और उपासना अंगी। मोक्ष की सिद्धि उपासना से ही होती है। जब तक साधक आत्मा और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर आत्मतत्त्व का चिन्तन नहीं करता, तब तक अज्ञान की निवृत्ति नहीं होती। अज्ञान को दूर करने के लिए उपासना ही एकमात्र साधन है।

ब्रह्मदत्त के लगभग समसामयिक अथवा कुछ ही पूर्व श्री श्रीनिवासाचार्य (570-670 ई.) ने भी अपने श्रीनिम्बार्कभाष्य (वेदान्त-कौस्तुभ) में इसी से मिलता-जुलता विचार अभिव्यक्त किया था—श्रवण एवं मनन, निदिध्यासन (उपासना) के साधन हैं। निदिध्यासन ही मोक्ष का असाधारण कारण है अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार का असाधारण साधन अनवरत ध्यान-रूप निदिध्यासन ही है।[22] इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ज्ञान भगवद्भावापत्ति रूप मोक्ष का साधन अवश्य है, परन्तु जैसे मन्त्र और गुरु सुज्ञात होने पर भी उपासना करने पर ही फल देते हैं, वैसे ही परमात्मा भी सुज्ञात होने पर ही, उपासना करने पर ही अभीष्ट वस्तु को प्रदान करते हैं—

> **"ज्ञानस्य परमात्मभावापत्तिसाधनत्वेऽपि मन्त्रो गुर्वादिश्च सुज्ञातोऽपि यथोपासित एव फलदो भवति तथा सुज्ञातोऽपि परमात्मोपासित एव फलदो भवति।"**
>
> **(वेदान्तकौस्तुभ 3/3/1)**

आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क भगवान् ने भी अपने प्रसिद्ध '**दशश्लोकी**' नामक ग्रन्थ में यही उद्घोष किया था—

> **"उपासनीयं नितरां जनैः सदा,**
> **प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः।"**
>
> **(श्लोक सं. 6)**

अर्थात् श्रीनिम्बार्काचार्य के मत में भी अज्ञान की विशेष निवृत्ति के लिए उपासना ही विधेय है। सम्पूर्ण श्रुतियों का अभिप्राय '**आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मंतव्यः निदिध्यासितव्यः**' के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना ही है। समस्त श्रुतियाँ श्रीकृष्ण में ही समन्वित होती हैं।

ब्रह्मदत्त कहते हैं—यद्यपि देह के अवस्थितिकाल में भी उपासना से देवता का साक्षात्कार हो सकता है, तथापि उनके साथ मिलन तभी हो सकता है, जब देह न रहे। प्रारब्धकर्मलब्ध देह उपास्य के साथ उपासक के मिलन में प्रतिबन्धक है।[23] जिस प्रकार मृत्यु के अनन्तर ही स्वर्गलाभ हो सकता है, उसी प्रकार मोक्ष भी देह छूट जाने के पश्चात् ही होता है। इस प्रकार ब्रह्मदत्त जीवन्मुक्ति नहीं मानते।

लगभग ऐसा ही श्रीनिम्बार्काचार्य भी मानते हैं। इतना अन्तर अवश्य है कि जहाँ ब्रह्मदत्त ब्रह्म को साधन-साध्य मानते हैं, वहाँ श्रीनिम्बार्काचार्य कृपा-साध्य। परन्तु इस 'कृपा' के लिए उपासना को आवश्यक बताते हैं। इनका कहना है कि '**ब्रह्मध्याने तदनुग्रहाद् ब्रह्मदर्शनं भवति**'[24] उपासना करने से वह कृपा करके दर्शन देते हैं।

डॉ. गोपीनाथ कविराज ने **'वेदान्तदर्शन'** की भूमिका में लिखा है कि ब्रह्मदत्त की दृष्टि से साधना क्रम इस प्रकार है—पहले उपनिषद् से ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान लाभ करना चाहिए। तदनन्तर **'अहं ब्रह्मास्मि'** इत्याकारक भावना का अभ्यास करना चाहिए। ब्रह्मदत्त कहते हैं कि मुमुक्षु को 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक अहंग्रहोपासना करनी चाहिए।

श्रीनिम्बार्काचार्य भी यही कहते हैं कि प्राचीन लोग 'एष मे आत्मा' ऐसा मानते थे और शिष्यों को 'एष ते आत्मा' ऐसा उपदेश देते थे, अतः मुमुक्षु को अपनी आत्मा के रूप में ही परमपुरुष का ध्यान करना चाहिए।

> **"एष मे आत्मेति पूर्व उपगच्छन्ति, एष ते आत्मेति शिष्यानुपदिशन्ति, अतो मुमुक्षुणा परमपुरुषः स्वस्यात्मत्वेन ध्येयः।"**[25]

परन्तु यह समझ में नहीं आता कि जो ब्रह्मदत्त **'अहं ब्रह्मास्मि'** इत्याकारक अहंग्रहोपासना का उपदेश देकर मोक्ष की बात करते हैं, वही जीव को किस भाँति अनित्य मानते हैं। यदि जीव अनित्य है तो मोक्ष के लिए प्रयास व्यर्थ प्रतीत होता है और यह 'अहंग्रहोपासना' भी उचित प्रतीत नहीं होती।

इसलिए सम्भव है उनके मत को ठीक तरह से न समझकर श्रीवेदान्तदेशिकजी ने जीव को विनाशी बता दिया हो।

आदरणीय श्रीकविराज जी ने लिखा है कि इनका (ब्रह्मदत्त का) कहना है कि भिन्नवत् प्रतीत होने पर भी जीव वस्तुतः ब्रह्म से भिन्न नहीं है। इससे प्रतीत होता है ब्रह्मदत्त के मत से जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध भेदाभेद के सदृश ही है।

ब्रह्मदत्त के मत से, साधक के किसी अवस्था में भी कर्मों का त्याग नहीं हो सकता। उपनिषद् से ब्रह्म के परोक्ष ज्ञान की प्राप्ति के अनन्तर भी 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक भावना की आवश्यकता है। जीवन पर्यन्त कर्म का त्याग नहीं होता। इसलिए ब्रह्मदत्त का मत भी ज्ञानकर्म समुच्चयवाद ही है। सुरेश्वराचार्य ने भी इनका उल्लेख समुच्चयवादी के रूप में ही किया है।

श्री निम्बार्कभाष्य में ज्ञान प्राप्त (प्राप्तविद्य) पुरुष के लिए भी जब तक चरम साक्षात्कार होकर शरीर का विनाश नहीं हो जाता, आश्रमोचित कर्म करते रहने का विधान है। जो गृहस्थ हैं, उन्हें स्वाश्रमोचित अग्निहोत्रादि करना चाहिए एवं जो ऊर्ध्वरेता हैं, उन्हें तप-जप करते रहना चाहिए। विद्या प्राप्त (ज्ञानप्राप्त) हो जाने पर भी आश्रमोचित कर्मों की निवृत्ति नहीं होती, अपितु विद्या के पोषक होने से उनका अनुष्ठान करते रहना चाहिए। यथा—

> **"विद्ययाऽग्निहोत्रदानतपादीनां स्वाश्रमकर्मणां निवृत्तिशंका नास्ति, विद्यापोषकत्वादनुष्ठेयान्येव।"**[26]

इतना होने पर भी श्रीनिम्बार्क भाष्य में तथाकथित ज्ञानकर्म समुच्चयवाद गृहीत नहीं हुआ है। कारण यह है कि नित्य, नैमित्तिक कर्मों को ये उपासना के अन्तर्गत मानते

हैं और उपासना को तथाकथित 'कर्म' नहीं मानते। ज्ञानकर्म समुच्चय का आरोप करने वाले वही लोग हैं, जो 'जीवन्मुक्ति' मानते हैं। ये लोग जीवन्मुक्त अवस्था में कर्मों की कोई आवश्यकता नहीं मानते। इनका कहना है कि इस अवस्था में कर्मसंन्यास स्वतः प्राप्त है। श्रीनिम्बार्क एवं ब्रह्मदत्त दोनों ही जीवन्मुक्ति नहीं मानते।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि श्रीनिम्बार्क एवं ब्रह्मदत्त में पर्याप्त समानता है। वास्तव में उस समय प्रायः सभी वेदान्त के आचार्यों का मत थोड़े बहुत अन्तर से मिलता-जुलता होता था।

ब्रह्मदत्त का संप्रति न तो कोई ग्रन्थ उपलब्ध है और न कोई परम्परा। इसलिए यह सम्भावना होती है, कि इन्होंने किसी पृथक् मत की स्थापना नहीं की थी, बल्कि आचार्य श्री निम्बार्क के मत के अनुरूप ही विद्याध्ययन कराने वाले प्रकाण्ड विद्वान् थे अथवा इसी के अनुरूप कोई भी ग्रन्थ लिखे थे, जिसकी श्रीनिम्बार्क भाष्य से कोई पृथक् सत्ता नहीं थी। अथवा इनका मत श्रीनिम्बार्काचार्य से मिलता-जुलता होने के कारण अपनी पृथक् सत्ता स्थापित नहीं कर पाया। सम्भव है कुछ पार्थक्य भी रहा हो, पर लोगों ने उसको विशेष महत्त्व नहीं दिया। इसके विपरीत अत्यन्त संक्षिप्त होने पर भी श्रीनिम्बार्काचार्य की वृत्ति आज भी प्रख्यात एवं विद्वज्जनों द्वारा समादृत है।

भर्तृमित्र (6ठी शती का अंत – 7वीं शती का प्रारम्भ)

श्रीयामुनाचार्य ने जिन आचार्यों का नाम निर्देश किया है, उनमें भर्तृमित्र भी अन्यतम हैं। प्रतीत होता है कि ये भी वेदान्त के ही आचार्य रहे होंगे। इन्होंने पूर्वमीमांसा के ऊपर भी कोई रचना की थी, जिसका परिचय मीमांसा ग्रन्थों के अनुशीलन से भलीभाँति प्राप्त होता है। कुमारिलभट्ट ने अपने श्लोकवार्तिक (1/1/1/10, 1/1/6/130-132) में इनका उल्लेख किया है। इसका प्रमाण पार्थसारथि मिश्र की टीका है। कुमारिल का कहना है कि भर्तृमित्र आदि आचार्यों के भाव से मीमांसा, चार्वाक दर्शन के समान बिल्कुल अवैदिक बन गई थी और इसी दोष को दूर करने के लिए उन्होंने अपना विख्यात ग्रन्थ लिखा। अतः ये भी कुमारिल से पूर्ववर्ती थे। पर जहाँ तक सम्भावना है—ये भी 7वीं शती के प्रारम्भ में अथवा 6ठी शती के अन्त में अवश्य वर्तमान थे, क्योंकि इससे पूर्व तो वेदान्तदर्शन का अध्ययन-अध्यापन एवं प्रचार-प्रसार प्रायः लुप्त सा हो गया था। पर किसी ठोस प्रमाण के अभाव में ठीक-ठीक निर्णय नहीं दिया जा सकता।

सुन्दर पाण्ड्य (6ठी शती का उत्तरार्द्ध एवं 7वीं शती का पूर्वार्द्ध)

आचार्य श्रीसुन्दरपाण्ड्य ने एक कारिकाबद्ध वार्तिक की रचना की थी, परन्तु यह वार्तिक किस ग्रन्थ पर था, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। श्रीशंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र 1/1/4 के भाष्य के अन्त में 'अपि चाहुः' कहकर तीन गाथाएँ उद्धृत की हैं। पद्मपाद कृत पञ्चपादिका के ऊपर आत्मस्वरूप कृत **'प्रबोध परिशोधिनी'** नाम की जो टीका लिखी है, उससे यह प्रतीत होता है कि ये श्लोक सुन्दर पाण्ड्य के हैं। माधवमन्त्री कृत सूतसंहिता

डॉ. गोपीनाथ कविराज ने **'वेदान्तदर्शन'** की भूमिका में लिखा है कि ब्रह्मदत्त की दृष्टि से साधना क्रम इस प्रकार है—पहले उपनिषद् से ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान लाभ करना चाहिए। तदनन्तर **'अहं ब्रह्मास्मि'** इत्याकारक भावना का अभ्यास करना चाहिए। ब्रह्मदत्त कहते हैं कि मुमुक्षु को 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक अहंग्रहोपासना करनी चाहिए।

श्रीनिम्बार्काचार्य भी यही कहते हैं कि प्राचीन लोग 'एष मे आत्मा' ऐसा मानते थे और शिष्यों को 'एष ते आत्मा' ऐसा उपदेश देते थे, अतः मुमुक्षु को अपनी आत्मा के रूप में ही परमपुरुष का ध्यान करना चाहिए।

> **"एष मे आत्मेति पूर्व उपगच्छन्ति, एष ते आत्मेति शिष्यानुपदिशन्ति, अतो मुमुक्षुणा परमपुरुषः स्वस्यात्मत्वेन ध्येयः।"**[25]

परन्तु यह समझ में नहीं आता कि जो ब्रह्मदत्त **'अहं ब्रह्मास्मि'** इत्याकारक अहंग्रहोपासना का उपदेश देकर मोक्ष की बात करते हैं, वही जीव को किस भाँति अनित्य मानते हैं। यदि जीव अनित्य है तो मोक्ष के लिए प्रयास व्यर्थ प्रतीत होता है और यह 'अहंग्रहोपासना' भी उचित प्रतीत नहीं होती।

इसलिए सम्भव है उनके मत को ठीक तरह से न समझकर श्रीवेदान्तदेशिकजी ने जीव को विनाशी बता दिया हो।

आदरणीय श्रीकविराज जी ने लिखा है कि इनका (ब्रह्मदत्त का) कहना है कि भिन्नवत् प्रतीत होने पर भी जीव वस्तुतः ब्रह्म से भिन्न नहीं है। इससे प्रतीत होता है ब्रह्मदत्त के मत से जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध भेदाभेद के सदृश ही है।

ब्रह्मदत्त के मत से, साधक के किसी अवस्था में भी कर्मों का त्याग नहीं हो सकता। उपनिषद् से ब्रह्म के परोक्ष ज्ञान की प्राप्ति के अनन्तर भी 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक भावना की आवश्यकता है। जीवन पर्यन्त कर्म का त्याग नहीं होता। इसलिए ब्रह्मदत्त का मत भी ज्ञानकर्म समुच्चयवाद ही है। सुरेश्वराचार्य ने भी इनका उल्लेख समुच्चयवादी के रूप में ही किया है।

श्री निम्बार्कभाष्य में ज्ञान प्राप्त (प्राप्तविद्य) पुरुष के लिए भी जब तक चरम साक्षात्कार होकर शरीर का विनाश नहीं हो जाता, आश्रमोचित कर्म करते रहने का विधान है। जो गृहस्थ हैं, उन्हें स्वाश्रमोचित अग्निहोत्रादि करना चाहिए एवं जो ऊर्ध्वरेता हैं, उन्हें तप-जप करते रहना चाहिए। विद्या प्राप्त (ज्ञानप्राप्त) हो जाने पर भी आश्रमोचित कर्मों की निवृत्ति नहीं होती, अपितु विद्या के पोषक होने से उनका अनुष्ठान करते रहना चाहिए। यथा—

> **"विद्ययाऽग्निहोत्रदानतपादीनां स्वाश्रमकर्मणां निवृत्तिशंका नास्ति, विद्यापोषकत्वादनुष्ठेयान्येव।"**[26]

इतना होने पर भी श्रीनिम्बार्क भाष्य में तथाकथित ज्ञानकर्म समुच्चयवाद गृहीत नहीं हुआ है। कारण यह है कि नित्य, नैमित्तिक कर्मों को ये उपासना के अन्तर्गत मानते

हैं और उपासना को तथाकथित 'कर्म' नहीं मानते। ज्ञानकर्म समुच्चय का आरोप करने वाले वही लोग हैं, जो 'जीवन्मुक्ति' मानते हैं। ये लोग जीवन्मुक्त अवस्था में कर्मों की कोई आवश्यकता नहीं मानते। इनका कहना है कि इस अवस्था में कर्मसंन्यास स्वतः प्राप्त है। श्रीनिम्बार्क एवं ब्रह्मदत्त दोनों ही जीवन्मुक्ति नहीं मानते।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि श्रीनिम्बार्क एवं ब्रह्मदत्त में पर्याप्त समानता है। वास्तव में उस समय प्रायः सभी वेदान्त के आचार्यों का मत थोड़े बहुत अन्तर से मिलता-जुलता होता था।

ब्रह्मदत्त का संप्रति न तो कोई ग्रन्थ उपलब्ध है और न कोई परम्परा। इसलिए यह सम्भावना होती है, कि इन्होंने किसी पृथक् मत की स्थापना नहीं की थी, बल्कि आचार्य श्री निम्बार्क के मत के अनुरूप ही विद्याध्ययन कराने वाले प्रकाण्ड विद्वान् थे अथवा इसी के अनुरूप कोई भी ग्रन्थ लिखे थे, जिसकी श्रीनिम्बार्क भाष्य से कोई पृथक् सत्ता नहीं थी। अथवा इनका मत श्रीनिम्बार्काचार्य से मिलता-जुलता होने के कारण अपनी पृथक् सत्ता स्थापित नहीं कर पाया। सम्भव है कुछ पार्थक्य भी रहा हो, पर लोगों ने उसको विशेष महत्त्व नहीं दिया। इसके विपरीत अत्यन्त संक्षिप्त होने पर भी श्रीनिम्बार्काचार्य की वृत्ति आज भी प्रख्यात एवं विद्वज्जनों द्वारा समादृत है।

भर्तृमित्र (6ठी शती का अंत — 7वीं शती का प्रारम्भ)

श्रीयामुनाचार्य ने जिन आचार्यों का नाम निर्देश किया है, उनमें भर्तृमित्र भी अन्यतम हैं। प्रतीत होता है कि ये भी वेदान्त के ही आचार्य रहे होंगे। इन्होंने पूर्वमीमांसा के ऊपर भी कोई रचना की थी, जिसका परिचय मीमांसा ग्रन्थों के अनुशीलन से भलीभाँति प्राप्त होता है। कुमारिलभट्ट ने अपने श्लोकवार्तिक (1/1/1/10, 1/1/6/130-132) में इनका उल्लेख किया है। इसका प्रमाण पार्थसारथि मिश्र की टीका है। कुमारिल का कहना है कि भर्तृमित्र आदि आचार्यों के भाव से मीमांसा, चार्वाक दर्शन के समान बिल्कुल अवैदिक बन गई थी और इसी दोष को दूर करने के लिए उन्होंने अपना विख्यात ग्रन्थ लिखा। अतः ये भी कुमारिल से पूर्ववर्ती थे। पर जहाँ तक सम्भावना है—ये भी 7वीं शती के प्रारम्भ में अथवा 6ठी शती के अन्त में अवश्य वर्तमान थे, क्योंकि इससे पूर्व तो वेदान्तदर्शन का अध्ययन-अध्यापन एवं प्रचार-प्रसार प्रायः लुप्त सा हो गया था। पर किसी ठोस प्रमाण के अभाव में ठीक-ठीक निर्णय नहीं दिया जा सकता।

सुन्दर पाण्ड्य (6ठी शती का उत्तरार्द्ध एवं 7वीं शती का पूर्वार्द्ध)

आचार्य श्रीसुन्दरपाण्ड्य ने एक कारिकाबद्ध वार्तिक की रचना की थी, परन्तु यह वार्तिक किस ग्रन्थ पर था, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। श्रीशंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र 1/1/4 के भाष्य के अन्त में 'अपि चाहुः' कहकर तीन गाथाएँ उद्धृत की हैं। पद्मपाद कृत पञ्चपादिका के ऊपर आत्मस्वरूप कृत **'प्रबोध परिशोधिनी'** नाम की जो टीका लिखी है, उससे यह प्रतीत होता है कि ये श्लोक सुन्दर पाण्ड्य के हैं। माधवमन्त्री कृत सूतसंहिता

की टीका में, न्यायसुधा में तथा तन्त्रवार्तिक में इनके कतिपय श्लोक उद्धृत किये गये हैं। इससे प्रतीत होता है कि सुन्दर पाण्ड्य ने पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा—दोनों पर वार्तिक ग्रन्थ की रचना की थी। ये शंकर से ही नहीं, अपितु कुमारिल से भी पूर्ववर्ती थे।

ये पाण्ड्यराज कुब्जवर्द्धन अथवा कुलपाण्ड्य नाम से भी प्रसिद्ध थे। किसी किसी के मत में '**अरिकेसरी**' इनकी उपाधि थी। प्रसिद्ध शैवाचार्य तिरुज्ञान सम्बन्धर इनके समकालीन थे। इन्हीं के प्रभाव से प्रभावित होकर सुन्दर पाण्ड्य ने जैनधर्म को छोड़कर शैवधर्म को ग्रहण किया था और अपनी साधन सम्पत्ति के प्रभाव से 63 शैवाचार्यों के मध्यम में स्थान प्राप्त किया था। इन्होंने चोल राजकुमारी से विवाह किया था। इनका देहावसान 650 ई. के आस-पास हुआ था। अतः इनका उपस्थिति काल सप्तम शती का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

भर्तृहरि (मृत्यु 651-52 ई.)

भर्तृहरि का नामोल्लेख भी श्रीयामुनाचार्य ने किया है। इनको वाक्यपदीयकार से अभिन्न मानने में कोई अनुपपत्ति प्रतीत नहीं होती। यद्यपि इनका कोई वेदान्त का ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ, तथापि अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के कारण, जिनका पल्लवीकरण वाक्यपदीय में विशिष्ट रूप से हुआ है, इनकी गणना वेदान्त के आचार्यों में की गई है। इनका शब्दाद्वैतवाद दार्शनिक जगत् में एक महत्त्वपूर्ण विषय है। इनका प्रभाव परवर्ती वेदान्ताचार्यों पर भी पड़ा था, विशेषतः मण्डनमिश्र पर, जिन्होंने **स्फोटसिद्धि** नामक अपने ग्रन्थ में भर्तृहरि के द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण किया है। **प्रत्यभिज्ञा दर्शन** के आचार्य, उत्पलाचार्य के गुरु सोमानन्द ने अपने '**शिवदृष्टि**' नामक ग्रन्थ में इस शब्दाद्वैतवाद की विस्तृत आलोचना की है। इतना ही नहीं, बौद्ध दार्शनिक शान्तरक्षित के तत्त्वसंग्रह में, अद्वैतवेदान्ती अविमुक्तात्मा की इष्टसिद्धि में और नैयायिक जयन्त भट्ट की न्यायमञ्जरी में शब्दाद्वैतवाद का उल्लेख मिलता है। भर्तृहरि ने भलीभाँति दिखलाया है कि व्याकरण आगम शास्त्र है, जिसके सिद्धान्तों का अनुशीलन कर योग्य साधक मोक्ष पा सकता है। शब्दब्रह्म, परब्रह्म, परावाक् आदि शब्द एक अद्वैत परम तत्त्व के द्योतक हैं। उसी तत्त्व से अर्थरूप नानात्मक जगत् की उत्पत्ति होती है। जगत् वास्तविक नहीं है, अपितु काल्पनिक है। यथा—

> **"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।**
> **विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥"**

परन्तु मीमांसकों को यह मत ग्राह्य नहीं है। वे भी शब्द की नित्यता मानते हैं, परन्तु स्फोटात्मक रूप से नहीं, प्रत्युत वर्णात्मक रूप से। मीमांसकों का सिद्धान्त है कि स्फोट को ही सत्य तथा वर्ण, पद, अवान्तर वाक्य को मिथ्या मानने से तत्प्रतिपाद्य प्रयाज आदि अनुष्ठानों को भी मिथ्या मानना पड़ेगा। इसीलिए कुमारिल ने श्लोक वार्तिक (श्लोक 137) में **स्फोटवाद** के खण्डन का उपसंहार बड़ी सुन्दर रीति से किया है। इसी प्रसंग में उन्होंने भर्तृहरि की यह कारिका तन्त्र वार्तिक (1/3/20 सूत्र) में उद्धृत की है—

"अस्त्यर्थः सर्वशब्दानामिति प्रत्याय्य-लक्षणम्।
अपूर्वदेवता स्वर्गैः सममाहुर्गवादिषु॥"

(वाक्यप्रदीप, 2 काण्ड, 121 श्लोक)

इसलिए कुमारिल (सातवीं का मध्य) को भर्तृहरि से कुछ अर्वाचीन मानना उचित है। इत्सिंग नामक चीनी परिव्राजक के कथनानुसार भर्तृहरि का स्वर्गवास 651-52 में हो गया था।

द्रविड़ाचार्य

द्रविड़ाचार्य भी आचार्य श्रीनिम्बार्क के समसामयिक एवं शंकर से पूर्व वेदान्तदर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् हो चुके हैं। आनन्दगिरि के अनुसार छान्दोग्य उपनिषद् पर इन्होंने एक अतिबृहत् भाष्य लिखा था। किसी किसी के मत में बृहदारण्यक पर भी इनका भाष्य था। छान्दोग्य उपनिषद् में जो '**तत्त्वमसि**' महावाक्य का प्रसंग आया है, उसकी व्याख्या में द्रविड़ाचार्य ने व्याधसंवर्धित राजपुत्र की आख्ययिका का वर्णन बड़ा ही सुन्दर किया है। व्याध के कुल में रहते हुए राजपुत्र को अपने प्राचीन गौरव, पद व प्रतिष्ठा की बिल्कुल विस्मृति हो गई थी। परन्तु गुरु के द्वारा बतलाये जाने पर उसे उन बातों का ध्यान तुरन्त आ गया। ठीक उसी प्रकार यह संसारी जीव भी आचार्य के उपदेश से अपने मूल विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है।

श्रीरामानुज सम्प्रदाय में द्रविड़ाचार्य नाम के एक प्राचीन आचार्य का उल्लेख मिलता है। किसी-किसी का मत यह है कि वे द्रविड़ाचार्य शंकरोक्त द्रविड़ से भिन्न थे। उन्होंने पञ्चरात्र सिद्धान्त का अवलम्बन कर द्रविड़ भाषा में ग्रन्थ रचना की थी।

यामुनाचार्य ने सिद्धित्रय में इन्हीं आचार्य के विषय में कहा है—

'भगवता बादरायणेन इदमर्थमेव सूत्राणि प्रणीतानि विवृतानि च परिमितगम्भीरभाष्य कृता।'

यहाँ पर 'भाष्यकृत्' शब्द से द्रविड़ाचार्य लिए गए हैं। सर्वज्ञात्म मुनि ने संक्षेप शारीरक (3/21) में ब्रह्मानन्दीग्रन्थ को द्रविड़भाष्य से जिन वचनों का उद्धरण दिया है, वे रामानुज से उद्धृत द्रविड़भाष्य के वचनों से अभिन्न दीख पड़ते हैं। इसीलिए किसी- किसी के मत से शंकर संप्रदाय में प्रसिद्ध द्रविड़ और रामानुज संप्रदाय में प्रसिद्ध द्रविड़ एक ही व्यक्ति हैं, भिन्न नहीं।

आचार्य ललितकृष्ण गोस्वामी ने अपने '**निम्बार्क वेदान्त**' की भूमिका में द्रविड़ाचार्य एवं श्रीनिम्बाकाचार्य को अभिन्न सिद्ध करने का प्रयास किया है। पर आचार्य श्रीरामानुज ने जिन वाक्यों को द्रविड़ाचार्य का कहकर उद्धरण किया है, वे श्रीनिम्बार्क भाष्य में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। इसलिए यह कहना असंगत है कि श्रीनिम्बार्काचार्य और द्रविड़ाचार्य एक ही व्यक्ति थे।

गौड़पाद

गौड़पाद आचार्य शंकर (684-716 ई.) के परम गुरु थे। आचार्य शङ्कर इनके शिष्य श्रीगोविन्दभगवत्पाद के शिष्य थे। ऐतिहासिक दृष्टि से गौड़पादाचार्य कम से कम 600-670 ई. तक अवश्य उपस्थित रहे होंगे। अद्वैत वेदान्त के इतिहास में मायावाद के प्रथम प्रचारक के रूप में ये बहुत विख्यात रहे हैं। **'माण्डूक्यकारिका'** इनकी बहुचर्चित रचना है। अद्वैत वेदान्ती लोग इसका श्रुतितुल्य प्रामाण्य स्वीकार करते हैं। माण्डूक्यकारिका चार भागों में विभक्त है—(1) आगम प्रकरण का.सं. 29, (2) वैतथ्य प्रकरण का.सं. 38, (3) अद्वैत प्रकरण का.सं. 48, (4) अलातशान्ति प्रकरण का.सं. 100। इस प्रकार इसमें कुल 215 कारिकाएँ हैं। इनके अतिरिक्त **'उत्तरगीता'** और **'सांख्यकारिका'** के भाष्य भी इन्हीं के बताये जाते हैं। संक्षेप में इनका सिद्धान्त इस प्रकार है—ओंकार परम तत्त्व का द्योतक है। जगत् स्वप्न के सदृश मिथ्या और मायिक है। माया न सत् है, न असत् और न सदसत् ही। वस्तुतः स्वरूप की विस्मृति ही माया है। स्वरूप के परिज्ञान हो जाने पर उसकी निवृत्ति हो जाती है। 'आत्मा' से पृथक् सब कुछ मिथ्या है। यह 'आत्मा' सुख दुःख सब से पृथक् है। इसमें सुख-दुःख की कल्पनाएँ बालकों की भाँति दुर्बुद्धि का विलास-मात्र हैं। ये 'अजातवाद' के प्रबल समर्थक माने जाते हैं। इनका कहना है कि आत्मा नित्य और अजन्मा है। आत्मैकत्व बोध हो जाने पर किसी बात की चिन्ता नहीं होती। इसे ये **'अस्पर्श योग'** की संज्ञा देते हैं। जगत् को मायिक सिद्ध करने के लिए 'अलातचक्र' का उदाहरण दिया है। 'अलात' शब्द का अर्थ है मसाल। मसाल को तेजी से घुमाने पर वह गोलाकार दीखने लगता है, परन्तु ज्यों ही उसका घुमाना बंद कर दिया जाता है, वह आकार भी गायब हो जाता है। इसी प्रकार इस जगत् की प्रतीति माया और मन के स्पन्दन के कारण होती है। मन के स्पन्दन रहित होते ही यह दृश्यमान जगत् न जाने कहाँ चला जाता है। जगत् की प्रतीति और अप्रतीति दोनों ही भ्रान्तिजनित हैं। परमार्थतः इसकी कोई सत्ता ही नहीं। परन्तु जैसे प्रत्येक भ्रान्ति का कोई न कोई आधार होता है, वैसे ही इस मायिक जगत् की भ्रान्ति का आधार परमात्मा है।

पर इनके इस मत का कोई विशेष प्रचार-प्रसार न हो सका, इसमें दो कारण थे—

(1) गौड़पाद ने अपने सिद्धान्त को प्रस्तुत करने के लिए जिस शैली का उपयोग किया, वह प्रायः बौद्धों जैसी थी। साथ ही जिन शब्दों (पारिभाषिक) का प्रयोग किया, वे भी बौद्धों के ही थे। इसलिए वैदिक धर्मावलम्बियों को इनके प्रति संदेह होने लगा था कि ये 'प्रच्छन्न बौद्ध' तो नहीं हैं?

(2) सम्भवतः इसीलिए इनके गुरुदेव ने इन्हें 'ब्रह्मराक्षस' होने का शाप दे दिया था। लोगों से वे एक प्रश्न पूछते थे और उचित उत्तर न मिलने पर उसे उसी समय मारकर खा जाते थे। कहते हैं—गोविन्दभगवत्पाद ने, जिनका पूर्व नाम चन्द्राचार्य था, इनको समुचित उत्तर दिया था और इनके उत्तर से पूर्ण संतुष्ट होकर गौड़पाद ने इनको अपना शिष्य बना लिया था।

श्रीकुमारिल भट्ट (600-700 ई.)

अभी तक जितने आचार्यों का उल्लेख किया गया है, प्रायः सभी परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास करते हैं एवं परम सुख-शान्ति की उपलब्धि के लिए उसी की उपासना आदि के प्रतिपादन में संलग्न दीखते हैं। वे अपने इस प्रयास में बहुत अधिक अंशों में सफल भी हुए हैं, परन्तु वैदिक धर्म का एक पक्ष अभी तक उपेक्षित ही पड़ा था, वह था कर्मकाण्ड। नास्तिक बौद्ध लोग यज्ञ-यागादिकों की खिल्ली उड़ाते थे। इतना ही नहीं, उन्होंने उसे पाप की संज्ञा दे दी थी। ऐसे समय में कुमारिल का इस धरातल पर आगमन हुआ। नास्तिक बौद्ध दार्शनिकों के द्वारा वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड के ऊपर किये गये आक्षेपों का मुँहतोड़ उत्तर देकर कुमारिल ने उसे पुनः प्रतिष्ठित कर दिया था।

तिब्बत के ख्यातनामा बौद्ध ऐतिहासिक तारानाथ के अनुसार कुमारिल प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्ति के पितृव्य थे और दक्षिण के चूड़ामणि (चोल ?) के त्रिमलय के निवासी थे। परन्तु आनन्दगिरि ने इनके उदग्देश (पंजाब और काश्मीर का सम्मिलित प्रदेश) का निवासी बताया है। प्रसिद्ध मीमांसक शालिकनाथ ने, जो कुमारिल के बाद तीन सौ वर्ष के भीतर ही उत्पन्न हुए थे, इनको 'वार्तिककार मिश्र' के नाम से सम्बोधित किया है। 'मिश्र' की उपाधि उत्तरी भारत के ब्राह्मणों के नाम से सम्बन्धित होती है। इसलिए यह निश्चित होता है कि ये उत्तरी भारत के ही थे।

कुमारिल बड़े समृद्ध गृहस्थ थे। इनके पास धान के अनेक खेत थे, 500 दास और इतनी ही दासियाँ भी थीं। कुमारिल ने बौद्ध धर्म का खण्डन इतनी पैनी दृष्टि से किया है कि उन्हें आज तक उत्तर देते न बना और परिणामस्वरूप भारत छोड़कर विदेशों में शरण लेनी पड़ी। बौद्धधर्म के तल तक पहुँचने के लिए एक बार उन्हें बौद्धों की शरण भी लेनी पड़ी थी। नालन्दा महाविहार के प्रख्यात बौद्ध स्थविर धर्मपाल (600-835) के यहाँ वेश बदलकर इन्होंने बौद्ध धर्म का अध्ययन भी किया था। परन्तु कुछ दिनों के बाद एक दिन जब आचार्य धर्मपाल वेदों की निन्दा कर रहे थे, इनसे न सुना गया और आँखों से आँसू निकल पड़े। धर्मपाल बड़े क्रुद्ध हुए और इन्होंनें इनको वहाँ से निकलने की आज्ञा प्रसारित कर दी। परन्तु दुष्ट विद्यार्थियों ने इनको विपक्षी ब्राह्मण समझ कर नालन्दा के ऊँचे शिखर से गिरा दिया। आस्तिक कुमारिल ने अपने को नितान्त असहाय पाकर वेदों की शरण ली और गिरते समय ऊँचे स्वर से घोषित किया कि यदि वेद प्रमाण हैं तो मेरे शरीर का बाल भी बाँका न होगा।

> **"पतन् पतन् सौधतलान्यरोरुहं,**
> **यदि प्रमाणं श्रुतयो भवन्ति।**
> **जीवेयमस्मिन् पतितोऽसमस्थले,**
> **मज्जीवनं तत् श्रुतिमानता गतिः ॥"**

(शं. दि. 7/98)

समुपस्थित जनता ने आश्चर्य के साथ देखा कि कुमारिल इतनी ऊँचाई से गिरकर भी नितान्त स्वस्थ थे। वेद भगवान् ने उनकी रक्षा की। इस घटना के बाद कुमारिल ने बौद्ध आचार्य धर्मपाल को चुनौती दी। कहा जाता है कि धर्मपाल परास्त हो पूर्व प्रतिज्ञानुसार तुषानल में जलकर भस्म हो गये। वैदिक धर्म की इतनी बड़ी विजय का सम्भवतः यह पहला ही अवसर था। कुमारिल की विजय-वैजयन्ती ही नहीं, अपितु वैदिक धर्म की कीर्ति पताका भारतवर्ष में पुनः फहराने लगी।

राजा सुधन्वा को, जिसने ब्राह्मण होते हुए भी जैन धर्म स्वीकार कर लिया था, इन्होंने पुनः ब्राह्मण धर्म में संस्कृत कर जैन धर्म को परास्त कर दिया।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक तारानाथ के अनुसार आचार्य धर्मकीर्ति (635-650 ई.) भी ब्राह्मण धर्म का अध्ययन करने के लिए कुछ दिनों तक इनकी सेवा में रहे थे। शङ्कर दिग्विजय में आचार्य शङ्कर से कुमारिल के भेंट की चर्चा है। उसके अनुसार शंकराचार्य अपने भाष्य पर वार्तिक लिखने का अनुरोध करने के लिए इनसे मिलने प्रयाग आये थे, पर उस समय इन्होंने तुषानल में भस्म होने की दीक्षा ले ली थी। इनका आधा शरीर जल चुका था। यह 700 ई. की बात है।

इन्होंने शबर स्वामी के मीमांसा भाष्य पर सुप्रसिद्ध टीका लिखी है, जो वार्तिक के नाम से विख्यात है। इसके भी तीन भाग हैं—(1) श्लोक वार्तिक, (2) तन्त्र वार्तिक, (3) टुपटीका। श्लोक वार्तिक एवं तन्त्र वार्तिक इनकी असाधारण तर्ककुशलता के परिचायक हैं।

इनके द्वारा वैदिक धर्म का मण्डन एवं अवैदिक धर्म का खण्डन इतनी कुशलता से किया गया कि बौद्ध धर्म पुनः सिर न उठा सका। वह पूर्वी भारत के किसी कोने में सिसकता रहा और अन्त में भारत से बाहर जाने पर ही उसको शान्ति मिली। वैदिक धर्म के पुनरुत्थान एवं उसे सुप्रतिष्ठित करने में भट्ट कुमारिल का बहुत बड़ा हाथ था, इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीनिम्बार्काचार्य के समसामयिक अनेक अनेक विद्वान् आचार्यों ने वैदिक धर्म के उभय पक्ष कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड की सार्थकता का प्रतिपादन कर उसे सुप्रतिष्ठित किया था, जिसको अपना कर भारतीय जनमानस सुशीतल हुआ। समाज में सदाचार का प्राधान्य स्थापित हुआ, पाखण्डियों का उन्मूलन हो गया और यही कारण है कि छठी-सातवीं शताब्दी भारतीय इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से जानी जाती है।

(5) निम्बार्क सम्प्रदाय : व्रतोपवास निर्णय

'व्रत' शब्द का भावार्थ

किसी दिन किन्हीं विशेष नियमों के पालन करने का नाम ही **व्रतोपवास** है। जैसे एक समय भोजन अथवा निराहार रहने का निर्णय। मैं आज इन-इन नियमों का पालन

करता हुआ एक समय भोजन करूँगा अथवा निराहार रहूँगा—इस संकल्प अथवा प्रतिज्ञा को ही व्रत कहते हैं।

इसमें विशेषता यह है कि अग्नि आहार को ही पचाता है, किन्तु व्रतोपवास शरीर के समस्त दोषों को पचाकर शरीर को नीरोग बनाता है। अतः व्रतोपवास के दिन भजन, पाठ, पूजन और कीर्तनादि द्वारा मन को भगवच्चरणारविन्दों में लगाये रखने का नाम ही व्रतोपवास है।

मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों की वृत्तियों को संयम द्वारा भगवान् के उप (समीप) वास (स्थिति) रखने का नाम ही उपवास है। जैसे—

"उपावृतस्तु पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः॥"

(स्कन्दपुराण)

पापों से उपावृत्त (पृथक्) होकर अर्थात् समस्त भोगों से रहित होकर गुणों के साथ वास करने का ही नाम 'उपवास' है।

इसी पवित्र भावना को सामने रखकर हमारे पूर्वाचार्यों ने प्रतिमास दो उपवास अर्थात् एकादशियाँ रखी हैं, जो इस लोक और परलोक दोनों में ही कल्याणप्रद हैं।

दशों इन्द्रियों और मन को एकाग्र कर निराहार या एक समय फलाहार करके भगवच्चिन्तन करना ही एकादशी व्रत का विधान है।

एकादशी भगवान् विषणु के शरीर से उत्पन्न एक वैष्णवी शक्ति है। एकादशी तिथि को उत्पन्न होने के कारण यह एकादशी तिथि की अधिष्ठात्री देवी है।

जैसे देवताओं में भगवान् विष्णु प्रधान हैं, वैसे ही व्रतों में एकादशी व्रत प्रधान है। अतः अब पूर्वाचार्यों के सिद्धान्त सम्मत कपालवेध मतानुसार एकादशी आदि व्रतों के सम्बन्ध में यहाँ कुछ विचार किया जा रहा है।

कपालवेध

स्पर्श, संग, शल्य और वेध इन चतुर्विध वेधों में प्रथम स्पर्श वेध को ही भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य जी ने स्वीकार किया है। उन्होंने प्रत्येक एकादशी एवं भगवद्भागवत जयन्तियों में तिथि का उदयकाल अर्धरात्र (45 घटी) पर ही माना है। जैसे—

'उदय-व्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे।
निम्बार्को भगवानेषां वांछितार्थ-प्रदायकः॥'

उनके मत में दशमी यदि पल मात्र भी अर्धरात्र (45 घटी) के ऊपर हो, तो एकादशी में व्रत न करके द्वादशी में व्रत करना कहा गया है।

'अर्धरात्रमतिक्रम्य दशमी दृश्यते यदि।
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्॥'

(कूर्मपुराण)

जो अर्धरात्र का अतिक्रमण (उल्लंघन) कर अर्थात् 45 घटी के उपरान्त दशमी दीख पड़े तो निश्चय एकादशी को छोड़कर द्वादशी में ही व्रत करे।

तात्पर्य यह है कि 45 घटी के उपरान्त दशमी हो तो वह आगामी (एकादशी) तिथि का स्पर्श कर लेती है। इस कारण इस वेध का नाम '**स्पर्श**' वेध है। इस स्पर्श वेध का ही नाम 'कपाल वेध' है। अर्द्ध भाग का नाम है कपाल, अर्थात् रात्रि के अर्ध भाग के वेध को स्वीकार करने से इसका नाम कपाल वेध है। जैसे—

"अर्द्धरात्रे तु केषांचिद्दशम्या वेध इष्यते।
कपालवेध इत्याहु आचार्या ये हरिप्रियाः॥"

(ब्रह्मवैवर्त)

जो हरि के प्यारे आचार्य (अर्थात् हरिप्रियायुध श्रीचक्रसुदर्शनावतार श्रीनिम्बार्काचार्य हैं) वे इस वेध को 'कपालवेध' इस नाम से कहते हैं। अतः उनके मत में अर्द्धरात्र ही दशमीवेध इष्ट है।

यह वेध अति प्राचीन होने के कारण बहुजन सम्मत भी है। उदाहरणार्थ जैसे—

1. महर्षि पाणिनि मुनि ने स्वनिर्मित अष्टाध्यायी के एकसूत्र 'अनद्यतने लुट्' में गत रात्रि के 12 बजे से लेकर आगामी रात्रि के 12 बजे पर्यन्त के काल को अद्यतन काल (वर्तमान काल) अर्थात् आज का दिन बताया है और इससे पूर्व तथा परकाल को अनद्यतन काल माना है।
2. वीर विक्रमादित्य का नवीन सम्वत् भी चैत्रमास के अर्द्धभाग (अर्थात् अमावास्या के पश्चात्) शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से ही प्रारम्भ होता है।
3. ईसवी सन् (अंग्रेजी सम्वत् के महीनों) की तारीख भी रात्रि के अर्द्धभाग 12 बजे बाद ही बदल जाती है।
4. रात्रि के अर्द्धभाग अर्थात् 12 बजे पश्चात् मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर भी दूसरा दिन मान लिया जाता है। इत्यादि।

कपालवेध ही आवश्यक क्यों?

उपर्युक्त बहुजनसम्मत प्रमाणों के अतिरिक्त कपालवेध स्वीकार करने का प्रधान कारण यह भी है कि अर्द्धरात्रि पर दशमी से स्पर्श की गई एकादशी में बीस प्रकार के दोष प्राप्त होते हैं। किन्तु अर्द्धरात्रि (कपाल) वेध स्वीकार करने पर वे सब छूट जाते हैं। श्रीनारद-पंचरात्र में उन बीस प्रकार के दोषों का निम्न प्रकार से नामोल्लेख किया है।

यथा—व्यालामुखी, महाव्याला, भया, महाभया, वज्रा, अतिवज्रा, रौद्रा, महारौद्रा, आसुरी, वन्ध्या, महावन्ध्या, छायाग्रस्ता, वेधा, अतिवेधा, महोवेधा, षडाधिका, प्रलया, महाघोरा और सम्पूर्णाराक्षसी। ये बीस प्रकार के दोष हैं।

इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने इन 20 दोषों से सम्बन्धित (विद्धा) एकादशी का परित्याग और इन दोषों से रहित (शुद्धा) एकादशी में व्रतोपवास करना बताया है। अतएव मुमुक्षु

पुरुषों को पूर्वाचार्यों द्वारा संकथित शुद्धा एकादशी में ही व्रतोपवास करना चाहिए, जिससे उन्हें वास्तविक सच्चे सुख की संप्राप्ति हो सके। व्रतोपवास का प्रधानतया यही मुख्य कारण है।

एकादशी के भेद

विद्धा और शुद्धा इस प्रकार एकादशी के दो भेद हैं। प्रत्येक तिथि का सम्बन्ध पूर्व या पर इन दोनों तिथियों में से किसी एक के साथ तो होता ही है। अतएव पूर्वतिथि (दशमी) से सम्बन्धित एकादशी को विद्धा और पर तिथि (द्वादशी) से सम्बन्धित एकादशी को शुद्धा का रूप दिया गया है। पूर्वाचार्यों के मत से विद्धा एकादशी त्याज्य और शुद्धा एकादशी ग्राह्य है। भले ही एकादशी में द्वादशी आ जाये, इस बात का दोष नहीं, पर पूर्व तिथि (दशमी) विद्धा अर्थात् दशमी 45 घटी के ऊपर हो तो व्रत एकादशी में न करके द्वादशी में करना चाहिए।

विद्धा और शुद्धा एकादशी के व्रतोपवास का परिणाम

दशमी विद्धा एकादशी करने का फल राक्षसों को मिलता है और उससे जनता में आसुरी भाव की अभिवृद्धि होती है तथा उससे विश्व का अहित होता है।

शुद्धा एकादशी के व्रतोपवास का फल देवताओं को प्राप्त होता है, जिससे जनता में दैवी-भाव की अभिवृद्धि होती है और उससे मन एवं इन्द्रियों की वृत्तियाँ शुद्ध रहती हैं, जिससे धर्माचरण बनते हैं और इससे विश्व का हित होता है।

वैष्णवों के सभी धार्मिक कृत्य 'विश्व का कल्याण हो' इसी भावना के साथ-साथ हुआ करते हैं। एतदर्थ पूर्व विद्धा (दशमी विद्धा) एकादशी को त्याग कर परविद्धा (शुद्धा-द्वादशी विद्धा) एकादशी को ही उन्होंने मान्यता दी है।

पञ्चाङ्गों द्वारा उत्पन्न सन्देह और उसकी निवृत्ति

आजकल प्रायः कई स्थानों से अनेक पञ्चाङ्ग निकलते हैं। अपने अपने स्थान के गणितानुसार उनकी तिथियों के घटीमान में भिन्नता भी अवश्य रहती है। सब जगह सभी पञ्चाङ्ग देखेने में आते ही हैं। मान लीजिये एक पञ्चाङ्ग में दशमी तिथि का घटीमान 44 घटी है और दूसरे पञ्चाङ्ग में 46 घटी मिलता है। अब एक पञ्चाङ्ग के अनुसार जिसमें दशमी 44 घटी है, उसके हिसाब से तो एकादशी दशमी विद्धा नहीं है, अतः एकादशी में व्रतोपवास होना चाहिए और दूसरे पञ्चाङ्गानुसार जिसमें कि दशमी 46 घटी है, उसके हिसाब से एकादशी दशमी विद्धा है, अतः एकादशी में व्रत न होकर द्वादशी में ही होना चाहिए। ऐसी स्थिति में भावुक सज्जनों को यह संदेह हो जाता है कि व्रतोपवास एकादशी में करना चाहिए या द्वादशी में।

इस संदेह की निवृत्ति इस प्रकार कर लेनी चाहिए, कि जैसे—जो सज्जन जिस प्रान्त में रहते हों और उस प्रान्त में जो पञ्चाङ्ग प्रचलित हो अर्थात् वहाँ जिस पञ्चाङ्ग को

जो अर्धरात्र का अतिक्रमण (उल्लंघन) कर अर्थात् 45 घटी के उपरान्त दशमी दीख पड़े तो निश्चय एकादशी को छोड़कर द्वादशी में ही व्रत करे।

तात्पर्य यह है कि 45 घटी के उपरान्त दशमी हो तो वह आगामी (एकादशी) तिथि का स्पर्श कर लेती है। इस कारण इस वेध का नाम '**स्पर्श**' वेध है। इस स्पर्श वेध का ही नाम 'कपाल वेध' है। अर्द्ध भाग का नाम है कपाल, अर्थात् रात्रि के अर्ध भाग के वेध को स्वीकार करने से इसका नाम कपाल वेध है। जैसे—

"अर्द्धरात्रे तु केषांचिद्दशम्या वेध इष्यते।
कपालवेध इत्याहु आचार्या ये हरिप्रियाः॥"

(ब्रह्मवैवर्त)

जो हरि के प्यारे आचार्य (अर्थात् हरिप्रियायुध श्रीचक्रसुदर्शनावतार श्रीनिम्बार्काचार्य हैं) वे इस वेध को 'कपालवेध' इस नाम से कहते हैं। अतः उनके मत में अर्द्धरात्र ही दशमीवेध इष्ट है।

यह वेध अति प्राचीन होने के कारण बहुजन सम्मत भी है। उदाहरणार्थ जैसे—

1. महर्षि पाणिनि मुनि ने स्वनिर्मित अष्टाध्यायी के एकसूत्र 'अनद्यतने लुट्' में गत रात्रि के 12 बजे से लेकर आगामी रात्रि के 12 बजे पर्यन्त के काल को अद्यतन काल (वर्तमान काल) अर्थात् आज का दिन बताया है और इससे पूर्व तथा परकाल को अनद्यतन काल माना है।
2. वीर विक्रमादित्य का नवीन सम्वत् भी चैत्रमास के अर्द्धभाग (अर्थात् अमावास्या के पश्चात्) शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से ही प्रारम्भ होता है।
3. ईसवी सन् (अंग्रेजी सम्वत् के महीनों) की तारीख भी रात्रि के अर्द्धभाग 12 बजे बाद ही बदल जाती है।
4. रात्रि के अर्द्धभाग अर्थात् 12 बजे पश्चात् मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर भी दूसरा दिन मान लिया जाता है। इत्यादि।

कपालवेध ही आवश्यक क्यों?

उपर्युक्त बहुजनसम्मत प्रमाणों के अतिरिक्त कपालवेध स्वीकार करने का प्रधान कारण यह भी है कि अर्द्धरात्रि पर दशमी से स्पर्श की गई एकादशी में बीस प्रकार के दोष प्राप्त होते हैं। किन्तु अर्द्धरात्रि (कपाल) वेध स्वीकार करने पर वे सब छूट जाते हैं। श्रीनारद-पंचरात्र में उन बीस प्रकार के दोषों का निम्न प्रकार से नामोल्लेख किया है।

यथा—व्यालामुखी, महाव्याला, भया, महाभया, वज्रा, अतिवज्रा, रौद्रा, महारौद्रा, आसुरी, वन्ध्या, महावन्ध्या, छायाग्रस्ता, वेधा, अतिवेधा, महोवेधा, षडाधिका, प्रलया, महाघोरा और सम्पूर्णाराक्षसी। ये बीस प्रकार के दोष हैं।

इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने इन 20 दोषों से सम्बन्धित (विद्धा) एकादशी का परित्याग और इन दोषों से रहित (शुद्धा) एकादशी में व्रतोपवास करना बताया है। अतएव मुमुक्षु

पुरुषों को पूर्वाचार्यों द्वारा संकथित शुद्धा एकादशी में ही व्रतोपवास करना चाहिए, जिससे उन्हें वास्तविक सच्चे सुख की संप्राप्ति हो सके। व्रतोपवास का प्रधानतया यही मुख्य कारण है।

एकादशी के भेद

विद्धा और शुद्धा इस प्रकार एकादशी के दो भेद हैं। प्रत्येक तिथि का सम्बन्ध पूर्व या पर इन दोनों तिथियों में से किसी एक के साथ तो होता ही है। अतएव पूर्वतिथि (दशमी) से सम्बन्धित एकादशी को विद्धा और पर तिथि (द्वादशी) से सम्बन्धित एकादशी को शुद्धा का रूप दिया गया है। पूर्वाचार्यों के मत से विद्धा एकादशी त्याज्य और शुद्धा एकादशी ग्राह्य है। भले ही एकादशी में द्वादशी आ जाये, इस बात का दोष नहीं, पर पूर्व तिथि (दशमी) विद्धा अर्थात् दशमी 45 घटी के ऊपर हो तो व्रत एकादशी में न करके द्वादशी में करना चाहिए।

विद्धा और शुद्धा एकादशी के व्रतोपवास का परिणाम

दशमी विद्धा एकादशी करने का फल राक्षसों को मिलता है और उससे जनता में आसुरी भाव की अभिवृद्धि होती है तथा उससे विश्व का अहित होता है।

शुद्धा एकादशी के व्रतोपवास का फल देवताओं को प्राप्त होता है, जिससे जनता में दैवी-भाव की अभिवृद्धि होती है और उससे मन एवं इन्द्रियों की वृत्तियाँ शुद्ध रहती हैं, जिससे धर्माचरण बनते हैं और इससे विश्व का हित होता है।

वैष्णवों के सभी धार्मिक कृत्य 'विश्व का कल्याण हो' इसी भावना के साथ-साथ हुआ करते हैं। एतदर्थ पूर्व विद्धा (दशमी विद्धा) एकादशी को त्याग कर परविद्धा (शुद्धा-द्वादशी विद्धा) एकादशी को ही उन्होंने मान्यता दी है।

पञ्चाङ्गों द्वारा उत्पन्न सन्देह और उसकी निवृत्ति

आजकल प्रायः कई स्थानों से अनेक पञ्चाङ्ग निकलते हैं। अपने अपने स्थान के गणितानुसार उनकी तिथियों के घटीमान में भिन्नता भी अवश्य रहती है। सब जगह सभी पञ्चाङ्ग देखेने में आते ही हैं। मान लीजिये एक पञ्चाङ्ग में दशमी तिथि का घटीमान 44 घटी है और दूसरे पञ्चाङ्ग में 46 घटी मिलता है। अब एक पञ्चाङ्ग के अनुसार जिसमें दशमी 44 घटी है, उसके हिसाब से तो एकादशी दशमी विद्धा नहीं है, अतः एकादशी में व्रतोपवास होना चाहिए और दूसरे पञ्चाङ्गानुसार जिसमें कि दशमी 46 घटी है, उसके हिसाब से एकादशी दशमी विद्धा है, अतः एकादशी में व्रत न होकर द्वादशी में ही होना चाहिए। ऐसी स्थिति में भावुक सज्जनों को यह संदेह हो जाता है कि व्रतोपवास एकादशी में करना चाहिए या द्वादशी में।

इस संदेह की निवृत्ति इस प्रकार कर लेनी चाहिए, कि जैसे—जो सज्जन जिस प्रान्त में रहते हों और उस प्रान्त में जो पञ्चाङ्ग प्रचलित हो अर्थात् वहाँ जिस पञ्चाङ्ग को

अधिक लोग मानते हों, उसी बहुमान्य पञ्चाङ्गानुसार विद्धा या शुद्धा एकादशी का निर्णय करके मान लेना चाहिए। इसके आगे अधिक गहरे विचारों में पड़ना तो संदेह का कारण बन जाता है। अथवा—

"बहुवाक्यविरोधेन संदेहो जायते यदा।
उपोष्या द्वादशी तत्र त्रयोदश्यां तु पारणम्॥"

इस नारदजी के वचनानुसार बहुवाक्य विरोध होने पर द्वादशी में उपवास करके त्रयोदशी में पारणा कर लेना चाहिए, फिर कोई विवाद ही नहीं।

आठ महाद्वादशी

"उन्मीलिनी वञ्जुलिनी त्रिस्पर्शा पक्षवर्द्धिनी।
जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी॥
द्वादश्योऽष्टौ महापुण्याः सर्वपापहरा द्विज।"

(ब्रह्मवैवर्त)

उन्मीलिनी, वञ्जुलिनी, त्रिस्पर्शा, पक्षवर्द्धिनी, जया, विजया, जयन्ती और पापनाशिनी ये आठ महाद्वादशियाँ पुण्यप्रद हैं और सम्पूर्ण पापों को हरण करने वाली हैं। इनका योग जानने का क्रम इस प्रकार है—

1. जैसे एकादशी पूर्ण हो और दूसरे दिन भी सूर्योदयोपरान्त कुछ घटी-पल एकादशी हो तो वह महाद्वादशी '**उन्मीलिनी**' कहलाती है।
2. एकादशी तथा द्वादशी सम्पूर्ण हो और फिर त्रयोदशी को भी कुछ द्वादशी अवशिष्ट हो तो वह महाद्वादशी '**वञ्जुलिनी**' नाम से कही जाती है।
3. प्रातःकाल एकादशी हो और फिर द्वादशी का क्षय होकर रात्रि शेष में सूर्योदय के समय त्रयोदशी हो, तो वह महाद्वादशी '**त्रिस्पर्शा**' कहलाती है।
4. अमावास्या या पूर्णिमा तिथि दो हो जाय तो वह महाद्वादशी '**पक्षवर्द्धिनी**' नाम से कही जाती है।
5. किसी भी मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी यदि पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त हो तो वह '**जया**' नाम महाद्वादशी होती है।
6. किसी भी मास के कृष्णपक्ष या शुक्लपक्ष की द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो वह '**विजया**' नामक महाद्वादशी है।
7. किसी भी मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी '**रोहिणी**' नक्षत्र से युक्त हो तो वह '**जयन्ती**' नाम की महाद्वादशी कहलाती है।
8. और किसी भी मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी '**पुष्य नक्षत्र**' से युक्त हो तो वह '**पापनाशिनी**' महाद्वादशी कहलाती है।

उक्त आदि की चार महाद्वादशी तो तिथियों के योग से बनती हैं और शेष चार महाद्वादशी नक्षत्रों के योग से आती हैं। अतः इन आठों महाद्वादशियों में से किसी का

भी योग आ जावे तो शुद्धा (वेध रहित) एकादशी को भी छोड़कर महाद्वादशी में व्रत करना चाहिए। यथा—

"शुद्धाप्येकादशी त्याज्या द्वादश्यां समुपोषणम्।"

ऐसा ब्रह्मवैवर्त और पद्मपुराणादि का वचन है। विस्तार भय से संक्षेप में ही लिखा है। विस्तृत प्रमाण हेतु '**स्वधर्मामृत-सिन्धु**' और '**वैष्णवधर्मसुरद्रुममञ्जरी**' आदि ग्रन्थ दर्शनीय हैं।

भगवज्जयन्ती

श्रीकृष्ण जयन्ती, श्रीराम जयन्ती, श्रीनृसिंह जयन्ती और श्रीवामन जयन्ती ये चार मुख्य भगवज्जयन्तियाँ हैं। इन चार जयन्तियों में भी व्रतोपवास रखना वैष्णवों का मुख्य कर्तव्य है। श्रीनिम्बार्क मतानुयायी वैष्णवों को इन जयन्तियों में भी यही कपाल वेध लेना चाहिए। जैसे भाद्रपद कृष्णपक्ष की सप्तमी यदि 45 घटी से ऊपर हो तो श्रीकृष्ण जयन्ती महोत्सव दूसरे अष्टमी को न होकर यह महोत्सव नवमी में होगा। उसी दिन व्रतोपवास आदि रखना चाहिए। कारण कि वह अष्टमी कपाल वेध मतानुसार सप्तमी विद्धा है। अतः उसे छोड़कर नवमी ही लेना चाहिए। भले ही अष्टमी के दिन बुधवार एवं रोहिणी नक्षत्र आदि-आदि महत्त्वपूर्ण योग भी क्यों न पड़े हों, पर सप्तमी विद्धा होने से उसे छोड़ कर नवमी ही मान्य है। इसी प्रकार अन्य तीन जयन्तियाँ भी कपाल वेध मतानुसार यदि पूर्व तिथियों से विद्धा हों तो श्रीराम जयन्ती चैत्र शु. दशमी को तथा नृसिंह जयन्ती वैशाख शु. पूर्णिमा को होगी। श्रीवामन जयन्ती के सम्बन्ध में स्वधर्मामृतसिन्धु आदि साम्प्रदायिक ग्रन्थ विशेषों में बताया है कि—एकादशी और द्वादशी दोनों ही विष्णु तिथि हैं, अतः वह द्वादशी का क्षय हो और एकादशी में श्रवण नक्षत्र आदि योग हों तो एकादशी में भी वामन द्वादशी हो सकती है—ऐसा प्रमाण है। त्रयोदशी को नहीं।

इनके अतिरिक्त श्रीराधा जयन्ती, श्रीजानकी जयन्ती और श्रीआचार्य जयन्तियों में भी यही कपालवेध मुख्य है।

व्रत के भेद

एकभक्त, नक्त और निराहार। इस प्रकार व्रत के ये तीन भेद हैं। जैसे—

1. दिन में किसी भी समय एक बार भोजन कर लिया जाय, वह एकभक्त कहलाता है।
2. सायंकाल के समय एक बार भोजन करने का नाम 'नक्त' है। इसका प्रमाण इस प्रकार है-

   'दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे।
   तन्नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम्॥'

   (मत्स्य व स्कन्दपुराण)

   दिन के आठवें भाग में जब सूर्यनारायण की किरणें मंद पड़ जायं, उस समय के भोजन को नक्त कहते हैं। रात्रि में भोजन का नाम नक्त नहीं है।
3. दिन और रात्रि भर न कुछ खा-पीकर रहने का नाम ही निराहार है।

फल

निराहार रहकर व्रतोपवास करने का फल विशेष है। उससे आधा नक्त (सायंकाल) और उससे आधा एकभक्त (एक समय) का फल है। अतः स्वशक्त्यनुसार जैसा भी बने एकादशी अवश्य करनी चाहिए।

एकभक्त और नक्त में भी अन्न के पदार्थ न रहकर फलाहार ही रहें तो विशेष उत्तम है। क्योंकि 'एकादशी में अन्न ग्रहण करना अपराध है' इस मर्यादा का भी पालन हो जाता है।

व्रतोपवास सम्बन्धी आवश्यक बातें

1. दशमी को एक बार भोजन कर एकादशी में निराहार रहकर द्वादशी में पारणा करे, यह सर्वोत्तम प्रकार है।
2. छोटी बड़ी का भेद न रखकर दोनों पक्षों की एकादशी श्रद्धापूर्वक करना चाहिए। गो कैसी भी क्यों न हो, काली या सफेद, पर दूध तो दोनों सफेद ही देती है?
3. आठ वर्ष से लेकर अस्सी वर्ष पर्यन्त के सभी आबाल वृद्ध नर-नारियों को यह व्रत अवश्य करना चाहिए। अत्यन्त वृद्ध और छोटे बालक एवं रोगी पर कोई प्रतिबंध नहीं।
4. कई माताएँ सौभाग्यवती स्त्रियों को यह कह देती हैं कि तुम्हें यह व्रत नहीं रखना चाहिए, सो ऐसा कहना ठीक नहीं। यह व्रत तो छोटी, बड़ी, बूढ़ी, सधवा, विधवा सभी को करना चाहिए। यहाँ तक कि रजस्वला अवस्था में भी इसका त्याग नहीं करना चाहिए। यथा—

   "एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यपि।
   सम्प्रवृत्तेऽपि रजसि न त्याज्यं द्वादशीव्रतम्॥"

   (ऋष्यशृङ्ग)

5. भगवान् कहते हैं कि ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यन्त सभी वर्णों को मेरे व्रत का अधिकार है। यथा—

   सर्वेषामेव वर्णानां अधिकारोस्ति मद्व्रते।

   (अगस्त्य संहिता)

6. मुचुकुन्द और रुक्मांगद प्रभृति राजाओं का तो यह नियम था कि वे दशमी के दिन ही अपने नगर में डिंढोरा पिटवा देते थे कि जो कल एकादशी व्रत न रखेगा, वह दण्डनीय होगा।
7. **परमापदमापन्ने हर्षे वा समुपस्थिते।**
   सूतके मृतके चैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतम्॥

   चाहे अत्यन्त आपत्ति का समय हो अथवा हर्ष (मांगलिक) समय उपस्थित हो तथा सूतक (जन्माशौच) या मृतक (मरणाशौच) हो, किसी भी अवस्था में इस व्रत का त्याग न करें।

8. भगवान् कहते हैं कि जो मेरे व्रत को आया हुआ जानकर प्रमादवश उसका उल्लंघन करता है, तो यह उसके लिए एक महापराध है।
9. व्रत के दिन चोर, पाखण्डी, परदारा एवं परद्रव्यापहारी, दुराचारी, पातकी तथा दुष्टजनों से संभाषण न करें।
10. व्रतोपवास के दिन, दिन में न सोवे और रात्रि में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए पृथ्वी पर ही शयन करे।
11. व्रतोपवास के दिन बार-बार जलपान करने एवं एक बार पान खाने तथा दिन में शयन करने व स्त्री-संग से व्रतभंग हो जाता है। इसका ध्यान रहे।
12. मादक द्रव्यों का सेवन न करे।
13. असत्य न बोले।
14. किसी से लड़ाई झगड़ा न करे।
15. आत्म-स्तुति एवं परनिन्दा से बचे।
16. बन सके तो उस रोज मौन धारण कर ले।
17. मनसा-वाचा-कर्मणा किसी भी प्राणी की आत्मा को दुःखी न करे।
18. दशों इन्द्रियाँ और एक मन, इन 11 इन्द्रियों की वृत्तियों को भगवान् के चरणों में लगा कर भजन करे।
19. व्रतोपवास के दिन बर्तन की अपेक्षा पत्रावली में भोजन करना श्रेष्ठ है।
20. जल, कन्द, फल, दूध, हवि, ब्राह्मण की इच्छा, गुरुवचन और औषध ये आठ द्रव्य व्रत को नष्ट नहीं करते हैं।
21. काँसी के बर्तन में भोजन, मांस, मसूर, चना की दाल, मधु, परान्न, दो बार भोजन और स्त्री-संग ये दशमी, एकादशी और द्वादशी तीनों दिन वर्जित हैं।

हरिवासर

"आ-भा-का-सितपक्षेषु मैत्र-श्रवण-रेवती।
संगमे नैव भोक्तव्यं द्वादशी द्वादशीं हरेत्।"

आषाढ़ शुक्ल पक्ष की द्वादशी को अनुराधा नक्षत्र, भाद्रपद शु. द्वादशी को श्रवण नक्षत्र और कार्तिक शुक्ला द्वादशी को रेवती नक्षत्र हो तो इनके संग में द्वादशी को पारणा न करे। इसका कारण यह है कि—

मैत्रादि पादे स्वपतीह विष्णुः,
श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति।
रेवत्युपान्ते विजहाति निद्रां,
सुप्ति-प्रबोध-परिवर्तनमेव वर्ज्यम्॥

श्रीविष्णु अनुराधा नक्षत्र के प्रथम पाद में शयन करते हैं। श्रवण के दूसरे पाद (चरण) में करवट बदलते हैं और रेवती के तीसरे पाद में जागते हैं, अतः शयन काल, करवट काल और उत्थापन काल को (अर्थात् इन नक्षत्रों के आदि, मध्य और अन्त की

बीस-बीस घड़ियों को) पारणा में त्याग देना चाहिए। इसको **'हरिवासर'** कहते हैं। प्रत्येक पञ्चाङ्ग में इन (आषाढ़, भाद्रपद और कार्तिक तीन) मासों के सामने लिखा रहता है, हरिवासर है या नहीं, सो देख लेना चाहिए।

महाद्वादशी व्रत करने वालों के लिए भाद्रपद में तो देखने की आवश्यकता ही नहीं है, कारण कि भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को यदि श्रवण नक्षत्र होगा तो वह 'विजया' महाद्वादशी होगी, सो उस दिन उपवास रहकर दूसरे दिन पारणा होगा। अब रही आषाढ़ व कार्तिक की बात सो यदि शुद्धा एकादशी हो तो हरिवासर देख लेना चाहिए, अन्यथा विद्धा हो तो व्रत द्वादशी में होगा ही।

संसार के सभी प्राणी सुख चाहते हैं पर सुख कहाँ है? **'सुखस्य मूलं धर्मः'** सुख का मूल धर्म है। अतः धर्माचरण बिना सुख की उपलब्धि कैसे हो सकती है। व्रतोपवास भी धर्म का ही एक अंग है, अतएव इसका पालन करना अत्यन्त हितकर एवं परमावश्यक है।

(6) निम्बार्क-सम्प्रदाय के विभिन्न प्रान्तों में विशिष्ट मठ-मन्दिर

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के महानुभावों ने भारत के बाहर भी रूस आदि कई देशों में सनातन धर्म का प्रचार किया था, पर्णकुटी एवं आश्रमादिक भी वहाँ उन्होंने बनवाये थे। वि.सं. 1866 में राघोगढ़ (मध्यप्रदेश) के महात्मा गंगादासजी रूस के अस्त्राखान नगर में रहते थे। उन्होंने वहाँ पर रहते हुए पद्मपुराणान्तर्गत कार्तिक माहात्म्य लिखा था, जिसकी प्रति रूस के राजकीय पुस्तकालय में आज भी सुरक्षित है। जब **डॉ. रघुवीर** सन् 1955 में रूस गये, तब उन्होंने वहाँ के राजकीय पुस्तकालय को देखा। उनमें से एक पुस्तक की अन्तिम पुष्पिका निम्नांकित रूप से दी गई थी। उसकी अन्तिम पुष्पिका में—

> **"इति श्रीपद्मपुराणान्तर्गत कार्तिक माहात्म्य हिन्दी सम्पूर्ण राघोगढ़ वासी महात्मा गंगादासजी सम्प्रदाय निमात द्वारा घमंडियानु अस्त्राखान नगरे लिपि कृतं सम्वत् वि. 1866।"**

विदेशों में जिस सम्प्रदाय के आश्रम हों, उसके आश्रम मठमन्दिर भारत के सभी प्रान्तों में होना स्वाभाविक है। भारत का आज भी कोई ऐसा प्रान्त नहीं है, जिसमें निम्बार्क-सम्प्रदाय के मठ-मन्दिर एवं सम्प्रदाय का दीक्षित व्यक्ति न हो। समय सर्वदा एक समान नहीं रहता, कई एक प्रान्तों में इस सम्प्रदाय के बहुत से जीर्ण मठ मन्दिरों का ध्वंस हो गया और होता भी जा रहा है। अतः वर्तमान समय में जिन जिन प्रान्तों में विशिष्ट मठ मन्दिर विरक्त सन्तों के आधिपत्य में है, विशेषतया उनका यहाँ उल्लेख किया जाता है।

राजस्थान

इस प्रान्त में सर्वप्रथम अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ है और विरक्त एवं गृहस्थों के मठमन्दिर भी बहुत अधिक हैं। उनमें से कुछ स्थलों का यहाँ सूक्ष्म परिचय दिया जा रहा है—

सलेमाबाद—यहाँ यह अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ सम्प्रदाय का सर्वोच्च प्रमुख स्थल है। यहीं से सभी प्रान्तों में प्रचार-प्रसार होता रहा है। सभी प्रान्तों के राजा-महाराजाओं, मुसलिम तथा बिटिश शासकों ने यहाँ की विशिष्टता स्वीकार की है। यहाँ के शिष्य-प्रशिष्यों ने राजस्थान आदि अनेकों प्रदेशों में मठ-मन्दिरों की संस्थापना करके धार्मिक प्रचार किया है।

अस्तेड़ा—श्रीहरिवंशदेवाचार्यजी के शिष्य श्री व्रजभूषणजी महाराज ने आचार्यपीठ सलेमाबाद से आकर यहाँ स्थान बनवाया, वह बड़े मन्दिर के नाम से विख्यात है। यहाँ के शासकों ने इसे अपना गुरु स्थान माना, प्रजाजन भी इसका विशेष सन्मान करते हैं। एक दूसरा स्थान यहाँ और है, जो श्री राधावल्लभ जी के छोटे मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ के वयोवृद्ध महन्त श्रीबद्रीदास जी ने **'सेवा पद्धति'** का प्रकाशन करवाया था, उसमें इस स्थल का विशेष परिचय दिया गया है।

किशनगढ़-रेनवाल—यहाँ श्रीकृष्ण बिहारी जी का बड़ा मन्दिर प्रसिद्ध है। अस्तेड़ा से आकर के ही महन्तजी ने इसे बनवाया था। नागरिक प्रजाजन और जागीरदारों ने इस स्थान की विशेष प्रतिष्ठा और सन्मान रखा है। भूतपूर्व महन्त श्रीराधिकादासजी और अधिकारी श्रीमाधवदासजी दोनों ही विद्वान् और परम भागवत थे। महन्त श्रीहरिवल्लभदासजी भी बड़े ही प्रगतिशील विद्वान् और समाजसेवी महानुभाव हैं। अस्तेड़ा का बड़ा मन्दिर और अन्यान्य ग्रामों के भी कई एक मन्दिर आपके आयत्त हैं।

रेनवाल—यहाँ श्रीगोपाल मन्दिर है। वह भी बड़े मन्दिर से ही सम्बन्धित है। यहाँ के अर्चक श्रीरघुनाथदासजी अच्छे गायक हैं।

लूणवा—किशनगढ़ से 5-7 मील की दूरी पर यह ग्राम है। यहाँ के मन्दिर के प्रबन्धक वैद्य मोहनदास जी हैं।

पलसाना—यह नगर सीकर के सन्निकट है। यहाँ का श्रीगोपाल मन्दिर एक सुप्रतिष्ठित स्थल है। महन्त पं. श्रीमाधवदासजी ने इस मन्दिर की विशेष उन्नति की है। इसका विशेष परिचय उनके द्वारा प्रकाशित **सदाचारमीमांसा** में दिया गया है।

श्रीमाधोपुर—यहाँ श्रीराधामाधवजी का मन्दिर सुप्रतिष्ठित है। पलसाना वाले म. माधवदास जी के गुरुदेव स्व. वैद्य श्रीहनुमानदासजी ने इस स्थान की अच्छी उन्नति की थी, किन्तु प्रबन्धक चतुर्भुजदास जी उसे आगे नहीं बढ़ा सके।

होद—यह नगर श्रीमाधोपुर से 7 मील पश्चिम में है। यहाँ का मन्दिर विशिष्ट है। यहाँ के महन्तों के शिष्यों के शिष्य प्रशिष्यों ने अन्यान्य नगरों में मठ मन्दिरों की संस्थापना करके सम्प्रदाय का विशेष प्रचार किया था। होद के स्थान से 22 मन्दिरों की संस्थापना हुई थी, उन नगरों के नाम इस प्रकार हैं—1. श्रीमाधोपुर (राधामाधव मन्दिर), 2. पलसाना (गोपाल मन्दिर), 3. बवाई, 4. खेतड़ी कुण्ड, 5. पपूरणा, यहाँ के गोपाल मन्दिर में पहले अच्छे-अच्छे सन्त हो गये हैं, यहाँ पुराने ग्रन्थ भी थे। 6. हरडचा, 7. पचलंगी, 8. छापोली,

बीस-बीस घड़ियों को) पारणा में त्याग देना चाहिए। इसको **'हरिवासर'** कहते हैं। प्रत्येक पञ्चाङ्ग में इन (आषाढ़, भाद्रपद और कार्तिक तीन) मासों के सामने लिखा रहता है, हरिवासर है या नहीं, सो देख लेना चाहिए।

महाद्वादशी व्रत करने वालों के लिए भाद्रपद में तो देखने की आवश्यकता ही नहीं है, कारण कि भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को यदि श्रवण नक्षत्र होगा तो वह 'विजया' महाद्वादशी होगी, सो उस दिन उपवास रहकर दूसरे दिन पारणा होगा। अब रही आषाढ़ व कार्तिक की बात सो यदि शुद्धा एकादशी हो तो हरिवासर देख लेना चाहिए, अन्यथा विद्धा हो तो व्रत द्वादशी में होगा ही।

संसार के सभी प्राणी सुख चाहते हैं पर सुख कहाँ है? **'सुखस्य मूलं धर्मः'** सुख का मूल धर्म है। अतः धर्माचरण बिना सुख की उपलब्धि कैसे हो सकती है। व्रतोपवास भी धर्म का ही एक अंग है, अतएव इसका पालन करना अत्यन्त हितकर एवं परमावश्यक है।

(6) निम्बार्क-सम्प्रदाय के विभिन्न प्रान्तों में विशिष्ट मठ-मन्दिर

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के महानुभावों ने भारत के बाहर भी रूस आदि कई देशों में सनातन धर्म का प्रचार किया था, पर्णकुटी एवं आश्रमादिक भी वहाँ उन्होंने बनवाये थे। वि.सं. 1866 में राघोगढ़ (मध्यप्रदेश) के महात्मा गंगादासजी रूस के अस्त्राखान नगर में रहते थे। उन्होंने वहाँ पर रहते हुए पद्मपुराणान्तर्गत कार्तिक माहात्म्य लिखा था, जिसकी प्रति रूस के राजकीय पुस्तकालय में आज भी सुरक्षित है। जब डॉ. **रघुवीर** सन् 1955 में रूस गये, तब उन्होंने वहाँ के राजकीय पुस्तकालय को देखा। उनमें से एक पुस्तक की अन्तिम पुष्पिका निम्नांकित रूप से दी गई थी। उसकी अन्तिम पुष्पिका में—

> **"इति श्रीपद्मपुराणान्तर्गत कार्तिक माहात्म्य हिन्दी सम्पूर्ण राघोगढ़ वासी महात्मा गंगादासजी सम्प्रदाय निमात द्वारा घमंडियानु अस्त्राखान नगरे लिपि कृतं सम्वत् वि. 1866।"**

विदेशों में जिस सम्प्रदाय के आश्रम हों, उसके आश्रम मठमन्दिर भारत के सभी प्रान्तों में होना स्वाभाविक है। भारत का आज भी कोई ऐसा प्रान्त नहीं है, जिसमें निम्बार्क-सम्प्रदाय के मठ-मन्दिर एवं सम्प्रदाय का दीक्षित व्यक्ति न हो। समय सर्वदा एक समान नहीं रहता, कई एक प्रान्तों में इस सम्प्रदाय के बहुत से जीर्ण मठ मन्दिरों का ध्वंस हो गया और होता भी जा रहा है। अतः वर्तमान समय में जिन जिन प्रान्तों में विशिष्ट मठ मन्दिर विरक्त सन्तों के आधिपत्य में है, विशेषतया उनका यहाँ उल्लेख किया जाता है।

राजस्थान

इस प्रान्त में सर्वप्रथम अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ है और विरक्त एवं गृहस्थों के मठमन्दिर भी बहुत अधिक हैं। उनमें से कुछ स्थलों का यहाँ सूक्ष्म परिचय दिया जा रहा है—

सलेमाबाद—यहाँ यह अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ सम्प्रदाय का सर्वोच्च प्रमुख स्थल है। यहीं से सभी प्रान्तों में प्रचार-प्रसार होता रहा है। सभी प्रान्तों के राजा-महाराजाओं, मुसलिम तथा बिटिश शासकों ने यहाँ की विशिष्टता स्वीकार की है। यहाँ के शिष्य-प्रशिष्यों ने राजस्थान आदि अनेकों प्रदेशों में मठ-मन्दिरों की संस्थापना करके धार्मिक प्रचार किया है।

अस्तेड़ा—श्रीहरिवंशदेवाचार्यजी के शिष्य श्री व्रजभूषणजी महाराज ने आचार्यपीठ सलेमाबाद से आकर यहाँ स्थान बनवाया, वह बड़े मन्दिर के नाम से विख्यात है। यहाँ के शासकों ने इसे अपना गुरु स्थान माना, प्रजाजन भी इसका विशेष सन्मान करते हैं। एक दूसरा स्थान यहाँ और है, जो श्री राधावल्लभ जी के छोटे मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ के वयोवृद्ध महन्त श्रीबद्रीदास जी ने '**सेवा पद्धति**' का प्रकाशन करवाया था, उसमें इस स्थल का विशेष परिचय दिया गया है।

किशनगढ़-रेनवाल—यहाँ श्रीकृष्ण बिहारी जी का बड़ा मन्दिर प्रसिद्ध है। अस्तेड़ा से आकर के ही महन्तजी ने इसे बनवाया था। नागरिक प्रजाजन और जागीरदारों ने इस स्थान की विशेष प्रतिष्ठा और सन्मान रखा है। भूतपूर्व महन्त श्रीराधिकादासजी और अधिकारी श्रीमाधवदासजी दोनों ही विद्वान् और परम भागवत थे। महन्त श्रीहरिवल्लभदासजी भी बड़े ही प्रगतिशील विद्वान् और समाजसेवी महानुभाव हैं। अस्तेड़ा का बड़ा मन्दिर और अन्यान्य ग्रामों के भी कई एक मन्दिर आपके आयत्त हैं।

रेनवाल—यहाँ श्रीगोपाल मन्दिर है। वह भी बड़े मन्दिर से ही सम्बन्धित है। यहाँ के अर्चक श्रीरघुनाथदासजी अच्छे गायक हैं।

लूणवा—किशनगढ़ से 5-7 मील की दूरी पर यह ग्राम है। यहाँ के मन्दिर के प्रबन्धक वैद्य मोहनदास जी हैं।

पलसाना—यह नगर सीकर के सन्निकट है। यहाँ का श्रीगोपाल मन्दिर एक सुप्रतिष्ठित स्थल है। महन्त पं. श्रीमाधवदासजी ने इस मन्दिर की विशेष उन्नति की है। इसका विशेष परिचय उनके द्वारा प्रकाशित **सदाचारमीमांसा** में दिया गया है।

श्रीमाधोपुर—यहाँ श्रीराधामाधवजी का मन्दिर सुप्रतिष्ठित है। पलसाना वाले म. माधवदास जी के गुरुदेव स्व. वैद्य श्रीहनुमानदासजी ने इस स्थान की अच्छी उन्नति की थी, किन्तु प्रबन्धक चतुर्भुजदास जी उसे आगे नहीं बढ़ा सके।

होद—यह नगर श्रीमाधोपुर से 7 मील पश्चिम में है। यहाँ का मन्दिर विशिष्ट है। यहाँ के महन्तों के शिष्यों के शिष्य प्रशिष्यों ने अन्यान्य नगरों में मठ मन्दिरों की संस्थापना करके सम्प्रदाय का विशेष प्रचार किया था। होद के स्थान से 22 मन्दिरों की संस्थापना हुई थी, उन नगरों के नाम इस प्रकार हैं—1. श्रीमाधोपुर (राधामाधव मन्दिर), 2. पलसाना (गोपाल मन्दिर), 3. बवाई, 4. खेतड़ी कुण्ड, 5. पपूरणा, यहाँ के गोपाल मन्दिर में पहले अच्छे-अच्छे सन्त हो गये हैं, यहाँ पुराने ग्रन्थ भी थे। 6. हरडचा, 7. पचलंगी, 8. छापोली,

(यहाँ के गोपाल मन्दिर के महन्त ननचूदासजी थे), 9. छुहाला (यहाँ कुछ वर्ष पूर्व पूरणदासजी थे), 10. मण्डावरा, 11. जहाज, 12. शील की बाड़ी, 13. सौंशली, 14. टीडणवास, 15. सिरोही, 16. रलावता आदि-आदि। इन सबमें अब विरक्त सन्त दो चार ही हैं।

दूलहपुरा—होद के सन्निकट ही यह ग्राम है, यहाँ का मन्दिर भी सुप्रतिष्ठित है।

चला—श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी के शिष्य श्रीपीताम्बरदेवजी ने आचार्यपीठ (सलेमाबाद) से चलकर पहले कुछ दिनों तक किशनगढ़ के निकट दक्षिण में एक पहाड़ी पर तपश्चर्या की, यह आजकल पीताम्बरा की गाल कहलाता है। वहाँ से आप उत्तर दिशा में चलकर लोहार्गल और गनेश्वर के बीच एक सुन्दर एकान्त मैदानी क्षेत्र में नदी तट पर वि.सं. 1600 के लगभग आये, यहाँ आपने निवास किया और गोपाल मंदिर की स्थापना की। आपके परवर्ती महानुभावों में भी प्रायः सभी सिद्ध सन्त हुए। नगर बसा और उसकी आबादी उत्तरोत्तर बढ़ती गई। इस स्थान के शिष्य-प्रशिष्य जिन-जिन स्थलों पर बैठकर भजन साधन किये, वहाँ वहाँ ही मन्दिरों की स्थापना हुई कर्णपुरा, चौकड़ी, हरिजनपुरा, नारनौल, भगेगा आदि इस स्थान की सोलह कोटड़ी (उपस्थान) हैं। यह स्थान इस मण्डल का एक पञ्चस्थल माना जाता है।

सिरोही—नगर से बाहर एकान्तिक स्थान है, पहले यहाँ भी अच्छे अच्छे सन्त हुए हैं। किशनदासजी, सेवादासजी के बाद अब महन्त रामदासजी हुए। यह भी अपने मण्डल में पञ्चस्थल है।

नीम-का-थाना—यहाँ निम्बार्क-सम्प्रदाय के कई मन्दिर हैं। उनमें जोडला, कुर्वडा आदि विशिष्ट हैं। छावनी में निम्बार्क-सम्प्रदाय के सन्तों की एक जमात है, जिसका एक पृथक् ग्राम ही बसा हुआ है। पहले यहाँ भी अच्छे अच्छे सन्त थे। पर्वों पर जनता इसकी परिक्रमा लगाती और साधु सन्तों के स्नान के जल से, जो एक गड्ढा भरा रहता बीमार बच्चों को उसका पानी पिलाने से वे ठीक हो जाते थे। यहाँ के साधु जयपुर राज्य की तहसील वसूली में सहयोग देते थे। राज्य की ओर से एक ग्राम भेंट है। उसकी अब ऐन्यूटी मिलती है।कहा जाता है 'निम्बार्कस्थान' का ही अपभ्रंश 'नीमकाथाना' है।

गनेश्वर, गाँवडी टोडा, थानेश्वर आदि गालव ऋषि के आश्रम वाले पहाड़ों पर कई एक स्थान थे, और हैं भी।

उदयपुर (शेखावाटी) —यहाँ और इसके और पास गुढ़ा, इन्द्रपुरा आदि नगरों में सुप्रतिष्ठित स्थान हैं।

चेतनदासजी की बावड़ी—यह लोहार्गल तीर्थ के द्वार पर है, विशाल मन्दिर और दर्शनीय बावड़ी है, यहाँ जयपुर राज्य की ओर से एक ग्राम भेंट है। चेतनदासजी बड़े सिद्ध थे। उन्होंने एक मन्दिर अमरावती (महाराष्ट्र) में भी बनाया था, जो चेतनदासजी की बगीची के नाम से आज भी विख्यात है।

लोहार्गल—राजस्थान का यह विशिष्ट तीर्थ है। इस पुरी में प्रायः सभी सम्प्रदायों के मठ-मन्दिर हैं। निम्बार्कीय मन्दिरों में श्रीजी का (खालसाही) मन्दिर, जिसमें श्रीयुगलकिशोर के दर्शन हैं। वह आचार्यपीठ के आयत्त है। दूसरा खाकचौक है। श्रीगोपीनाथ मंदिर तथा किरोड़ी कुण्डों का मन्दिर अच्छी जागीर वाले हैं। गृहस्थ वैष्णव सेवायत हैं। इधर फतहपुर, चिड़ावा आदि शहरों में श्रीविहारीजी के मंदिर इसी सम्प्रदाय के हैं। चिड़ावा में श्रीराधिकादासजी विद्वान् सन्त हो गये हैं। लक्ष्मणगढ़ में सारस्वत गोस्वामी हैं, उनके कुल में श्रीमुरारीलाल जी आदि आयुर्वेद विशेषज्ञ हैं। रतनगढ़ के स्थान में पहले श्रीमिहिरदासजी विशिष्ट सन्त थे, उनके शिष्य श्रीरामरतनदासजी और उनके शिष्य श्रीव्रजदासजी हैं। कल्याण के यशस्वी सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार को आठ वर्ष की अवस्था में ही वैष्णवी दीक्षा प्राप्त हुई थी। बीकानेर में श्री श्रीनृसिंह मंदिर, सीतारामजी की गुफा आदि कई स्थान हैं। बीकानेर राज्यमाता (दादीसा श्रीपुगलानी महताब कुमारीजी) सम्प्रदाय की मर्यादा का विशेष पालन करती थीं। बीकानेर राज्य में और भी कई नगरों में इस सम्प्रदाय के मठ-मंदिर हैं।

जोधपुर राज्य—पीपाड़ में श्रीरूपजी का मंदिर और दूसरा श्रीगोपालद्वारा दोनों ही सुप्रतिष्ठित हैं। जैतारण—का गोपालद्वारा श्रीतत्त्ववेत्ताजी की परम्परा का प्रधान स्थल है। इसी की शाखाएँ रास, रायपुर नीमाज, लाम्बा आदि कई नगरों में हैं। नीमोल और वीरोल ग्रामों के गोपालद्वारा भी सुप्रतिष्ठित हैं। इनके प्रबन्धक पीताम्बरदासजी और जगरामदासजी हैं। जयतारण के म. श्रीराधारमणदासजी श्रीतत्त्ववेत्ताजी के वंशजों में ही हैं। लोटती आदि उदावत क्षत्रियों के सभी ग्रामों में गोपालद्वारा हैं, उनमें विरक्तों की कमी के कारण गृहस्थ वैष्णव सेवा-पूजा करते हैं। जोधपुर शहर और राज्य में निम्बार्कीय गृहस्थ वैष्णवों की संख्या विशेष है। जोधपुर शहर में बाईजीराज के कुण्ड पर साधुसेवी स्थान है, वहाँ के महन्तों में श्रीरामदासजी, श्रीराधिकादासजी आदि देशकाली महन्त हो गये हैं। इसी की शाखा रूप एक स्थान नौलखा बाग में है, उसे सरकारी सहयोग प्राप्त है, परन्तु जमुनादासजी के पश्चात् अब गृहस्थ ही सेवा करते हैं। त्रिपोलिया का गोपालद्वारा राज्य के प्रधान सिंघवी इन्द्रराजजी आदि का बनवाया हुआ सुप्रतिष्ठित स्थान है। वह स्थान श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ सलेमाबाद के अधीन है।

फलौदी—यहाँ श्रीगोवर्धननाथजी, श्रीबाालाजी आदि के तीन मंदिर हैं।

थोब—यह छोटा सा नगर बालोतरा के निकट है। यहाँ के गोपालद्वारा के महन्त श्रीप्रेमदासजी बड़े सुशील व्यक्ति हैं। बालोतरा में सम्प्रदाय के भक्तों की अच्छी संख्या है।

ब्यावर—यह अजमेर जिला का व्यावसायिक नगर है। यहाँ साम्प्रदायिकों की संख्या अधिक है। स्व. **श्रीरामप्रतापजी शास्त्री** तथा उनके सुपुत्र अभिनवबाणभट्ट पदवी विभूषित **डॉ. श्रीरसिकबिहारीजी जोशी** तथा **दयाशंकरजी शास्त्री** आदि के द्वारा सम्प्रदाय का विशेष प्रचार हुआ है। आचार्य चरणों का समय-समय पर पदार्पण होता ही रहता है। यहाँ कई

(यहाँ के गोपाल मन्दिर के महन्त ननचूदासजी थे), 9. छुहाला (यहाँ कुछ वर्ष पूर्व पूरणदासजी थे), 10. मण्डावरा, 11. जहाज, 12. शील की बाड़ी, 13. सौंशली, 14. टीडणवास, 15. सिरोही, 16. रलावता आदि-आदि। इन सबमें अब विरक्त सन्त दो चार ही हैं।

दूलहपुरा—होद के सन्निकट ही यह ग्राम है, यहाँ का मन्दिर भी सुप्रतिष्ठित है।

चला—श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी के शिष्य श्रीपीताम्बरदेवजी ने आचार्यपीठ (सलेमाबाद) से चलकर पहले कुछ दिनों तक किशनगढ़ के निकट दक्षिण में एक पहाड़ी पर तपश्चर्या की, यह आजकल पीताम्बरा की गाल कहलाता है। वहाँ से आप उत्तर दिशा में चलकर लोहार्गल और गनेश्वर के बीच एक सुन्दर एकान्त मैदानी क्षेत्र में नदी तट पर वि.सं. 1600 के लगभग आये, यहाँ आपने निवास किया और गोपाल मंदिर की स्थापना की। आपके परवर्ती महानुभावों में भी प्रायः सभी सिद्ध सन्त हुए। नगर बसा और उसकी आबादी उत्तरोत्तर बढ़ती गई। इस स्थान के शिष्य-प्रशिष्य जिन-जिन स्थलों पर बैठकर भजन साधन किये, वहाँ वहाँ ही मन्दिरों की स्थापना हुई कर्णपुरा, चौकड़ी, हरिजनपुरा, नारनौल, भगेगा आदि इस स्थान की सोलह कोटड़ी (उपस्थान) हैं। यह स्थान इस मण्डल का एक पञ्चस्थल माना जाता है।

सिरोही—नगर से बाहर एकान्तिक स्थान है, पहले यहाँ भी अच्छे अच्छे सन्त हुए हैं। किशनदासजी, सेवादासजी के बाद अब महन्त रामदासजी हुए। यह भी अपने मण्डल में पञ्चस्थल है।

नीम-का-थाना—यहाँ निम्बार्क-सम्प्रदाय के कई मन्दिर हैं। उनमें जोडला, कुर्वडा आदि विशिष्ट हैं। छावनी में निम्बार्क-सम्प्रदाय के सन्तों की एक जमात है, जिसका एक पृथक् ग्राम ही बसा हुआ है। पहले यहाँ भी अच्छे अच्छे सन्त थे। पर्वों पर जनता इसकी परिक्रमा लगाती और साधु सन्तों के स्नान के जल से, जो एक गड्ढा भरा रहता बीमार बच्चों को उसका पानी पिलाने से वे ठीक हो जाते थे। यहाँ के साधु जयपुर राज्य की तहसील वसूली में सहयोग देते थे। राज्य की ओर से एक ग्राम भेंट है। उसकी अब ऐन्यूटी मिलती है।कहा जाता है 'निम्बार्कस्थान' का ही अपभ्रंश 'नीमकाथाना' है।

गनेश्वर, गाँवडी टोडा, थानेश्वर आदि गालव ऋषि के आश्रम वाले पहाड़ों पर कई एक स्थान थे, और हैं भी।

उदयपुर (शेखावाटी) —यहाँ और इसके और पास गुढ़ा, इन्द्रपुरा आदि नगरों में सुप्रतिष्ठित स्थान हैं।

चेतनदासजी की बावड़ी—यह लोहार्गल तीर्थ के द्वार पर है, विशाल मन्दिर और दर्शनीय बावड़ी है, यहाँ जयपुर राज्य की ओर से एक ग्राम भेंट है। चेतनदासजी बड़े सिद्ध थे। उन्होंने एक मन्दिर अमरावती (महाराष्ट्र) में भी बनाया था, जो चेतनदासजी की बगीची के नाम से आज भी विख्यात है।

लोहार्गल—राजस्थान का यह विशिष्ट तीर्थ है। इस पुरी में प्रायः सभी सम्प्रदायों के मठ-मन्दिर हैं। निम्बार्कीय मन्दिरों में श्रीजी का (खालसाही) मन्दिर, जिसमें श्रीयुगलकिशोर के दर्शन हैं। वह आचार्यपीठ के आयत्त है। दूसरा खाकचौक है। श्रीगोपीनाथ मंदिर तथा किरोड़ी कुण्डों का मन्दिर अच्छी जागीर वाले हैं। गृहस्थ वैष्णव सेवायत हैं। इधर फतहपुर, चिड़ावा आदि शहरों में श्रीविहारीजी के मंदिर इसी सम्प्रदाय के हैं। चिड़ावा में श्रीराधिकादासजी विद्वान् सन्त हो गये हैं। लक्ष्मणगढ़ में सारस्वत गोस्वामी हैं, उनके कुल में श्रीमुरारीलाल जी आदि आयुर्वेद विशेषज्ञ हैं। रतनगढ़ के स्थान में पहले श्रीमिहिरदासजी विशिष्ट सन्त थे, उनके शिष्य श्रीरामरतनदासजी और उनके शिष्य श्रीब्रजदासजी हैं। कल्याण के यशस्वी सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार को आठ वर्ष की अवस्था में ही वैष्णवी दीक्षा प्राप्त हुई थी। बीकानेर में श्री श्रीनृसिंह मंदिर, सीतारामजी की गुफा आदि कई स्थान हैं। बीकानेर राज्यमाता (दादीसा श्रीपुगलानी महताब कुमारीजी) सम्प्रदाय की मर्यादा का विशेष पालन करती थीं। बीकानेर राज्य में और भी कई नगरों में इस सम्प्रदाय के मठ-मंदिर हैं।

जोधपुर राज्य—पीपाड़ में श्रीरूपजी का मंदिर और दूसरा श्रीगोपालद्वारा दोनों ही सुप्रतिष्ठित हैं। जैतारण—का गोपालद्वारा श्रीतत्त्ववेत्ताजी की परम्परा का प्रधान स्थल है। इसी की शाखाएँ रास, रायपुर नीमाज, लाम्बा आदि कई नगरों में हैं। नीमोल और वीरोल ग्रामों के गोपालद्वारा भी सुप्रतिष्ठित हैं। इनके प्रबन्धक पीताम्बरदासजी और जगरामदासजी हैं। जयतारण के म. श्रीराधारमणदासजी श्रीतत्त्ववेत्ताजी के वंशजों में ही हैं। लोटती आदि उदावत क्षत्रियों के सभी ग्रामों में गोपालद्वारा हैं, उनमें विरक्तों की कमी के कारण गृहस्थ वैष्णव सेवा-पूजा करते हैं। जोधपुर शहर और राज्य में निम्बार्कीय गृहस्थ वैष्णवों की संख्या विशेष है। जोधपुर शहर में बाईजीराज के कुण्ड पर साधुसेवी स्थान है, वहाँ के महन्तों में श्रीरामदासजी, श्रीराधिकादासजी आदि देशकाली महन्त हो गये हैं। इसी की शाखा रूप एक स्थान नौलखा बाग में है, उसे सरकारी सहयोग प्राप्त है, परन्तु जमुनादासजी के पश्चात् अब गृहस्थ ही सेवा करते हैं। त्रिपोलिया का गोपालद्वारा राज्य के प्रधान सिंघवी इन्द्रराजजी आदि का बनवाया हुआ सुप्रतिष्ठित स्थान है। वह स्थान श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ सलेमावाद के अधीन है।

फलौदी—यहाँ श्रीगोवर्धननाथजी, श्रीबाालाजी आदि के तीन मंदिर हैं।

थोब—यह छोटा सा नगर बालोतरा के निकट है। यहाँ के गोपालद्वारा के महन्त श्रीप्रेमदासजी बड़े सुशील व्यक्ति हैं। बालोतरा में सम्प्रदाय के भक्तों की अच्छी संख्या है।

ब्यावर—यह अजमेर जिला का व्यावसायिक नगर है। यहाँ साम्प्रदायिकों की संख्या अधिक है। स्व. **श्रीरामप्रतापजी शास्त्री** तथा उनके सुपुत्र अभिनवबाणभट्ट पदवी विभूषित **डॉ. श्रीरसिकबिहारीजी जोशी** तथा **दयाशंकरजी शास्त्री** आदि के द्वारा सम्प्रदाय का विशेष प्रचार हुआ है। आचार्य चरणों का समय-समय पर पदार्पण होता ही रहता है। यहाँ कई

एक वैश्य परिवार सलेमाबाद के निवासी भी हैं। यहाँ के मन्दिरों में छबीलदासजी आदि पहले थे।

अजमेर—यहाँ पर श्रीनृसिंह मंदिर, होलीदड़ा प्राचीन और सुप्रतिष्ठित मंदिर है। वयोवृद्ध महन्त श्रीहरिदासजी व्यवहार कुशल व्यक्ति हैं। आप ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी रह चुके हैं। आपके उत्तराधिकारी शिष्य श्रीउपेन्द्रदासजी संस्कृत के विशिष्ट विद्वान् हैं। मेयो कॉलेज का श्रीरघुनाथ मंदिर और कायस्थ मोहल्ला का श्रीचारभुजाजी का मंदिर, महन्त श्रीपुरुषोत्तमदासजी के आधिपत्य में है। भूतपूर्व महन्त श्रीरामकृष्णदासजी ने अपनी वसीयत में इन मंदिरों का सर्वाधिकार श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ (सलेमाबाद) को समर्पित कर दिया है। ये स्थान श्रीतत्त्ववेत्ताजी की परम्परा के अन्तर्गत हैं। पुराना लक्ष्मीनारायण, सत्यनारायण आदि और भी कई स्थल हैं। फतेहपुरियों द्वारा दर्शनीय नवीन लक्ष्मीनारायण मन्दिर इसी शताब्दी में बना है। फतेहपुरिया आदि सातों धड़ों के अग्रवाल श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। **श्रीनिम्बार्ककोट** जहाँ प्रतिदिन सत्संग आदि चलते रहते हैं। यह श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की संस्था है।

पुष्कर—भारत के समस्त तीर्थों का गुरु माना जाता है। यहाँ अजमेर के महन्तों के नृसिंहघाट, चारभुजा मंदिर और उदावत सरदारों के छोटे-बड़े बहुत से निम्बार्कीय मंदिर हैं तथा वाराहघाट पर बाबा भीष्मदासजी द्वारा संस्थापित साधुसेवी आश्रम हैं। श्रीपरशुराम द्वारा सभी में प्राचीन है। यहाँ परशुरामदेवाचार्यजी की समाधि और गुफा आदि के दर्शन हैं, प्रतिदिन नाम संकीर्तन होता है। यहाँ पर वि.सं. 1689 का एक शिलालेख है। वि.सं. 1220 के लगभग नाहरराव द्वारा बनवाई हुई बारह शालों में से यह एक है। यह स्थान श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के आयत्त है। अजमेर राज्य में गगवाणा आदि कई नगरों में निम्बार्कीय मठ हैं। पारा, खवास, खादेड़ा, जून्यां, केकड़ी, सावर आदि खारी नदी के ढावे (तटवर्ती) ग्रामों में गोपालद्वारा हैं, किन्तु सम्प्रदाय प्रचारक विरक्त सन्त अब नहीं हैं। देवगाँव भगेरा के गोपाल मंदिर में महन्त रहे हैं। यहाँ शूकर वाराहजी की प्राचीन प्रतिमा है। पुष्कर में मन्दिर निर्माण कार्य अनवरत चल रहा है।

मदनगंज—यह किशनगढ़ की नई बस्ती है। यहाँ अभी भक्तजनों ने श्रीसर्वेश्वर भगवान् के विराजने के लिए '**श्रीसर्वेश्वर सत्संग प्रचार केन्द्र**' नामक स्थान बनवाया है। यह संस्था आचार्यपीठ के आयत्त है। समय-समय पर आचार्य चरणों का भी यहाँ विराजना होता रहता है। किशनगढ़ के राज्य के फतेगढ़, अरांई, सरवाड़, भामोलाव, रारी, करकेड़ी, रूपनगर, रलावता, पनेर आदि सैकड़ों ग्रामों में निम्बार्कीय मठ-मंदिर हैं।

कुचामन—यहाँ श्रीबिहारीजी का मंदिर है।

मीठड़ी—का भादी मंदिर यद्यपि श्रीतुलसीदासजी द्वारा वि.सं. 1929 में संस्थापित किया गया था, तथापि उनकी सातवीं पीठिका में श्रीलक्ष्मणदासजी ने अपने तपोबल से इसकी विशेष उन्नति की। उनके शिष्य महन्त श्रीकृष्णमूर्ति सुखरामदासजी ने रसिकों की

पद्धति अपनाकर विशेष प्रचार द्वारा इसे वृन्दावन ही बना दिया है। महन्त श्रीराधाचरणदासजी भी अच्छे साधक हैं। यहाँ के सन्तों ने भी कई एक आश्रमों की स्थापना की है।

सेवा—आचार्यपीठ (सलेमाबाद) के एक शिष्य श्रीसेवादासजी ने यहाँ के स्थान की संस्थापना की थी।

लावा—यह भी एक छोटा सा राज्य है। यहाँ पर वि.सं. 1844 में श्रीब्रजराजजी के मंदिर की स्थापना हुई। महन्त मथुरादासजी, प्रेमदासजी, वृन्दावनदासजी, राघवदासजी, शीतलदासजी आदि के पश्चात् श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ (सलेमाबाद) की ओर से जगदेवदासजी की नियुक्ति की गई। आप नवयुवक और मिलनशील साक्षर व्यक्ति हैं। इस इलाके में कडीला, चान्दसेन, लदाना, समेल्या आदि कई नगरों में निम्बार्कीय मठमन्दिर हैं। इन स्थानों में महन्त बजरंगदासजी आदि ने कई बार वर्तमान आचार्य चरणों की पधरावनियाँ करवाई हैं।

डिग्गी—यहाँ श्रीकल्याणजी की विशेष मान्यता है। विशाल दर्शनीय गौर श्वेत प्रतिमा मन मोह लेती है। यहाँ मसूदारावजी की सुता डिग्गी की राजमाता ने श्रीगोपाल जी के मंदिर का निर्माण करवाया था।

बस्सी—यह जयपुर से दश कोश दूरी पर है। यहाँ का श्रीकल्याण मंदिर सम्प्रदाय का एक विशिष्ट मंदिर है। महन्त श्रीनारायणदासजी, हनुमानदासजी बड़े सरल और मिलनशील होने के कारण स्थान उन्नति पथ पर है।

आँधी थौलाई—यहाँ श्रीतत्त्ववेत्ताजी की परम्परा का सुप्रतिष्ठित स्थान है। जयपुर राज्य में इसकी विशेष प्रतिष्ठा थी। इस स्थान से सम्बन्धित जयपुर शहर, पान का दरीबा में **गोपाल मंदिर** है, जिसके सम्बन्ध में राज तवारीख (जयपुर) में उल्लिखित है कि यह स्थान वि.सं. 1599 में बना था। वैसे यह जयतारण गोपालद्वारा के बाद का होना चाहिए। वास्तव में मंदिर की प्राचीनता देखते ही ज्ञात होती है।

सामोद—यहाँ श्रीगोविन्ददेवजी के मंदिर के स्वामी श्रीचेतनदासजी ने विक्रम सं. 1813 में संस्थापना की थी। उस समय सामोद के नरेश रावल सुलतानसिंहजी नाथावत थे। गोविन्ददेवजी की प्रतिमा प्राचीन परम मनोहर है। उनके पश्चात् कुञ्जबिहारीजी, नटवर गोपाल, नृत्यगोपालजी आदि की प्रतिमाएं विराजमान हैं। इनकी सेवा पूजा भोगराग के लिए सामोद आदि बीसों ग्रामों में जमीन जागीर लगी हुई हैं। चेतनदासजी के पश्चात् सातवीं पीठिका में महन्त श्रीराधावल्लभशरणजी हैं। आप काव्यतीर्थ हैं। भूतपूर्व महन्त श्रीमनमोहनदासजी व्याकरण, ज्योतिष व आयुर्वेद के आचार्य थे। यहाँ श्रीगोविन्द संस्कृत विद्यालय में निःशुल्क संस्कृत की शिक्षा दी जाती है। देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् जमींदारी उन्मूलन होने से केवल दो हजार के लगभग ऐन्यूटी की आय रह गई है।

भरतपुर—यहाँ श्रीबिहारीजी महाराज का राजमंदिर है, जो भरतपुर किले में स्थित है। यहाँ श्रीनागा (चतुरचिन्तामणि देवाचार्य) जी की भी मूर्ति है। उनकी गूदड़ी के भी दर्शन होते हैं। यहाँ के महन्तों की पदवी व्रजदूलह थी और नरेशों की ब्रजेन्द्र। जनता

की श्रद्धा श्रीबिहारीजी में विशेष है। पहले नरेशों का ऐसा नियम था—जिस दिन श्रीबिहारी जी के दर्शनों में नहीं पहुँचते. तो 5/- पाँच रुपये जुर्माना स्वरूप जमा कराते थे। समय बदला, महन्त नहीं रहे। इस मन्दिर के आधीन भरतपुर राज्य, ब्रजप्रदेश के बाहर भी बहुत से मन्दिर थे।

भरतपुर में श्रीजी का मन्दिर भी एक सुप्रतिष्ठित मंदिर है। अंग्रेज और भरतपुर के लम्बे युद्ध में श्रीनिम्बार्काचार्य श्री श्रीजी महाराज ने भरतपुर नरेशों की बड़ी सहायता की थी, जिससे बारह वर्ष तक अंग्रेज सफल नहीं हो सके थे, किन्तु गृहकलह के कारण राजकुल के ही एक पक्ष द्वारा भेद मिल जाने से अंग्रेजों ने बड़े बलिदान के पश्चात् सफलता प्राप्त की। आज वह श्रीजी की कुञ्ज भी शोचनीय स्थिति में है।

कामवन—भरतपुर बिहारी जी के मंदिर से सम्बन्धित यहाँ एक विशाल नृसिंह मंदिर है। उसके भूतपूर्व प्रबन्धक राधिकादास जी की असावधानी से जमीनों पर काश्तकारों का आधिपत्य हो गया। यहाँ दूसरा मन्दिर विमलकुण्ड पर गोपाल मंदिर है, लगा हुआ ही श्रीमुरलीमनोहरजी का दूसरा मंदिर है। दोनों के प्रबन्धक महन्त पं. श्रीरामकृष्णदासजी हैं, इनकी नियुक्ति वि.सं. 2003 में श्रीश्रीजी महाराज और ब्र.वि.म. श्रीधनञ्जयदासजी काठिया बाबा ने की थी। पहले यहाँ कई विद्वान् महात्मा हो चुके हैं। पं. रघुवरदासजी आचार्यपीठ (सलेमाबाद) के शिष्य प्रशिष्यों में से थे, वे अच्छे विद्वान् थे।

गुहाना—यहाँ बाबा श्रीहरिदासजी अच्छे सन्त हैं। आपके शिष्य श्रीगोपालदासजी भागवत की सुन्दर कथा कहते हैं। ब्रजमण्डल में तो आपका अच्छा प्रभाव है ही, बाहर भी विशेष सन्मानित हैं।

आदिबद्री, पूँछरी, अप्सराकुण्ड (गोवर्धन) आदि भरतपुर राज्य में बहुत से स्थान हैं।

अलवर—इस राज्य में नीझरां आदि कई स्थान हैं। साहपुरा-रामनिवास बाग का सुप्रतिष्ठित स्थान है। आचार्य परम्परा परिचय में इसे आगल शंकर शाखा का लिखा है। रामपुरा आदि इसके अन्यान्य उपस्थान हैं।

त्रिवेणी—त्रिवेणी में हरिभक्तजी द्वारा संस्थापित गोपाल मंदिर **'गोपालगढ़'** कहलाता है। यह स्थान जयपुर जिलान्तर्गत शाहपुरा से अजीतगढ़ (सीकर) जाने वाले राजमार्ग पर स्थित है। इस श्रीगोपाल मन्दिर के समीप भव्य श्रीसीताराम मन्दिर है। यहां के महन्त प्रवर **अनन्तश्रीविभूषित ब्रह्मपीठाधीश्वर श्रीनारायणदासजी** महाराज हैं, जो गौ-ब्राह्मण-सेवी, वीतराग, तपोनिष्ठ, परमसिद्ध, उदात्त सन्त हैं। आप स्वभाव से सरल, जनसेवी, वैदिक संस्कृति के पोषक तथा अन्नपूर्णासिद्धि से समलंकृत, श्रीरामानुज सम्प्रदाय के लब्ध-प्रतिष्ठ सन्त प्रवर हैं। आपश्री के पीठासीनत्व होने के बाद **त्रिवेणी** स्थान का गौरव सम्पूर्ण भारत वर्ष में परिव्याप्त हो गया है। त्रिवेणी में **श्रीसीताराम मन्दिर** के पुजारी **श्रीरामरिछपालदास जी** हैं, जो शास्त्रोक्त पूजा-पद्धति के अनुसार श्री राघवेन्द्र युगल सरकार की नित्य सेवा-शुश्रूषा

करते हैं। यह स्थान परम पावन, पुनीत, रम्य-रमणीय प्रकृति की उत्संग में संवलित है। यहाँ की प्राकृतिक छटा परम कमनीय तथा दर्शनीय है।

उक्त 'त्रिवेणी' स्थान का पूर्ण विवरण तेवड़ी (विराटनगर) वास्तव्य **पं. श्री मोहन शास्त्री 'प्रभाकर'** एम.ए. (संस्कृत, अंग्रेजी साहित्य, हिन्दी साहित्य, राजनीति विज्ञान) द्वारा विरचित **स्तुति-मञ्जरी** काव्य ग्रन्थ में समुपलब्ध है, जो अभी अप्रकाशित ग्रन्थ है, निकट भविष्य में प्रकाशित होने वाला है।

कांषट—यहाँ श्रीहनुमानजी का प्रतिष्ठित मंदिर है। माली मुहल्ला आदि में कई स्थान हैं।

पृथ्वीपुरा—यहाँ श्रीलफरागोपालजी के द्वारे का प्रतिष्ठित मन्दिर है।

शाहपुरा (मेवाड़) —यहाँ श्रीदाऊजी का मंदिर नागरिक साम्प्रदायिकों के प्रबन्ध में चलता है।

भीलवाड़ा—श्रीगोपालद्वारा (साँगानेरी दरवाजे पर) प्राचीन मंदिर है। प्रबन्धक श्रीगोपालदासजी हैं।

गंगापुर—यहाँ श्रीगंगाजी के मंदिर के निकट गोपालद्वारा सुप्रतिष्ठित स्थान है। भूतपूर्व त्यागी महन्त श्रीवल्लभदासजी के अनन्तर प्रेमदासजी प्रबन्धक हैं। माण्डल मातृकुण्डा आदि और भी इधर कई स्थल हैं।

उदयपुर—मेदपाट की इस राजधानी में श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी से तृतीय आचार्य श्रीनारायणदेवाचार्यजी विराजते थे, उनके शिष्य-प्रशिष्यों में श्रीप्रयागदासजी ने एक स्थान बनाया जो 'स्थल' के नाम से सूर्यपोल पर स्थित है। विशाल मंदिर की छवि देखते ही बनती है। यहाँ के महन्त महानुभावों ने उत्तरोत्तर उन्नति की है। यहाँ गंगा छात्रावास आदि कई संस्थाएँ हैं। मेवाड़ महामण्डलेश्वर महन्त **श्रीमुरलीमनोहरशरणजी** मिलनशील राजनीतिज्ञ और आयुर्वेदाचार्य हैं। आप अ.भा.नि.म.सभा कई संस्थाओं के अध्यक्ष भी हैं। आय और प्रतिष्ठा दोनों ही प्रशंसनीय है।

बाईराज के कुण्ड का दूसरा स्थान है। यहाँ पर आचार्यश्री ने अपने शिष्य ईश्वरदासजी को नियुक्त किया था। यह स्थान भी राजप्रजा-मान्य सुप्रतिष्ठित है। राज्य की ओर से ग्राम लगा हुआ है। भूतपूर्व महन्त श्रीगंगादासजी भागवत के विशिष्ट ज्ञाता और वक्ता थे। महन्त श्रीराधाबल्लभदासजी भी बड़े सरल स्वभाव के सुयोग्य व्यक्ति हैं। आपने दो बार समारोहपूर्वक ब्रजचौरासी कोस की यात्राएँ की हैं। तृतीय स्थान दिल्ली दरवाजे पर है। भूतपूर्व श्रीबलरामदासजी प्रज्ञाचक्षु बड़े विद्वान् थे। भूतपूर्व महाराणा भूपालसिंहजी की आप में विशेष श्रद्धा थी। उन्होंने मन्दिर का जीर्णोद्धार और नवनिर्माण करके सुन्दर बना दिया था। चौथा स्थान चाँदपोल दरवाजे पर रघुनाथपुरा और पाँचवाँ स्थान पासवानजी का कहलाता है, जो स्थल से सम्बन्धित है। उदयपुर के इन मठमन्दिरों की शाखा-प्रशाखाएँ मेवाड के कई नगरों में हैं।

देवलिया प्रतापगढ़—यहाँ का श्रीगोपाल मंदिर राज्यगुरु स्थल है। भूतपूर्व महन्त श्रीबालमुकुन्ददासजी अच्छे सन्त थे।

डूँगरपुर—यहाँ छत्रियों के स्थान में पहले महन्त सरयूदासजी नागा थे, अब उनके शिष्य श्रीराधिकादासजी हैं। यह भी स्थल सुप्रतिष्ठित है।

सादड़ी—मेवाड़ मण्डल में इस स्थान की अच्छी प्रतिष्ठा है। महन्त श्रीगिरिवरदासजी सुयोग्य व्यक्तित्व के धनी हैं।

मध्यप्रदेश

इन्दौर—खेड़ापति हनुमान्, दो नदियों के बीचोंबीच यह प्राचीन मंदिर है। भूतपूर्व महन्त जगन्नाथदासजी गृहस्थ होते हुए भी विरक्तों जैसे रहनी में रहते थे। हनुमानदासजी भी मिलनशील व्यक्ति हैं।

उज्जैन—यहाँ लखेरावाड़ी और क्षीरसाई मुहल्ला का आदिबद्री मंदिर सुप्रतिष्ठित है। आगर—यहाँ नृसिंह टेकरी पर नृसिंह मन्दिर साधुसेवी स्थान है। महन्त बलरामदासजी वयोवृद्ध हैं। इसके तहती मंदिर यहाँ और डगबडौद आदि अन्यान्य नगरों में भी हैं।

महू—यहाँ के श्रीगोपाल मन्दिर के वयोवृद्ध महन्तजी ने स्थान के भावी संचालन का समस्त उत्तरदायित्व श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ को अर्पित कर दिया है।

सागर—यहाँ श्रीअटलबिहारीजी आदि के कई मन्दिर हैं। बालमुकुन्दजी सर्राफ ने भी एक नवीन मन्दिर का निर्माण धार्मिकों के योग से करवाया है।

दमोह, सीतापुर आदि इस क्षेत्र के कई ग्रामों में सम्प्रदाय के मन्दिर हैं। राघोगढ़, बजरंगगढ़, गुना, कुम्भराज आदि के मन्दिरों में वीना का बड़ा मन्दिर (देवल रघुनाथमठ) सुप्रतिष्ठित एकान्तिक स्थल है।

मह्लारगढ़—बीना से 6 कोश पश्चिम में है। यहाँ का बड़ा मंदिर सुप्रतिष्ठित है। गौशाला और संस्कृत पाठशाला भी यहाँ पर महन्त श्रीरामगोविन्ददासजी ने स्थापित की है। आपने दो बार गोपाल यज्ञ किये। दोनों ही जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य वर्तमान श्री 'श्रीजी' महाराज के तत्त्वावधान में सम्पन्न हुए।

महाराष्ट्र

नागपुर—यहाँ इतवारी में श्रीनृसिंह मंदिर सुप्रतिष्ठित है। महन्त श्रीबालकदास जी ने जीर्णोद्धार करवाया है। आपने भी भावी प्रबन्ध आचार्यपीठ पर निर्भर कर दिया है।

पंढरपुर और अमरावती के श्रीनिम्बार्काश्रम आचार्यपीठ के आयत्त हैं। अधर और भी बहुत से मठमंदिर हैं।

छत्तीसगढ़

दुर्ग—यहाँ गोपाल मंदिर बड़े मठ के नाम से सुप्रसिद्ध है। यहाँ भागवतदासजी, मनोहरदासजी वकील, डाक्टर रामकृष्णदासजी, जगदीशदासजी इञ्जीनियर आदि हैं।

महोतरा—इस प्रदेश में श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के सभी मन्दिरों में यहाँ का मठ उन्नत स्थिति में है। महन्त श्रीईश्वरीशरणजी फलाहारी हैं। आपने अपनी जागीर में से एक ग्राम श्रीनिम्बार्क-महाविद्यालय, वृन्दावन को अर्पित कर दिया है। अर्जुनदा और ढौगरगढ़ का हनुमान मन्दिर, खेरागढ़, खीरी पाण्डादह के मन्दिर राज्य मान्य हैं। राजनांदगाँव छुईखदान दोनों राज्य श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के महन्तों द्वारा ही स्थापित किये गये थे। राजा महन्त घासीदासजी और लक्ष्मणदासजी आदि ने अपने राज्यों में कई मन्दिर बनवाये थे। इस छत्तीसगढ़ प्रदेश में निम्बार्क-सम्प्रदाय के बहुत से गृहस्थ वैष्णव हैं। वे जागीरदार, वकील और डॉक्टर हैं एवं न्यायाधीश आदि पदों पर स्थित हैं।

रायपुर—यहाँ श्रीनागरीदासजी का स्थान विशिष्ट मंदिरों में है। महन्त पुरुषोत्तमदासजी सुशील हैं। मच्छी तालाब स्थान के महन्त पूर्णदास जी पुजारी, सुदर्शनदासजी दोनों का ही सरल स्वभाव है। यहाँ और भी कई मन्दिर हैं। लोर्मी आदि इस सम्प्रदाय के गृहस्थ वैष्णवों के कई घराने हैं।

उड़ीसा

विलासपुर—श्वेत गंगा पर एक स्थल है, जिसमें गंगादासजी निर्वाणी रहते थे।

सम्बलपुर—यहाँ का श्रीगोपाल मंदिर प्राचीन सुप्रतिष्ठित है। महन्त श्रीलाम्बरशरणदेवजी सुयोग्य और गम्भीर व्यक्ति हैं। आप अ.भा.निम्बार्क महासभा के अध्यक्ष पद को भी अलंकृत कर चुके हैं। यहाँ वर्तमान आचार्यश्री का पदार्पण हुआ, तब आपने बहुत भारी समारोह किया था। **पाण्डुआ मठ** के महन्त श्रीलक्ष्मीनारायणदासी और बलांगिर के महन्त श्रीकुञ्जबिहारीदासजी बड़े मिलनशील हैं। **कटक** का श्रीगोपालमठ भी सुप्रतिष्ठित है। ये सब मठ प्रायः एक ही परम्परा के हैं। **तैला** में गोपीनाथमठ के महन्त श्रीसर्वेश्वरदासजी सम्प्रदायनिष्ठ हैं।

पुरी—यहाँ पर निम्बार्क-सम्प्रदाय के तीन सुप्रतिष्ठित मठ हैं—राधावल्लभमठ के महन्त श्रीराधावल्लभदासजी के परमधाम वास होने पर सरकार इसका प्रबन्ध कर रही है। रामजी मठ भी विशाल और सुप्रतिष्ठित है। दुःखीश्याम मठ एकान्त स्थल है। ये तीनों ही मठ ऐतिहासिक हैं। राम दिगम्बर के गौरवशाली महन्त श्रीराधामोहनदासजी इसी मठ के शिष्यों में से थे।

भुवनेश्वर—यहाँ का श्रीनिम्बार्काश्रम श्रीसन्तदासजी काठियाबाबा वृन्दावन ने 20वीं शताब्दी में स्थापित किया था।

बंगाल

इस प्रान्त में आमदनी और प्राचीनता के लिहाज से **राजगंज वर्धमान** का श्रीनिम्बार्काश्रम सर्वप्रथम गिना जाता है। यहाँ अढाई सौ ग्रामों की जमींदारी के सात लाख के लगभग आय थी। जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् अब यद्यपि वह स्थिति नहीं रही, तथापि स्थान सुप्रतिष्ठित है। भूतपूर्व महन्तों में श्रीगिरधारीशरणजी, मधुसूदनशरणजी और मनोहरशरणजी

साधु स्वभाव के महन्त थे। उन्होंने साम्प्रदायिक साहित्य का प्रकाशन करवाया और आचार्य पंचायतन की प्रतिष्ठा करवाई। भूतपूर्व श्रीनिम्बार्काचार्य श्री श्रीजी महाराज का यहाँ दो बार पदार्पण हुआ था। दोनों ही बार बड़ा समारोह किया था। सुना जाता है, महन्त श्रीसर्वेश्वरदासजी की गुण्डों द्वारा हत्या कर देने पर वहाँ के मण्डल के महन्तों ने राधाकान्तशरणजी को महन्त पदाभिषिक्त कर दिया है। इसके ओर पास ऊखड़ा, अरुणघटा, चेतुआ, बैकुण्ठपुर आदि कई स्थान हैं, जो इसके अंगभूत कहे जाते हैं।

जयदेवा केन्दोली—यह श्रीजयदेवजी की जन्मभूमि है। यहाँ के सेव्य ठाकुर श्रीमाधवजी राधाकुण्ड पधारकर आचार्यपीठ सलेमाबाद पधारे हैं। वहाँ ही विराजते हैं। यहाँ के महन्त ब्रजवासी कहलाते हैं।

कलकत्ता—यहाँ पर शिवपुर (हावड़ा) में श्रीसन्तदासजी काठियाबाबाजी महाराज ने बीसवीं शताब्दी में बोटनिकल गार्डन के पास विशाल निम्बार्काश्रम की संस्थापना की थी। ट्रस्ट कमेटी द्वारा उसका प्रबन्ध चल रहा है।

श्रीराधाकृष्णाश्रम (चिड़ियाखाना, मुहाल) —यह श्रीश्यामाचरणदासजी ने संस्थापित किया है। आप वृन्दावनस्थ टटिया संस्थान की परम्परा में सच्चरित्र साधनशील महात्मा हैं। आपकी वृत्ति से बहुत से धनीमानी सन्तुष्ट हैं। यहाँ सदा हरिनाम संकीर्तन होता रहता है। स्थल उत्तरोत्तर उन्नति पर है।

सुखचर—ब्रजविदेही चतुःसम्प्रदायी महन्त श्रीधनञ्जयदासजी ने यहाँ काठिया बाबा के आश्रम की कुछ वर्षों पूर्व ही स्थापना की है। आपने एक सन्तदास निम्बार्क दर्शन स्मृति की स्थापना करके सुन्दर धर्म प्रचार किया है।

मेदिनीपुर—'श्रीघमण्डदेवजी के द्वारा' के सन्तों का यहाँ बल्लभपुर में बड़ा मठ है। महन्त काह्नरदासजी के पश्चात् यहाँ की स्थिति कुछ चिन्तनीय सी हो गई है। बंगाल में लोहागंज आदि और भी बहुत से मठमंदिर हैं।

बिहार

इस प्रान्त में निम्बार्क-सम्प्रदाय के बहुत से मठमंदिर हैं। उनमें **कोपलादेवा मठ** जिला छपरा का सुप्रतिष्ठित मठ है। महन्त श्रीहरिप्रियाशरणजी ने समस्त आचार्यों के चित्रों की यहाँ स्थापना की थी। एक संस्कृत पाठशाला भी है। **शिशमा** आदि इसके कई उपस्थान हैं।

वीरपुर—यहाँ के विशाल मठ में अच्छी जागीरी लगी हुई हैं। महन्त श्रीसुदर्शनदासजी वयोवृद्ध अनुभवी हैं। इन दोनों ही मठों में भूतपूर्व श्री श्रीजी महाराज का समारोहपूर्वक पदार्पण हुआ था।

धाना—राजीपुर का विशिष्ट मठ है। मठ की अ़ोर से एक कॉलेज का संचालन हो रहा है। इस प्रांत में हाटी, सुगौली आदि नगरों मे कई एक विशिष्ट मंदिर हैं।

पञ्जाब

मलैरकोटला में बाबा आत्मारामजी का दरबार कहलाता है। यह सिद्धों का स्थान था।

अमृतसर—आलू के कटरे का भी विशिष्ट स्थान था, किन्तु भूतपूर्व महन्त द्वारिकादासजी और वैश्य सेवकों के संघर्ष मे इसकी बर्बादी हो गई। **नाभा, भादसों, पटियाला, गूजरानवाला** आदि नगरों के स्थलों की भी भारत विभाजन आदि कारणों से स्थिति बिगड़ गई।

आन्ध्र

हैदराबाद मे कई मठमंदिर हैं। उनमें महन्त वासुदेवदासजी का स्थान प्रतिष्ठित है। कुछ मंदिरों के महन्त गृहस्थ भी हो गये हैं।

तमिलनाडू

मद्रास—यहाँ मीनाक्षी मंदिर के निकट ही सम्प्रदाय का एक मंदिर है। महन्त गोवर्धनदासजी के पश्चात् स्थिति का पता नहीं चलता।

हरियाणा

यह प्रान्त श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के मठमंदिरों का आकर कहा जा सकता है। श्रीस्वभूरामदेवजी, श्रीघमण्डदेवजी, श्रीलफरागोपालदेवजी, श्रीवोहितदेवजी आदि सभी द्वारों के यहाँ स्थान थे और हैं भी। कुछ द्वारा प्रवर्तकों की तो जन्मभूमि भी यही प्रान्त रही है।

नारनौल—यहाँ धानमण्डी आदि के दो-तीन मठ सुप्रतिष्ठित हैं।

ढोसी—नारनौल के पास ही च्यवन ऋषि के आश्रम ढोसी पहाड़ पर श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय का सुप्रतिष्ठित स्थान है। यहाँ भूतपूर्व महन्त रिछपालदासजी अच्छे साधुसेवी सन्त थे।

पपनावा—यहाँ का विशाल मठ बहुत प्राचीन है। श्रीऔदुम्बराचार्यजी की वह तपःस्थली माना जाता है। यह कुरुक्षेत्र के सन्निकट है।

दूल्हैडा—यह रोहतक के निकट है। इसे 'लफरागोपालजी की द्वारा गादी' मानते हैं। महन्त जयरामदासजी और उत्तराधिकारी रूपदासजी शास्त्री दोनों ही सुयोग्य हैं। इस प्रान्त में दौलताबाद, जीरखोद, कासण्डा, कासण्डी, शरदथल, गढ़, जगाधरी, भराणा, गोली, खानपुर, मुरलाना, चिराणा, कोसली, करनाल, दूवरदू (श्रीघमंडदेवजी की जन्मभूमि) तोड़ी (रोहतक) जटवारी, बहादुरगढ़, रानीला आदि अनेकों ग्रामों में निम्बार्क-सम्प्रदाय के पुराने मठमंदिर थे। वर्धमान आदि के स्थानों की स्थापना इसी प्रान्त के महात्माओं ने उधर जाकर की थी।

उत्तरप्रदेश

पडरौना—(जिला गोरखपुर) यहाँ के कवि राजा ईश्वरीप्रतापरायजी ने वि.सं. 1901 में श्रीश्यामधाम, रामधाम और पडरौना वाली कुञ्ज वृन्दावन आदि में बनवाकर श्री श्रीजी महाराज को समर्पित किये थे। इनकी सेवा के लिए उन्होंने और उनके उत्तराधिकारी श्रीमदनगोपालरायजी ने 6 ग्राम भेंट किये थे।

वाराणसी—यहाँ विश्वेश्वर गंज में बड़े हनुमान् का साधुसेवी मंदिर है। भूतपूर्व महन्त श्रीसरस्वतीदासजी बड़े निष्ठावान् ब्रजवासी सन्त थे। उनके शिष्य श्रीहनुमानदासजी

महन्त हैं। इसी के निकट दूसरा मंदिर है। उसके प्रबन्धक महन्त सुपटा (गया बिहार) के शिष्य श्रीसर्वेश्वरदासजी हैं। पञ्चकोशी परिक्रमा में रामेश्वर पर एक मन्दिर है। काठिया बाबा के भी यहाँ कई आश्रम हैं।

मिरजापुर—यहाँ गंगातट पर प्राचीन प्रतिष्ठित मंदिर है। यहाँ के महन्त श्रीकृष्णदासजी, बालकृष्णदासजी आदि बड़े विद्वान् हो गये हैं। भागवत भाषा, माधुर्य लहरी आदि कृष्णदासजी की सुन्दर रचनाएँ हैं।

कालाकांकर, प्रतापगढ़—यहाँ श्रीब्रह्मचारीजी का सुप्रतिष्ठित स्थान है। यह लफरागोपालजी के द्वारे का है।

नैमिषारण्य—यहाँ हनुमानगढ़ी साम्प्रदायिक मठ है। टटिया संस्थान वृन्दावन की परम्परा के श्रीशंकरदासजी यहाँ के प्रबन्धक थे।

प्रयागराज में किला के पास लालगंज बिहारीजी के अधीन एक मन्दिर है। वासुकी नाग पर टोपीकुञ्ज वृन्दावन की परम्परा के एक सन्त प्रबन्धक थे। महाजनी टोला में जहानाबादी बिहारीजी का मंदिर है। जिसके सेवायत गो. राधाकृष्णजी आदि हैं। ये श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी के भाई वासुदेवशरणजी के वंशज हैं। कानपुर में भी ध्रुवटीला मथुरा के गोस्वामियों के कई एक मंदिर हैं।

दारानगर—यहाँ श्रीवीरमत्यागीजी की परम्परा का स्थान है। नानपारा (जिला बहराइच) यहाँ श्रीमाधवदासजी ब्रह्मचारी ने मंदिर और श्रीनिम्बार्क पुस्तकालय की स्थापना की थी।

लालगंज—यहाँ श्रीबिहारीजी का प्राचीन मंदिर है। इसकी संस्थापना श्रीपरशुरामद्वारे के बाबा श्रीरामदासजी ने नारदटीला मथुरा से आकर लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व की थी। उनके पश्चात् बाबा बालकदासजी आदि अच्छे सिद्ध हुए। भूतपूर्व बाबा जानकीदास जी के परमधाम वास होने पर वृन्दावन से श्रीजयबिहारीदासजी की नियुक्ति की गई।

कायमगंज—यहाँ पृथ्वी दरवाजे पर अच्छा स्थान है। आजकल यह कोई रामस्वरूप शर्मा नामक व्यक्ति के अधीन है। **जलेसर** और **सहपऊ** में हनुमानजी और गोपालजी के मन्दिर हैं। ये मथुरा में बनखण्डी स्थान से सम्बन्धित है। यहाँ गोपालदासजी आदि प्रबन्धक हैं।

हाथरस—यहाँ राजगुरु का स्थान था। सुनते हैं छुईखदान के राजा भूधरकिशोरदासजी को यहाँ हाथोद के महन्त बंशीदासजी से दीक्षा प्राप्त हुई थी। मर्त्याना, मांट तहसील के इस ग्राम के मन्दिर का सेवाभार काठियाबाबा वृन्दावन के अर्पित कर दिया गया है।

ब्रजमण्डल

यहाँ श्रीकृष्ण चैतन्य, श्रीबल्लभाचार्य आदि के प्रादुर्भाव से पूर्व 90 प्रतिशत मंदिर निम्बार्कीय थे।

मथुरा—यहाँ की राजधानी है। यहाँ का नारद टीला प्राचीन स्थल है। वि.सं. 1900 में यहाँ के प्रबन्धक श्रीदीनारामदासजी के परमधाम वास होने पर सुखरामदासजी की

नियुक्ति हुई। यहाँ के ही बाबा रामदासजी ने लालगंज (जिला रायबरेली) में बिहारीजी का मन्दिर बनवाया। बाद में कई वर्षों तक बजरंगदासजी रहे। पहले इसे कावड़ियाजी का बाड़ा भी कहते थे। यहाँ केशवकाश्मीरिजी, श्रीभट्टजी और श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी की चरण पादुकाएँ हैं। आय होने पर भी स्थिति दयनीय है।

ध्रुवटीला—ठीक यमुनातट पर यह विशाल मन्दिर है। गृहस्थ गोस्वामी इसके सेवायत हैं। नारदटीला की अपेक्षा इसकी स्थिति प्रशंसनीय है।

बलिटीला—यहाँ श्रीरघुवरदासजी, छंगादासजी आदि के पश्चात् आजकल गृहस्थ ब्राह्मण सेवायत हैं। स्थिति सामान्य है।

सप्तऋषि टीला—यहाँ मंगलदासजी, प्रियादासजी के बाद पूरणदासजी सम्भवतः गृहस्थ हो गये थे। उन्हीं के वंशज आजकल सेवा करते हैं।

दुर्वासा टीला—यह यमुनाजी के उत्तर तट पर है। माघ में यहाँ मेला लगता है। बीसवीं शताब्दी में गोकुलदासजी, लाडिलीदासजी, जमुनादासजी हुए। वर्तमान में भी विरक्त साधु हैं। स्थिति ठीक है।

असिकुण्डा हनुमान् मंदिर—यह जमुना तट पर प्राचीन प्रतिष्ठित मंदिर है। सभी मथुरा निवासी हनुमान् जी को मानते हैं। यहाँ तक्षक कर्कोटक नाग की भी मूर्ति है। निम्बार्क भगवान् का चित्र दशश्लोकी आदि यहाँ हैं। कीर्तन, रामायण पाठ यहाँ होता रहता है। श्रीनागाजी की परम्परा में मोहनदेवजी के पश्चात् हृदयरामजी से 11वीं पीढ़ी में वैद्य श्यामदासजी हुए। उनके पुत्र राजकिशोरदासजी विरक्त रूप से यहाँ के सेवायत हैं।

श्रीराधाकान्त मंदिर—यहाँ आय अच्छी है। महन्त ब्रजमोहनशरणजी रामराज्य परिषद् की ओर से दो बार एम.एल.ए. के लिए खड़े हुए थे, किन्तु सफल नहीं हो सके। वे चाहते तो उन सहस्त्रों रुपयों को सम्पद्राय प्रचार में लगाकर विश्राम घाट पर मथुरा ही नहीं, ब्रजमण्डल में सम्प्रदाय का सूर्य चमका सकते थे।

केशवदेव मंदिर (कृष्ण जन्मभूमि) —यहाँ का प्रसिद्ध मंदिर कई बार यवनों द्वारा ध्वस्त हुआ और बनता गया। इस प्राचीन स्थल को पहले **वासुदेव स्थान** कहते थे। फिर केशवकाश्मीरि भट्टाचार्य द्वारा नवनिर्माण होने पर **केशवदेव** नाम पड़ा। प्राचीन प्रतिमा यहाँ नहीं रहीं। इसके अर्चक आजकल भी निम्बार्क-सम्प्रदाय के गोस्वामी ही हैं।

श्रीपरशुरामद्वारा (वैरागपुरा) —यहाँ वैष्णवों के सैकड़ों मंदिर थे। उनमें यह प्राचीन स्थल है। श्रीपरशुरामदेवजी ने यहाँ निवास किया था। श्रीशुकसुधीजी ने यहाँ ही रहकर भागवत की **सिद्धान्त प्रदीप टीका** लिखी थी। 1926 वि. में उनका परमधाम वास होने पर क्रमशः उनके शिष्य-प्रशिष्य भगवानदासजी और ठाकुरदासजी यहाँ रहे। यह आचार्यपीठ की संस्था है। श्रीराधागोपालजी का मंदिर (रामदास मण्डी) यह बीसवीं शताब्दी में बना था। यहाँ के गोस्वामियों में मुकुन्ददेवजी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। ब्रजबिहार रचयिता श्रीनारायण स्वामी इन्हीं के शिष्य थे।

श्रीकेशवदेव मंदिर—यह आकाशवाणी केन्द्र के निकट है। इसके महन्त सरजूदासजी पाण्डादह (छत्तीसगढ़) में रहते हैं। यहाँ वयोवृद्ध बाबा मंगलदासजी हैं। इसके उत्तर में राधेबाबा का आश्रम है।

श्रीवृन्दावनधाम

श्रीजी मंदिर (विहार घाट) —यह यमुना तट का प्राचीन मंदिर जीर्णावस्था में है।

नागाजी की कुञ्ज—यह भी प्राचीन स्थल है। यहाँ श्रीनागाजी की समाधि चरण पादुकाएँ भी हैं। यह और कालीमर्दन—दोनों पहले भरतपुर बिहारी जी के महन्तों के अधीन थे। यशोदानन्दन मंदिर सं. 1828 में देलवाड़ा की जसकुमरी ने बनवाया था।

टोपीवाला कुञ्ज—यह श्रीमुकुन्ददेवाचार्यजी की परम्परा का प्रधान स्थान है। भूतपूर्व भक्तमाली बाबा माधवदासजी के द्वारा इसकी विशेष ख्याति और उन्नति हुई है। महन्त श्री सनत्कुमारदासजी हैं। **नागरिकुञ्ज** यह विक्रम सम्वत् 1787 में बनी। महाराजा नागरीदासजी ने यहाँ भजन-साधन किया था, पास में ही नागरीदासजी का घेरा है उसमें भी एक मन्दिर है, जिसके सेवायत आजकल अधिकारी मनोहरदासजी के वंशज हैं।

दानबिहारी—यह श्रीजी महाराज की एक कुञ्ज है।

कंगालदास कुञ्ज—धवलपुर मुचुकुन्दकुण्ड के स्थान की परम्परा का यह स्थल है।

वंशीवट—यह वृन्दावन का प्राचीन स्थल श्रीभट्टजी की भजनस्थली है। यहाँ श्रीहंस आदि आचार्य पञ्चक विराजमान हैं। ब्रह्मचारीजी के आधीन है।

अहल्याबाई कुञ्ज—चीरघाट पर है। जयसिंह का घेरा भी ब्रह्मचारीजी के ही अधीन है। श्री नृसिंह मंदिर (केशीघाट) यह प्राचीन स्थल है। इसके सेवायत नृसिंह के गोस्वामी कहलाते हैं।

श्रीराधागोपाल मन्दिर—यह ग्वालियर दरबार ने सन् 1860 में बनवाकर अपने गुरुदेव ब्रह्मचारी श्रीगिरिधारीशरणजी को भेंट किया था। यहाँ पर भी एक मन्दिर में आचार्य पंचक प्रतिमाएँ पूजी जाती हैं। वृन्दावन के विशाल मन्दिरों में यह एक दर्शनीय मंदिर है। यहाँ का पाटोत्सव ज्येष्ठ शु. पञ्चमी को मनाया जाता है।

हरिव्यासी निर्वाणी अखाड़ा—यह सम्प्रदाय का अखाड़ा है। वेदान्तनिधि स्व.पं. श्रीकिशोरदासजी यहाँ ही निवास करते थे। आपने साम्प्रदायिक ग्रन्थों का पर्याप्त प्रकाशन करवाया था।

रामानन्दी निर्वाणी अखाड़ा—स्व. भगवानदासजी ने और जमुना मंदिर श्रीलक्ष्मणदासजी निर्वाणी ने निर्माण करवाया था। पास में ही छैलचिकनियाँजी का मन्दिर है। यहाँ ही ज्ञानगूदड़ी में मदनमोहन कुञ्ज मिर्जापुर के महन्तों की संस्था है। श्रीराधा सर्वेश्वर वाटिका, मालाधारी तथा महानिर्वाणी अखाड़ा और ज्ञानगूदड़ी में श्रीश्याम दिगम्बर अखाड़ा बहुत विशाल मन्दिर है, किन्तु प्रबन्धक मधुसूदनदासजी के अदूरदर्शितापूर्ण व्यवहार से इसकी बर्बादी हो रही है।

टटिया संस्थान—रसिकशेखर स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज की परम्परा के सिद्ध सन्तों का यह एकान्तिक परम शान्ति का स्थान है। यहाँ के गद्यस्थ महन्त स्थान से बाहर नहीं निकलते। पास में ही 'छोटी टट्टी' और 'छतरपुरवाजी कुञ्ज' हैं।

पानीघाट—यह साधुसेवी संस्था है। भूतपूर्व महन्त पं. श्रीकल्याणदासजी ने कई ग्रन्थों का प्रकाशन करवाया था। त्यागी श्रीनरहरिदासजी आजाद यहाँ पर हैं।

ज्ञानीजी की बगीची—यह भी साधुसेवी एकान्तिक स्थल है।

श्यामकुटी—यहाँ समय-समय पर नाम संकीर्तन आदि पारमार्थिक कार्य होते रहते हैं। इसके सन्निकट ही दाऊजी मंदिर, पुराना पानीघाट, जानकीबाई की कुटी, भजनकुटी, लक्ष्मीनारायण भवन, अनन्तवाटिका आदि परिक्रमापथ की कुटियाँ हैं।

श्रीराधामाधव (जयपुर वाला मंदिर) —इसका निर्माण बीसवीं शताब्दी में जयपुर नरेश महाराजा माधवसिंह ने अपने गुरुदेव ब्रह्मचारी गिरिधारीशरणदेवजी के आदेश से करवाया था। वृन्दावन के समस्त मन्दिरों में यह अपने ढंग का निराला ही है। यहाँ जैसी पच्चीकारी अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। चालीस वर्ष में बनकर यह तैयार हुआ था। वि.सं. 1974 ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी, दि. 13 मई सन् 1917 में भगवान् की प्रतिष्ठा हुई थी। यहाँ श्रीहंस, सनक, नारद, निम्बार्क, श्रीनिवास इन पाँचों आचार्यों की प्रतिमाएँ पूजी जाती हैं। इसी मन्दिर के निकट बाबा कुञ्जबिहारीशरण जी की निकुञ्ज वाटिका है।

बिहारीजी का बगीचा—यहाँ स्व. श्रीहरिप्रियाशरण (पं. दुलारेप्रसाद) जी द्वारा स्थापित गोपाल मंदिर है। यहाँ के शिष्य प्रशिष्य नेपाल में अधिक हैं।

श्रीसनकादिक आश्रम—यह नवनिर्मित आश्रम है। श्रीध्रुवदासजी यहाँ के अधिपति हैं।

गोपाल बाग—पं. मथुराप्रसाद (माधुरीशरण) जी ने इसकी स्थापना की है। यहाँ उन्होंने श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी और अपने गुरुदेव की प्रतिमाएँ भी विराजमान की हैं। श्रीनिम्बार्क महाविद्यालय, ब्रजमण्डल का विभागीय आदर्श विद्यालय है। यहाँ ही काठियाबाबा के पुराने दो आश्रम हैं। इनकी संस्थापना क्रमशः श्रीरामदासजी काठिया बाबा और श्रीसंतदासजी काठिया बाबा ने की। ट्रस्ट कमेटी के प्रबन्ध में श्रीलक्ष्मीनारायणदासजी यहाँ के महन्त हैं। काठिया बाबा का तीसरा विशाल स्थान गुरुकुल रोड पर कुछ वर्षों पूर्व ही व्र.वि.च.सं. महन्त श्रीधनञ्जयदासजी काठिया बाबा ने बनवाकर अपने सुयोग्य शिष्य श्रीजानकीदासजी को महन्ताई दिला दी है।

दावानलबिहारी—यह प्राचीन साधुसेवी स्थान है। आजकल पुराने काठिया बाबा के आश्रम के प्रबन्ध में है। इसी के निकट गोपालदासजी आदि की कई कुटियाँ हैं। बम्बे पर (परिक्रमा पथ पर) शिलीगुडी (आसाम) वाले बाबा का नूतन आश्रम है।

रमणरेतीमें शाहजहाँपुरवालों का श्रीसर्वेश्वर भवन, गीतादेवी का आश्रम, ठा. श्रीशान्तिबिहारीजी का मंदिर (शान्ति आश्रम), बाबा घनश्यामदासजी और महादेव सोमाणीजी

आदि की सुन्दर कोठियाँ बनी हुई हैं। यहाँ 'वनविहार' आश्रम विशिष्ट है। यह टोपीवाली कुञ्ज की संस्था है। भक्तमाली महन्त श्रीमाधवदासजी की भजनस्थली है। बाबा श्रीमाधुरीदासजी द्वारा इसकी विशेष उन्नति हुई। अब उन्होंने पास में ही 'अलीमाधुरी' कुटी बना ली है। जब तक वे यहाँ रहे, चहल-पहल बनी ही रहती थी। इसके निकट ही लाडिली निकेतन कोठी है। श्रीनिम्बार्क सदन, स्व. बाबा श्रीबिहारीदासजीने बनवाया था। वह ट्रस्ट के प्रबन्ध में है। बाबा श्रीविशाखाशरणजी यहाँ निवास करते हैं। पास में ही श्रीराधा टीला, जुगलकिशोर वाटिका, भण्डारी बाबा का भवन और त्यागी श्रीबिहारीदासजी का बनवाया हुआ गौतम आश्रम है। इससे आगे परिक्रमा में श्रीजी का पुराना पक्का बगीचा है। यह श्रीश्यामाश्याम की महारासस्थली है। यहाँ कामदेव ने आकर युद्ध के लिए टेर लगाई थी। यह मदनटेर बगीचे से लगा हुआ ही है। यहाँ साधनशील सन्त रहते आये हैं1 इसी से लगा हुआ छोटा बगीचा (कानपुर वाले सिंघानिया की कोठी) है। दतिया वाली बगीची के अनन्तर दाऊजी की बगीची और सम्प्रदाय का पुराना साधुसेवी स्थान रामगुलेला है। यहाँ के भूतपूर्व महन्त श्रीकिशोरदासजी ब्रजविदेही पदाभिषिक्त थे। कालीदह पर पीलीकोठी है, यहाँ के अध्यक्ष बाबा श्रीशुकदेवशरणजी हैं। सूर्यघाट का दत्तावाला मंदिर शोचनीय स्थिति में है। कालीदह पर कालियमर्दन का पुराना मंदिर है। यहाँ के सेवायत मिश्र हैं।

मोतीझील पर श्रीयुगल भवन इसी शताब्दी में बाबा श्रीचक्रपाणिशरण जी ने बनवाया है। यहाँ नेपाली सन्त और भक्तजन भजनसाधन निरत रहते हैं। जुगलघाट पर प्राचीन शिखरदार श्रीजुगलकिशोरजी का मंदिर विशेष पुराना है। वृन्दावन में ऐसे तीन ही मंदिर हैं। इसका जीर्णोद्धार बिरलाजी ने करवाया है। इससे लगा हुआ गोपाल मंदिर है। नीचे की ओर बाबा लाडिलीशरणजी का निवास स्थल हैं।

श्रीनिम्बार्क निकेतन (पन्नाबाई कुञ्ज) जीर्ण-शीर्ण होने पर इस प्राचीन स्थल का नवनिर्माण श्रीरामनारायणदासजी मूँदड़ा सम्बलपुर आदि भक्तों ने करवाया है।

श्रीगिरधारीजी मंदिर—यह श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की परम्परा का सुप्रतिष्ठित स्थान है। भगवत् सेवा सत्संगादि सभी कार्य सुचारु रूप से चलते हैं। स्व. पुजारी श्रीरामचन्द्रदासजी और वैद्य साँवलदासजी द्वारा इसकी अच्छी उन्नति हुई है।

श्रीरसिकबिहारीजी मंदिर—स्वामी श्रीहरिदास जी महाराज की परम्परा का यह प्राचीन सुप्रतिष्ठित प्रधान स्थान है। यहाँ हस्तलिखित ग्रन्थों का अच्छा संग्रह है।

इसी से लगा हुआ विशाल श्रीगोरेलालजी का मंदिर है। यहाँ श्रीनरहरिदेवजी के सेव्य ठाकुर हैं। महन्त श्रीबालकदासजी ने स्थान का जीर्णोद्धार करवाया है। दतियावालीकुञ्ज विशाल स्थान है। यहाँ ठाकुर श्रीहीरामोहनजी विराजते हैं। श्रीजी की नई कुञ्ज में ठाकुर श्रीकृष्णचन्द्रमाजी के दर्शन हैं। किशोरपुरा मोहल्ला की अचल कुञ्ज दतिया के महन्तों की बनवाई हुई है। पास में श्रीनिम्बार्क सदन बाबा श्रीकेशोदासजी ने इसी शताब्दी में निर्माण करवाया है। छींपी गली का श्रीनिम्बार्क कोट प्रसिद्ध है, जहाँ एक मास तक कार्तिक में श्रीनिम्बार्क भगवान् का उत्सव होता है। बजाजा में पडरोनावाली कुञ्ज विशाल स्थल है।

यहाँ भूतपूर्व श्रीहरिप्रियाशरण बड़े वयोवृद्ध विद्वान् थे। उनके शिष्यों में भागवत के कई एक अच्छे कथाकार अब भी हैं।

श्रीजी का मंदिर (बड़ी कुञ्ज) —यह वृन्दावन के मध्यभाग में सम्प्रदाय का सुप्रतिष्ठित विशाल मन्दिर है। सत्संग, कथा कीर्तन, प्रवचन, साधु-सेवा, गौ-सेवा आदि यहाँ पारमार्थिक कार्य होते रहते हैं। प्राचीन पुस्तकालय में सहस्रों पाण्डुलिपियाँ हैं। श्रीसर्वेश्वर संस्कृत शोध विद्यालय, श्रीसर्वेश्वर प्रेस है। **श्रीसर्वेश्वर** मासिक के प्रकाशन द्वारा हिन्दी साहित्य और धर्म प्रचार कार्य का यह केन्द्र बना हुआ है। श्रीनिम्बार्काचार्य जी श्रीजी महाराज यहाँ विराजते हैं। अन्यान्य आचार्य और विशिष्ट वक्ताओं के यहाँ सदुपदेश होते रहते हैं। श्रीआनन्दमनोहर वृन्दावनचन्द्रजी के मनोहर दर्शन राजपथ से ही हो जाते हैं। भगवान् श्रीमुरलीमनोहर वृन्दावनचन्द्रजी तीन सौ वर्षों के अनन्तर पुनः बंगाल से पधारकर यहाँ विराजे हैं। यह इक्यावन हजार घनफुट भूमि पर स्थित है। वामभाग में लगा हुआ ही श्रीरूपमनोहर वृन्दावनचन्द्रजी का मंदिर है। दक्षिण की ओर बरसानिया कुञ्ज है। साहबिहारी के निकट प्राचीन जीवाराम कुञ्ज है, इसका जीर्णोद्धार कलकत्ता के श्रीगंगादीन गुप्ता आदि भक्तों द्वारा करवाया गया है। पत्थरपुरा में सूरदासजी वाली कुञ्ज, श्रीवीरमत्यागीजी की परम्परा का स्थान था। पण्डित मानदासजी का यहाँ ग्रन्थागार था। दैवयोग से यह हस्तान्तरित हो गया।

सिंहपोल—यह सम्प्रदाय का प्राचीन स्थल झाडिया निर्मोही (नीम के थाने की जमात) का है। पास में ही साक्षीगोपाल मन्दिर था, जो ध्वस्त हो चुका है।

गोपीनाथ बाग में श्रीछत्रविहारीजी का मंदिर इन्दौर के जागीरदारों ने बनवाया था। सन्तदास काठिया बाबा आश्रम महन्त प्रेमदासजी के आधिपत्य में है। ब्रह्मकुण्ड पर श्रीसर्वेश्वर मंदिर, ज्ञान गूदड़ी में ताड़वाली कुञ्ज, परमार्थीजी का अखाड़ा आदि कई स्थान हैं।

केशीघाट केशीमर्दन एवं जुगलकिशोर मंदिर विशेष प्राचीन है। इस प्रकार की बनावट के वृन्दावन भर में तीन ही मंदिर हैं। यह मुहल्ला निम्बार्कीय बहुल है। यहाँ का श्रीनृसिंह मंदिर भी प्राचीन है, जिसके सेवायत सनाढ्य गोस्वामी हैं। गोपीश्वर मुहल्ला के श्रीगोपेश्वर महादेव मन्दिर के भी सेवायत निम्बार्कीय अक्रूरजी वाले गोस्वामी हैं।

व्रजमण्डल—सान्त्वनु कुण्ड (सतोहा) शान्तनुबिहारीजी। छटीकरा, गोपालगढ़, अडींग, दाऊजी, बिहारीजी आदि मंदिर। गोवर्धन—किलोलकुण्ड, पध्वारी (पूँछरी, अप्सराकुण्ड राजस्थान में) आन्योर गोविन्दकुण्ड, प्राचीन श्रीगोविन्द मंदिर और श्रीनागाजी की समाधि नारदकुण्ड, राधाकुण्ड (श्रीनिवासाचार्यजी की बैठक ललिताकुण्ड) निम्बग्राम [illegible] पलसों, बरसाने में गह्वर वन, नुसर चतुर्भुजजी का मंदिर, नागाजी की कुञ्ज और श्रीकुशलबिहारी जी (जयपुर वाला) मंदिर, यह विशाल मंदिर जयपुर महाराजा ने बनवाया था। [illegible] श्रीराधेश्यामजी यहाँ के प्रबन्धक रहे। यहाँ भी श्रीहंस सनक-नारद-निम्बार्क श्रीनिवास इन पाँचों आचार्यों की प्रतिमा पूजी जाती हैं। बरसाने से 4-5 मील पर नागाजी की यह कदमखण्डी है, जहाँ पर श्रीश्यामाश्याम ने उनकी उलझी हुई जटा सुलझाई थी। यह

एकान्तिक परमशान्ति का स्थान है। कोकिलावन का प्राचीन साधुसेवी स्थल है। यहाँ पर्याप्त जमीन लगी हुई है। जाव, बठैन, फारैन, पिसाँयो, पाण्डव वन का मंदिर है। पैगाँव (श्रीनागाजी की जन्मभूमि) में श्रीचतुर्भुजजी का प्राचीन सुप्रतिष्ठित और जागीर सम्पन्न स्थान है। महन्त मनोहरदासजी ने इसके जीर्णोद्धार द्वारा अच्छी उन्नति की है। नारायणदासजी वैद्य भी सुयोग्य प्रबन्धक हैं। इसी प्रकार छातई, आजई, शेरगढ़, परखम, मनसाकुण्ड, मर्त्याना, तारसी (तालवन) आदि में साम्प्रदायिक स्थल हैं। इगरारा में काठिया बाबा का स्थान एवं कृषि फार्म है।

बिहार वन—यह एकान्तिक स्थल शेरगढ़ के निकट है। श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज की परम्पराऽनुवर्ती टट्टीस्थान के आधिपत्य में है। श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के महन्त, सन्तों और भक्तों द्वारा संचालित देश में कई गोशालाएँ हैं। बड़े-बड़े स्थलों में सैकड़ों गाय और बैल रहते हैं। वे उनकी व्यक्तिगत गौशालाएँ हैं। उन सबमें बिहार वन की गौशाला आकाशवृत्ति पर महात्माओं द्वारा संचालित हो रही है। यहाँ दूध मथा नहीं जाता है। गोसेवा को देखकर सभी दर्शकों का चित्त गदगद हो जाता है। सन् 66 ईसवी में गोस्वामी श्रीब्रजाधीशजी की यात्रा वहाँ पहुँची तो उन्होंने निम्नांकित हार्दिक भाव अपने करकमलों से अंकित किये थे—

> **विजयते श्रीबालकृष्णः प्रभुः। आश्विन शु. पूर्णिमा सं. 2023 बिहार वन गौशाला (पो. शेरगढ़ जिला मथुरा) को देखकर हमारा चित्त प्रसन्न हुए हैं। गउ सुन्दर हैं। हृष्ट-पुष्ट हैं। ऐसी गोओं की सेवा करने का यह उत्तम स्थान है, तो वैष्णवों कूं हमारा आदेश है, कि गो सेवा करना अपना कर्तव्य है। उसके लिए यह गौशाला में यथोचित सेवा कर अपना कर्तव्य करेंगे।**
>
> **(गो. ब्रजाधीश 29/10/66)**

गुजरात

आबू का वशिष्ठ आश्रम, सिरोही का राजगुरु स्थान, (रामझरोखा), सिद्धपुर का कदमबाड़ी स्थान जहाँ सम्प्रदाय के वयोवृद्ध विद्वान् भीमाचार्यजी शास्त्री अध्यक्ष हैं। दूसरा यहाँ कमलबाड़ी स्थान है। कढ़ी, बालीसाणा और अहमदाबाद असारवा चकला का रणछोड़ मंदिर विशिष्ट हैं। यहाँ महन्त श्रीश्यामसुन्दरदासजी पुजारी, मधुसूदनदासजी सुयोग्य सन्त हैं। रायपुर मुहल्ला में नृसिंह मंदिर है। भक्ति भागीरथी मासिक का यहाँ कार्यालय है। ब्र. ब्रजबिहारीशरण जी यहाँ के प्रबन्धक हैं। श्रीधामण, पाँचपीपला, बड़ौदा आदि इस प्रान्त में बहुत से स्थान हैं।

सौराष्ट्र

लीम्बड़ी में बड़ा मंदिर और श्रीराधेश्याम मंदिर के महन्त क्रमशः श्रीबालकृष्णदासजी और श्रीगोविन्ददासजी सम्प्रदायनिष्ठ महानुभाव हैं। जूनागढ़, गिरनार, गोदवाव स्थान, सुदामापुरी, पोरबन्दर, शींगड़ा, भावनगर, बल्लभीपुर, माँगरोल, प्रभासपाटन आदि में भी कई स्थान हैं।

राजस्थान की राजधानी जयपुर में श्रीजी की मोरी, काजल वालों का मंदिर, परशुरामद्वारा, गंगागोपाल जी मंदिर, ताला, थौलाई, रींगस वालों के मंदिर, जौहरी बाजार के श्रीविजयगोपाल तथा गोपाल मंदिर आदि विशाल मंदिर हैं। निम्बार्क-सम्प्रदाय से सम्बद्ध, भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्रतिष्ठापित सभी मठ-मन्दिरों का विवरण देना सम्भव नहीं है, अतः निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रमुख मठ-मन्दिरों का सामान्य विवरण इस शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ

1. निम्बार्कतीर्थ माहात्म्य, संवत् 2033, पृ. 6
2. निम्बार्कतीर्थ माहात्म्य, संवत् 2033, पृ. 2
3. निम्बार्कतीर्थ माहात्म्य, पृ. 7
4. (1) ब्रह्म सूत्र. 1/2/30, (2) ब्र. सू. 1/4/20
5. (मीमांसादर्शन 6/5/16)
6. (1) ब्रह्म सू. 1/4/21, (2) ब्र. सू. 3/4/45, (3) ब्र. सू. 4/4/6
7. परन्तु श्री श्रीनिवासाचार्य ने इसे केवल स्थूल बुद्धि वाले लोगों के लिए हितकारी माना है। इनका कहना है कि वस्तुतः जो वृद्धावस्था में भी व्यापक, अप्रच्युत स्वभाव वाले सर्वज्ञ परमात्मा से अणुपरिमाणक और अल्पज्ञ जीव भिन्न होते हुए भी वृक्ष से पत्ते की तरह प्रदीप से उसकी प्रभा की तरह, गुणी से गुण की तरह, प्राण से इन्द्रिय की तरह पृथक् स्थिति-प्रवृत्ति के अभाव में ब्रह्म का ही अंशभूत जीव ब्रह्म से अभिन्न रहता है तथा मुक्तावस्था में भी पृथक् स्थिति-प्रवृत्ति के अभाव में उससे अभिन्न होते हुए भी 'स्वेन रूपेण सम्पद्यते' इस वचन से भिन्न ही रहता है। अन्यथा उभय अवस्थाओं में अच्युतत्त्व की हानि होगी।
8. ब्रह्म सूत्र. 1/4/21
9. आचार्य काशकृत्स्न भी नियम्य-नियन्तृ भाव से जीव और ब्रह्म में भेदाभेद ही स्वीकार करते हैं। श्रीनिम्बार्कभाष्य में श्री श्रीनिवासाचार्य ने इसको स्वीकार करते हुए भी अपने भेदाभेद का निरूपण अंशांशी भाव से किया है, जिसमें किसी भी श्रुति का विरोध नहीं होता।
10. ब्र.सू. 3/4/44
11. ब्र. सू. 3/1
12. मीमांसा सूत्र 4-3-17, 6-7-35

13. ब्रह्मसूत्र 1/2/29, 1/2/32, 1/3/31, 1/4/18, 3/2/40, 3/4/2, 3/4/18, 3/4/40, 4/3/11, 4/4/5, 4/4/11
14. ब्र. सू. 1-2-31, 3-1-11, 4-3-6, 4-4-10
15. 3-1-3, 6-1-27, 8-3-6, 9-2-30
16. विशेष विवेचन के लिए देखें—Ghate-The Vedant pp. 179-184 (प्रकाशक—भाण्डारकर ओरियण्टल सीरीज, पूना) तथा स्वामी चिद्घनानन्द कृत ब्रह्मसूत्र भाष्य निर्णय (काशी)।
17. Index to Sanskrit Philosophy, P. 167 Written by Fitz Edward Hall
18. बृहदारण्यक शांकरभाष्य 1-1-1, पृ. 731
19. मकरी ननु दृष्टान्तो भिन्नाभिन्नत्वसिद्धिकृत्।
    सुरेश्वराचार्य — बृहदारण्यक वार्तिक (5-1-77)
20. वेदान्तदेशिक (1287-1369 ई.) ने अपने तत्त्वमुक्ताकलाप की टीका सर्वार्थसिद्धि (2-16) में इसे ब्रह्मदत्त का मत बतलाया है।
21. श्रीनिम्बार्क भाष्य, वेदान्त कौस्तुभ, ब्र.सू. 2/3/17
22. वेदान्त कौस्तुभ, ब्र.सू. 1/1/1
23. द्रष्टव्य— बृ.उ. वार्तिक पृ. 1357; नैष्कर्म्यसिद्धि टीका चन्द्रिका, 1-67
24. ब्र.सू. 10/1/1
25. वेदान्तपारिजात सौरभ ब्र.सू. 4/1/3
26. वेदान्तपारिजात सौरभ 4/1/16

चतुर्थ-अध्याय

अनन्तश्री-विभूषित निम्बार्कपीठस्थ वर्तमान जगद्गुरु श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज : व्यक्तित्व एवं कृतित्व परिचय

खण्ड अ — व्यक्तित्व-परिचय

(1) जन्म और शैशवावस्था

आपका जन्म विक्रम संवत् 1986 वैशाख शुक्ला प्रतिपदा, शुक्रवार, कृत्तिका नक्षत्र तदनुसार **दिनाङ्क 10 मई, सन् 1929 ईस्वी** में श्रीनिम्बार्कतीर्थ (परशुरामपुरी) सलेमाबाद-किशनगढ़, अजमेर (राजस्थान) निवासी परम-पावन गौड़ ब्राह्मण वंश के एक परिवार में प्रातः 5 बजकर 54 मिनट पर हुआ था।

आपकी माताश्री का नाम **श्रीस्वर्णलता (सोनीबाई)** और आपके पिता श्री का नाम **श्रीरामनाथ शर्मा गौड़** था। यह समस्त परिवार श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय परम्परानुयायी परम वैष्णव रहा था। प्राक्तन पुण्य कर्मानुसार किसी भाग्यशाली दम्पती को ही ऐसे महापुरुषों को जन्म देने एवं लालन-पालन का सुयोग प्राप्त होता है।

जिस वसुन्धरा पर ऐसे महापुरुषों का जन्म होता है, वह वसुन्धरा तथा उनका कुल (परिवार), माता-पिता एवं उनके स्वर्गस्थ पितृगण आदि परम धन्य हो जाते हैं। आपका बाल्यकालीन प्रचलित (बोलता) नाम **रतनलाल** था। यद्यपि कृत्तिका नक्षत्र के तृतीय चरण में जन्म होने के कारण आपका जन्म नाम '**उत्तमचन्द**' रखा गया था, तथापि नामकरण के दिन पीठ के व्यास पं. श्रीगोरधनलालजी के द्वारा यह बोलता नाम रतनलाल रखा जाने के कारण सब रतनलाल ही कहते थे। एक दिन की बात है—आपके जन्म-स्थान पर एक अज्ञात वैष्णव जटाधारी महात्मा भिक्षा-वृत्ति के बहाने आये। माताजी ने बालक रतनलाल को गोद में लिए हुये ही श्रद्धापूर्वक उठकर उन्हें भिक्षा दी। माताजी की गोद में हंसते हुये बालक रतन को देखकर प्रसन्न मुद्रा में महात्माजी ने कहा—माता! तुम्हारा यह पुत्र अत्यन्त तेजस्वी एक रतन है, आगे चलकर यह बालक एक अच्छे (उत्तम) पद को प्राप्त करेगा। इस शुभाशीर्वाद को श्रवणकर माताजी बड़ी प्रसन्न हुईं। महात्माजी पधार गये, तब उनके चले जाने के बाद माताजी को तुरन्त स्मरण हो आया कि हो न हो ये महात्मा श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के संस्थापक श्रीपरशुरामदेवाचार्य (श्रीस्वामी) जी महाराज ही होंगे, जो

इस बालक को आशीर्वाद देने हेतु पधारे हैं। माताजी ने पहिले यह बात बड़े-बूढ़ों से सुन भी रखी थी—इसी प्रकार इस पीठ में तथा श्रीपुष्करराज के परशुराम द्वारे में कई लोगों को श्रीस्वामीजी महाराज के दर्शन हुये हैं।

बालकपन से ही आपका लौकिक खेल-खिलौनों में मन न जाकर स्वाभाविक रूप से धार्मिक कार्यों जैसे भगवान् श्रीराधामाधव की मङ्गला, शृंगार एवं सायंकालीन आरती के दर्शन तथा स्तुति संकीर्तनादि में सम्मिलित होने तथा पुजारी श्रीरघुनाथदासजी से श्रीलड्डूगोपालजी की सेवा प्राप्त कर दैनिक सेवा करने आदि में ही प्रवृत्ति रहती थी। जिस प्रकार प्राची दिशा में सूर्योदय से पूर्व ही अरुणोदय-बेला में एक प्रकाशमयी लालिमा की दिव्य छटा दिखाई देने लगती है, ठीक उसी प्रकार—"होनहार विरवान के होत चीकने पात" वाली कहावत के अनुसार भगवत्कृपापात्र सद्गुण सम्पन्न महापुरुषों की भी उनके बालकपन में ही प्रतिभा झलकने लगती है। श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) के सुयोग्य विद्वान् ज्योतिषी पं. श्रीलादूरामजी व्यास द्वारा निर्मित आपकी जन्म-कुंडली का फलादेश जन्म से लेकर आज पर्यन्त ज्यों का त्यों मिलता हुआ आ रहा है।

(2) दीक्षा; युवराजपदाभिषेक एवं आरंभिकी शिक्षा

वैष्णव घराने में उत्पन्न हुये बालक घर में अपने माता-पिता एवं बन्धु-बान्धवों का शिष्टाचारपूर्वक रहन-सहन, आचार-विचार, पाठ-पूजन एवं धर्म-कर्मादि सभी नियमों को जैसा देखते हैं, उसी प्रकार उनके हृदय पटल पर वैसे ही संस्कार जम जाते हैं और फिर वे **"यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्"** के अनुसार बालकपन से लेकर आजीवन पर्यन्त अमिट बन जाते हैं। आपके बालकपन से ही आप में इन सदाचार सद्विचार सम्बन्धी भावों को देखकर अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु **निम्बार्काचार्यपीठाधिपति 'श्रीजी' श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्यजी महाराज** बड़े प्रसन्न होते थे।

हिन्दुसूर्य उदयपुर नरेश महाराणा श्रीभोपालसिंहजी के आह्वान और स्थलाधीश महन्त श्रीगंगादासजी की विनीत प्रार्थना पर विक्रम संवत् 1994 वैशाख शु. 3 को भूतपूर्व आचार्यश्री का उदयपुर में पदार्पण हुआ। आपकी समारोहपूर्ण यह एक आदर्श यात्रा हुई थी। पं. श्रीअमोलक रामजी, पं. श्रीगणपति शास्त्री, अ.भा. श्रीनिम्बार्क महासभा के मन्त्री श्रीनन्दकुमार शरणजी ब्रह्मचारी तथा श्रीदामोदर स्वामी की रसमण्डली एवं अधिकारी मनोहरदासजी आदि वृन्दावनस्थ परिकर भी साथ था। निकट भविष्य में आने वाले कुम्भ अवसर पर आचार्यश्री के वृन्दावन में पदार्पण का प्रस्ताव उदयपुर में ही पारित हुआ। महाराणा साहब ने इसका हार्दिक अनुमोदन किया और सेवा-शुश्रूषा की भी आपने अभ्यर्थना की। आचार्यश्री की अत्यन्त वृद्धावस्था थी, भावी उत्तराधिकारी मनोनीत नहीं किया गया था, जो मनोनीत किये गये थे, दैव उनके अनुकूल नहीं था, वस्तुतः वे इस पद के योग्य भी नहीं थे। सम्प्रदाय के विशिष्ट महन्तसन्त और सेवक भक्तगण इसलिए चिन्तित थे। आतुरतापूर्वक आचार्यश्री से निवेदन करते रहते थे, उस समय आचार्यपीठ के प्रबंधक

अधिकारी भी नहीं रहे, अतः कुम्भ अवसर पर वृन्दावन-यात्रा के सम्बन्ध में संकल्प-विकल्प चल रहा था। दैवयोग से निम्बार्क महासभा के कार्यकर्ता पं. श्रीब्रजवल्लभशरणजी आचार्यश्री के दर्शनार्थ मार्गशीर्ष मास में आचार्यपीठ पहुँचे, आचार्यश्री बड़े प्रसन्न हुए, विचार-विमर्श के अनन्तर आचार्यश्री के अनुरोधपूर्ण आदेश से आप ठहरे और वृन्दावन-यात्रा में आचार्यश्री के साथ ही रहे। कुम्भ पर्व सानन्द सम्पन्न हुआ। उसी समय सभी महन्तसन्तों के अनुरोध से आचार्यश्री ने पं. श्रीलाड़िलीशरणजी और श्रीनरहरिदासजी की अधिकारी पद पर नियुक्ति की और भावी उत्तराधिकारी भी सोच-समझकर जहाँ तक हो शीघ्र ही नियुक्त किया जाये, वह सर्वसम्मति से निश्चित हुआ।

दो वर्ष (वि. सं. 1995-96) अकालों की स्थिति और दोनों अधिकारियों के अनमेल के कारण सफलता नहीं मिल सकी। वि.सं. 1997 वैशाख शु. 1 को आचार्यश्री ने पं. श्रीब्रजवल्लभशरणजी को अधिकारी पद पर नियुक्त किया, उस समय उदयपुर महन्तजी के आदेशानुसार समय-समय पर वियोगी विश्वेश्वरजी भी आचार्यपीठ आते-जाते थे—विचार-विमर्श होता था, सभी ने 11 वर्षीय बालक चि. रतनलालजी को आचार्यपीठ के भावी उत्तराधिकारी पद की नियुक्ति का प्रस्ताव आचार्यश्री के समक्ष प्रस्तुत किया, इस प्रस्ताव से किशनगढ़ राज्य के दीवान पंचौली श्रीकेशरीसिंहजी भी सहमत थे। तब आपकी जन्म-कुंडली देख, प्रतिभासम्पन्न जान आपके माता-पिता से सत्परामर्श कर विक्रम सं. 1997 के आषाढ़ शुक्ला 2 (श्रीरथयात्रा) दिनाङ्क 7 जुलाई, सन् 1940 ईस्वी में उक्त आचार्यश्री ने आपको विधि-विधानपूर्वक पंच संस्कार युक्त विरक्त वैष्णवी-दीक्षा प्रदान कर युवराज पद पर नियुक्त कर दिया और आपकी प्रारंभिक संस्कृत शिक्षा आरंभ करा दी गई। उससे पूर्व आपने राजकीय स्थानीय प्राथमिकशाला में चतुर्थ कक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। कुछ समय तक आपने निम्बार्कतीर्थ के व्यास श्रीबजरंगलालजी से भी अध्ययन किया था, तत्पश्चात् आपके अध्यापनार्थ विरक्त वैष्णव ब्रह्मचारी पण्डित श्रीलाड़िलीशरणजी काव्यतीर्थ को नियुक्त किया था, जो कि बड़े श्री श्रीजी महाराज के भी कृपापात्र (शिष्य) थे।

(3) श्रीआचार्यपीठासीनत्व

विक्रम संवत् 2000 में अपने श्रीगुरुदेव के गोलोक धाम पधारने पर ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया, दिनांक 5 जून, सन् 1943 में 14 वर्ष की अवस्था में ही आप श्रीनिम्बार्काचार्य पीठासीन हुये। उस समय सर्वसम्मति से 'श्रीसर्वेश्वर संघ' नामक एक संस्था की स्थापना हुई और उसे किशनगढ़ स्टेट से रजिस्टर्ड भी करवा लिया गया। उसके सभापति चतुःसम्प्रदाय खालसा के श्रीमहन्त धनञ्जयदासजी महाराज वेदान्त न्यायभूषण तर्क-वितर्क तीर्थ (श्रीकाठियाजी) श्रीनिम्बार्काश्रम, श्रीधाम वृन्दावन और प्र. मन्त्री अधिकारी श्रीब्रजवल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य निर्वाचित हुये। आपकी नाबालिकी के कारण भूतपूर्व श्री 'श्रीजी' महाराज ने पीठप्रबन्धार्थ षड्वर्षीय एक ट्रस्ट भी नियुक्त कर दिया था—उसमें श्रीमहन्त श्रीगङ्गादासजी महाराज स्थलाधीश उदयपुर, श्रीमहन्त श्रीराधिकादासजी महाराज किशनगढ़-रैनवाल (जयपुर)

एवं जोधपुर राज्यान्तर्गत खेजड़ला ठिकाने के ठाकुर साहब श्री भैरोंसिंहजी आदि महानुभावों के नाम थे। इन ट्रस्टियों की देख-रेख में श्रीवियोगी विश्वेश्वरजी, श्रीनरहरिदासजी, श्रीब्रजवल्लभशरणजी तथा श्रीलाड़िलीशरणजी इन अधिकारी चतुष्टय महानुभावों एवं वयोवृद्ध पु. श्रीरघुनाथदासजी पु. श्रीसर्वेश्वरदासजी (चोथूबाबा) पं. श्रीदेवकीनन्दनजी, श्रीश्यामसुन्दरदासजी (बाबूजी) पुजारी श्रीबालकदासजी प्रभृति द्वारा पीठ का कार्य-सञ्चालन सुचारु रूप से चलने लगा।

(4) अध्ययनकाल एवं सारस्वत साधना

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के ट्रस्टी महानुभाव तथा अधिकारी-वर्ग के परस्पर सत्परामर्शानुसार आपने श्री **'श्रीजी की बड़ी कुञ्ज'** वृन्दावन में ही निवास करते हुये अध्ययन किया। तत्पश्चात् **श्रीमहन्त श्रीधनञ्जयदासजी महाराज (श्रीकाठियाजी)** की देख-रेख में मन्दिर **श्रीदावानल बिहारी** (दावानलकुण्ड-वृन्दावन) में निवास करते हुये पं. **श्रीलाड़िलीशरणजी**, अ. **श्रीब्रजबल्लभशरणजी**, **श्रीवैष्णवदासजी शास्त्री**, **श्रीरासबिहारीजी गोस्वामी** व्याकरण-साहित्याचार्य तथा **पं. श्रीसोहनलालजी चतुर्वेदी** व्याकरणाचार्य प्रभृति महानुभावों से व्याकरण, न्याय-वेदान्तादि का विधिवत् अध्ययन किया। श्रीआचार्यपीठासीन होने से पूर्व नौ वर्ष की अल्पायु में भी स्वयं के **पितृचरण श्रीरामनाथजी शर्मा गौड़ एवं पुजारी श्रीकिशनदासजी** के संरक्षकत्व में श्रीवृन्दावन धामस्थ राजकीय पाठशाला में द्वितीय कक्षा पर्यन्त अध्ययन किया। श्रीधामस्थ पड़रोना वाली कुञ्ज के निकट बजाजा की स्कूल में ही आप श्री का यह अध्ययन सम्पन्न हुआ था।

पीठासीन होने पर श्रीधाम में निवास करते समय अध्यनकाल में आपकी परिचर्या में वहाँ **महात्मा श्रीगोपालदासजी**, **पु. श्रीबालकदासजी**, **पु. श्रीदम्पतीशरण जी**, **महन्त श्रीरामकृष्णदासजी कामवन**, **राधावल्लभजी शर्मा**, **लाड़िलीशरणजी शर्मा**, **गोपालशरण पर्वतीय** तथा कुछ समय के लिए **बाबा गोमतीदासजी** भी थे।

इस प्रकार वि.सं. 2000 से वि.सं. 2004 पर्यन्त अर्थात् सन् 1943 से 1947 तक श्रीधाम वृन्दावन में ही आप श्री का अध्ययनकाल व्यतीत हुआ।

(5) कार्यक्षेत्र, उपलब्धियाँ एवं योगदान

कुरुक्षेत्र के साधु-सम्मेलन में पदार्पण

इस अध्ययनकाल की अवधि में ही विक्रम सम्वत् 2001 के श्रावण मास में कुरुक्षेत्र में होने वाले **सूर्य सहस्र रश्मि महायाग** के शुभावसर पर आयोजित **अखिल भारतीय साधु-सम्मेलन** में श्रीवृन्दावन से ही पधारकर सर्वसम्मति से आपने सभापति पद को समलंकृत किया। उस समय अनन्तश्री-समलंकृत जगद्गुरु **श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीय कृष्णतीर्थजी महाराज श्रीगोवर्धन पीठाधीश्वरपुरी** का भी पादार्पण हुआ था। इस प्रकार आपको अध्यक्ष पद पर देखकर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी ने अपने भाषण में सम्मानपूर्वक इन शब्दों में

कहा था कि—"**आज हमें बड़ा ही गौरव है कि हम अपने इस साधु समाज के बीच जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यजी को इस बाल्यकालीन किशोरावस्था में ही अध्यक्ष पद पर देख रहे हैं। आप लोग अवस्था पर कोई विचार न करें—तुलसी पत्र या शालिग्राम का श्रीविग्रह छोटा हो या बड़ा, किन्तु उसके महत्त्व में कोई अंतर नहीं आता।**"

इसी शुभावसर पर आपके शिविर में एक दिन विद्वत्सभा का आयोजन भी रखा गया था, जिसमें जयपुर महाराजा संस्कृत कॉलेज के अध्यक्ष **महामहोपाध्याय पं. श्रीगिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी पं. श्रीअखिलानन्दजी, कविरत्न अनूपशहर, शास्त्रार्थ महारथी पं. श्रीमाधवाचार्यजी दिल्ली** प्रभृति अनेक विद्वद्वृन्द सम्मिलित थे। सभा समारोह के अंत में समुपस्थित सभी विद्वज्जनों का श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ की ओर से (आप श्री द्वारा ही) प्रसाद, वस्त्र एवं मुद्रा (दक्षिणादि से) सत्कार किया गया।

सर्वप्रथम वृन्दावन के कुम्भ-पर्व पर पदार्पण

विक्रम सम्वत् 2006 के फाल्गुन मास में सर्वप्रथम आपका श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा सहित श्रीधाम वृन्दावन के कुम्भ पर्व पर पदार्पण हुआ था। श्रीबिहारीजी के बगीचे से बैण्डवाद्य, नौबत-निशान पट्टेबाजी, छड़ी, चंवर छत्र मसाल आदि के साथ भगवन्नाम सङ्कीर्तन करते हुए आपकी बड़े समारोहपूर्वक पदाति शोभा-यात्रा श्रीधाम के मुख्य-मुख्य स्थानों में होती हुई—यमुना पुलिन में, जहाँ शिविर लगा हुआ था, सभास्थल (पंडाल) में पहुँचकर एक सभा के रूप में परिणत हो गई। समागत विद्वानों के प्रवचन एवं आचार्यश्री के सदुपदेश श्रवण कर भावुक भक्तजन भाव-विभोर हो उठे थे।

प्रारम्भ से कुम्भ की समाप्ति पर्यन्त श्रीसर्वेश्वर प्रभु की पञ्चकालीन सेवा, अखण्ड हरिनाम सङ्कीर्तन, वैष्णव विद्वानों द्वारा श्रीगोपाल मन्त्रराज के जाप, श्रीगोपाल महायाग, पं. श्रीगोविन्ददास संत द्वारा श्रीमद्भागवत सप्ताह पारायण, वैष्णव (संत) सेवा और रात्रि में प्रतिदिन प्रवचन तथा रासलीलानुकरण इस शुभावसर पर एक दिन बाबा श्रीमाधुरीशरणजी के संयोजकत्व में कई एक रास मण्डलियों द्वारा महारास का भी बृहद् रूप में आयोजन था।

कानपुर सार्वभौम साधु-मण्डल के विशेषाधिवेशन पर आप श्री का पदार्पण

विक्रम सम्वत् 2009 के कार्तिक कृष्णपक्ष में स्वामी श्रीनारदानन्दजी एवं श्रीभास्करानन्दजी द्वारा आयोजित '**सार्वभौम साधु-मण्डल**' के विशेषाधिवेशन पर आप श्री का कानपुर पधारना हुआ। आपके साथ श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के तीनों अधिकारी-वृन्द तथा वृन्दावन से ब्रजविदेही चतुःसम्प्रदाय के श्रीमहन्त श्रीधनञ्जयदासजी काठिया तर्क-तर्कतीर्थ, अ.भा. श्रीनिम्बार्क महासभा के प्रधानमंत्री ब्रह्मचारी श्रीनन्दकुमारशरणजी, बाबा श्रीमाधुरीशरणजी वन-विहार, वर्तमान अली माधुरी कुटी (रमणरेती) श्रीठाकुरदासजी बिहारीजी का बगीचा आदि महानुभाव थे।

शोभा-यात्रा के शुभावसर पर वायुयान द्वारा की गई पुष्पवृष्टि को देखकर जन-समुदाय का मन हर्षोल्लसित हो रहा था। इस अवसर पर विशेष रूप से सुसज्जित राजकीय मार्ग में भक्तों द्वारा पद-पद पर नीराजन एवं ऋतु के अनुसार भावनापूर्ण सेवा सम्पादन की गई थी।

इस आयोजन में उत्तर-प्रदेश के **मुख्यमन्त्री श्रीगोविन्दवल्लभजी पंत** तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संचालक **गुरुजी श्रीगोलवलकरजी, स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज** एवं **रामायणी श्रीप्रेमदासजी** आदि महानुभावों का भी पधारना हुआ था।

इस पंचदिवसीय बृहत्सम्मेलन में एक दिन अर्थात् कार्तिक कृ. दशमी सोमवार के दिन आपश्री के सभापतित्व में समागत संत-महान्त एवं विद्वानों के प्रवचन तथा सभापति पद से दिये गये आप श्री के शुभाशीर्वादात्मक संदेश को श्रवण कर इस अनुपम सत्संग समारोह का सभी महानुभावों ने अपूर्व लाभ लिया।

मल्हारगढ़ के श्रीविष्णुयाग में पदार्पण

इसी वर्ष माघ शुक्लपक्ष में मल्हारगढ़ जि. गुना (म.प्र.) के **महन्त श्रीरामगोविन्ददासजी** द्वारा आयोजित **श्रीविष्णु-याग** के शुभावसर पर आपश्री का श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा सहित मल्हारगढ़ पधारना हुआ। इस आयोजन पर चारों ओर के संत-महन्त एवं मठाधीशों का शुभागमन हुआ था। यह विशाल याग अनेक याज्ञिक विद्वानों के साथ वाराणसी के सुप्रसिद्ध विद्वान् **पं. श्रीदौलतरामजी गौड़ वेदाचार्य के आचार्यत्व** में सुसम्पन्न हुआ था, जो ग्राम से दूर बाहर एकान्त स्थल परम पावन वेत्रवती के (पर्वतमालाओं से घिरे हुए सुरम्य) महुठा घाट पर आयोजित था। भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु की पञ्चकालीन सेवा के दर्शन, सभा मंच पर समागत संत-महन्त एवं विद्वानों के प्रवचन तथा आचार्यश्री के सदुपदेशों से परम प्रभावित हो दर्शकगण श्रोताओं की अपार भीड़ लगी रहती थी। एक ओर सुदूर तक साधु-संत, महात्मा एवं महन्त मठाधीशों के तम्बू, डेरा तथा रावटियाँ और भक्तों के आवस स्थान और दूसरी ओर व्यापारियों की दुकानों का दोनों ओर बाजार तथा रासलीला, रामलीला आदि का भी सुन्दर आयोजन था।

इस शुभावसर पर आप श्री के तत्त्वावधान में **ब्रह्मचारी श्रीनन्दकुमारशरणजी** के सुप्रयास से अ.भा. श्रीनिम्बार्क महासभा वृन्दावन एवं अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठस्थ '**श्रीसर्वेश्वर संघ**' का विशेषाधिवेशन भी सुसम्पन्न हुआ।

प्रयाग-कुम्भ में श्रीनिम्बार्क नगर की स्थापना

विक्रम सम्वत् 2010 के माघ मास में श्रीप्रयागराज के कुम्भ पर्व पर अधिकारी **श्रीवियोगीविश्वेश्वरजी,** अधिकारी **श्रीब्रजवल्लशरणजी** वेदान्ताचार्य तथा **अधिकारी श्रीनरहरिदासजी** श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के अधिकारीत्रय, ब्रह्मचारी श्रीनन्दकुमारशरणजी मन्त्री श्रीनिम्बार्क महासभा वृन्दावन तथा **बाबा श्रीमाधुरीशरणजी** आदि महानुभावों के पारस्परिक

आचार्यपीठाभिषेक के समय आचार्यश्री, ज्येष्ठ शुक्ला 2 द्वितीया, शनिवार,
वि.सं. 2000 आय – 14 वर्ष

श्रीवृन्दावन में अध्ययन के समय आचार्यश्री (वि.सं. 2001 से वि.सं. 2004)
आयु – 15 वर्ष

इन्दौर में भक्तजनों को उपदेश करते हुए आचार्यश्री, वि.सं. 2016
(आयु 31 वर्ष)

आचार्यश्री उद्बोधन करते हुए वि.सं. 2019 (आयु 34 वर्ष)
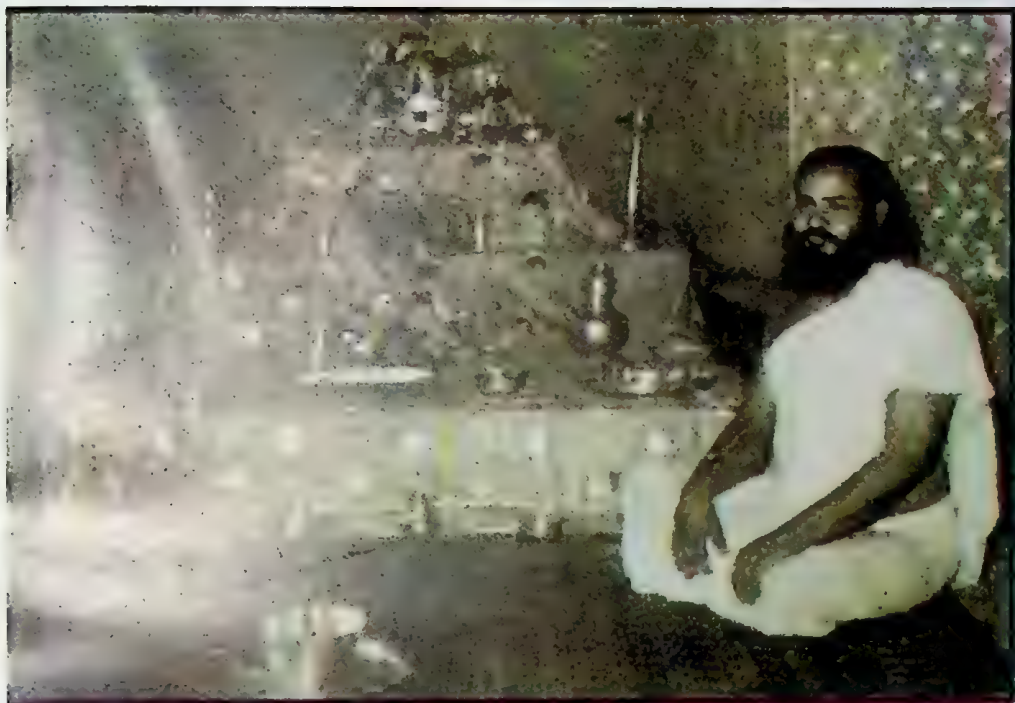
श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा में अभिरत आचार्यश्री, वि.सं. 2016 (आयु 31 वर्ष)

ज्येष्ठ शुक्ल 2 द्वितीया, शनिवार वि.सं. 2000 को आचार्यपीठासीन के अवसर पर विराजमान आचार्यश्री, आपके दाहिनी ओर स्थित महन्त श्रीराधिकादासजी रेनवाल, बायीं ओर ब्रजविदेही चतुः-सम्प्रदाय श्रीमहन्त श्रीधनञ्जयदासजी (काठियाबाबा) तर्कतर्कतीर्थश्रीवृन्दावन, खड़ी पंक्ति में दाहिनी ओर चँवर लिये म. श्री प्रेमदासजी (काठिया) वृन्दावन तथा बायीं ओर चँवर लिये अधिकारी

वर्तमान श्री 'श्रीजी' महाराज को साहित्य संस्थान टोडगढ़ द्वारा 'रजत जयन्ती उत्सव' समारोह उपलक्ष्य में प्रदत्त अभिनन्दन-पदक।

वर्तमान श्री 'श्रीजी' महाराज को केशव विद्यापीठ जामडोली, जयपुर द्वारा प्रदत्त अभिनन्दन-पदक।

वर्तमान श्री 'श्रीजी' महाराज को ब्रजमण्डल समाज द्वारा प्रदत्त अभिनन्दन-पदक।

'अतिविशिष्टविद्वत्सम्मान' समारोह में वर्तमान श्री 'श्रीजी' महाराज को राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर द्वारा प्रदत्त स्मृति-पदक।

उपरि-चित्र में वर्तमान निम्बार्क जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज, प्रोफेसर (डॉ.) श्री प्रभाकर शास्त्री को **निम्बार्कभूषण** की उपाधि प्रदान करते हुए।

उपरि-चित्र : वर्तमान निम्बार्क जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर के तत्त्वावधान में आयोजित ग्रन्थ विमोचन समारोह में ग्रन्थ का लोकार्पण करते हुए साथ में निदेशक डॉ. प्रभाकर शास्त्री, प्रोफेसर (संस्कृत)।

'भारत-कल्पतरु' ग्रन्थ का विमोचन करते हुए
महामहिम उपराष्ट्रपति महोदय
डॉ. श्रीशङ्करदयाल शर्मा

उपरि-चित्र : राजस्थान संस्कृत अकादमी के तत्त्वावधान में समायोजित **श्री निम्बार्कचरितम्** ग्रन्थ-विमोचन समारोह में वर्तमान निम्बार्क जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज, से पूर्व उप-मुख्यमन्त्री **श्री हरिशंकर भाभडा** शुभाशीर्वाद प्राप्त करते हुए।

उपरि-चित्र में वर्तमान निम्बार्क जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज, के सान्निध्य में समायोजित ग्रन्थ-विमोचन समारोह में माननीय **भैंरोसिंह जी शेखावत** पूर्व मुख्यमन्त्री, राजस्थान सरकार, **भारत-वीर-गौरव** ग्रन्थ का विमोचन करते हुए।

भारत-भारती-वैभवम्

ग्रन्थ-प्रणेता, अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज एवं ''भारत-भारती-वैभवम्'' ग्रन्थ का विमोचन करते हुए राजस्थान के मुख्यमंत्री माननीय श्रीहरिदेव जी जोशी

उपरि-चित्र में अखिल भारतीय निम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद में समायोजित स्वर्ण जयन्ती महोत्सव में विभिन्न लब्धप्रतिष्ठ धर्माचार्यों के मध्य श्री 'श्रीजी' महाराज।

उपरि-चित्र में वर्तमान निम्बार्क जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज, निम्बार्काचार्यपीठ के उत्तराधिकारी के रूप में श्रीश्यामशरण जी का युवराजपदाभिषेक करते हुए।

नववोन्मेषशालिनी प्रतिभा सम्पन्न, प्रत्युत्पन्नमति, भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत के सच्चे समुपासक, कुशाग्र-बुद्धि के धनी, अखिल भारतीय निम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) के युवराज पद पर पदासीन श्री **श्यामशरण जी**

पूर्ण सहयोग से "**श्रीनिम्बार्क-नगर**" की संस्थापना हुई। सरकार से भूमि ली गई, उसके चारों ओर परिधि (हदबन्दी) कर मध्य में विशाल सभा-स्थल (पंडाल) श्रीसर्वेश्वरजी का मन्दिर, आचार्य कक्ष, रसोई भण्डार, सन्त सेवासदन, चारों ओर समागत सन्त-महान्तों के आवास स्थान, अ.भा. श्रीनिम्बार्क महासभा का शिविर, औषधालय, वाचनालय तथा पूछ-ताछ प्रधान कार्यालय आदि-आदि का निर्माण हुआ। नल बिजली आदि सभी का प्रबन्ध कराया गया। तीसरी लाइन में चारों ओर सद्गृहस्थ भक्तजनों के आवास आदि का निर्माण हुआ था। श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा सहित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री श्रीजी महाराज का पदार्पण हुआ। भक्तप्रवर श्रीटण्डनजी के बंगले के लगभग त्रिवेणी संगम तक 3 मील की दूरी है, वहाँ से प्रातः 8 बजे से आचार्यश्री की भव्य शोभा-यात्रा पदाति प्रारम्भ होकर दिन के 11 बजे श्रीनिम्बार्क-नगर पहुँची। इस शोभा-यात्रा में—अनी अखाड़ों के श्रीमहन्त नागा अन्य कई स्थानों के सन्त-महान्त छड़ी, चँवर, छत्र, बैण्डवाद्य, नौबत, निशान, पट्टेबाजी आदि के साथ थे तथा सद्गृहस्थ दर्शनार्थी भक्तजनों द्वारा जयघोष की तुमुल ध्वनि की जा रही थी, शोभा-यात्रा का अद्भुत (परम मनोहर) श्रीनिम्बार्क-नगर में कई भक्तजनों ने पूरे माघ मास निवास करते हुए कल्पवास व्रत किया। प्रतिदिन श्रीसर्वेश्वर प्रभु की पंचकालीन सेवा, अखण्ड हरिनाम संकीर्तन, सन्त-सेवा, समागत सन्त-महन्त एवं विद्वानों के प्रवचन, आचार्यश्री के सदुपदेश, औषधालय-वाचनालय आदि पारमार्थिक सेवायें पूरे माघ मास चलकर यह आयोजन सानन्द सम्पन्न हुआ।

आचार्यश्री के शिविर का श्रीनिम्बार्क-नगर नाम इसी कुम्भ से प्रचलित हुआ। तत्पश्चात् प्रत्येक कुम्भ पर नगर-निर्माण होता आ रहा है, वह वि.सं. 2036 के नासिक कुम्भ तक इन नगरों की संख्या 16 तक हो चुकी थी। भक्तजनों की ओर से आर्थिक सहायता एवं रसोइयाँ खूब मात्रा में आती हैं। सभी कुम्भ पर्वों पर बराबर भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु एवं आचार्यश्री का पदार्पण होता है। प्रत्येक कुम्भ में श्रीनिम्बार्क-नगर के भव्य पण्डाल में प्रातः 6 बजे से लेकर रात्रि के 11 बजे तक मङ्गला, शृङ्गार, कथा, प्रवचन, नाम-संकीर्तन, रात्रि में रासलीला, रामलीला आदि विविध कार्यक्रम निरन्तर चलते ही रहते हैं। सहस्रों की संख्या में भक्तजनों की उपस्थिति रहती है। श्रीनिम्बार्क-नगर में आचार्यश्री के साथ कई एक संत-महन्त एवं सैंकडों भक्त-परिवार सुविधापूर्वक ठहरते हैं।

श्रीनिम्बार्क-नगर खालसा की महन्ताई भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु एवं आचार्यश्री के तत्त्वावधान में समस्त भेष की ओर से अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के अधिकारी श्रीवियोगी विश्वेश्वरजी को विगत नासिक कुम्भ के शुभावसर पर प्रदान की गई थी। एक युग अर्थात् 12 वर्ष तक आपने सुचारु रूप से श्रीनिम्बार्क-नगर का कार्य-संचालन किया, किन्तु 1974 के प्रयाग कुम्भ में उनके अस्वस्थ हो जाने पर एवं वृद्धावस्था में अधिक दौड़-धूप न होने के कारण आचार्यश्री ने सेवाभावी भक्तों की एक '**कुम्भ प्रबन्ध समिति**' बना दी है। इसी कुम्भ प्रबन्ध समिति के द्वारा अब सब कार्य-संचालन हो रहा है और भविष्य में होता रहेगा।

चित्रकूट भक्ति-सम्मेलन में पदार्पण

विक्रम संवत् 2012 के आश्विन मास के शुक्लपक्ष में **सन्त श्रीकृपालुदासजी** द्वारा आयोजित भक्ति-सम्मेलन में आप श्री का श्रीचित्रकूट भी पदार्पण हुआ। वहाँ श्रीमन्दाकिनी के परम पावन तट पर संस्थित तुमसरवाली धर्मशाला में विराजना हुआ। श्रीसर्वेश्वर प्रभु का अभिषेक-दर्शन तथा पंचकालीन सेवा में दर्शनार्थी भक्तजनों की प्रतिदिन अपार भीड़ लगी ही रहती थी।

इस बृहत्सम्मेलन में एक दिवस आश्विन शुक्ला पूर्णिमा दि. 31-10 सन् 1955 को श्री शुभाशीर्वादात्मक शुभ-सन्देशों से समुपस्थित सभी भक्तजनों को अनुपम मार्गदर्शन मिला।

भक्ति-सम्मेलन सानन्द सम्पन्न होने के पश्चात् श्रीकामगिरि परिक्रमा के अनन्तर श्रीनिम्बार्कीय चोपड़ा स्थान से आपश्री ने अपने परिकर तथा अनेक सन्तों के साथ पदाति यात्रा प्रारम्भ कर स्फटिक-शिला, अनुसूया, गुप्त गोदावरी, हनुमानधारा तथा भरतकूप आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा सुसम्पन्न की। आपके साथ इस यात्रा में पीठ के **तीनों अधिकारी** एवं **बाबा श्रीमाधुरीशरणजी** प्रभृति अनेक महानुभाव भी सम्मिलित थे।

श्रीनिम्बार्काचार्य स्पेशल ट्रेन द्वारा तीन धाम सप्तपुरी की यात्रा

विक्रम संवत् 2013 में भक्तप्रवर श्रीरामनिवासजी गोयल (रेलवे दलाल एण्ड क्लेम्स एजेण्ट) माल गोदाम अजमेर के संयोजकत्व में आपश्री ने श्रीनिम्बार्काचार्य स्पेशल ट्रेन द्वारा तीन धाम सप्तपुरी की यात्रा की। यह यात्रा भाद्रपद शुक्ला दशमी को अजमेर से प्रस्थान कर मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष में लौटकर श्रीपुष्करराज के स्नान के अनन्तर अजमेर में आकर सानन्द सम्पन्न हुई। इस यात्रा की यह विशेषता थी कि श्राद्ध पक्ष में गया श्राद्ध, मैसूर का सुप्रसिद्ध दशहरा, रामेश्वर में शरद्-पूर्णिमा, बम्बई की दीपमालिका-अन्नकूट और उदयपुर के स्थल में श्रीनिम्बार्क-जयन्ती मनाई गई।

तीन धाम-सप्तपुरी एवं मार्ग में आनेवाले सभी स्थलों का परिचय, माहात्म्य, कथा, सत्संग, भगवन्नाम संकीर्तन, सन्त-सेवा आदि इस स्पेशल ट्रेन की विशेषता थी। आप श्री की अधिकारी पं. श्रीब्रजवल्लभशरणजी ने आगरा में अगवानी को, रात्रि में आगरा बाजार में आपश्री के सदुपदेश श्रवण का आयोजन नागरिकों ने किया। प्रबन्धाधिकारी श्रीवियोगी विश्वेश्वरजी, अधिकारी श्रीनरहरिदासजी, पुजारी, रसोइया, भण्डारी, विद्वानों में पं. श्रीसुरति झा, पं. श्रीगोविन्ददास सन्त, श्रीरंगीलीशरणजी वेदान्ताचार्य, छड़ीदार आदि एवं साथ में किशनगढ़-रैनवाल के महन्त श्रीहरिवल्लभदासजी महाराज तथा वृन्दावन की संकीर्तन मण्डली एवं अनेक महान्त, सन्त, महात्मा थे। अजमेर, ब्यावर, किशनगढ़, रैनवाल और निम्बार्काचार्यपीठ के आस-पास के भक्त परिवारों से पूरी स्पेशल ट्रेन भरी हुई थी। सुख-शांतिपूर्वक यात्रा सानन्द सम्पन्न हुई।

विक्रम सम्वत् 2014 में आचार्यश्री का चला नगरस्थ श्रीगोपाल मन्दिर में पदार्पण हुआ। यह स्थान विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के अंत और सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज के शिष्य श्रीपीताम्बर देवाचार्यजी ने संस्थापित किया था। यहाँ चार सौ वर्षों में अच्छे-अच्छे सिद्ध सन्त हो चुके हैं। श्रीपीताम्बरदेवजी से ग्यारहवीं पीठिका में बजरङ्गदास (अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के अधिकारी श्रीब्रजवल्लभशरणजी) हैं। आपने 2014 ज्येष्ठ शुक्ला 9 को परम गुरु महन्त श्रीब्रह्मदासजी महाराज का मेला (भण्डारा) महोत्सव किया, उसमें आचार्यश्री का समारोहपूर्वक पदार्पण हुआ। अधिकारीजी को महन्ताई प्रदान की गई। थोड़े ही दिनों बाद नीम का थाना (श्रीनिम्बार्क स्थान) की बड़ी जमात के महन्तजी का परमधाम-वास हो जाने पर उनके स्मृति-महोत्सव पर भी बड़ी जमात में पदार्पण हुआ। इधर आपश्री की ये दोनों प्रथम यात्रायें थीं।

विक्रम सम्वत् 2016 से 2021 तक महाराजश्री का भारत के कई प्रदेशों में भ्रमण हुआ।

प्रयाग-कुम्भ में होने वाले विश्व हिन्दू परिषद् के महाधिवेशन में आपश्री का पदार्पण

विक्रम सम्वत् 2022 के माघ मास में होने वाले श्रीप्रयागराज के कुम्भावसर पर आयोजित विश्व हिन्दू परिषद् के महाधिवेशन में माघ शुक्ला प्रतिपदा, शनिवार दि. 22 जनवरी, सन् 1966 के दिन इस महाधिवेशन का निमन्त्रण आने पर आपश्री का प्रयाग कुम्भ स्थित श्रीनिम्बार्क-नगर से विश्व-हिन्दू-परिषद् के महाधिवेशन में पधारना हुआ। इस महाधिवेशन में प्रायः सभी मठों के शङ्कराचार्य और वैष्णवाचार्य तथा कई एक विशिष्टाति-विशिष्ट विद्वानों का पधारना हुआ था, महाराणा साहब उदयपुर भी पधारे थे। धर्म सम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज भी पधारे थे। राजस्थान-विश्व-हिन्दू-परिषद् के मन्त्री श्रीद्वारकाप्रसादजी पाटोदिया भी थे। धर्माचार्यों के सदुपदेश तथा विद्वानों के प्रवचनों से सभी समुपस्थित जन-समुदाय ने मार्गदर्शन प्राप्त किया।

7 नवम्बर, 1966 के गोरक्षा आन्दोलन हेतु दिल्ली में पदार्पण

वि.सं. 2023 के कार्तिक मास "गोरक्षा महाभियान समिति" दिल्ली द्वारा आयोजित गोरक्षा आन्दोलन दिल्ली में भी आपश्री का कार्तिक कृष्णा 9 सोमवार, दिनाङ्क 7 नवम्बर, सन् 1966 को सैंकड़ों सन्तों को साथ लेकर दिल्ली पदार्पण हुआ।

इसके पूर्व आपने अपने क्षेत्र, जैसे—किशनगढ़, अजमेर, ब्यावर तथा जयपुर आदि कई एक नगरों में गोरक्षा हेतु भ्रमण कर प्रचुर प्रचार-प्रसार भी किया।

इसी प्रकार अपने ही एक स्व-साम्प्रदायिक स्थान मालाधारी अखाड़ा, वृन्दावन के महन्त श्रीकमलदासजी भी वहाँ से कई एक महात्माओं को साथ लेकर दिल्ली आये और

चित्रकूट भक्ति-सम्मेलन में पदार्पण

विक्रम संवत् 2012 के आश्विन मास के शुक्लपक्ष में **सन्त श्रीकृपालुदासजी** द्वारा आयोजित भक्ति-सम्मेलन में आप श्री का श्रीचित्रकूट भी पदार्पण हुआ। वहाँ श्रीमन्दाकिनी के परम पावन तट पर संस्थित तुमसरवाली धर्मशाला में विराजना हुआ। श्रीसर्वेश्वर प्रभु का अभिषेक-दर्शन तथा पंचकालीन सेवा में दर्शनार्थी भक्तजनों की प्रतिदिन अपार भीड़ लगी ही रहती थी।

इस बृहत्सम्मेलन में एक दिवस आश्विन शुक्ला पूर्णिमा दि. 31-10 सन् 1955 को श्री शुभाशीर्वादात्मक शुभ-सन्देशों से समुपस्थित सभी भक्तजनों को अनुपम मार्गदर्शन मिला।

भक्ति-सम्मेलन सानन्द सम्पन्न होने के पश्चात् श्रीकामगिरि परिक्रमा के अनन्तर श्रीनिम्बार्कीय चोपड़ा स्थान से आपश्री ने अपने परिकर तथा अनेक सन्तों के साथ पदाति यात्रा प्रारम्भ कर स्फटिक-शिला, अनुसूया, गुप्त गोदावरी, हनुमानधारा तथा भरतकूप आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा सुसम्पन्न की। आपके साथ इस यात्रा में पीठ के **तीनों अधिकारी** एवं **बाबा श्रीमाधुरीशरणजी** प्रभृति अनेक महानुभाव भी सम्मिलित थे।

श्रीनिम्बार्काचार्य स्पेशल ट्रेन द्वारा तीन धाम सप्तपुरी की यात्रा

विक्रम संवत् 2013 में भक्तप्रवर श्रीरामनिवासजी गोयल (रेलवे दलाल एण्ड क्लेम्स एजेण्ट) माल गोदाम अजमेर के संयोजकत्व में आपश्री ने श्रीनिम्बार्काचार्य स्पेशल ट्रेन द्वारा तीन धाम सप्तपुरी की यात्रा की। यह यात्रा भाद्रपद शुक्ला दशमी को अजमेर से प्रस्थान कर मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष में लौटकर श्रीपुष्करराज के स्नान के अनन्तर अजमेर में आकर सानन्द सम्पन्न हुई। इस यात्रा की यह विशेषता थी कि श्राद्ध पक्ष में गया श्राद्ध, मैसूर का सुप्रसिद्ध दशहरा, रामेश्वर में शरद्-पूर्णिमा, बम्बई की दीपमालिका-अन्नकूट और उदयपुर के स्थल में श्रीनिम्बार्क-जयन्ती मनाई गई।

तीन धाम-सप्तपुरी एवं मार्ग में आनेवाले सभी स्थलों का परिचय, माहात्म्य, कथा, सत्संग, भगवन्नाम संकीर्तन, सन्त-सेवा आदि इस स्पेशल ट्रेन की विशेषता थी। आप श्री की अधिकारी पं. श्रीब्रजवल्लभशरणजी ने आगरा में अगवानी को, रात्रि में आगरा बाजार में आपश्री के सदुपदेश श्रवण का आयोजन नागरिकों ने किया। प्रबन्धाधिकारी श्रीवियोगी विश्वेश्वरजी, अधिकारी श्रीनरहरिदासजी, पुजारी, रसोइया, भण्डारी, विद्वानों में पं. श्रीसुरति झा, पं. श्रीगोविन्ददास सन्त, श्रीरंगीलीशरणजी वेदान्ताचार्य, छड़ीदार आदि एवं साथ में किशनगढ़-रैनवाल के महन्त श्रीहरिवल्लभदासजी महाराज तथा वृन्दावन की संकीर्तन मण्डली एवं अनेक महान्त, सन्त, महात्मा थे। अजमेर, ब्यावर, किशनगढ़, रैनवाल और निम्बार्काचार्यपीठ के आस-पास के भक्त परिवारों से पूरी स्पेशल ट्रेन भरी हुई थी। सुख-शांतिपूर्वक यात्रा सानन्द सम्पन्न हुई।

विक्रम सम्वत् 2014 में आचार्यश्री का चला नगरस्थ श्रीगोपाल मन्दिर में पदार्पण हुआ। यह स्थान विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के अंत और सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज के शिष्य श्रीपीताम्बर देवाचार्यजी ने संस्थापित किया था। यहाँ चार सौ वर्षों में अच्छे-अच्छे सिद्ध सन्त हो चुके हैं। श्रीपीताम्बरदेवजी से ग्यारहवीं पीठिका में बजरङ्गदास (अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के अधिकारी श्रीब्रजवल्लभशरणजी) हैं। आपने 2014 ज्येष्ठ शुक्ला 9 को परम गुरु महन्त श्रीब्रह्मदासजी महाराज का मेला (भण्डारा) महोत्सव किया, उसमें आचार्यश्री का समारोहपूर्वक पदार्पण हुआ। अधिकारीजी को महन्ताई प्रदान की गई। थोड़े ही दिनों बाद नीम का थाना (श्रीनिम्बार्क स्थान) की बड़ी जमात के महन्तजी का परमधाम-वास हो जाने पर उनके स्मृति-महोत्सव पर भी बड़ी जमात में पदार्पण हुआ। इधर आपश्री की ये दोनों प्रथम यात्रायें थीं।

विक्रम सम्वत् 2016 से 2021 तक महाराजश्री का भारत के कई प्रदेशों में भ्रमण हुआ।

प्रयाग-कुम्भ में होने वाले विश्व हिन्दू परिषद् के महाधिवेशन में आपश्री का पदार्पण

विक्रम सम्वत् 2022 के माघ मास में होने वाले श्रीप्रयागराज के कुम्भावसर पर आयोजित विश्व हिन्दू परिषद् के महाधिवेशन में माघ शुक्ला प्रतिपदा, शनिवार दि. 22 जनवरी, सन् 1966 के दिन इस महाधिवेशन का निमन्त्रण आने पर आपश्री का प्रयाग कुम्भ स्थित श्रीनिम्बार्क-नगर से विश्व-हिन्दू-परिषद् के महाधिवेशन में पधारना हुआ। इस महाधिवेशन में प्रायः सभी मठों के शङ्कराचार्य और वैष्णवाचार्य तथा कई एक विशिष्टाति-विशिष्ट विद्वानों का पधारना हुआ था, महाराणा साहब उदयपुर भी पधारे थे। धर्म सम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज भी पधारे थे। राजस्थान-विश्व-हिन्दू-परिषद् के मन्त्री श्रीद्वारकाप्रसादजी पाटोदिया भी थे। धर्माचार्यों के सदुपदेश तथा विद्वानों के प्रवचनों से सभी समुपस्थित जन-समुदाय ने मार्गदर्शन प्राप्त किया।

7 नवम्बर, 1966 के गोरक्षा आन्दोलन हेतु दिल्ली में पदार्पण

वि.सं. 2023 के कार्तिक मास "गोरक्षा महाभियान समिति" दिल्ली द्वारा आयोजित गोरक्षा आन्दोलन दिल्ली में भी आपश्री का कार्तिक कृष्णा 9 सोमवार, दिनाङ्क 7 नवम्बर, सन् 1966 को सैंकड़ों सन्तों को साथ लेकर दिल्ली पदार्पण हुआ।

इसके पूर्व आपने अपने क्षेत्र, जैसे—किशनगढ़, अजमेर, ब्यावर तथा जयपुर आदि कई एक नगरों में गोरक्षा हेतु भ्रमण कर प्रचुर प्रचार-प्रसार भी किया।

इसी प्रकार अपने ही एक स्व-साम्प्रदायिक स्थान मालाधारी अखाड़ा, वृन्दावन के महन्त श्रीकमलदासजी भी वहाँ से कई एक महात्माओं को साथ लेकर दिल्ली आये और

उन्होंने अपने प्राणों का भी बलिदान कर दिया तथा सदा के लिए अपना नाम अमर कर गये।

इस आन्दोलन में सभी मत-मतान्तरों को विस्मृत कर गो-प्रेमी भक्तजन, लगभग पन्द्रह लाख की संख्या में उपस्थित होकर "न भूतो न भविष्यति" वाली कहावत को चरितार्थ कर रहे थे।

गोरक्षार्थ किये जाने वाले अनशन व्रत पर गम्भीर स्थिति होने पर जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीनिरंजनदेव तीर्थजी से मिलने हेतु श्रीगोवर्धनपीठ, पुरी में आपश्री का पदार्पण एक महत्त्वपूर्ण घटना रही है।

7 नवम्बर, सन् 1966 में दिल्ली के गोरक्षा आन्दोलन होने के पश्चात् श्रीगोवर्धनपुरी पीठाधीश्वर अनन्तश्रीसमलंकृत जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीस्वामी निरञ्जनदेवतीर्थजी ने गोरक्षार्थ अनशन व्रत ले लिया था, उसके 21वें ही दिन पश्चात् उनकी गम्भीर स्थिति के समाचार श्रवण कर आपश्री का उनसे मिलने हेतु पुरी पधारना हुआ। मार्गशीर्ष कृ. सोमवती अमावस्या सं. 2023 दिनाङ्क, 12 दिसम्बर को आप उनसे मिले और कुशल मंगल समाचार पूछने पर जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्यजी ने महाराजश्री से इतनी दूर पधारने के कष्ट का भी विनम्र उल्लेख किया था।

आपश्री के साथ उस समय **पं. श्रीमुरलीधरजी शास्त्री** और **नवलकिशोरजी व्यास** तथा **महात्मा श्रीशुकदेवदासजी सङ्गीताचार्य** भी थे।

पुरी से लौटते हुये सम्बलपुर (उड़ीसा) में संवाददाताओं की एक गोष्ठी में आपने गोरक्षा सम्बन्धी विचार व्यक्त किये तथा यहाँ से नागपुर, अमरावती, आकोला, खाँमगाँव, धूलिया, सैन्धवा एवं इन्दौर आदि विशिष्ट नगरों में गोरक्षा पर ही जन-समुदाय को प्रेरणा देते हुए आपश्री का श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ लौटना हुआ। यहाँ से पुनः श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी के अनशनकाल में उनसे गोरक्षा सम्बन्धी विशेष विचार-विमर्श करने हेतु आपश्री का श्रीधाम वृन्दावन पधारना हुआ।

ब्यावर के गोरक्षा सम्मेलन में आपश्री का पदार्पण

विक्रम सम्वत् 2025 सन् 1968 में श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर पुरी के शङ्कराचार्य जगद्गुरु श्रीस्वामी निरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज ने ब्यावर (राजस्थान) में ही चातुर्मास्य किया था।

व्रत समाप्ति पर आश्विन मास में **गोरक्षा सम्मेलन** का विशाल आयोजन भी रखा गया था, जिसमें **धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज, शारदा पीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीअभिनव सच्चिदानन्दतीर्थजी महाराज, ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज तथा अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ से जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री श्रीजी श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज (आपश्री)** का पधारना हुआ था।

इन धर्माचार्यों के अतिरिक्त कई एक विशिष्ट विद्वान् तथा धर्मसंघ के पदाधिकारी एवं कार्यकर्ताओं की भी उपस्थिति थी। आश्विन कृ. 4 मंगलवार, 10 सितम्बर, 1968 को सभी धर्माचार्यों की विशाल शोभा-यात्रा का आयोजन परम दर्शनीय था।

ब्रज चौरासी कोसीय पदयात्रा

विक्रम सम्वत् 2026 तदनुसार ईस्वी सन् 1970 फाल्गुन-चैत्र मास में आपने तीन सौ से अधिक विरक्त वैष्णव सन्तों तथा लगभग तीन हजार सद्गृहस्थ भक्तों को साथ लेकर श्रीब्रज चौरासी कोसीय पदाति ब्रज-यात्रा शास्त्रीय विधान से सम्पन्न की। यह यात्रा श्रीवृन्दावन वंशीवट से प्रारम्भ होकर पुनः वहीं आकर सानन्द सम्पन्न हुई। यात्रा करने वाले भक्तों का कहना था कि—"न भूतो न भविष्यति" वाली कहावत को चरितार्थ करने वाली ऐसी पदाति ब्रज-यात्रा हमने तो नहीं देखी। नगर-नगर ग्राम-ग्राम में भक्तों का उत्साह, प्रेम तथा उनके द्वारा सम्पन्न स्वागत समारोह शोभा-यात्रा आदि का अपूर्व दृश्य था।

अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ से प्रतिपक्ष प्रकाशित होने वाले "श्रीनिम्बार्क" के वर्ष 9 का विशेषाङ्क दर्शनीय है।

धर्मसंघ द्वारा आयोजित विशेषाधिवेशनों पर आचार्यश्री का पदार्पण

धर्मसंघ द्वारा आयोजित महाधिवेशनों पर जैसे—श्रीगङ्गानगर, मेरठ, आकोला के वेद-सम्मेलन, दक्षिण हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश) के सर्ववेद शाखा सम्मेलन, धर्मसंघ सम्मेलन जमशेदपुर आदि-आदि कई स्थानों में आपश्री का पदार्पण हुआ।

जगद्गुरु श्रीहरिव्यासदेवाचार्य षष्ठ शताब्दी महोत्सव के उपलक्ष में अखिल-भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ में अ.भा. विराट् श्रीसनातनधर्म सम्मेलन का अभूतपूर्व आयोजन

विक्रम सम्वत् 2031 के चैत्र कृ. तृतीया रविवार से चैत्र कृ. सप्तमी गुरुवार तदनुसार दि. 30 मार्च से दि. 3 अप्रेल, सन् 1975 पर्यन्त अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, सलेमाबाद (अजमेर) राजस्थान में आपश्री के तत्त्वावधान में ही अ.भा. विराट् सनातन धर्म-सम्मेलन का पञ्चदिवसीय बृहद्आयोजन अनेक धार्मिक कार्यक्रमों के साथ बड़े समारोहपूर्वक सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस सम्मेलनान्तर्गत **सुदर्शन महायाग, वैष्णव धर्म सम्मेलन, हिन्दू संस्कृति सम्मेलन, शिक्षा सम्मेलन, देवस्थान सुरक्षा सम्मेलन, गोरक्षा सम्मेलन और महिला सम्मेलन एवं नवनिर्मित भव्य गोशाला का उद्घाटन, ग्रंथ-विमोचन** प्रभृति धार्मिक समारोह सम्पन्न हुए।

इस शुभावसर पर चारों पीठों के जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य, चतुःसम्प्रदाय पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीवैष्णवाचार्य, विभिन्न सम्प्रदायों के धर्माचार्य और धर्म-सम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज एवं अनेक सन्त-महन्त, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, अनी अखाड़ों के श्रीमहन्त तथा

विश्व-विख्यात विद्वान् और विदुषी महिलायें तथा अनेक धार्मिक-सांस्कृतिक कविगण भी पधारे थे।

पंच दिवसीय इस परम पुनीत कुम्भ सदृश महान् पर्व पर समस्त धर्माचार्यों का एकत्रित हो एक मञ्च पर विचार-विनिमय करने का भारत में यह पहला ही दृश्य था।

अतएव "**न भूतो न भविष्यति**" वाली सदुक्ति को चरितार्थ करने वाला यह पंच दिवसीय अ.भा. विराट् सनातन धर्म सम्मेलन अपने ढङ्ग का एक निराला ही था।

उक्त सम्मेलन में **राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्रीहरदेव जोशी, राजमाता सिंधिया ग्वालियर, महाराणा साहब उदयपुर तथा नेपाल नरेश के प्रतिनिधित्व में उनके नायब बड़े राजगुरु पं. श्रीजूनानाथजी** आदि-आदि महानुभाव भी पधारे थे।

भारत भ्रमण और धर्म प्रचार-प्रसार

आपने पीठासीन होने के पश्चात् (वि.सं. 2000 के बाद) 14 वर्ष की अवस्था से ही निज आराध्यदेव श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा एवं परिकर सहित देश के विभिन्न भागों में धर्मयात्रायें कीं। जैसे—जयपुर, जोधपुर, अजमेर-पुष्कर, भीलवाड़ा, उदयपुर, इन्दौर, पूना, बम्बई, सोलापुर, इचलकरंजी, गोवा, मद्रास, हैदराबाद, आकोला, नागपुर, अहमदाबाद, दिल्ली, हरिद्वार, इलाहाबाद, अयोध्या, बनारस, कलकत्ता, पुरी, उज्जैन, द्वारका, मथुरा-वृन्दावन व कोटा प्रभृति इनके आस-पास के छोटे-बड़े कई स्थानों में अनेक बार भ्रमण कर अपने दिव्य आदेशों-सन्देशों द्वारा भारतीय संस्कृति तथा वैष्णव धर्म की जागृति की है।

इस प्रकार इस दीर्घकालीन 60 वर्ष के परिभ्रमण में सहस्रों ही की संख्या में धर्मप्राण जनता ने आपसे दीक्षा-शिक्षा ग्रहण कर आपके दिव्य सदुपदेशों द्वारा अनुपम लाभ सम्प्राप्त किया है।

श्रीनिम्बार्क-दर्शन एवं साम्प्रदायिक सिद्धान्त व उपासना संबंधी प्रचार-प्रसार भी आपके आचार्यत्व में विशिष्ट व्यवस्था के साथ सुचारु रूप से होता रहा है। निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) की जन्माष्टमी-नन्द महोत्सव (ऐतिहासिक-धार्मिक बृहद्मेला), निम्बार्क सत्संग भवन के श्रीराधासर्वेश्वर मन्दिर (मदनगंज) की श्रीराधाष्टमी, श्रीपरशुरामद्वारा (श्रीपुष्करराज) की श्रीनिम्बार्क-जयन्ती, श्रीनिम्बार्क कोट (अजमेर) की श्रीमद्‌भागवत जयन्ती आपकी सत्प्रेरणा का ही सत्फल है।

इसी प्रकार श्री श्रीजी मन्दिर (श्री श्रीजी महाराज की बड़ी कुञ्ज) प्रताप बाजार वृन्दावन में दैनिक सत्संग और श्रावण शुक्लपक्ष में आपश्री के तत्त्वावधान में झूलनोत्सव बड़े समारोहपूर्वक सुसम्पन्न हो रहे हैं। आप श्री के कृपा प्रसाद से ही अब '**श्रीसर्वेश्वर**' शोधपूर्ण मासिक-पत्र वृन्दावन से तथा '**श्रीनिम्बार्क**' पाक्षिक-पत्र श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) से विधिवत् प्रकाशित हो रहे हैं। इन दोनों ही पत्रों ने निम्बार्क साहित्य शोध का अभूतपूर्व कार्य किया है। **श्रीसर्वेश्वर** मासिक-पत्र के विशेषाङ्क रूप में—**श्रीनिम्बार्क-अङ्क, श्रीवृन्दावनाङ्क, श्रीयुगल-शतक, श्रीमहावाणी, रसोपासनाअङ्क, श्रीनागरिदास वाणी अङ्क, ब्रजलीला-अङ्क** आदि

अनेक अङ्क और '**श्रीनिम्बार्क**' पाक्षिक-पत्र के '**श्रीसर्वेश्वर-अङ्क**' श्रीब्रजयात्रा-अङ्क आदि तथा '**श्रीनिम्बार्क ग्रन्थमाला**' प्रभृति साहित्य सम्पादनादि से सम्प्रदाय को महती प्रसिद्धि मिली है। निर्माण की दृष्टि से भी आपश्री के कार्यकाल में बहुत काम हुए हैं जैसे—दोनों विद्यालयों के भवन, गोशाला, श्रीसर्वेश्वर उद्यान (बगीचा) पूरे मन्दिर का जीर्णोद्धार, श्रीस्वामीजी महाराज की तपःस्थली का नया प्रारूप, आचार्य-पंचायतन स्थापना, श्रीराधामाधवजी का चौक, आचार्य कक्ष, छात्रावास आदि कई निर्माण कार्य हुए हैं। इसके अतिरिक्त श्रीविजयगोपालजी के मन्दिर का जीर्णोद्धार, विद्युत प्रकाश, कुओं पर बिजली की मशीन फिटिंग, ट्रेक्टर, मोटर तथा खातोली ग्राम के फाँटे से लेकर श्रीनिम्बार्कतीर्थ तक पक्की डामर रोड एवं दूरभाष तथा पोस्ट-ऑफिस आदि-आदि अनेक कार्य आपश्री के कार्यकाल में सुसम्पन्न हुए हैं।

आचार्यपीठ से सम्बन्धित अन्य स्थानों पर भी जैसे—**मदनगंज का भव्य श्रीराधासर्वेश्वर मन्दिर**, अजमेर का **श्रीनिम्बार्क कोट**, पुष्करराज के **श्रीपरशुरामद्वारे** का नवीन रूप, **झींटिया** स्थान में **श्रीगोपाल मन्दिर** का नव-निर्माण एवं कुओं पर बिजली फिटिंग और श्रीवृन्दावन के कई कुञ्जों का जीर्णोद्धार आप श्री के समय में ही हुआ है। ब्रजमण्डल स्थित गिरिराज श्रीगोवर्धन की उपत्यका में श्रीनिम्बग्राम की सुप्रसिद्ध अति प्राचीन श्रीनिम्बार्क तपःस्थली का जीर्णोद्धार एवं विशालतम नव-मन्दिर निर्माण की महत्त्वपूर्ण योजना भी आपश्री के तत्त्वावधान में प्रारम्भ हुई है। श्रीसर्वेश्वर प्रेस श्रीवृन्दावन एवं श्रीनिम्बार्क मुद्रणालय, निम्बार्कतीर्थ सलेमाबाद (अजमेर) इन दोनों प्रेसों की स्थापना भी आपश्री के समय में ही हुई है।

श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय एवं **श्रीनिम्बार्क दर्शन विद्यालय श्रीनिम्बार्कतीर्थ** सलेमाबाद (अजमेर) की विशिष्ट आदर्श शिक्षण संस्थायें हैं—जहाँ प्राचीन गुरुकुल प्रणाली का निःशुल्क छात्रावास, आपश्री की देख-रेख में चल रहा है। वहाँ के छात्र भारतीय संस्कृति का आदर्श जीवन सीखते हैं। आपने **संस्कृत** और **संस्कृति** के लिए जो क्रियात्मक योगदान दिया है, वह सर्वथा अनुकरणीय है। श्रीसर्वेश्वर आराधना, गोपालन, भारतीय संस्कृति का संरक्षण, सनातन-वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार, मानवमात्र का कल्याण, साधु-समाज का संगठन, सन्तों और विद्वानों की सेवा ही आपके जीवन की मुख्य साधनाएँ हैं। इन्हीं उद्देश्यों की संपूर्ति हेतु आपकी कई बार राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, गुजरात प्रभृति प्रान्तों में भारत व्यापी यात्रायें हुई हैं। श्रीनिम्बार्काचार्य स्पेशल ट्रेन द्वारा तीन धाम सप्तपुरी की यात्रा के अतिरिक्त आपकी चित्रकूट एवं गङ्गासागर यात्रा और बद्री-केदारनाथ यात्रा भी विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत में न्याय-व्याकरण एवं वेदान्तादि के गम्भीर अध्ययन के साथ-साथ संगीत, आयुर्वेद, हिन्दी, बंगला, राजस्थानी आदि भाषाओं की जानकारी पूर्वक आप एक कुशल धर्मोपदेशक ही नहीं, अपितु विविध ग्रन्थों के रचयिता भी हैं—संस्कृत एवं हिन्दी इन दोनों भाषाओं की काव्य-रचना में आपका सहज समान अधिकार है।

खण्ड ब — कृतित्व : सामान्यानुशीलन

(क) संस्कृत - कृतियाँ

(1) पद्य साहित्य

(i) भारत-भारती वैभवम् (राष्ट्रीय काव्य)
(ii) युगलगीति-शतकम् (गीति-काव्य)
(iii) निकुंज-सौरभम्

(2) स्तोत्र-साहित्य

(i) श्रीस्तवरत्नाञ्जलिः (पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध)
(ii) श्रीयुगलस्तव-विंशतिः
(iii) श्रीराधामाधव-शतकम्
(iv) श्रीसर्वेश्वरशतकम्
(v) श्रीजानकीवल्लभस्तवः
(vi) श्रीनिम्बार्कगोपीजनवल्लभाष्टकम्
(vii) श्रीहनुमन्महाष्टकम्
(viii) श्रीनिम्बार्कस्तवार्चनम्
(ix) श्रीराधा-शतकम्
(x) श्रीवृन्दावन-सौरभम्
(xi) श्रीमाधवप्रपन्नाष्टकम्
(xii) श्रीराधाराधनम्
(xiii) श्रीपरशुराम-स्तवावली
(xiv) श्रीमन्त्रराज-प्रदीपार्थ
(xv) श्रीगौशतकम् (अप्रकाशित)

(3) गद्य-साहित्य

(i) श्रीनिम्बार्क-चरितम्

(4) व्याख्या कार्य

(i) श्रीभगवन्निम्बार्क कृत "**प्रातः स्तवराज**" पर '**युगलतत्त्वप्रकाशिका**' नामक संस्कृत व्याख्या।

(ii) श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य प्रणीत "**वेदान्तकामधेनु-दशश्लोकी**" पर '**नवनीत-सुधा**' संस्कृत-व्याख्या।

(ख) हिन्दी कृतियाँ

(1) पद्य साहित्य

(i) श्रीसर्वेश्वर सुधा-बिन्दु (श्रीराधासर्वेश्वर-शतक) — (गीति-काव्य)
(ii) भारत-कल्पतरु (राष्ट्रीयता से परिपूर्ण काव्य)
(iii) विवेव-वल्ली
(iv) श्रीराधासर्वेश्वरमंजरी
(v) छात्र-विवेक-दर्शन
(vi) भारत-वीर-गौरव (वीररस संवलित काव्य)

(2) गद्य साहित्य

(i) उपदेश-दर्शन (आचार्यश्री के प्रवचनों का संकलन)
(ii) हिन्दु-संगठन (सामयिक उद्‌बोधन)

इन समस्त रचनाओं का विवरणात्मक विवेचन अग्रिम अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार पूर्वोक्त विवेचन से अनन्तश्रीविभूषित श्री 'श्रीजी' महाराज के प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिज्ञान उनके श्री सर्वेश्वर प्रभु के अंशावतार को परिपुष्ट करता है। ऐसे तो महापुरुषों का संपूर्ण व्यक्तित्व प्रदर्शित करने की क्षमता भी सर्वसाधारणजन को सुलभ नहीं होती। वस्तुतः यह परिचय तो दिङ्‌मात्र दर्शन ही है।

पंचम-अध्याय

अनन्तश्री-विभूषित निम्बार्कपीठस्थ वर्तमान जगद्गुरु श्री-राधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज द्वारा प्रणीत कृतियों का विवरणात्मक-अध्ययनानुशीलन

(क) संस्कृत-कृतियाँ

(1) भारत-भारती-वैभवम्

निकुञ्ज-भावरपरक—नितान्त-ऐकान्तिक—परमगुह्य—निम्बार्कीय रसोपासना के मूर्द्धन्य मर्मज्ञ, रससिद्धाचार्य, रसिक-शिरोमणि अनन्त-श्रीविभूषित श्रीनिम्बार्कपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज द्वारा विरचित "**भारत-भारती-वैभवम्**" ग्रन्थ का अवलोकन करते ही मेरे मन में कृतिकार के अभीष्ट के प्रति एक सहज औत्सुक्य जागृत हुआ कि अहर्निश-सर्वेश्वर-उपासना-रत हृदय में देशानुराग जनित भारत-भारती का यह मोह 'सुमरणी-सुमेरु' की स्थिति में पहुँचकर क्यों कर मूर्तिमान हुआ? सुमधुर-भावपरक अनेक रससिद्ध-ग्रन्थों के प्रणयानन्तर भी धर्माचार्य-धर्म-परायण, परमवीतरागी विरक्त हृदय में निर्झरित 'भारत-भारती' के प्रति विशिष्ट समर्पित एवं रागात्मक भावोद्रेक की अन्तः सलिला का यह प्रबलतम उद्वेग निश्चित ही उनके सुहृदय में विद्यमान '**जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी**'—भावना की अभीष्ट अभिव्यक्ति ही है—

> **भारतवर्षं मनसा ध्येयम्।**
> **सततं सर्वैः राष्ट्रसुभक्तैः साधुकदम्बैश्चानुष्ठेयम्॥**
> **धर्माचार्य-धर्मसुनिष्ठं नितरां धीरैः परिसन्धेयम्।**
> **राधासर्वेश्वरशरणेन प्रचुरं हृद्यमवधेयम्॥ 5॥**

आचार्यश्री की यह अभीष्ट रचना युगानुकूल समीचीन है। युगद्रष्टा कवि-हृदय युगावबोध एवं युगचिन्तन से सर्वथा तटस्थ नहीं रह सकता। युग का चिन्तन, शतशतजनों में व्याप्त घनीभूत पीड़ा तथा समष्टि के कल्याण से प्रेरित रागात्मकता वृत्ति ही उसकी साकार संवेदना बन जाती है। "भारत-भारती-वैभवम्" के युगद्रष्टा कृतिकार आचार्यश्री का नवनीत-सुकोमल मानस एवं सर्वजनहिताय नित्य चिन्तनशील साधु-हृदय वर्तमान युग की

इस विडम्बना से अनभिज्ञ नहीं कि स्वातन्त्र्योत्तर चतुर्थ—दशक में प्रविष्ट होकर भी हमारे आचरण में आज सर्वोपरि—भारतीय—भावना एवं राष्ट्र के प्रति-सर्व-समर्पित सर्वोच्चता की मान्यता यथेष्ट रूपेण विकसित नहीं हो पायी है। आज भी हम अपने आपको प्रथमतः हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख, बंगाली-बिहारी-पंजाबी, हिन्दी-अहिन्दी आदि मानते हैं, न कि भारतीय ! विशिष्ट-व्यक्तित्व की यह सर्वोपरि मान्यता विद्रूप होकर संकीर्ण व्यक्तित्व की परिचायिका बन जाती है। विभिन्न मतवाद-भाषादि के समक्ष राष्ट्र की यह न्यूनतन-भावना प्रबलरूप में विभेदात्मक-अनेकत्व को प्रोत्साहित करती है तथा इसी का उग्ररूप अन्ततः राष्ट्रीय एकता को विखंडित करता सा दृष्टिगत होता है।

वस्तुतः भारत के प्राकृतिक-सांस्कृतिक परिवेश में नाना मत, भाषाओं आदि की विभिन्नताएँ, परम्परागत एवं स्वाभाविक होने से तथा अनेकत्व में एकत्व की भावना का निरन्तर पोषण ही भारतीयता एवं राष्ट्रीयता की प्राण संजीवनी है। यद्यपि हमारे राष्ट्रनायकों ने आर्थिक-सामाजिक समस्याओं को दूर करने तथा समग्र राष्ट्र में पारस्परिक सद्भाव, एकता और समरसता लाने के लिए अनेक शासकीय प्रयत्न किये हैं, तथापि गत वर्षों में हमारे राष्ट्र में अलगाववादी मनोवृत्ति उभर कर सामने आई है। अनेकानेक राष्ट्रवादी अन्तर्द्वन्द्वों से प्रकट है कि राष्ट्रीय एकता का विषय अद्यावधि चिन्तनीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों भौतिकवादी पाश्चात्य प्रभावों से प्रताड़ित हमारा जीवन देश के प्रति सर्वथा नीरस और भावशून्य हो गया है। ऐसी स्थिति में पुनः राष्ट्रीय एकता एवं भावात्मक समरसता उत्पन्न करने हेतु हमें "भारती-भारती" के प्रति सहज अनुराग से ओत-प्रोत सहित्य की अपरिहार्य अपेक्षा है। वर्तमान युग की इन परिस्थितियों में राष्ट्र की इस अपरिहार्य अपेक्षा की पूर्ति हेतु स्वधर्मचर्या एवं साधना में संलग्न श्रीनिम्बार्काचार्यजी द्वारा 'सर्वजन हिताय' 'भारत-भारती-वैभवम्' का प्रणयन अत्यन्त स्तुत्य है, क्योंकि आपश्री ने युग चेतना के अग्रणी साहित्यकार के रूप में प्रकट होकर 'भारत-भारतीयता' के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के प्रचार-प्रसार हेतु इतर धर्माचार्यों को भी इस ओर प्रेरित किया है। मंगलाचरण में अभिलषित आचार्यश्री का यह पावन संकल्प समग्र साधु समाज के लिए अनुकरणीय है—

प्रभुं सर्वेश्वरं वन्दे श्रीराधामाधवं हरिम्।
श्रीमद्हंसं कुमारांश्च नारदं निम्बभास्करम्॥ 1 ॥

x x x

आचार्यवर्यान्प्रणिपत्य चित्ते विरच्यते सर्वहिताय गेयम्।
सुखावहं भारत-भारती भवं-वरेण्यं गुणबोधकारम्॥ 4 ॥

आचार्यश्री द्वारा विरचित-'भारत-भारती-वैभवम्' का विषय विवेचन भी विलक्षण है। ग्रथित विषय-वस्तु भारत वैभवम्' तथा 'देव भारती वैभवम्' नामांकित दो शीर्षकों में वर्णित है। प्रथम भाग में भारत भूमि के पर्वत, नदी-नद, समुद्र, तीर्थ, सागर, वृक्ष, पशुपक्षी, जनधनादि से संयुक्त प्राकृतिक परिवेश के प्रति प्रगाढ़ रागात्मकता अभिव्यक्त हुई है। भारत राष्ट्र के इस साकार स्वरूप के प्रति अद्भुत आकर्षण-विमोहन से उत्पन्न अनन्यभावपूरित

उत्कट प्रेम का उद्घाटन ही इस काव्य का मर्म है। भारत के उत्तर दिशा में स्थित हिमाच्छादित श्वेत हेम-वर्ण गिरिशृंगों से युक्त विशाल पर्वतराज हिमालय, दुग्ध-धवल-जल-पूरित कलकलनिनादिनी गंगा-यमुना-सरयू-गोदावरी प्रभृति नदियों से शस्य-श्यामल-हरित भूमि, नित्य तरंगित रत्नगर्भ दाक्षिणात्य सागर, जम्बू-कदली-कदम्ब-आम्रवृक्षावलि आदि 'भारत भारती वैभवम्' को यहाँ दिव्य वंदनीय चरणीय माना है। मधुर-राग-रंजित और लयात्मक कोमलकान्त-संस्कृत पदावली में वर्णित भारत माता का यह वर्णन अनुपम है—

(1) जयति मदीया भारतमाता।
निर्मलसुभगा मणिमयरूपा रम्या विविधगुणैरवदाता॥
सस्यश्यामला परमविशाला हिमगिरिधवला परिसंजाता॥
राधासर्वेश्वरशरणस्य चकास्ति चेतसि भारतमाता॥ 8॥

(2) गंगा-कलिन्दतनया-सरयू-त्रिवेणी
गोदावरीप्रभृतिदिव्यतरंगिणीभिः।
नानागिरीन्द्रहिमशैलवरैः सुरम्यं
वन्दे सदा रुचिरभारतवर्षदेशम्॥ 10॥

(3) अत्युद्भुतानि विपिनानि मनोहराणि
जम्बू-कदम्ब-कदलीतरुशोभितानि।
आम्रावलीविविधवृक्षयुतानि यत्र
वन्दे च तं रुचिरभारतवर्षदेशम्॥ 12॥

"भारत भारती वैभवम्"—मातृभूमि वंदना का महा गीतिकाव्य है जिसके प्रत्येक पद में भूमि-वैशिष्ट्य का भावात्मक स्तवन और नमन हुआ है। इसका प्रथम वंदना-पद ही अत्यन्त कलात्मक, सर्वांग सुन्दर और मधुरतम है। भारत-वसुधा की ऐसी सुमधुर, महनीय, ज्ञानगर्भित, सरस और मार्मिक वन्दना अन्यत्र दुर्लभ है। इस पद में वर्णित भारतीयता की रागात्मक उपासना अभीष्ट भारती-भाव का बीजमन्त्र है। भारत-वसुधा के वैभव का ऐसा पाण्डित्यपूर्ण महनीय वर्णन कवि व्यक्तित्व की गहनतम ज्ञान गरिमा और राष्ट्रभक्ति की सर्वोच्चता का परिचायक है। इस पद में सन्निहित भारतीय संस्कृति और संस्कृत का अद्भुत सामंजस्य, ज्ञान और भक्ति की पराकाष्ठा तथा राष्ट्र के प्रति सर्व-समर्पित-रागात्मकता, संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित, परम ज्ञानी, रससिद्धाचार्य कृतिकार श्रीनिम्बार्काचार्य के महान् व्यक्तित्व से ही संभावित है। ऐसी सुमधुर देश-वन्दना के राष्ट्रीय-स्तर पर नित्य गायन से पाषाण हृदय में भी देशानुराग का प्रबलतम सहज उद्रेक नितान्त सम्भव है। अस्तु, यहाँ कृतिकार आचार्यश्री भारतीय वसुधा के नित्य नमन की उत्कट अभिलाषा व्यक्त करते हुए भाव विभोर होकर शब्दों से मातृभूमि का दिव्य वर्णन करते हैं—

"यह वसुधा परम सुन्दर, अति विशाल, हिमालय और गंगा-यमुना-सरयू-कृष्णादि नदियों द्वारा सुशोभित और सरस है। मुनिजन तथा सुरवृन्द द्वारा पूजित, समुद्र तरंगों से

परिसेवित, भगवल्लीला स्वरूप धाममयी, विविध तीर्थों द्वारा सुरमणीय, अध्यात्म विद्या संयुक्त, महत्त्वपूर्ण, शांतिदायक, लक्ष्मीप्रद, सुखद, धनधान्य से परिपूर्ण, ललित और निर्मल, कोटि-कोटि जनसमुदाय द्वारा परिसेवित होने से सुप्रसन्न, वीर पुरुषों द्वारा अति सम्मानित, विद्वद्वृन्द द्वारा परमोपास्य, वेदपुराणादि शास्त्रों द्वारा गेय, देशभक्तों द्वारा संस्तुत्य, अति विशाल, नानाविध मणिरत्नों से सुसम्पन्न, स्वर्णस्वरूपा, हरि पद-चरणारविन्दों से अति अलंकृत, परम रमणीय है। ऐसी भारत वसुधा की आचार्य चरण बारम्बार वन्दना करते हैं।"

'भारत-भारती-वैभवम्' के ऐसे अनूठे-अलौकिक, दिव्याति-दिव्य वैशिष्ट्य वर्णन से परिपूर्ण यह एक गीतिपद नहीं, प्रत्युत राष्ट्रभक्ति का वेदवाक्य है। प्रस्तुत पद 'भारत-भारती वैभवम्'—का परम वैभव है। गीतिकार ने यहाँ कलात्मक गागर में भावों का विशाल सागर भर दिया है, जिसमें ज्ञान-भक्ति, संगीत, काव्य-कला, गीति-लालित्य तथा संस्कृत-संस्कृति का अद्‌भुत समन्वय हुआ है। अस्तु 'भारत-भारती-वैभवम्' की इस गीति-मणिमाला का यह सुमेरु है। यह राष्ट्रगीति पद राष्ट्रकवि श्रीबंकिमचन्द्र चटर्जी द्वारा प्रणीत 'वन्दे मातरम्' की भाँति परम गेय है—

वन्दे नितरां भारतवसुधाम्।
दिव्यहिमालय-गङ्गा-यमुना-सरयू-कृष्णाशोभितसरसाम्॥
मुनिजनदेवैरनिशं पूज्यां जलधितरंगैरंचितसीमाम्।
भगवल्लीलाधाममयीं तां नानातीर्थैरभिरमणीयाम्॥
अध्यात्मधरित्रीं गौरवपूर्णां शांतिवहां श्रीवरदां सुखदाम्।
सस्यश्यामलां कलितामलां कोटि-कोटिजनसेवितमुदिताम्॥
वीरकदम्बैरतिकमनीयां सुधीजनैश्च परमोपास्याम्।
वेदपुराणैः नित्यसुगीतां राष्ट्रसुभक्तैरीड्यां भव्याम्॥
नानारत्नै-र्मणिभिर्युक्तां हिरण्यरूपां हरिपदपुण्याम्॥
राधासर्वेश्वरशरणोऽहं वारं वारं वन्दे रम्याम्॥ 1॥

भारतवर्ष की दिव्यधराधाम पर भगवान् ने कई बार अवतार लिए हैं, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम ने जन्म लेकर यहाँ वेदादिशास्त्र विहित लोकधर्म की स्थापना की है तथा सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने यहाँ महाभारत में अर्जुन को परमदिव्य गीता का उपदेश दिया। इसी हेतु यह दिव्य-भगवद्धाम देवताओं द्वारा उपासनीय, ऋषि-मुनियों द्वारा परिसेव्य, धीरपुरुषों द्वारा स्तुति करने योग्य, कवियों द्वारा गीयमान तथा वीरों द्वारा वरेण्य है—

श्रीरामचन्द्रप्रभुराविरासीन्नयेन यत्रोत्तमदिव्यभूमौ।
संस्थापितो येन हि लोकधर्मस्तं भारतं नौमि सुभव्यरूपम्॥
गीतोपदेष्टा हरिणा च यत्र कृष्णेन पूर्वं सदनुग्रहेण।
धनंजयार्थ-भुवने जनार्थं तं भारतं नौमि सुभव्यरूपम्
देवैरुपास्यं मुनिभिश्च सेव्यं धीरैः समीड्यं कविभिः सुगीतम्।
वीरैर्वरेण्यं भुवने सुरम्यं श्रीभारतं नौमि मुकुन्दधाम॥ 30॥

गङ्गा-गौ-गीतादि वैशिष्ट्य-संयुक्त 'भारत-भारती' की वसुधा भगवान् की लीलास्थली होने से इसका स्वरूप स्वर्गादपि सुन्दर और महान् है। अध्यात्म संवलित धर्मप्राण भारतभूमि के विशाल देवालय, पौराणिक चारों धाम, बदरीविशाल, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम् द्वारिका तथा अयोध्या, काशी, काँचीवरम्, मथुरा-वृन्दावन, प्रयाग-चित्रकूट-पुष्करादि पुण्यतीर्थ स्थल अद्यावधि ज्ञानभक्ति, कला के केन्द्र होने से दर्शनीय और वन्दनीय हैं। भारत का यह अतीत आज भी विश्ववंद्य है। 'भारत-भारती-वैभवम्' के कृतिकार ने भारतभूमि के इसी वैशिष्ट्य का सुन्दर व रागात्मक शैली में चित्रण किया है—

देवालया अपि सुभव्यतमा मनोज्ञाः श्रेष्ठाः पुरातनतमाः शुभदर्शनीयाः।
सन्ति प्रिया हरिकथा रसदाश्च यत्र वन्दे च तं रुचिरभारतवर्षदेशम्॥ 23॥
तीर्थानि दिव्यविविधानि सुमंजुलानि धामानि सुन्दरतमानि च सन्ति यत्र।
पापप्रणाशनपराण्यतिपावनानि वन्दे च तं रुचिरभारतवर्षदेशम्॥ 24॥
प्राच्यां जगन्नाथपुरी ह्यवाच्या रामेश्वरो द्वारवती प्रतीच्याम्।
यत्रोत्तरे श्रीबदरीविशालस्तं भारतं नौमि सुभव्यरूपम्॥ 25॥
हरेरयोध्या मथुरा च माया काशी च कांची फलदा ह्यवन्ती।
द्वारावती यत्र लसन्ति पुर्यस्तं भारतं नौमि सुभव्यरूपम्॥ 26॥
वृन्दावनं दिव्यवनं हरेश्च, लीलाविहारस्थलमस्ति यत्र।
गोवर्द्धनो गोधनमंजुधाम तं भारतं नौमि सुभव्यरूपम्॥ 28॥
श्रीपुष्करं कोटिसुतीर्थतीर्थं प्रयागराजो बत चित्रकूटः।
साक्षादयोध्या प्रभुधाम यत्र तं भारतं नौमि सुभव्यरूपम्॥ 29॥

देव-देवालय तीर्थों की इस पावन भारतभूमि का सर्वाधिक वैशिष्ट्य वैदिक संस्कृति से है। विश्ववंद्य वैदिक संस्कृति की केन्द्रस्वरूपा भारत वसुधा को मंगलविधायिनी धरणी माना गया है क्योकि इसी क्रोड में पल्लवित वैदिक संस्कृति ने समस्त संसार को सर्वप्रथम ज्ञान-विज्ञान, धर्म और दर्शन का दान दिया था। यही संस्कृति मानव सभ्यता की जननी है। यही संस्कृति शाश्वत और सनातन है। वसुधैव कुटुम्बकम् भाव का विश्वबन्धुत्व, प्राणी मात्र में एकात्म दर्शन, शांति-सद्भाव, अहिंसा, करुणा, शरणागतवत्सलता, समन्वयादि मानवता के महनीय जीवन तत्त्व इसी संस्कृति की देन है। अस्तु भारतीय संस्कृति को अद्यावधि सर्वोच्च और महान् मानने वाले तथा उसके संरक्षक-प्रेषक-कृतिकार आचार्यश्री के लिए वैदिक संस्कृति की जननी भारतवसुन्धरा परमोपासनीय है—

भारतधरणी परमोपास्या।
वैदिकसंस्कृतिकेन्द्रस्वरूपा नित्यं विबुधजनैरभिलाष्या॥
इह खलु मुनयः सुधियः सन्तो वसन्ति सततं तरभिभाष्या।
श्रीराधासर्वेश्वरशरणो वदति मुदेति मनोहरहास्या॥ 2॥

भारत देश को वेद, पुराण, नीतिचरित्र, न्याय-योग, ब्रह्मसूत्र गीतादि वाङ्मय इसी परम्परागत संस्कृति की धरोहर के रूप में प्राप्त होने से अद्यावधि वह विश्व का धर्मगुरु

है। समग्र देश आज भी यहाँ शास्त्र-सम्मत आध्यात्मिक धर्म शिक्षा एवं सत्प्रेरणायें प्राप्त करने आते हैं—

देशाः समग्राः श्रुतिधर्मशिक्षां सम्प्राप्नुवन्तीति महामहत्त्वम्।
सत्प्रेरणां शास्त्रयुतां च यस्मात् तं भारतं नौमि सुभव्यरूपम्॥ 33॥

शरणागत-वत्सला भारतभूमि हिंसा विमुक्त जनों का सदा श्रेय है। यही विश्वनीड़ है, यही मातृभूमि प्राणीमात्र की दिव्य मातृकुक्षी है, जिसकी क्रोड़ में सभी को अन्न-जल त्राणादि का आतिथ्य सुलभ है। "अरुणा मधुमय देश हमारा। जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक किनारा" महाकवि जयशंकर प्रसाद का यही पूज्य भाव "भारत-भारती-वैभवम्" के निम्नोक्त पद में स्वाभाविक रूप से ग्रथित हुआ है—

सदाऽऽश्रयो वै शरणागतानां हिंसारतानां नहि यत्र पूजा।
विमुक्तहिंसो लभते प्रतिष्ठां तं भारतं नौमि सुभव्यरूपम्॥ 34॥

अध्यात्मप्राण भारतभूमि ऋषि-मुनियों की महान् तपस्थली रही है, यह विरक्त-संत-वीतरागियों की भूमि है। अद्यावधि इसका यही वैशिष्ट्य इसकी सुभव्यता है—

सन्तो गृहस्था वटवश्च छात्राः सन्यासिनो वैष्णवसत्तमा वै।
शुद्धा विरक्ता विचरन्ति यत्र तं भारतं नौमि सुभव्यरूपम्॥ 35॥

सन्त-महात्माओं-विरक्तों की पावन तपोभूमि भारत की यह वीर वसुन्धरा है। इसे वीर प्रसविनी सिंहजननी आदि विशेषणों से अभिहित करना इतिहास सम्मत है। हमारी सेनाओं ने गत दो विश्व युद्धों में अद्वितीय कीर्तिमान कार्य अर्जित किये हैं, स्वातन्त्र्योत्तर उभय युद्धों की सफलताएँ भी इसी चरित्र को प्रतिपादित करती हैं। अद्यावधि हमारी सेनाएँ अपने देशप्रेम, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं अनुपम युद्ध-कौशल के कारण जगद्विख्यात हैं। विश्वशांति, निश्शस्त्रीकरण एवं गुटनिरपेक्षता भारत की अन्तर्राष्ट्रीय नीति होने पर भी वह अजातशत्रु नहीं है। भारत की प्रगति के बाधक बाह्यशत्रुओं से आज हम संत्रस्त है, विश्व की महान् शक्तियों ने आज हमारे सीमा-सुरक्षा-दायित्वों को अत्यन्त विस्तृत कर दिया, पर चतुर्दिक सीमा-चौकसी में सन्नद्ध हमारी सेनाओं का आचरण एवं मनोबल अत्यन्त सराहनीय है। आणविक आयुधों, युद्धाभ्यासों से सुसज्जित आज हमारी जल-थल-नभ सेनाएँ देश रक्षा के अनुकूल व सक्षम है। अस्तु, हमारे कुशल, निष्ठावान्, वीरवर सैनिक भी आज 'भारत-भारती-वैभवम्' के रूप में विशेषतया उल्लेखित हुए हैं—

वीरधरायां वसन्ति वीराः।
भारतरक्षणहेतोः सततं निबद्धकक्षा बलिष्ठधीराः॥
व्रजन्ति परितः शस्त्रपाणयो देशसुनिष्ठा धृतनवचीराः।
श्रीराधासर्वेश्वरशरणो निगदति नहि ते भवन्त्यधीराः॥ 7॥

भारतवर्ष का जनजीवन, उसके क्रियाकलाप, आचार-विचार एवं चरित्र बल ही उसके सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के दर्पण है। 'भारत-भारती-वैभवम्' में वर्णित नारीजीवन पुरातन

आदर्शों से परिपूर्ण है। कृतिकार के अनुसार यहाँ धर्मपरायणा, भक्तिमती, पतिव्रता, वीरांगना तथा मंगल-स्वरूपा नारियाँ निवास करती हैं—

नार्यस्तु धर्मपरिपालनदत्तचित्ता गोविन्दभक्तिनिरताश्च पतिव्रतास्ताः।
वीरांगना अतिशुभा निवसन्ति यत्र वन्दे च तं रुचिर-भारतवर्षदेशम्॥

'भारत-भारती' ग्रन्थ के द्वितीय शीर्षक '**देवभारती वैभववर्णनम्**' में देववाणी संस्कृत का वैशिष्ट्य चित्रित किया गया है। वस्तुतः देववाणी संस्कृत ही हमारी संस्कृति का पर्याय है। वेदश्रुति-स्मृति, महाभारत-गीता, पुराणादि ग्रन्थों में संचित विशाल ज्ञानकोश का नाम भारतीय संस्कृति है और इन दिव्य ग्रन्थों की भाषा देववाणी संस्कृत है। अतः भारतीय संस्कृति का ज्ञान संस्कृत के बिना दुर्लभ है। कृतिकार आचार्यश्री ने यहाँ संस्कृति प्रदायिनी संस्कृत का भावातिरेक से स्तवन एवं वन्दन किया है। उनके अनुसार संस्कृत ही परम्परागत संस्कृति का ज्ञान कराने वाली, अनन्त-ज्ञान-विज्ञान-रस-प्रदायिनी है। इसी देववाणी में श्रुति-स्मृतियों का अनन्त ज्ञान सन्निहित है, संस्कृत ही विश्व में सुख-शान्तिदायिका, पापहारिणी अमृतवाणी है—

परम्परा-संस्कृतिबोधकारिणीमनन्तविज्ञानविवेकदायिनीम्।
रसावहां गौरववृद्धिशालिनीं भजे सदाऽहं हृदि देवभारतीम्॥ 49॥
श्रुति-स्मृतिज्ञानविधानधारिणीं समग्रभूमौ सुखशान्तिवाहिनीम्।
सुधामयीं तां मनुजाऽघहारिणीं भजे सदाऽहं हृदि देव-भारतीम्॥ 50॥

संस्कृत अनेक भाषाओं की जननी हैं। भारतवर्ष की सभी भाषाएँ मूलतः इसी से विकसित हुई हैं। भावात्मक समरसता एवं राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से इसका अध्ययन परमावश्यक है। '**समग्रभाषाजननीमधीश्वरी**' विशेषण से संस्कृत की इसी उपादेयता का प्रतिपादन करते हुए आचार्यश्री ने इसे सर्वाधिष्ठात्री, परमेश्वरी, ज्ञान-भुक्ति-मुक्तिप्रदायिनी, महेश्वरी, मधुररूपा, नव-नवरसविधायिनी आदि विशेषणों से विभूषित किया है—

समग्रभाषाजननीमधीश्वरीं प्रजाकरीं मुक्तिकरीं महेश्वरीम्।
रसालरूपां रसदानतत्परां भजे सदाऽहं हृदि देवभारतीम्॥ 51॥

संस्कृत की उपादेयता का ज्ञान यथार्थतः संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित आचार्यश्री को ही है। इसीलिए वे अपने परमाराध्य भगवान् श्रीसर्वेश्वर से संस्कृत के भाषण-प्रवचन, मनन-लेखन, वरणादि की पटुता का वरदान माँगते हैं। 'देवभारती' के निम्नोक्त पद में संस्कृत की अत्यन्त भावपरक-महिमा-मण्डित हुई है। संस्कृत में संस्कृत के प्रति रागात्मक-कलात्मक-भक्तिपरक, पद-लालित्यपूर्ण यह दैन्य-निवेदन द्रष्टव्य है—

सर्वेश्वर! सुखधाम! नाथ! मे संस्कृते रुचिरस्तु।
संस्कृतमनने संस्कृतपठने संस्कृतवरणे संस्कृतशरणे।
चेतो नितरां भवतात्कृपया ममाऽभिलाषोऽस्ति॥
श्रुतिशास्त्रेषु मनुशास्त्रेषु नयशास्त्रेषु रसशास्त्रेषु,
प्रगतिस्तीव्रा भवतादिति मे भावनाऽस्ति॥

लेखन-पटुता प्रवचनपटुता कर्मणि पटुता सेवा पटुता,
सततं माधव! भवतादिह मे याचनाऽस्ति॥
वचने मृदुता चेतसि रसता स्वात्मनि वरता दृष्टौ समता,
राधासर्वेश्वरशरणस्य प्रबला कामनाऽस्ति॥ 39 ॥

'देव भारती वैभव वर्णनम्' शीर्षकांतर्गत कृतिकार ने अपने उद्‌बोधन में युग-समीचीन क्रांतिकारी सार्थक उपदेश निर्देशित किये हैं। आचार्यश्री के इन युगसम्मत, युक्तियुक्त, सार्थक निर्देशों-आदेशों में लोक-कल्याणकारी सुख की कामना, स्वराष्ट्रचिन्तना, रीति, कीर्ति एवं गहन-युगचेतना सन्निहित है। सर्वथा निरपेक्ष भाव से अभिलषित इन उपदेशों में भारतीय-संस्कृति-सम्मत समभाव के प्रति उत्कंठा परिलक्षित हुई है। आचार्यश्री के अनुसार व्याप्त भ्रष्टाचार के उन्मूलनार्थ कठोर दण्डविधान अपेक्षित है, भ्रष्टाचारी जनसाधारण, विशिष्ट जन तथा प्रकाशक सभी दण्डनीय हैं—

भ्रष्टाचाररता ये तु दण्डनीयाश्च भारते।
सन्तु ते जनसामान्या विशिष्टा वा प्रशासकाः॥

आज हमारा राष्ट्र ऐसी अनेक सामाजिक-पारिवारिक-समस्याओं-अव्यवस्थाओं से संत्रस्त है, जिनका जन्म हमारी अकर्मण्यता तथा दायित्वहीन-उपेक्षाओं के कारण हुआ है। आज हम कर्त्तव्यबोध से उदासीन होकर निरर्थक आलोचनाएँ करते हैं, समाधान के प्रति सच्ची निष्ठा एवं कर्त्तव्यपालना से हम बचना चाहते हैं। आज युवापीढ़ी दिशाहीन है, जनता दिग्भ्रान्त है, क्योंकि हमारे गणमान्य विचारक एवं धर्माचार्य नेतृत्व-निर्देशन के प्रति सजग और सचेष्ट नहीं हैं। माता-पिता पारिवारिक अनुशासन के प्रति नितान्त उदासीन हैं शिक्षकों का व्यक्तित्व प्रभावहीन है, ऐसी स्थिति में आचार्यप्रवर इन सभी में कर्त्तव्यबोध की नई चेतना का आह्वान करते हुए कहते हैं—

धर्माचार्याः प्रबोद्धव्याः जनता या कुमार्गगा॥
तथैव साधुभिः नित्यं प्रेरणीया सदैव सा॥ 58 ॥
मातृवर्गः स्वदेशेऽस्मिन् शिक्षणीयश्च सर्वदा॥
वयस्का बालका नार्यः सदाचारपुरस्सरम्॥ 59 ॥
तथाहि पितृवर्गे च योजनीयाः स्वकर्मणि॥
बालका युवका वृद्धा नार्यश्च बालिकाः सदा॥ 60 ॥
शिक्षकैः कविभिर्नित्यं शिक्षणीया जना ध्रुवम्॥
सेवापरायणेरेभिः प्रशासक-चिकित्सकैः॥ 61 ॥

भौतिकवादी जीवन दर्शन ने आज हमें नितान्त नीरस और भावशून्य बना दिया है। भौतिकवादी आर्थिक विषमताओं, प्रतिद्वन्द्वों से उत्पन्न वर्ग-संघर्ष ने आज हमारे समाज में स्वार्थ, घृणा, ईर्ष्या, आक्रोश और तनावों को जन्म दिया है। इसीलिए आचार्यश्री वैदिक संस्कृति सम्मत अध्यात्मवादी जीवन की पुनःस्थापना करना चाहते हैं—

वैदिकी संस्कृतिर्ज्ञेया भारतीयैः जनैः सदा।
एवमध्यात्मबोधश्च धारणीयः स्वमानसे॥ 62 ॥

आचार्यश्री के अनुसार विश्व शांति के लिए आज अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव-सहयोग, सह-अस्तित्व, गुटनिरपेक्षता एवं अहिंसात्मक दृष्टिकोण परमावश्यक है—

राष्ट्रैराचरणीयञ्च मिथः सौहार्दमुत्तमम्।
कदापि विग्रहो नैव कार्यो विवेकनिर्भरैः ॥ 68 ॥

आज हमारा राष्ट्र प्राकृतिक-पर्यावरण के प्रदूषण से अत्यन्त संत्रस्त है। औद्योगिक महानगरों ने हमारी गङ्गा-यमुनादि पावन सरिताओं को भी प्रदूषित कर दिया है। अस्तु इनका शुद्धीकरण प्रशासकों का सर्वोच्च प्राथमिक कर्त्तव्य है—

जान्हवी-यमुना-रेवा-शिप्रादीनां पवित्रता ॥
सरिता सरसाश्चेह रक्षणीया प्रशासकैः ॥ 66 ॥

'भारत-भारती' के वर्ण्य-विषयान्तर्गत कपोलकल्पित आदर्शवाद नहीं है, यत्किंचित् अतिरंजनाएँ उद्‌बोधनार्थ एवं साभिप्राय अभिव्यक्त की गई है। ग्रन्थ में वर्णित भारत का विविध रूपात्मक भौगोलिक परिवेश, विपुल-प्राकृतिक सम्पदाओं एवं ऊर्जा-संसाधनों का प्राचुर्य, वैदिक संस्कृति में निहित ज्ञान-विज्ञान का अक्षय-कोष, अध्यात्म चिन्तन और दर्शन, यथार्थ और वास्तविक ही है। भारत का अतीत ही नहीं, प्रत्युत सद्यःवर्तमान भी समुज्ज्वल और समुन्नत हैं, आज हम विश्व की तृतीय महाशक्ति के रूप में उजागर हो रहे हैं तथा हमारे जीवन में राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं गौरव का ह्रास नितान्त चिन्तनीय है। भारतीयता से विभूषित व्यक्तित्व हमें आज हीन एवं लज्जाजनक प्रतीत होता है। आज हमारा खान-पान, रहन-सहन, पहनावा ही आयातित नहीं, वरन् हमारा आचार-विचार, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य-नृत्य-संगीत-कलादि का विधान, शासन-न्याय, रीति नीति, व्यापार, धर्म-कर्म सभी कुछ आयातित प्रतीत हो रहे हैं। पाश्चात्य प्रभाव से विकसित हमारा यह मूल्यविहीन असांस्कृतिक जीवन वास्तविकता से परे बहुरूपियापन ही है। स्वदेशीय स्वाभिमान का यह ह्रास प्राणघाती दासता के रूप में पुनः पनप रहा है। ऐसी स्थिति में आदर्शवादी चित्रण सर्वथा अपेक्षित और युगानुकूल है।

राष्ट्रीय चरित्र में स्वाभिमान और गौरव की भावना ही स्वतन्त्रता की जननी है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने '**यद्यपि भारत भारत है, फिर भी भारत भारत है**' की प्रबल भावना जागृत करने हेतु कहा था कि "**उच्च स्वर में कहो कि मैं भारतीय हूँ और भारत मेरा देश है।**" दीन-हीन मरणासन्न राष्ट्र में प्राण-प्रतिष्ठापनार्थ ही महात्मा गाँधी ने भी स्वतन्त्रता संग्राम में '**स्वदेशी आन्दोलन**' का प्रवर्तन किया था। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' में भी स्वराष्ट्र-स्वाभिमान के जागरण का प्रमुख स्वर आदर्शवादी भाव-भाषा में ही मुखरित हुआ था। अस्तु "भारत भारती वैभवम्" में वर्णित भारतवर्ष के स्वरूप का वर्णन, उसके समुन्नत अतीत का आदर्शवादी चित्रण, कृति एवं कृतिकार के व्यक्तित्व को अधिकाधिक कीर्तित करने वाला है। राष्ट्रीय भावना को जागृत एवं उत्प्रेरित करने वाली निम्नोक्त शास्त्र-सम्मत सूक्तियाँ सार्थक होने से अत्यन्त स्तुत्य है—

स्वर्गसम्पदां विमुच्य विबुधा यन्ति भारतं वैभवप्रबलम्॥
इतरे देशा विलोक्य भारतं मूका भवन्ति गौरवबहुलम्॥

अस्तु.सभी दृष्टियों से "भारत-भारती-वैभवम्" राष्ट्रभक्ति गीति साहित्य की अमरकृति है, जिसके कलात्मक-कमनीय कलेवर में वर्णित वस्तु, भावपरक सुमधर राष्ट्रीय वन्दना, संस्कृत-संस्कृति सौष्ठव अनूठे और अद्वितीय है। वस्तुतः यह युगान्तरकारी विश्व-भारती है, जो निश्चय ही राष्ट्रीय किंवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत वाङ्मय मंच पर समादृत होगी।

(2) श्रीस्तवरत्नाञ्जलिः

"श्रीस्तवरत्नाञ्जलिः" के पूर्वार्द्ध में चतुर्विंशति 24 स्तव (स्तोत्र) हैं, इनमें प्रारम्भ में द्वादश 12 स्तवों से प्रथम सर्वोपरिधाम (व्रजवृन्दावन धाम) कलिन्दनन्दिनी श्रीयमुना तथा अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक, क्षराक्षरातीत, निखिलजगदभिन्ननिमित्तोपादानकारण, जगज्जन्मादिहेतु, सर्वनियन्ता, सर्वान्तरात्मा, सर्वाधार, सर्वज्ञ, निरतिशय सौन्दर्य-माधुर्य- लावण्याद्यनन्त-कल्याणगुणार्णव, कोटिकन्दर्पदर्पदलनपटीयान्, अखिलरसामृतसारसिन्धुवनविग्रह, नित्यनिकुञ्ज-बिहारी, सर्वेश्वर, युगलकिशोर, श्यामाश्याम श्रीराधामाधव का स्तवन (आराधन) हुआ है। ये गोलोक बिहारी युगलवर श्रीराधाकृष्ण नित्यदिव्यसच्चिदानन्दघनरूप श्रीमद्वृदावन में अनन्त-अनन्त सखी-समूह से नित्यनवसुशोभित ललितनवरसकेलिविलास का दिव्यातिदिव्य रसास्वादन विलसते हैं। श्रीनिकुञ्जधाम में अनवरत समुच्छलित इस रसामृतसिन्धु का समास्वादन नित्यनिकुञ्जसखीपरिकर द्वारा प्रतिपल हुआ करता है।

यह निकुञ्जरस मधुरातिमधुर दिव्यातिदिव्य महामञ्जुल असीम अलौकिक एवं अप्राकृत है। श्रुति, पुराण, सूत्र, तन्त्रादि ग्रन्थों में यह रस सूत्रात्मक रूप से परिवर्णित हुआ है। "रसो वै सः" "रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति" "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता", "स आत्मरति आत्मक्रीड आत्ममिथुनः" " स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाणः" "आनन्दं ब्रह्म" "सैषा आनन्दस्य मीमांसा भवति" "आनन्दमयोऽभ्यासात्" इत्यादि बहुविध वचन है। इसी महारस का सांगोपांग विशद वर्णन "श्रीमहावाणी" आदि रसमय ग्रन्थों में हुआ है जिसका आस्वादन रसमर्मज्ञ रसिकमहानुभाव श्रीवृन्दारण्य के निभृत-निकुञ्जों में अनवरत करते हैं। इसी परम दिव्य रस की सुन्दर मधुर अभिव्यक्ति "श्रीस्तवरत्नाञ्जलि" के पूर्वार्द्ध में द्वादश स्तवों में विद्यमान है। त्रयोदश (13वें) स्तव से सम्प्रदाय की आचार्य परम्परानुसार सर्वप्रथम श्रीहंसभगवान् का स्तवन किया गया है। तदनन्तर क्रमशः श्रीसनकादि महर्षि, देवर्षि नारद तथा सम्प्रदाय प्रवर्त्तक आद्याचार्य सुदर्शनचक्रावतार श्रीमन्निम्बार्काचार्य भगवान् और भाष्यकार श्रीनिवासाचार्यजी महाराज, श्रीकेशवकाश्मीरि भट्टाचार्यजी, श्रीश्रीभट्टाचार्यजी, श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी, श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी एवं तत्पीठाधीश्वर अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' श्रीबालकृष्णशरणदेवाचार्यजी महाराज का भी मधुरातिमधुर स्तवन हुआ है।

उत्तरार्द्ध में पंचदश 15 स्तव हैं। इन स्तवों में सर्वप्रथम श्रीगणेशाष्टक स्तव है, जिसमें श्रीगणपति की महिमा का वर्णन एवं उनकी अभिवन्दना की गई है। किसी भी माँगलिक कार्य में उनका स्मरण आवश्यक है। वे विघ्नेश्वरदेव सभी विघ्नों का हरण कर लेते हैं, सदा प्रसन्नमुख एवं परम उदार है। निरन्तर स्वयं ये श्रीप्रभु आराधन में स्थित रहते है। इनकी महिमा का वर्णन शास्त्रों में पर्याप्त है। द्वितीय-स्तव में श्रीहरिवाहन नित्यपार्षद श्रीगरुड की वन्दना है। ये देव सेवा-विधान के महान् प्रतीक हैं। भगवान् श्रीकृष्ण (श्रीविष्णु) के नित्य दिव्य पार्षद हैं। श्रीभगवदीय आज्ञा के पालन में प्रतिपल सन्नद्ध रहने वाले ये देव बड़े ही सात्विक और सरस हैं। इनका स्तवन परम कल्याणकारी माना गया है।

तृतीय-स्तव में श्रीहरि की ऐश्वर्याधिष्ठात्री देवी श्रीलक्ष्मीजी की वन्दना है। ये देवी द्वारिका में रुक्मिणी रूप से परात्पर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण के वामांग में नित्य विराजमान है तथा वैकुण्ठधाम में लक्ष्मीस्वरूप से भगवान् श्रीविष्णु के वामांग में नित्य सुशोभित रहती हैं। इनके कृपाकण से ही सकलसृष्टि का ऐश्वर्य अवस्थित है। इनकी वन्दना परमैश्वर्य को प्रदान कराने वाली होती है। चतुर्थ-स्तव से साक्षात् श्रीमन्नारायण भगवान् विष्णु का स्तवन हुआ है। निखिलसृष्टिपालक, पूर्ण परब्रह्म भगवान् विष्णु जगज्जन्मादि हेतु हैं। इन शेषशायी प्रभु की अनन्त असीम महिमा है। वेद स्मृति, पुराणादि समग्र शास्त्रों में इनके दिव्यस्वरूप का अनन्त-गुणार्णवता का अद्‌भुत वर्णन है। इनकी आराधना श्रीभगवद्धाम प्राप्ति कारक एवं महामङ्गलरूप है, अनन्ताचिन्त्य है अनिर्वचनीय लोकोत्तर है।

पंचम-स्तव से भक्त-शिरोमणि, वैष्णवाग्रगण्य, पवनतनय, अञ्जनीकुमार, श्रीहनुमानजी की अप्रतिम महिमा का वर्णन हुआ है। वस्तुतः श्रीहनुमानजी दास्य-भक्ति के अद्वितीय अनुपम उदाहरण है। षष्ठ तथा सप्तम स्तव से अखिल ब्रह्माण्डनायक हृदयाभिराम मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीसीतारामजी का मधुर स्तवन-वन्दन हुआ है। इन राजीवलोचन कोटिकन्दर्पलावण्य, निखिलभुवनमोहन परब्रह्म भगवान् श्रीसीतारामजी के लोकपावन मङ्गल-चरित्र से हमारे सभी शास्त्र प्रपूरित हैं।

अष्टम स्तव से श्रीवैष्णवी देवी तथा नवम स्तव से आशुतोष गोपीश्वर भगवान् श्रीशिव का वन्दन किया गया है। दशम-स्तव से वाणी की अधिष्ठात्रीदेवी श्रीसरस्वतीजी का एवं एकादश स्तव से पुण्यतीर्था भगवती सुरसरित् श्रीगंगाजी का अभिवन्दन हुआ है। द्वादश-स्तव से गो-माता की अनन्त महिमा का वर्णन है।

त्रयोदश स्तव से तीर्थगुरु श्रीपुष्कर की दिव्य महिमा का दिग्दर्शन है। श्रीपुष्कर कोटि-कोटि तीर्थों के एकमात्र सर्वोपरि गुरु स्थान पर अधिष्ठित है। समग्र भूमण्डल पर एक ही यह पावन तीर्थ है, जहाँ जगत्स्रष्टा पितामह ब्रह्मा का अधिष्ठान है। जहाँ नाग पर्वत का भव्य दर्शन अनिर्वचनीय है। वैदिककाल के प्राचीनतम महर्षि वामदेव, अगस्त्य मुनि, विश्वामित्र प्रभृति ऋषिमुनियों की पावन स्थली रही है। चतुदर्श स्तव से श्रीनिम्बार्कतीर्थ की महिमा का प्रख्यापन हुआ है। यह तीर्थ श्रीपुष्करारण्य क्षेत्र के अन्तर्गत है, पद्म-पुराण

में श्रीनिम्बार्कतीर्थ का माहात्म्य पूरे एक अध्याय में वर्णित है, जो परम द्रष्टव्य है। इस तीर्थ की भी विलक्षण महिमा है। इसी तीर्थ स्थल पर अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ विद्यमान है।

पंचदश-स्तव से युगल प्रियालाल श्रीराधामाधव की उपासना-परक भावना व्यक्त की गई है। साथ ही ब्रज-वृन्दावन के अनुसेवन का भी हृदयग्राही वर्णन है। जो रसिक सन्त सर्वात्मसमर्पण करके स्वाराध्य का अभिचिन्तन करते हुए श्रीवृन्दावन धाम का मंगलमय वास करते हैं, उनके भाग्य की सराहना-सूचक भाव भी वर्णित हुआ है। इसके अतिरिक्त साधकों को अपने यथार्थ कर्त्तव्य परिपालन परक प्रेरणादायी भाव भी अतिक्रमणीयतापूर्वक प्रतिपादित हुआ है।

स्तवों द्वारा की गई आराधना कभी विफल नहीं होती। स्तवों से स्वाराध्य का चिन्तन निष्ठापूर्वक यदि किया जाय तो उनकी निर्हैतुकी कृपा-कादम्बिनी का अभिवर्षण अवश्य ही संभाव्य है। रामायण, महाभारत, पुराण-तन्त्रादि शास्त्रों में अनेक स्थलों पर स्तवों द्वारा श्रीहरि का स्तवन हुआ है और उस स्तवन से अनुग्रहविग्रह श्रीसर्वेश्वर ने प्रत्यक्ष होकर प्रपन्न आर्त भक्तों को परम कृपामयी दृष्टि से कृतार्थ किया है। इस प्रस्तुत ग्रन्थ में भी सरस स्तवों द्वारा स्तुति-गान हुआ है। इन स्तवों का यदि दृढ़ विश्वास एवं पूर्णनिष्ठा युक्त होकर सुन्दर-गान किया जाय तो वे सर्वान्तर्यामी श्रीप्रभु अवश्य ही प्रमुदित होकर किसी भी रूप में कृपाभिवर्षण कर ही देंगे। कितने ही 'तोटक' भुजङ्गप्रयात' आदि छन्दों में निबद्ध ऐसे स्तव हैं, जिन्हें किसी भी शास्त्रीय रागविशेष में लय बद्ध करके कमनीय कल-कण्ठ से भावनापूर्वक गीति रूप में गा सकते हैं, जिससे स्वतः ही स्वकीय मानस में एक अनुपम-रस की धारा प्रवाहित होगी। श्लोक-रचना में सरसता, मधुरता, सरलता विद्यमान है। अनेक स्थलों पर अनुप्रास, यमक, आदि शब्दालंकार, उपमा, रूपकादि, अर्थालंकारों के प्रयोग से रस एवं भावों की अभिव्यंजना सहज बन पड़ी है, जिसे भावुक हृदय बरबश पुनः पुनः पठन की उत्कण्ठा करता है। स्तव-रचना में भावगाम्भीर्य, माधुर्य के साथ-साथ शास्त्रीय मर्यादा का भी विशेष ध्यान रखा गया है। स्तवों में सरसता हो, भक्ति हो, भाव हो, साथ ही वेदादि शास्त्रानुकूलता हो, तभी वे स्तव आप्ताभिप्रेत परमोत्तम होते हैं। "**श्रीस्तवरत्नाञ्जलि**" ग्रन्थ में अभिवर्णित गेय स्तवों में यह सभी कुछ विद्यमान है।

उक्त ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। इसके पूर्वार्द्ध में श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय के आराध्यदेव, वृन्दावन-नवनिकुञ्जबिहारी, युगलकिशोर, श्यामाश्याम, भगवान् श्रीराधाकृष्ण का तथा सम्प्रदाय के पूर्वाचार्यवर्यों का मंगलमय स्तवन हुआ है। उत्तरार्द्ध में श्रीगणेश, श्रीगरुड़, श्रीलक्ष्मी, श्रीनारायण, श्रीहनुमान्, भगवान् श्रीसीताराम, श्रीवैष्णवीदेवी, श्रीशिव, श्रीसरस्वती, श्रीगंगा, श्रीगोमाता, श्रीपुष्करतीर्थ, श्रीनिम्बार्कतीर्थ आदि का भी सर्वहितावह स्तवन हुआ है।

ग्रन्थ में प्रारम्भ से अन्त तक सभी स्तव नाना छन्दों में निबद्ध हैं, जो बड़े ही मधुर हैं। तोटक, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, मालिनी, शालिनी, वियोगिनी, इन्दिरा, भुजङ्गप्रयात प्रभृति ऐसे छन्द हैं, जो लयबद्धपूर्वक अनेक राग-रागिनियों में गाये जा सकते

हैं। भावुकजन जब इन्हें तन्मय होकर गायें, तब स्वतः ही उनका मन-मयूर स्वाभाविकरूप से नाच हो उठेगा, ऐसा विश्वास है।

यह "श्रीस्तवरत्नाञ्जलि" ग्रन्थ अपने पूर्वाचार्यों के सिद्धान्तों एवं समन्वयात्मक विचारों का ही प्रख्यापन करती हैं।

(3) श्रीवृन्दावन-सौरभम्

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक श्रीसर्वेश्वर प्रियाप्रियतम की नित्य-रासलीला एवं अद्‌भुत क्रीड़ास्थली श्रीवृन्दावनधाम की महिमा शास्त्रों में विपुलरूपेण वर्णित है। श्रीमद्‌भागवत में अनुपम एवं विस्तृत है, किन्तु अर्थावबोध में वह सर्वसुलभ नहीं है। संस्कृत के विद्वानों को भी दुर्ज्ञेय है। वस्तुतः यहाँ की महिमा अनन्त और अनिर्वचनीय है। विरले ही भाग्यशाली महापुरुषों ने यदा-कदा यहाँ की तात्त्विक झलक दृष्टिगत की है। इस अलौकिक दिव्यधाम का परम कारुणिक परम पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित जगद्‌गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीपति श्री "श्रीजी" महाराज ने श्रद्धालु भक्तजनों पर कृपा कर "**श्रीवृन्दावनसौरभम्**" नामक ग्रन्थ का अभिनव प्रणयन किया है। इसमें वृन्दावन की शोभा का इतना सरस-सजीव चित्रण हुआ है कि इस ग्रन्थ के रसिकजन पाठक अपने घर में पाठ करते हुए यमुना-तट के सौरभ संयुत द्विजालिकुलकूजित हरित-सघन तरुवरावलियों की सुखद छाया में विहार करते हुए अपने आपको अनुभव करते हैं। प्रथम तो ग्रन्थ के नामोच्चारण से लगता है जैसे मिश्री की मधुर डली मुख में डाली हो। पुनश्च यह रचना वर्ण विन्यास में रूपान्तरित वृन्दावन की प्रतिकृति रूप ही प्रतीत होती है। इसे पढ़ते हुए यह अनुभूति होती है, मानों वृन्दावन की शोभा निहार रहे हों।

इस ग्रन्थ का प्रत्येक पद्य रस-भावपूर्ण होने से यह रसमुक्तक काव्य-ग्रन्थ पाठकों के हृदय का मुक्तकहार सिद्ध होगा। इस माधुर्ययुक्त प्रसादगुण-परिपूर्ण मनोरम काव्य की मार्मिक एवं कोमल पदावलियाँ कुञ्ज-निकुञ्ज विराजित प्रियाप्रियतम के युगल साहचर्य रसार्णव की ओर परायण होती प्रतीत हो रही है। रसिक भावुक भक्तजनों को इसी रस का आस्वादन कराने के लिए ही इस मर्यादित काव्य का प्रणयन हुआ है।

तथा च इस रचना से भवद्‌भक्तों को हृदयगत विकारों और आधिव्याधिजनित क्लेशों से मुक्ति दिलाने का महौषधरूप प्रदान कर महान् उपकार किया गया है। यह भक्तिरस की व्यञ्जनावृत्ति धारा को प्रवाहित करने वाला हृद्य एवं अनवद्य अद्‌भुत काव्य रसध्वनि की अनुपम अभिव्यञ्जना से श्रवण, पठन और मनन करने वालों को अनुपम आनन्द प्रदान करता रहेगा।

(4) श्रीयुगलस्तवविंशतिः

जगद्‌गुरु निम्बार्काचार्य महराज श्री राधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य की यह कृति संस्कृत भाषा में है। इस पद्य रचना का प्रकाशन अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्यपीठ सलेमाबाद (राज) के द्वारा वि.सं. 2043 तदनुसार सन् 1986 के अगस्त मास की 19 तारीख को समग्र

रूप में किया गया। इसका हिन्दी रूपान्तर पं. गोविन्ददासजी 'सन्त' द्वारा किया गया है। इस रचना में आचार्यश्री ने स्मरणात्मक भक्ति के मधुर रूप का निरूपण किया है। 'श्रीयुगलस्तवविंशति' में बीस स्तोत्र हैं, जिनकी भाषा अति मधुर, सरस एवं रसिक हृदयों को आकर्षित करने वाली है—

"श्रीकृष्णमव्ययं नित्यं राधिका-दक्षिणे स्थितम्।
विभुं क्षराक्षरातीतं हरिं सर्वेश्वरं भजे॥
व्रजे वृन्दावने कुञ्जे नानाव्रतति-शोभिते।
विहरन्तं श्रिया सार्द्धं भजेऽहं श्रीविहारिणम्॥"

अन्य रचनाओं की भाँति इसमें भी विवेच्य कवि ने अपने आराध्य प्रिया-प्रियतम एवं निम्बार्क-साधना में मधुर भाव की रसनीयता का स्पष्ट अंकन किया है। **श्री व्रजवल्लभ शरण वेदान्ताचार्य, पं. गोविन्ददास 'सन्त' राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त वैद्यनाथ झा** एवं **मुरलीधर शास्त्री** जैसे प्रसिद्ध विद्वानों ने इस रचना को अत्यन्त उपयोगी एवं महनीय बताया है। आज के इस संक्रमणशील वातावरण में शान्त, सरस एवं मधुर व्यवहार की आवश्यकता को ऐसी ही भावपूर्ण रचनाओं के द्वारा पूरा किया जा सकता है। इसमें कवि ने श्रीराधा, श्रीकृष्ण, श्रीसर्वेश्वर, वेणु, निकुञ्ज, यमुना, गोवर्धन, मानसीगंगा, राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, ललिताकुण्ड, निम्बग्राम, श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, भागवत, सुदर्शन, पॉचजन्य, तुलसी एवं चन्दन की महिमा का गान किया है।

(5) श्रीसर्वेश्वरशतकम्

देववाणी संस्कृत में रचित इस कृति का प्रकाशन संवत् 2053 तदनुसार सन् 1996 में अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्य-पीठ सलेमाबाद (राज.) के द्वारा किया गया है। इसमें 108 श्लोक हैं। यह रचना श्रीसनकादि ऋषियों द्वारा सेवित श्रीसर्वेश्वर प्रभु को लक्ष्य कर लिखी गयी है। यद्यपि इसके प्रणयन काल में महाराजश्री को काफी अस्वस्थता का सामना करना पड़ा, उदर विकार के कारण शल्य-चिकित्सा भी करानी पड़ी, लेकिन श्रीसर्वेश्वर प्रभु की कृपा का ही सुफल है कि अस्पताल में रहकर भी इस प्रकार की विलक्षण रचना हम साधक-काव्यचिन्तकों को आचार्यश्री ने भेंट की। इसमें विवेच्य कवि आचार्य श्रीराधा-सर्वेश्वर-शरण-देवाचार्य जी की सतत सर्वेश्वर प्रभु की आराधना एवं निष्ठा ही प्रतिफलित हुई है—

"परात्परतरं ब्रह्म रसशेखरमच्युतम्।
त्रिविधतापहर्तारं नौमि सर्वेश्वरं प्रभुम्।"

(श्रीसर्वेश्वरशतकम्, श्लोक सं. 06)

"अनन्तवैभवं कृष्णं वृन्दावनविहारिणम्।
कालिन्द्याः पुलिने रम्यं नौमि सर्वेश्वरं प्रभुम्॥"

(श्रीसर्वेश्वरशतकम्, श्लोक सं. 24)

"श्रीधरं श्रीयुतं कृष्णं श्यामलं सुमनोहरम्।
कन्दर्पमोहनं वन्द्यं नौमि सर्वेश्वरं प्रभुम्॥"

(श्रीसर्वेश्वरशतकम्, श्लोक सं. 76)

विवेच्य कवि ने अपनी इस रचना में अपने परमाराध्य श्रीसर्वेश्वर को ही कंसादि राक्षसों का संहारक एवं शिव-ब्रह्मा आदि के द्वारा भी अचिन्त्य माना है। सखी-सहचरियों से घिरी श्रीराधा के साथ नित्यविहार में लीन श्री सर्वेश्वर प्रभु को वन्दनीय माना है और उनकी व्यापकता को सर्वत्र स्पष्ट किया है।

(6) श्रीनिम्बार्कस्तवार्चनम्

विवेच्य कवि की इस रचना का प्रकाशन वि.सं. 2047 तद्नुसार सन् 1990 में अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्यपीठ शिक्षा-समिति निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) के द्वारा कराया गया। इस रचना में आचार्यश्री ने जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य के सुदर्शन चक्रावतार होने और उनके आठ स्वरूपों में विराजमान होने का वर्णन किया है। भक्तजनों के लिए संस्कृत एवं हिन्दी में रचित पद अति सरस एवं गेय है। मंगलाचरण के रूप में कवि ने अपने सम्प्रदाय के उपास्य रूपों का स्मरण करते हुए लिखा है—

"हंसरूपेण गोविन्दं कृष्णं सर्वेश्वरं हरिम्।
अवतीर्णं जगद्बीजं नमामि मनसाऽनिशम्॥
श्रीसनकादिकान्नित्यं देवर्षिं नारदं भजे।
हरेश्चक्रावतारञ्च निम्बादित्यं जगद्गुरुम्॥"

हिन्दी में श्रीनिम्बार्क भगवान् की स्तुति से सम्बन्धित अनेक पद लिखे हैं। श्रीनिम्बार्क के प्राकट्य का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

"श्रीनिम्बारक नाम तिहारो।
प्रकटे भूतल श्रीअरुणाश्रम, नियमानन्द शुभ नाम पियारो॥
यतिवपु विधि हित निशा निम्बतरु कियो सुदर्शन रवि उजियारो।
शरण सदा राधासर्वेश्वर शरणागत जन तुरंत निवारो॥"

कवि का विश्वास है कि सच्चे मन से की गयी निम्बार्क-साधना जन्म-जन्मान्तर के पापों का नाश करने वाली है, क्योंकि श्री निम्बार्क परम उदार हैं। उन्होंने भेदाभेद सम्बन्धी दार्शनिक मत की सरल व्याख्या की है।

(7) श्रीराधाशतकम्

"श्रीराधाशतकम्" नामक अद्भुत मुक्तक रस-काव्य अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर "श्री श्रीजी" महाराज, प्रातः स्मरणीय श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य जी महाराज के हृदय से उत्पन्न हुये रस-निर्झर के समान भक्तजनों के तापत्रय को पूर्णतया उन्मूलन करने में समर्थ है। इसमें निम्बार्क-सम्प्रदाय की शास्त्रीय विधि द्वारा बतलाई हुई निकुञ्ज युगलोपासना सर्वत्र प्रस्फुटित है। श्रीमद्भगवद्गीता के समान अल्पाक्षर वाले

अनुष्टुप्-छन्द में रचा हुआ यह काव्य-प्रसाद और माधुर्यगुण से समन्वित सहज आह्लादरस को समुल्लसित करता है। अत्यन्त पवित्र उज्ज्वल रस की वियोगावस्था का वर्णन तो सहृदयों में आनन्द की अनुभूति को स्वाभाविक सरलता से व्यक्त (जागृत) करता है, किन्तु 'श्रीराधाशतक' काव्य में श्रीनिकुञ्जेश्वरी के साहचर्य की युगल-संयोगावस्था भी रसानुभूति को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाती है। वाचक या श्रोता को रस में निमग्न सराबोर होते ही बन पड़ता है, पद-पद पर आह्लादरस की अनुभूति होने से ही पाठ आरम्भ करने पर पूर्ण करके ही विराम लेना होता है, यह वैशिष्ट्य अन्यत्र दुर्लभ है।

(8) श्रीजानकीवल्लभस्तवः

अहैतुकी कृपासिन्धु युगलकिशोर श्यामाश्याम के अन्तरङ्ग परिकर ही कर पाते हैं, उस अलौकिक माधुर्य रस का वर्णन, जो किसी प्राकृत साधन से सम्भव नहीं है। वह कृपासाध्य वस्तु है। माधुर्यसिन्धु के बिन्दु मात्र से यह सारा संसार आनन्दित हो उठता है। माधुर्यसिन्धु के बिन्दु की उपलब्धि भी सद्गुरु के बिना नहीं हो सकती। अतः माधुर्य रसपिपासु साधकों के लिए सद्गुरु का स्मरण ही मुख्य साधन है। परम दयामय पूर्वाचार्यवर्यों ने जागतिक जीवों के कल्याण हेतु दार्शनिक विवेचना के साथ मङ्गलमय स्तोत्रों तथा वाणीग्रन्थों के माध्यम से माधुर्य उपासना का मार्ग बतलाया है।

उन्हीं पूर्वाचार्यचरणों की सरणि का अनुसरण करते हुये वर्तमान आचार्यचरण अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री "श्रीजी" महाराज ने काव्यमयी भाषा में अपनी अनवरत साधना से अनेक स्तोत्र-रत्नों का सर्जन किया है।

पूज्य आचार्यश्री की बहुमुखी प्रतिभा ने अनन्तकल्याण-गुणसागर, भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु की अनन्त विभूतियों का वर्णन करके श्रीनिम्बार्काभिमत समन्वयात्मक द्वैताद्वैत दर्शन का दिग्दर्शन कराया है। अतः किसी भी साधक को भ्रमित नहीं होना चाहिये। "श्रीजानकीवल्लभस्तव" पूज्य आचार्यश्री की अभिनव रचना है। इसका पठन, मनन जानकीजीवन श्रीरामभद्र के मङ्गलमय चरणारविन्द में अनवरत अनुरक्ति एवं भक्ति-वृद्धि कराने वाला है।

(9) श्रीमाधवप्रपन्नाष्टकम्

श्रीराधामुकुन्द भगवान् के युगल चरणारविन्दों को प्रणमन करने का मुक्ति का निर्विवाद अनायास फल माना है, तथापि श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के अनन्यभक्ति रसोपासना में जो अलौकिक दिव्य रस की प्राप्ति होती है, इसकी क्षमता में मुक्ति का उत्तम फल भी अधिक श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। अनन्य भक्ति रस की उपलब्धि में अनिर्वचनीय सुखानुभूति प्राप्तकर भक्तजन कृतकृत्य हो जाते हैं। इसी के लिए स्वल्पकाय मधुरतम पदावलियों से सुललित अष्टक स्तोत्र "श्रीमाधवप्रपन्नाष्टक" अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री "श्रीजी" महाराज द्वारा अकारण करुणाकर अभिनव रचना रचित की गई है, जो भक्ति रस की अजस्रधारा प्रवाहित कर भक्तजन मानस को सुखाप्लावित

एवं परमाह्लादित करती हुई श्रीयुगलचरणारविन्दों में प्रीतिवर्धन करती है। अर्थावबोध के साथ पाठ करना फलदायक होता है। इसीलिए यहाँ सम्पूर्ण स्तोत्र का हिन्दी अनुवाद स्वयं आपश्री द्वारा किया गया है। इस वसुन्धरा पर आपके अवतरित होने का हेतु ऐसी नाना रचनाएँ हैं।

(10) श्रीराधासर्वेश्वरालोक

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री "श्रीजी" महाराज की मौलिक साहित्य रचनाओं में "**श्रीराधासर्वेश्वरालोकः**" नामक ग्रन्थ नित्यनिकुञ्जविहारी श्यामाश्याम श्रीराधासर्वेश्वर प्रभु की ललित लीलाओं को प्रकाशित करने वाली अनुपम रचना है। हिन्दी भावार्थ सहित संस्कृत श्लोकों, हिन्दी दोहों, पदावलियों का गुम्फन सर्वजन-संवेद्य परम मनोहर बना है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के सिद्धान्त व उपासना के अनुसार श्रीराधामाधव, राधासर्वेश्वर, राधादामोदर, गोपीजनवल्लभ, निकुञ्जविहारी, आनन्दमनोहर, रूपमनोहर, राधाकृष्णविहारी, राधागोविन्द, राधागोपाल आदि नामों से युगलविग्रहों की तत्तद् स्थानों में प्रतिष्ठापूर्वक सतत आराधना होती है। उन्हीं आराध्य स्वरूपों का चिन्तन निरन्तर हो, एतदर्थ पूज्य आचार्यश्री ने अपनी दिव्य भावनाओं का समुद्गार इन रचनाओं में समाहित किया है। प्रस्तुत रचना श्री राधासर्वेश्वर प्रभु की लीला-चिन्तन का दिव्य आलोक है। इसके स्वाध्याय से श्रद्धालु भावुकजनों को निश्चय ही भगवल्लीलाओं की अनुभूति होगी, ऐसा दृढ़ विश्वास है।

(11) श्रीनिम्बार्कचरितम्

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बाकाचार्यपीठाधीश्वर श्री श्रीजीमहाराज द्वारा विरचित एवं प्रकाशित ग्रन्थमाला में 'श्रीनिम्बार्कचरितम्' नामक गद्यकाव्य महत्त्वपूर्ण पुष्प के रूप में गुम्फित हुआ है। यह काव्य वैदर्भी रीति, प्रसाद गुण, अनुप्रासोपमादि अलंकारों से अलंकृत है। शान्तरस एवं भक्तिभाव से परिपूर्ण इस काव्य में सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य के जीवनवृत्त का अवतरणोपक्रम से लेकर बालचरित, शिक्षा, दीक्षा, व्रजगमन, तपश्चर्या, निम्बार्काभिधान, तीर्थयात्रा, विविधलीला प्रसङ्ग तथा भाष्यादि ग्रन्थ रचनाओं के साथ साङ्गोपाङ्ग अनुपम प्रामाणिक वर्णन किया गया है।

तत्कालीन ऋषि-महर्षियों के आश्रमों का मनोहर सजीव चित्रण बरबस चित्त का आकर्षण करता है। पिता महर्षि अरुण का आदर्शमय अनुशासन एवं माता जयन्ती के वात्सल्य का जो अलौकिक उत्कर्ष और माधुर्य प्रस्तुत काव्य में देखने को मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह अभिनव गद्य काव्य समस्त विशेषतओं को अपने में समेटे हुए शब्दसौष्ठव की दृष्टि से महाकवि श्री अम्बिकादत्त जी व्यास द्वारा रचित 'शिवराज-विजय' की झलक प्रदर्शित करता है। इसमें न केवल चरित का ही वर्णन है, अपितु रसमयी उपासना, दार्शनिक सिद्धान्त एवं पूर्वाचार्य रचित विभिन्न फुटकर स्तोत्ररत्नों का भी समावेश है। अतः '**श्रीनिम्बार्कचरितम्**' लघुकलेवर होते हुए भी सारबाहुल्य से भरा हुआ है, जिसके

अध्ययन, मनन, चिन्तन से वेदान्त दर्शन के जिज्ञासुजनों की जिज्ञासा का समाधान स्वतः हो जायेगा।

पूज्य आचार्यश्री ने अपनी सतत-साहित्य-साधना द्वारा दिव्यानन्दोपलब्धि के लिए सुगम स्वाध्याय व भक्तिमार्ग बताने का जो अहैतुक अनुग्रह किया है, वह समस्त श्रद्धालुजनों का परम सौभाग्य है।

(12) श्रीराधामाधवशतकम्

अनन्तश्रीविभूषित जगद्‌गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज अ.भा. श्री निम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) राजस्थान द्वारा रचित '**श्रीराधामाधवशतकम्**' जो कि श्रीवृन्दावनविहारी, प्रियाप्रियतमलाल, युगलकिशोर, श्यामाश्याम (श्रीराधाकृष्ण) की अन्तरङ्ग (निकुञ्ज) रहस्यमयी लीला (रसोपासना) से ओतप्रोत है।

सरल संस्कृत भाषा में अनुष्टुप् छन्दों द्वारा इस शतक की रचना होकर इसके श्लोकों के पूर्वार्द्ध (प्रथम आधे भाग) में श्रीनिकुञ्ज की विविध रसमयी लीलाओं का वर्णन है और उत्तरार्द्ध (पिछले आधे भाग) में **"राधामाधवमाराध्यं भजेद्वृन्दावनाधिपम्"** ऐसा पाठ सभी श्लोकों में है, अतः रसिक भावुक भक्तजनों के लिए नित्य पाठ में तथा निकुञ्ज रसवेत्ता रसिकजनों के लिए नित्य सत्संग (प्रवचनादि) में यह परम उपादेय सिद्ध है।

परम कृपालु आचार्यश्री ने इस शतक की रचना कर सभी भक्तजनों को नित्य पाठ करने के लिए आचार्यपदेन उपदेश देते हुए उक्त शतक के सभी श्लोकों में उत्तरार्द्ध में श्रीवृन्दावनाधीश्वर (वृन्दावन के राजा दोनों श्याम-राधिका रानी) इस रसिकों की वाणी के अनुसार परमाराध्य भगवान् श्रीराधामाधव का भजन करें अर्थात् भज् धातु के विधि लिङ्ग में 'भजेत्' क्रिया का प्रयोग करते हुए बताया है कि सब तत्त्वों का एकमात्र सार तत्त्व यही है कि अपने आराध्य का सदैव भजन करें। 'श्रीराधामाधवशतकम्' स्तोत्र साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान निर्धारित करता है।

(13) श्रीराधाराधना

इस बात पर हम राजस्थानवासी सदा गौरव का अनुभव करते रहे हैं कि राजस्थान की धरती पर वैष्णव सम्प्रदायों के दो प्रमुख आचार्यपीठ अवस्थित हैं। सलेमाबाद में निम्बार्कपीठ और नाथद्वारा में वल्लभपीठ। यह और भी अधिक गौरवास्पद है कि निम्बार्कपीठाधीश श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी स्वयं संस्कृत के अधिकारी विद्वान्, सरस कवि, मधुर वक्ता और परिनिष्ठित लेखक हैं। उनकी अनेक काव्यकृतियाँ संस्कृत-हिन्दी और ब्रजभाषा में प्रकाशित हो चुकी हैं और विद्वज्जनों तथा भक्त-समुदाय में समादृत रही हैं।

श्री 'श्रीजी' महाराज की लेखनी अब भी निरन्तर सक्रिय और सर्जनरत है। इस लेखनी से प्रसूत सरस काव्यकृति '**श्रीराधाराधना**' संस्कृत, हिन्दी और ब्रजभाषा का त्रिवेणी संगम है तथा इसमें परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण की ह्लादिनीशक्ति श्री राधा के समस्त आयामों

की वन्दना निबद्ध है। संस्कृत के 51 अनुष्टुप् छन्दोबद्ध पद्यों में, हिन्दी के 51 दोहों में तथा ब्रजभाषा की 25 गीतियों में निकुञ्जलीलेश्वर, सर्वेश्वर प्रभु की हृदयाह्लादिनी वृषभानुनन्दिनी की प्रशस्ति, ध्यान, महिमोल्लेख, वन्दना तथा गुणगणानुवर्णन है।

संस्कृत पद्यों की शैली पारम्परिक स्तोत्रों की है तो दोहों की पारम्परिक काव्यों की। दोहों में श्री "श्रीजी" महाराज ने अपना काव्य संकेताभिधान 'शरण' चतुर्थ चरण में उल्लिखित भी किया है। यह कवियों की पारम्परिक शैली रही है। इस नाम संकेत को काव्य परम्परा में 'भनत' कहा जाता है। गीतियों में सरसता और गेयता पूर्णतः प्रतिफलित है। यह निर्विववाद है कि तीनों भाषाओं की काव्य-धाराओं का यह त्रिवेणी संगम "श्रीराधाराधना" उसी प्रकार विद्वज्जगत् में तथा काव्यरसिकवृन्द में प्रभूत स्वागत एवं आदर पायेगा, जिस प्रकार श्री "श्रीजी" महाराज की अन्य काव्यकृतियाँ पाती रही हैं।

इस नूतन काव्य-प्रसाद के अवदान द्वारा श्री 'श्रीजी' महाराज ने भक्तजनों को, जो नई पीयूषधारा प्रदान की है, उसके लिए सभी चिरऋणी रहेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

(14) नवनीतसुधा

निम्बार्क संप्रदाय के आद्यप्रवर्त्तक श्रीनिम्बाकाचार्य के द्वारा प्रणीत ग्रन्थ **'वेदान्त कामधेनु'—दश श्लोकी'** की व्याख्या संस्कृत गद्य में करके वर्तमान आचार्य श्रीराधासर्वेश्वर शरण देवाचार्य जी ने अत्यन्त उपयोगी कार्य किया है। ग्रन्थ का प्रकाशन वि.सं. 2052 में आचार्यपीठ के द्वारा किया गया है। संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड **पण्डित श्रीसत्यनारायण शास्त्री, श्री हरिशरण उपाध्याय, श्रीवासुदेवशरण उपाध्याय** आदि ने इस व्याख्या को आस्वादनीय एवं सार रूप बताया है। वेदान्त-आचार्य श्री वासुदेवशरण उपाध्याय के शब्दों में—

"श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वरैः "श्रीजी महाराजैः" श्रीराधासर्वेश्वरशरण-देवाचार्यैः पूर्वाचार्यसरणिमनुसरद्भिः सुरभारत्यां परमसरला, सरसा, सकलजनहृद्याऽनवद्या वेदान्तकामधेनोः सारूपा 'नवनीतसुधा'ख्या व्याख्या व्यधायि।

महाराजश्री ने इस व्याख्या परक ग्रन्थ के द्वारा निम्बार्क-दर्शन को जनोपयोगी एवं सुग्राह्य बनाने का सार्थक प्रयास किया है। रहस्यपरक श्लोकों की रसात्मक अभिव्यक्ति उनके हृदय की सुकोमलता एवं सरसता की दिग्दर्शक कही जा सकती है। संस्कृत व्याख्या के साथ ही हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है, जिससे भावुक भक्तजन उसके सार को समझ सकें। निम्बार्क वेदान्त की व्याख्या कर आचार्य श्री ने महनीयता एवं समयानुकूल आवश्यकता को पूरा करने की दिशा में उचित कार्य किया है।

(ख) हिन्दी कृतियाँ : विवरणात्मक-अध्ययन

(1) श्रीसर्वेश्वर सुधा-बिन्दु (श्रीराधा-सर्वेश्वर-शतक)

"श्रीसर्वेश्वर सुधाबिन्दु" अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज की अनुपम रचना है, जिसमें निम्बार्कीय

रसोपासना का मूलतत्त्व 'बीज-बिन्दुवत्' साररूप में प्रतिपादित है। माधुर्यभाव से परिपूर्ण कोमल-कान्त पदावली एवं रागबद्ध गीति में यहाँ निम्बार्कीय-सहचरी-सेवा नित्यकेलि तत्त्व, युगल स्वरूप एवं उनके लीला-लीलाधाम आदि का सारगर्भित मार्मिक वर्णन हुआ है। ग्रन्थकार स्वयं रसिक भक्त-शिरोमणि, रसोपासना मर्मज्ञाचार्य हैं तथा आप प्रतिपल माधुर्यभाव समन्वित प्रिया-प्रियतम की सहचरी सेवा में निमग्न रहने वाले परम वीतरागी आचार्य होने से ग्रन्थ के प्रत्येक पद में अपने हृदय की उदात्त रसिक भावना कोमलकान्त सरस पदावली, सुमधुर सुसज्जित भाषा, ललित-लय एवं सुन्दर संगीत के साथ रसधारावत् प्रवाहित हुई है। भावुक भक्तों एवं रसिकजनों के कल्याणार्थ आपने प्रस्तुत ग्रन्थ में निम्बार्कीय रसोपासना का जो सरस सारगर्भित सांगोपांग एवं प्राचीन कीर्तन, परम्परानुरूप विश्लेषण किया है, वह वस्तुतः अत्यन्त महनीय उपादेय और स्तुत्य है। आपके द्वारा देववाणी में विरचित पूर्ववर्ती सभी ग्रन्थ विद्वानों के कण्ठहार हैं, पर प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दीभाषी सामान्य भक्तों के लिए भगवत्प्रसाद स्वरूप है अथवा यों कहिये कि सरस-सुमधुर-प्रसादपूर्ण-प्राञ्जल हिन्दी भाषा की यह कोमल-पदावली पीयूषवर्षिणी मेघमाला से निसृत रसधारा है, जो पाषाण हृदय में भी अन्तर्गर्भा-सलिला प्रवाहित करने की क्षमता रखती है।

कलियुग के कुप्रभाव से आज के भौतिक-संघर्षवादी विश्व पर अनेक प्रकार के दुःख-कलह एवं विनाश से भरे काले-पीले रक्तिम मेघ आच्छादित हैं, जिनमें प्रलय-विभीषिका का विषाक्त प्रलयंकारी सागर समाहित है, जो मूसलधारी विपुल वेग से बरसकर धरित्री को पुनः अपनी ही क्रोड में समेट लेना चाहता है। आज के भौतिकवादी साहित्य-साधक इस मेघाच्छादित वातावरण को उत्प्रेरित कर रहे हैं, जिनकी कुण्ठित एवं प्रेरित वाणी येन-केन प्रकारेण किसी राजनीति, मतवाद एवं संकुचित सिद्धि से आबद्ध है। वे अपनी सर्जनाओं में 'वर्ग-संघर्ष', 'कामाचार' एवं थोथी पाश्चात्य वैचारिक नवीनता उभारकर ऐसे ही प्रलयंकारी 'सागर' का आह्वान कर रहे हैं। यह सारा कलियुगी प्रपंच सर्वशक्तिमान् की अविद्यामाया का प्रसार है, पर जो ज्ञानी और भक्त हैं वे इस मायिक संसार के नश्वर भौतिकवादी आनन्द से ऊपर उठकर भगवद्-भक्ति रसामृत के प्यासे होते हैं। **महात्मा कबीर** की भाँति वे निर्मल सात्विक बुद्धि से संसार को देखते हैं—

"बगुली नीर बटोलिया सायर चढ्या कलंक।
और पखेरु पी गये हंस न बोवै चंच॥"

भगवद्भक्ति रसामृत की तृषा से आतुर चातक भक्त तो 'अगस्त्य मुनि' की भाँति 'सात समुद्रों' के प्यासे नहीं, वरन् वे तो 'स्वाति बूँद' के साधक हैं। अतः चातक सदृश अनन्य निष्ठावान् रसिक-भक्त, जिन्हें प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्ण की निकुञ्जकेलि-रसमाधुरी का रसकण अभिलषित है, उन्हीं के लिए यह भगवत्स्वरूप **'श्रीसर्वेश्वर सुधा-बिन्दु'** प्रस्तुत है। इसकी 'सुधा बिन्दु' उन रसिकों के लिए है, जिनकी भावना में 'युगल-केलि-रसकण' की गरिमा 'क्षीर सागर' से भी महान् है।

"श्रीधरं श्रीयुतं कृष्णं श्यामलं सुमनोहरम्।
कन्दर्पमोहनं वन्द्यं नौमि सर्वेश्वरं प्रभुम्॥"

(श्रीसर्वेश्वरशतकम्, श्लोक सं. 76)

विवेच्य कवि ने अपनी इस रचना में अपने परमाराध्य श्रीसर्वेश्वर को ही कंसादि राक्षसों का संहारक एवं शिव-ब्रह्मा आदि के द्वारा भी अचिन्त्य माना है। सखी-सहचरियों से घिरी श्रीराधा के साथ नित्यविहार में लीन श्री सर्वेश्वर प्रभु को वन्दनीय माना है और उनकी व्यापकता को सर्वत्र स्पष्ट किया है।

(6) श्रीनिम्बार्कस्तवार्चनम्

विवेच्य कवि की इस रचना का प्रकाशन वि.सं. 2047 तदनुसार सन् 1990 में अखिल भारतीय श्री निम्बार्काचार्यपीठ शिक्षा-समिति निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) के द्वारा कराया गया। इस रचना में आचार्यश्री ने जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य के सुदर्शन चक्रावतार होने और उनके आठ स्वरूपों में विराजमान होने का वर्णन किया है। भक्तजनों के लिए संस्कृत एवं हिन्दी में रचित पद अति सरस एवं गेय है। मंगलाचरण के रूप में कवि ने अपने सम्प्रदाय के उपास्य रूपों का स्मरण करते हुए लिखा है—

"हंसरूपेण गोविन्दं कृष्णं सर्वेश्वरं हरिम्।
अवतीर्णं जगद्बीजं नमामि मनसाऽनिशम्॥
श्रीसनकादिकान्नित्यं देवर्षिं नारदं भजे।
हरेश्चक्रावतारञ्च निम्बादित्यं जगद्‌गुरुम्॥"

हिन्दी में श्रीनिम्बार्क भगवान् की स्तुति से सम्बन्धित अनेक पद लिखे हैं। श्रीनिम्बार्क के प्राकट्य का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

"श्रीनिम्बारक नाम तिहारो।
प्रकटे भूतल श्रीअरुणाश्रम, नियमानन्द शुभ नाम पियारौ॥
यतिवपु विधि हित निशा निम्बतरु कियो सुदर्शन रवि उजियारो।
शरण सदा राधासर्वेश्वर शरणागत जन तुरंत निवारो॥"

कवि का विश्वास है कि सच्चे मन से की गयी निम्बार्क-साधना जन्म-जन्मान्तर के पापों का नाश करने वाली है, क्योंकि श्री निम्बार्क परम उदार हैं। उन्होंने भेदाभेद सम्बन्धी दार्शनिक मत की सरल व्याख्या की है।

(7) श्रीराधाशतकम्

"श्रीराधाशतकम्" नामक अद्‌भुत मुक्तक रस-काव्य अनन्तश्रीविभूषित जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर "श्री श्रीजी" महाराज, प्रातः स्मरणीय श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य जी महाराज के हृदय से उत्पन्न हुये रस-निर्झर के समान भक्तजनों के तापत्रय को पूर्णतया उन्मूलन करने में समर्थ है। इसमें निम्बार्क-सम्प्रदाय की शास्त्रीय विधि द्वारा बतलाई हुई निकुञ्ज युगलोपासना सर्वत्र प्रस्फुटित है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के समान अल्पाक्षर वाले

अनुष्टुप्-छन्द में रचा हुआ यह काव्य-प्रसाद और माधुर्यगुण से समन्वित सहज आह्लादरस को समुल्लसित करता है। अत्यन्त पवित्र उज्ज्वल रस की वियोगावस्था का वर्णन तो सहृदयों में आनन्द की अनुभूति को स्वाभाविक सरलता से व्यक्त (जागृत) करता है, किन्तु 'श्रीराधाशतक' काव्य में श्रीनिकुञ्जेश्वरी के साहचर्य की युगल-संयोगावस्था भी रसानुभूति को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाती है। वाचक या श्रोता को रस में निमग्न सराबोर होते ही बन पड़ता है, पद-पद पर आह्लादरस की अनुभूति होने से ही पाठ आरम्भ करने पर पूर्ण करके ही विराम लेना होता है, यह वैशिष्ट्य अन्यत्र दुर्लभ है।

(8) श्रीजानकीवल्लभस्तवः

अहैतुकी कृपासिन्धु युगलकिशोर श्यामाश्याम के अन्तरङ्ग परिकर ही कर पाते हैं, उस अलौकिक माधुर्य रस का वर्णन, जो किसी प्राकृत साधन से सम्भव नहीं है। वह कृपासाध्य वस्तु है। माधुर्यसिन्धु के बिन्दु मात्र से यह सारा संसार आनन्दित हो उठता है। माधुर्यसिन्धु के बिन्दु की उपलब्धि भी सद्‌गुरु के बिना नहीं हो सकती। अतः माधुर्य रसपिपासु साधकों के लिए सद्‌गुरु का स्मरण ही मुख्य साधन है। परम दयामय पूर्वाचार्यवर्यों ने जागतिक जीवों के कल्याण हेतु दार्शनिक विवेचना के साथ मङ्गलमय स्तोत्रों तथा वाणीग्रन्थों के माध्यम से माधुर्य उपासना का मार्ग बतलाया है।

उन्हीं पूर्वाचार्यचरणों की सरणि का अनुसरण करते हुये वर्तमान आचार्यचरण अनन्त श्रीविभूषित जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री "श्रीजी" महाराज ने काव्यमयी भाषा में अपनी अनवरत साधना से अनेक स्तोत्र-रत्नों का सर्जन किया है।

पूज्य आचार्यश्री की बहुमुखी प्रतिभा ने अनन्तकल्याण-गुणसागर, भगवान् श्रीसर्वेश्वर प्रभु की अनन्त विभूतियों का वर्णन करके श्रीनिम्बार्काभिमत समन्वयात्मक द्वैताद्वैत दर्शन का दिग्दर्शन कराया है। अतः किसी भी साधक को भ्रमित नहीं होना चाहिये। "श्रीजानकीवल्लभस्तव" पूज्य आचार्यश्री की अभिनव रचना है। इसका पठन, मनन जानकीजीवन श्रीरामभद्र के मङ्गलमय चरणारविन्द में अनवरत अनुरक्ति एवं भक्ति-वृद्धि कराने वाला है।

(9) श्रीमाधवप्रपन्नाष्टकम्

श्रीराधामुकुन्द भगवान् के युगल चरणारविन्दों को प्रणमन करने का मुक्ति का निर्विवाद अनायास फल माना है, तथापि श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के अनन्यभक्ति रसोपासना में जो अलौकिक दिव्य रस की प्राप्ति होती है, इसकी क्षमता में मुक्ति का उत्तम फल भी अधिक श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। अनन्य भक्ति रस की उपलब्धि में अनिर्वचनीय सुखानुभूति प्राप्तकर भक्तजन कृतकृत्य हो जाते हैं। इसी के लिए स्वल्पकाय मधुरतम पदावलियों से सुललित अष्टक स्तोत्र "श्रीमाधवप्रपन्नाष्टक" अनन्तश्रीविभूषित जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री "श्रीजी" महाराज द्वारा अकारण करुणाकर अभिनव रचना रचित की गई है, जो भक्ति रस की अजस्रधारा प्रवाहित कर भक्तजन मानस को सुखाप्लावित

एवं परमाह्लादित करती हुई श्रीयुगलचरणारविन्दों में प्रीतिवर्धन करती है। अर्थावबोध के साथ पाठ करना फलदायक होता है। इसीलिए यहाँ सम्पूर्ण स्तोत्र का हिन्दी अनुवाद स्वयं आपश्री द्वारा किया गया है। इस वसुन्धरा पर आपके अवतरित होने का हेतु ऐसी नाना रचनाएँ हैं।

(10) श्रीराधासर्वेश्वरालोक

अनन्तश्रीविभूषित जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री "श्रीजी" महाराज की मौलिक साहित्य रचनाओं में "**श्रीराधासर्वेश्वरालोकः**" नामक ग्रन्थ नित्यनिकुञ्जविहारी श्यामाश्याम श्रीराधासर्वेश्वर प्रभु की ललित लीलाओं को प्रकाशित करने वाली अनुपम रचना है। हिन्दी भावार्थ सहित संस्कृत श्लोकों, हिन्दी दोहों, पदावलियों का गुम्फन सर्वजन-संवेद्य परम मनोहर बना है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के सिद्धान्त व उपासना के अनुसार श्रीराधामाधव, राधासर्वेश्वर, राधादामोदर, गोपीजनवल्लभ, निकुञ्जविहारी, आनन्दमनोहर, रूपमनोहर, राधाकृष्णविहारी, राधागोविन्द, राधागोपाल आदि नामों से युगलविग्रहों की तत्तद् स्थानों में प्रतिष्ठापूर्वक सतत आराधना होती है। उन्हीं आराध्य स्वरूपों का चिन्तन निरन्तर हो, एतदर्थ पूज्य आचार्यश्री ने अपनी दिव्य भावनाओं का समुद्‌गार इन रचनाओं में समाहित किया है। प्रस्तुत रचना श्री राधासर्वेश्वर प्रभु की लीला-चिन्तन का दिव्य आलोक है। इसके स्वाध्याय से श्रद्धालु भावुकजनों को निश्चय ही भगवल्लीलाओं की अनुभूति होगी, ऐसा दृढ़ विश्वास है।

(11) श्रीनिम्बार्कचरितम्

अनन्तश्रीविभूषित जगद्‌गुरु श्रीनिम्बाकाचार्यपीठाधीश्वर श्री श्रीजीमहाराज द्वारा विरचित एवं प्रकाशित ग्रन्थमाला में 'श्रीनिम्बार्कचरितम्' नामक गद्यकाव्य महत्त्वपूर्ण पुष्प के रूप में गुम्फित हुआ है। यह काव्य वैदर्भी रीति, प्रसाद गुण, अनुप्रासोपमादि अलंकारों से अलंकृत है। शान्तरस एवं भक्तिभाव से परिपूर्ण इस काव्य में सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य के जीवनवृत्त का अवतरणोपक्रम से लेकर बालचरित, शिक्षा, दीक्षा, व्रजगमन, तपश्चर्या, निम्बार्काभिधान, तीर्थयात्रा, विविधलीला प्रसङ्ग तथा भाष्यादि ग्रन्थ रचनाओं के साथ साङ्गोपाङ्ग अनुपम प्रामाणिक वर्णन किया गया है।

तत्कालीन ऋषि-महर्षियों के आश्रमों का मनोहर सजीव चित्रण बरबस चित्त का आकर्षण करता है। पिता महर्षि अरुण का आदर्शमय अनुशासन एवं माता जयन्ती के वात्सल्य का जो अलौकिक उत्कर्ष और माधुर्य प्रस्तुत काव्य में देखने को मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह अभिनव गद्य काव्य समस्त विशेषतओं को अपने में समेटे हुए शब्दसौष्ठव की दृष्टि से महाकवि श्री अम्बिकादत्त जी व्यास द्वारा रचित 'शिवराज-विजय' की झलक प्रदर्शित करता है। इसमें न केवल चरित का ही वर्णन है, अपितु रसमयी उपासना, दार्शनिक सिद्धान्त एवं पूर्वाचार्य रचित विभिन्न फुटकर स्तोत्ररत्नों का भी समावेश है। अतः '**श्रीनिम्बार्कचरितम्**' लघुकलेवर होते हुए भी सारबाहुल्य से भरा हुआ है, जिसके

अध्ययन, मनन, चिन्तन से वेदान्त दर्शन के जिज्ञासुजनों की जिज्ञासा का समाधान स्वतः हो जायेगा।

पूज्य आचार्यश्री ने अपनी सतत-साहित्य-साधना द्वारा दिव्यानन्दोपलब्धि के लिए सुगम स्वाध्याय व भक्तिमार्ग बताने का जो अहैतुक अनुग्रह किया है, वह समस्त श्रद्धालुजनों का परम सौभाग्य है।

(12) श्रीराधामाधवशतकम्

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज अ.भा. श्री निम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) राजस्थान द्वारा रचित '**श्रीराधामाधवशतकम्**' जो कि श्रीवृन्दावनविहारी, प्रियाप्रियतमलाल, युगलकिशोर, श्यामाश्याम (श्रीराधाकृष्ण) की अन्तरङ्ग (निकुञ्ज) रहस्यमयी लीला (रसोपासना) से ओतप्रोत है।

सरल संस्कृत भाषा में अनुष्टुप् छन्दों द्वारा इस शतक की रचना होकर इसके श्लोकों के पूर्वार्द्ध (प्रथम आधे भाग) में श्रीनिकुञ्ज की विविध रसमयी लीलाओं का वर्णन है और उत्तरार्द्ध (पिछले आधे भाग) में "**राधामाधवमाराध्यं भजेद्वृन्दावनाधिपम्**" ऐसा पाठ सभी श्लोकों में है, अतः रसिक भावुक भक्तजनों के लिए नित्य पाठ में तथा निकुञ्ज रसवेत्ता रसिकजनों के लिए नित्य सत्संग (प्रवचनादि) में यह परम उपादेय सिद्ध है।

परम कृपालु आचार्यश्री ने इस शतक की रचना कर सभी भक्तजनों को नित्य पाठ करने के लिए आचार्यपदेन उपदेश देते हुए उक्त शतक के सभी श्लोकों में उत्तरार्द्ध में श्रीवृन्दावनाधीश्वर (वृन्दावन के राजा दोनों श्याम-राधिका रानी) इस रसिकों की वाणी के अनुसार परमाराध्य भगवान् श्रीराधामाधव का भजन करें अर्थात् भज् धातु के विधि लिङ्ग में 'भजेत्' क्रिया का प्रयोग करते हुए बताया है कि सब तत्त्वों का एकमात्र सार तत्त्व यही है कि अपने आराध्य का सदैव भजन करें। 'श्रीराधामाधवशतकम्' स्तोत्र साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान निर्धारित करता है।

(13) श्रीराधाराधना

इस बात पर हम राजस्थानवासी सदा गौरव का अनुभव करते रहे हैं कि राजस्थान की धरती पर वैष्णव सम्प्रदायों के दो प्रमुख आचार्यपीठ अवस्थित हैं। सलेमाबाद में निम्बार्कपीठ और नाथद्वारा में वल्लभपीठ। यह और भी अधिक गौरवास्पद है कि निम्बार्कपीठाधीश श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी स्वयं संस्कृत के अधिकारी विद्वान्, सरस कवि, मधुर वक्ता और परिनिष्ठित लेखक हैं। उनकी अनेक काव्यकृतियाँ संस्कृत-हिन्दी और ब्रजभाषा में प्रकाशित हो चुकी हैं और विद्वज्जनों तथा भक्त-समुदाय में समादृत रही हैं।

श्री 'श्रीजी' महाराज की लेखनी अब भी निरन्तर सक्रिय और सर्जनरत है। इस लेखनी से प्रसूत सरस काव्यकृति '**श्रीराधाराधना**' संस्कृत, हिन्दी और ब्रजभाषा का त्रिवेणी संगम है तथा इसमें परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण की ह्लादिनीशक्ति श्री राधा के समस्त आयामों

की वन्दना निबद्ध है। संस्कृत के 51 अनुष्टुप् छन्दोबद्ध पद्यों में, हिन्दी के 51 दोहों में तथा ब्रजभाषा की 25 गीतियों में निकुञ्जलीलेश्वर, सर्वेश्वर प्रभु की हृदयाह्लादिनी वृषभानुनन्दिनी की प्रशस्ति, ध्यान, महिमोल्लेख, वन्दना तथा गुणगणानुवर्णन है।

संस्कृत पद्यों की शैली पारम्परिक स्तोत्रों की है तो दोहों की पारम्परिक काव्यों की। दोहों में श्री "श्रीजी" महाराज ने अपना काव्य संकेताभिधान 'शरण' चतुर्थ चरण में उल्लिखित भी किया है। यह कवियों की पारम्परिक शैली रही है। इस नाम संकेत को काव्य परम्परा में 'भनत' कहा जाता है। गीतियों में सरसता और गेयता पूर्णतः प्रतिफलित है। यह निर्विववाद है कि तीनों भाषाओं की काव्य-धाराओं का यह त्रिवेणी संगम "श्रीराधाराधना" उसी प्रकार विद्वज्जगत् में तथा काव्यरसिकवृन्द में प्रभूत स्वागत एवं आदर पायेगा, जिस प्रकार श्री "श्रीजी" महाराज की अन्य काव्यकृतियाँ पाती रही हैं।

इस नूतन काव्य-प्रसाद के अवदान द्वारा श्री 'श्रीजी' महाराज ने भक्तजनों को, जो नई पीयूषधारा प्रदान की है, उसके लिए सभी चिरऋणी रहेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

(14) नवनीतसुधा

निम्बार्क संप्रदाय के आद्यप्रवर्त्तक श्रीनिम्बाकाचार्य के द्वारा प्रणीत ग्रन्थ **'वेदान्त कामधेनु'—दश श्लोकी'** की व्याख्या संस्कृत गद्य में करके वर्तमान आचार्य श्रीराधासर्वेश्वर शरण देवाचार्य जी ने अत्यन्त उपयोगी कार्य किया है। ग्रन्थ का प्रकाशन वि.सं. 2052 में आचार्यपीठ के द्वारा किया गया है। संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड **पण्डित श्रीसत्यनारायण शास्त्री, श्री हरिशरण उपाध्याय, श्रीवासुदेवशरण उपाध्याय** आदि ने इस व्याख्या को आस्वादनीय एवं सार रूप बताया है। वेदान्त-आचार्य श्री वासुदेवशरण उपाध्याय के शब्दों में—

"श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वरैः "श्रीजी महाराजैः" श्रीराधासर्वेश्वरशरण-देवाचार्यैः पूर्वाचार्यसरणिमनुसरद्भिः सुरभारत्यां परमसरला, सरसा, सकलजनहृद्याऽनवद्या वेदान्तकामधेनोः सारूपा 'नवनीतसुधा'ख्या व्याख्या व्यधायि।

महाराजश्री ने इस व्याख्या परक ग्रन्थ के द्वारा निम्बार्क-दर्शन को जनोपयोगी एवं सुग्राह्य बनाने का सार्थक प्रयास किया है। रहस्यपरक श्लोकों की रसात्मक अभिव्यक्ति उनके हृदय की सुकोमलता एवं सरसता की दिग्दर्शक कही जा सकती है। संस्कृत व्याख्या के साथ ही हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है, जिससे भावुक भक्तजन उसके सार को समझ सकें। निम्बार्क वेदान्त की व्याख्या कर आचार्य श्री ने महनीयता एवं समयानुकूल आवश्यकता को पूरा करने की दिशा में उचित कार्य किया है।

(ख) हिन्दी कृतियाँ : विवरणात्मक-अध्ययन

(1) श्रीसर्वेश्वर सुधा-बिन्दु (श्रीराधा-सर्वेश्वर-शतक)

"श्रीसर्वेश्वर सुधाबिन्दु" अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज की अनुपम रचना है, जिसमें निम्बार्कीय

रसोपासना का मूलतत्त्व 'बीज-बिन्दुवत्' साररूप में प्रतिपादित है। माधुर्यभाव से परिपूर्ण कोमल-कान्त पदावली एवं रागबद्ध गीति में यहाँ निम्बार्कीय-सहचरी-सेवा नित्यकेलि तत्त्व, युगल स्वरूप एवं उनके लीला-लीलाधाम आदि का सारगर्भित मार्मिक वर्णन हुआ है। ग्रन्थकार स्वयं रसिक भक्त-शिरोमणि, रसोपासना मर्मज्ञाचार्य हैं तथा आप प्रतिपल माधुर्यभाव समन्वित प्रिया-प्रियतम की सहचरी सेवा में निमग्न रहने वाले परम वीतरागी आचार्य होने से ग्रन्थ के प्रत्येक पद में अपने हृदय की उदात्त रसिक भावना कोमलकान्त सरस पदावली, सुमधुर सुसज्जित भाषा, ललित-लय एवं सुन्दर संगीत के साथ रसधारावत् प्रवाहित हुई है। भावुक भक्तों एवं रसिकजनों के कल्याणार्थ आपने प्रस्तुत ग्रन्थ में निम्बार्कीय रसोपासना का जो सरस सारगर्भित सांगोपांग एवं प्राचीन कीर्तन, परम्परानुरूप विश्लेषण किया है, वह वस्तुतः अत्यन्त महनीय उपादेय और स्तुत्य है। आपके द्वारा देववाणी में विरचित पूर्ववर्ती सभी ग्रन्थ विद्वानों के कण्ठहार हैं, पर प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दीभाषी सामान्य भक्तों के लिए भगवत्प्रसाद स्वरूप है अथवा यों कहिये कि सरस-सुमधुर-प्रसादपूर्ण-प्राञ्जल हिन्दी भाषा की यह कोमल-पदावली पीयूषवर्षिणी मेघमाला से निसृत रसधारा है, जो पाषाण हृदय में भी अन्तर्गर्भा-सलिला प्रवाहित करने की क्षमता रखती है।

कलियुग के कुप्रभाव से आज के भौतिक-संघर्षवादी विश्व पर अनेक प्रकार के दुःख-कलह एवं विनाश से भरे काले-पीले रक्तिम मेघ आच्छादित हैं, जिनमें प्रलय-विभीषिका का विषाक्त प्रलयंकारी सागर समाहित है, जो मूसलधारी विपुल वेग से बरसकर धरित्री को पुनः अपनी ही क्रोड में समेट लेना चाहता है। आज के भौतिकवादी साहित्य-साधक इस मेघाच्छादित वातावरण को उत्प्रेरित कर रहे हैं, जिनकी कुण्ठित एवं प्रेरित वाणी येन-केन प्रकारेण किसी राजनीति, मतवाद एवं संकुचित सिद्धि से आबद्ध है। वे अपनी सर्जनाओं में 'वर्ग-संघर्ष', 'कामाचार' एवं थोथी पाश्चात्य वैचारिक नवीनता उभारकर ऐसे ही प्रलयंकारी 'सागर' का आह्वान कर रहे हैं। यह सारा कलियुगी प्रपंच सर्वशक्तिमान् की अविद्यामाया का प्रसार है, पर जो ज्ञानी और भक्त हैं वे इस मायिक संसार के नश्वर भौतिकवादी आनन्द से ऊपर उठकर भगवद्-भक्ति रसामृत के प्यासे होते हैं। **महात्मा कबीर** की भाँति वे निर्मल सात्विक बुद्धि से संसार को देखते हैं—

"बगुली नीर बटोलिया सायर चढ्या कलंक।
और पखेरू पी गये हंस न बोवै चंच॥"

भगवद्भक्ति रसामृत की तृषा से आतुर चातक भक्त तो 'अगस्त्य मुनि' की भाँति 'सात समुद्रों' के प्यासे नहीं, वरन् वे तो 'स्वाति बूँद' के साधक हैं। अतः चातक सदृश अनन्य निष्ठावान् रसिक-भक्त, जिन्हें प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्ण की निकुञ्जकेलि-रसमाधुरी का रसकण अभिलषित है, उन्हीं के लिए यह भगवत्स्वरूप **'श्रीसर्वेश्वर सुधा-बिन्दु'** प्रस्तुत है। इसकी 'सुधा बिन्दु' उन रसिकों के लिए है, जिनकी भावना में 'युगल-केलि-रसकण' की गरिमा 'क्षीर सागर' से भी महान् है।

इस ग्रन्थ का नाम निम्बार्क-सम्प्रदाय की उपासना-परम्प्रा एवं ऐतिहासिक विश्रुति का परिचायक है। निम्बार्क-सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है, जिसके पूर्ववर्ती प्रचलित नाम हंस, सनक-सनकादिक-सनत्कुमार तथा श्रीनारद आदि भक्ति-सम्प्रदाय शास्त्रोक्त हैं। आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र द्वारा द्वैताद्वैत दर्शन का पूर्ववर्ती परम्परागत सम्प्रदाय में प्रवर्तन एवं प्रतिष्ठापन के पश्चात् उसका नाम 'श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय' प्रचलित हुआ। इस ऐतिह्य परम्परा एवं प्राचीनता के प्रमाण सनकादिक-सुसेव्य स्वरूप गुञ्जाफल सदृश-सूक्ष्म श्रीशालिग्राम विग्रह परमाराध्य 'श्रीसर्वेश्वर' भगवान् हैं। सनकादिकों ने महर्षि श्रीनारद को इन्हीं 'सर्वेश्वर' भगवान् की सेवा प्रदान की तथा तदुपरान्त श्रीनारद ने अपने शिष्य आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र को, इसी प्राचीन आचार्य परम्परानुसार प्राप्त 'श्रीसर्वेश्वर भगवान्' की सेवा आज भी श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' महाराज को प्राप्त है। **'श्रीसर्वेश्वर'** शालिग्राम विग्रह अत्यन्त दिव्य है, जिनके अन्तर्गर्भ में अत्यन्त उज्ज्वल स्वर्णाभावेष्टित 'युगलपद-प्रतीक' दो रेखायें अंकित हैं। जिनकी सेवा का अधिकार 'श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर' को ही है। 'श्रीसर्वेश्वर भगवान्' का दिव्य विग्रह अहर्निश सुसुगन्धित इत्र में रजत सिंहासन पर विराजमान किया जाता है और नित्य प्रातः **पुरुषसूक्त** के सस्वर वेदपाठ सहित उनका गो-दुग्धाभिषेक किया जाता है। तत्पश्चात् उनके दर्शनों की अनुपम झाँकी होती है।

सर्वेश्वर प्रभु परम मनोहर।
मुक्ता मणिमय स्वर्ण सिंहासन मुदित विराजत मंडल वपु-धर।

'भगवान् श्रीसर्वेश्वर' की महिमा सर्वोपरि है। निम्बार्क सम्प्रदाय में वे ही साक्षात् परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं। वे ही आदि, अनादि, अनन्त, असीम तत्त्व हैं, वे ही अखिलब्रह्माण्डनायक, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान्, सृष्टि-विधायक-पालक-संहारक, सर्वसद्गुणालंकृत, सर्वान्तर्यामी, परमात्मा, परेश्वर, देवाधिदेव, परम विलक्षण एवं परात्पर हैं। उक्त ग्रन्थ में उनके इन्हीं विशेषणों से युक्त परम्परागत स्वरूप का सुन्दर विवेचन किया गया है—

"वन्दे श्रीसर्वेश्वरमनिशम्।
विधिशिवसुरपतिबहुवृन्दारक-वन्दितमंगलयुगलपदाब्जम्
जय नन्दनन्दन! जय सर्वेश्वर!!
श्रीसनकादिक परिसेवित हो ऋषिवर नारद समुपासित हो।
सकल सृष्टिपालक परमेश्वर! जय नन्दनन्दन जय सर्वेश्वर॥
श्रीनिम्बारक आराधित हो, गुंजाफल सम अभिराजत हो।
सूक्ष्म रूप में हो निखिलेश्वर! जय नन्दनन्दन जय सर्वेश्वर॥
परम्परागत परिपूजित हो, शालिगराम रुचिर शोभित हो॥"

* * *

"रे मन भज भज श्री सर्वेश्वर।
आनन्द सिन्धु रसधन पूरन ब्रह्म सनातन नित्य उजागर।

श्रुतिपुराण गावत निशिदिन ध्यावत ऋषि मुनि मन्त्र सुनाकर॥

सदा सुख बरसत श्री सर्वेश्वर!

निखिल भुवन मन मोहन सुन्दर परात्पर पूरन ब्रह्म सुरेश्वर॥"

निम्बार्कीय भक्त हृदय ने ऐसे ही श्रीकृष्ण स्वरूप 'श्रीसर्वेश्वर' भगवान् को शरणागतवत्सल, करुणासागर, पतितपावन, भक्त-संकटहारी माना है और उन्हीं के प्रति शरणागति चाही है—

"सकलनियन्ता करुणासागर, परम रसीलो मंगलकारी॥

सर्वेश्वर पद प्रीति करो मन।

शुद्ध भाव नत शरणागत हो विमल भगति चित दीन सदा बन॥

मम जीवनधन श्री सर्वेश्वर।

अनन्त कृपानिधि परम दयालु शरणागत नित्य कृपाकर॥"

निम्बार्क-सम्प्रदाय में '**रसो 'वै सः**" श्रुति के अनुसार श्रीकृष्ण के साक्षात् स्वरूप 'भगवान् सर्वेश्वर' रसरूप हैं। वे ही अखिल-सौन्दर्य-माधुर्य मंडित आनन्दकन्द नन्दनन्दन श्रीकृष्ण स्वेच्छा से रसविलास हेतु युगल स्वरूप श्रीप्रिया-प्रियतम के दिव्य रूप में प्रकट हो, नित्यधाम श्रीवृन्दावन में अहर्निश निकुञ्ज-क्रीड़ारत होते हैं। श्रीराधासर्वेश्वर, पूर्ण परात्पर, अभिन्न, अनन्त, अद्वय, सौन्दर्य-माधुर्य-गुणों में परस्पर सर्वथा अनुरूप, सनातन और नित्य हैं। आद्याचार्य श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्र ने दशश्लोकी ग्रन्थ में ऐसे ही परम-पावन दिव्यगुणालंकृत नित्यकिशोर-किशोरी युगलस्वरूप 'श्रीराधाकृष्ण' का स्वरूप निर्देश करते हुए सहचरी भाव से उनकी निकुञ्ज सेवा करने का उपदेश दिया है—

"स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।

व्यूहाङ्गिनं ब्रह्मपरं वरेण्यं, ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्॥

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामनुरूपसौभगाम्।

सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा, स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥"

'नित्य नूतन वयस' में अहर्निश निकुञ्ज-क्रीड़ारत रस-स्वरूप 'श्रीराधाकृष्ण' एक ही रस के उभय स्वरूप हैं। वे एक ही उज्ज्वल रसवारिधि के गौर-श्याम उभय कल्लोलरूप कमल सदृश हैं, जो परस्पर स्वेच्छा से समालिंगित तथा समानभाव से विलसित सनातन युग्म हैं। निम्बार्कीय रसोपासक ऐसे ही ब्रजवृन्दावन केलिविहारी—विहारिणीजू श्रीराधामुकुन्द की सर्वदा आराधना करते हैं। श्रीऔदुम्बराचार्यजी ने ऐसे ही अनिर्वचनीय युगलतत्त्व की सुन्दर व्याख्या की है—

"कल्लोलकौ वस्तुत एकरूपकौ राधामुकुन्दौ समभावभावितौ।

यद्वत्सुसम्पृक्तनिजाकृतिध्रुवावाराधया यौ व्रजवासिनौ सदा॥"

श्री हरिव्यासदेव कृत '**श्रीमहावाणीजी**' में निम्बार्कीय रसोपासना तत्त्व का सांगोपांग विवेचन हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ '**सर्वेश्वर सुधाबिन्दु**' का रस विवेचन अलौकिक है। सम्पूर्ण

ग्रन्थ में परम्परागत परम रसब्रह्म युगलस्वरूप 'श्रीराधासर्वेश्वर' का अनिर्वचनीय स्वरूप प्रतिपादित हुआ है—

"राधामाधव! ब्रजविपिनेश्वर! जय नन्दनन्दन! जय सर्वेश्वर।
विमल युगल वपु ललित बने हो, भक्तन हित यह रूप धरे हो॥
श्रीवृन्दावन कुञ्जमधुप हो नवल केलिरस विलसत नित हो।
रसिकेश्वर! हे श्रीरासेश्वर! जय नन्दनन्दन! जय सर्वेश्वर॥
युगल रूप वपु सतत विराजत, ललित छबीले नवकुञ्जेश्वर।
श्रीवृन्दावन नित्य धाम की क्रीड़त महितल सखीजनेश्वर॥"

आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र ने सखी भाव से 'युगल स्वरूप' श्रीराधाकृष्ण की निकुञ्ज-सेवा को सर्वोपरि अन्तरंग उपासना बताया है। 'सहचरी' जीवात्मा की अलौकिक अवस्था का नाम है। यह रसिकोपासक का परम भाव है, जिसमें वह अहर्निश निमग्न हो 'प्रिया-प्रियतम' के केलिकुञ्ज की सेवा करता है। ऐसे परम भावुक भक्तों के लिए ही उनके परमाराध्य 'श्रीराधामाधव' नित्य केलिधाम श्रीवृन्दावन में निकुञ्ज क्रीड़ारत होते हैं। **'सर्वेश्वर सुधा बिन्दु'** का आस्वादन करने वाले भावुक भक्तों को निश्चय ही कुञ्ज केलिरस श्रीराधाकृष्ण की 'निकुञ्ज केलि रसामृत बिन्दु' की अनुपम उपलब्धि होगी। निकुञ्ज क्रीड़ारत नित्य विहारी-विहारिणी जू की अनुपम झाँकी के दर्शन कर सहचरी भक्त के नेत्रों को अलौकिक आनन्दानुभूति होगी और उसका मन-मधुकर युगल चरणारविन्द का अनुरागी बन निरन्तर वहीं वास करने लगेगा—

"श्रीवन विहरत श्रीसर्वेश्वर।
नित्य किशोरी स्वामिनी राधा, सखीजन संग सुशोभित सुन्दर॥
वृन्दावन नव चिन्मय अवनी वीथिन विहरत मुदित मनोहर।
शरण सदा राधासर्वेश्वर रसिक निहारत नवल युगलवर॥
श्रीसर्वेश्वर रसिक छबीलो।
कुञ्ज सखी सह विहरत श्रीवन, परम प्रिया को परम रसीलो।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, प्रेम सुधा रस नित बरसीलो॥9॥"

सखी भक्तों के लिए 'नित्य विहारी विहारिणी-जू' की यह नित्य रस लीला नित्य नूतन, अहर्निश और विविध रूपा है। अनेक अगणित भावों और नव-नव उत्साहों से उनका विकास होता है। **'सर्वेश्वर सुधा बिन्दु'** का नित्य विहार लीला वर्णन अनूठा है। वेणुवादन, रास, कन्दुक लीला विहार, यमुना-केलि, होरी, फाग, बसन्त, पावस आदि रसलीला के जितने भी परम्परागत प्रसङ्ग हैं, प्रस्तुत ग्रन्थ में मार्मिक ढंग से चित्रित हुए हैं। कृष्ण-आह्लादिनी वृन्दावन स्वामिनी यूथेश्वरी सखीजन सर्वस्व श्रीराधिकाजी को गलबाँही दिये रसिक शिरोमणि आनन्द व सघन रूप माधव का वेणु विलास द्रष्टव्य है—

"नवकेलि रस विलसत माधव।
अतिकरुणामयी स्वामिनि श्यामा, संग सखीजन शोभित अभिनव।
रसिक शिरोमनि रसघन माधव धुनित अधरधर मुरलिमधुररव॥"

'महारास' जहाँ एक ही रसरूप युगल स्वरूप श्रीराधाकृष्ण के रस विलास का चरमोत्कर्ष अभिव्यक्त होता है, रासलीलापरिकर, लीला-लीलामय और लीलाधाम में एक ही रस की अनुभूति कर चराचर विश्व रसमय हो जाता है। वैदिक ऋचाओं में ऋषि-मुनियों ने जिस अनिर्वचनीय महारास तत्त्व को '**नेति-नेति**' कहकर गाया है, उसी 'श्रीराधासर्वेश्वर' महारास की अलभ्य 'सुधाबिन्दु' का रस ग्रहणीय है—

"आज युगलवर वंशीवट तर, करत रासरस केलि सखीरी।
श्रीवृन्दावन रसिक हृदय धन, चिनमय रसधन ललित लसीरी॥
रवितनया जल विमल सुभग शुचि, बहत मनोहर दरस भलीरी।
विधु नभ राजत लता प्रफुल्लित, सरद सुहावनि सुखद अलीरी॥
मञ्जुल मुरली मधुर सरस रव, बीन-मृदङ्ग करताल धुनीरी।
अलिकुल गुञ्जन सखिजनपुञ्जन, निरतत जोरी मुदित बनीरी॥
श्यामाश्याम मुखाम्बुज शोभा, लिखि अगनित रति बिलज भयीरी।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, यह छवि अनुपम हृदय बसीरी॥"

जलकेलि, वसन्त होरी, पावस लीला के नित्य विहार पद ग्रन्थ में देखते ही बनते हैं, पर नित्य विलासरत प्रिया-प्रियतम के दिव्य स्वरूप की सर्वाधिक सुन्दर झाँकी पावस लीला पद में प्रकट हुई है। पावस की चपलचपलायुक्त श्यामल घटा से आच्छादित परम-पावन अतिकमनीय श्रीवृन्दावनावस्थित सुरम्य केलिकुञ्ज, जहाँ कोकिल-मयूर-दादुर की सुमधुर रसवाणी से रसोत्प्रेरित हो, कोटिकाम-कलानिधि, रसिकेश्वर, सौन्दर्य-माधुर्य-मण्डित श्रीप्रिया-प्रियतम की नयनाभिराम जोड़ी रतिरत है तथा दिव्यमेघावली की मन्द-मन्द नवनव रसयुक्त जलकणिकाओं से रससिक्त हो रही है।

केलिरत श्यामश्याम के यही दिव्य-दर्शन निकुञ्ज रस का परमानन्द है। अहर्निश निकुञ्ज-केलि-क्रीड़ा के विधान में दिव्य-भाव समन्वित सहचरी के नेत्र कुञ्जरन्ध्रों से इसी दिव्यदर्शन के चिराभिलाषी हैं—धन्य है यह छवि—

"छाई श्याम घटा अति प्यारी।
श्रीवृन्दावन पावन धरणी वरषत सरसत सुन्दर वारी॥
युगलकिशोर रतिरस भीजत उमगत सुखरस परम अपारी।
कोकिल कूजन मोरमधुर धुनि सुनि मनमोद महारी॥
दादुर घोर करत अति सुन्दर वेणु बजावत कुञ्ज बिहारी।
शरण सदा 'राधासर्वेश्वर' चपला चमकत पुनि-पुनि प्यारी॥"

निम्बार्क भगवान् ने दश-श्लोकी में **"सखी सहस्रैः परिसेवितां सदा, स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्"** कहकर श्रीराधिका प्रधान सहचरी भक्ति का निर्देश किया है। श्रीराधिकाजी निम्बार्कियों की 'सर्वेश्वरी' हैं। 'महावाणीजी' में परमाराध्या श्रीराधाजी के स्वरूप का सुन्दर विवेचन हुआ है। श्रीराधाजी परब्रह्म श्रीकृष्ण की परमाह्लादिनी शक्ति है, कृष्ण प्रतिपल राधारूप में रमण करते हैं। श्रीकृष्ण के अनुरूप श्रीराधिकाजी भी अनन्त सौन्दर्य-माधुर्य मण्डित दिव्यगुणालंकृत परमसुन्दरी हैं। परमदिव्य रस का नाम ही 'राधा' है। राधा बिना, कृष्ण आधे हैं। वहीं रासेश्वरी, वृन्दावनेश्वरी, निकुञ्ज रस विस्तारिणी, नित्यविहारिणी प्रियाजी हैं। सहचरी भक्त को स्वामिनी श्रीराधा कृपा से ही निकुञ्ज-सेवा सुलभ होती है। अतः 'श्रीराधाजी' ही निम्बार्कीय भक्तों की परमाराध्या इष्टदेवी हैं। इस ग्रन्थ में श्रीराधाजी के इसी दिव्य स्वरूप का प्रतिपादन हुआ है—

"राधा राधा गावो रस राधा राधा राधा बोलो नित राधा।
रसिकनि राधा मोहनि राधा सोहनि राधा मेटत बाधा॥
पुलकनि राधा झलकनि राधा विहसनि राधा प्रेम अगाधा।
सरसनि राधा बरसनि राधा हरषनि राधा सबसुख साधा॥
बिलसनि राधा वरदनि राधा विमुदनि राधा कृष्ण आराधा।
शरण सदा 'राधासर्वेश्वर' राधा राधा रसदा राधा।।38॥"

'लीलामय' की भाँति 'लीलाधाम' श्रीवृन्दावन भी परम दिव्य है, वहीं नित्यविहार-विहारिणीजू का केलिकुञ्ज है। रसिकों की वही 'योगपीठ' है, जो गोलोक से महनीय और परमपावन है, जिसके एक रजकण में अनेक तीर्थों का समागम है। उद्धव जैसे परमज्ञानी भक्तों ने भी **'ब्रज की लता पता मोहि कीजै'** कहकर वृन्दावनवास की अभिलाषा व्यक्त की है। **'रे मन श्रीवृन्दावन विपिन विहार'** की यही रसिकाचार्य-भावना श्रीधाम के प्रति अत्यन्त निष्ठा के साथ उक्त ग्रन्थ में अवलोकनीय है—

"रे मन चल वृन्दावन धाम।
जहाँ निरन्तर बहत रसधारा, जन बाधा नहिं व्यापत काम॥
युगलनाम रस पीवो प्रतिपल, पावो अभिलाष परम अभिराम॥"

'नमामि नित्यं श्रीनिम्बार्कम्', 'निम्बारक आधार हमारे' आदि पदों में आचार्यश्री निम्बार्कमहामुनीन्द्र का ऐतिहासिक स्तवन एवं श्रद्धामय स्मरण किया गया है। अन्य स्थलों पर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज एवं श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी के परम पावन यशस्वी व्यक्तित्व का स्तवन हुआ है।

ग्रन्थ में विविध पर्वों-उत्सवों व अष्टयाम सेवाओं की झाँकियों का चित्रण भी अनूठा बन पड़ा है। ग्रन्थ में वर्णित 'भगवान् के छप्पन भोग' का वर्णन क्रम अनूठा है, जिसमें विविध भाषा-शब्दों के माध्यम से नाम परिगणनात्मक शैली में अगणित व्यञ्जनों का वर्णन देखते हुए बनता है।

"लड्डू-जलेबी-मठरी-इमरती
पेठा सुमीठा रबडी रसीली।
गुलाबजामुन-अनुप-तस्मै,
श्रीभोग-सेवा वृष भानुजा के॥
केला-अनार-कलराज रसाल लीची,
अंगूर सेव बदरी ककडी पपीता।
चीकू चकोतर सुनाक सुपाक-जम्बू,
पावो सुभोज्य फल हैं वृषभानुजा श्री॥"

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य साधनात्मक तो है ही, पर साथ ही उसमें उच्चकोटि की काव्यात्मकता भी अभिव्यक्त हुई है। गीति, राग, लय, पदविन्यास, कोमलकांत पदावली, मधुर-रस, मनोरम प्रभृति-पर्यावरण, अलंकार-अनुप्रास से युक्त संस्कृतनिष्ठ कोमल हिन्दी भाषा आदि काव्यगत विशेषताओं से परिपूर्ण यह '**सर्वेश्वर सुधा बिन्दु**' 'गागर में सागर' की भाँति महनीय ग्रन्थ है, जो हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना अक्षुण्ण योगदान देता है।

(2) विवेक-वल्ली

आचार्यश्री द्वारा विरचित '**विवेकवल्ली**' मानव की अन्तरात्मा में सुषुप्त उज्ज्वलतम अन्तरज्ञान को प्रेरित कर उसमें सत्यासत्य की निर्णयात्मक ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा को जगाती है। यह मानव मात्र के उभय लोकात्मक जीवन को '**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' के उच्चतम आदर्श में प्रतिष्ठित करने वाली **सत्‌शिक्षा** है। आचार्यश्री के वचनामृत से सिंचित इस 'विवेकवल्ली' से निर्झरित रसात्मक जीवनदायिनी सत्‌शिक्षा से मानव मन में सात्विक एवं सदाचारपूर्ण नित्यात्मक गुणों का संचरण होगा, जिससे उसका पुष्पित-सुरभित एवं फलित जीवन निश्चय ही सन्मान्य भी हो जायेगा—

"सत्‌शिक्षा जीवन सुभग, उज्ज्वल अन्तरज्ञान।
राधासर्वेश्वरशरण, उभय लोक सन्मान॥"

अति दानवी वैज्ञानिक बुद्धि की जन्मदात्री आज की असत् शिक्षा ने, अनेक कुण्ठाओं से ग्रस्त अर्थ-पैशाचिक मानव-सृष्टि की सर्जना की है, जिससे मानव का जीवन अत्यन्त कलहपूर्ण, नीरस, भावनाशून्य तथा आदर्शविहीन होकर अति-नारकीय बन गया है। परिणामतः सृष्टि प्रलय के कगार पर खड़ी है, ऐसी विषम-स्थिति में भवसागर के विविध ताप-पाप-पुंजों की उत्ताल तरंगों से प्रताड़ित, क्षणभंगुरीय भौतिक सुखों के चाकचिक्य से दिग्भ्रमित, मायाजनित मृगतृष्णा के जल-भंवर में फंसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ मानव के जीवन को गन्तव्य की ओर प्रेरित करने वाले इस '**विवेकवल्ली ग्रन्थ**' द्वारा प्रज्ज्वलित आकाशदीप का प्रकाश आज के मानव को आध्यात्मिकता से पुष्ट, सर्वाङ्गपूर्ण सुखद जीवन के सुपथ को उद्‌घाटित करने वाली सुदृष्टि प्रदान करता है—

"उज्ज्वल दृष्टि सुपथ जल, मार्ग-भ्रष्ट न होय।
राधासर्वेश्वरशरण, पापपुंज सब धोय॥"

नवनीत-सदृश सुकोमलता, शुचिता एवं परम वैष्णवी साधुता से आप्लावित, विश्वजनीय-परपीड़ा-परिताप की उदात्त विदग्धता से आलोड़ित, आचार्यश्री के करुणार्णव-हृदय से निसृत, 'विवेकवल्ली' रूपी इस उपदेशामृत-कलश से अखिल-सृष्टि के परित्राणार्थ, सर्वजनहिताय, अनेकानेक शाश्वत एवं युग-सापेक्ष्य विवेक, पाण्डित्यपूर्ण एवं काव्यकलात्मक शैली में उद्घाटित हुये हैं।

आज की अगणित महाविनाशकारी त्रासदियाँ विश्व के महामनीषी युग-चिन्तकों के समक्ष विचारणीय चुनौतियाँ हैं। स्वचालित दैत्याकार-मशीनों पर आधारित विश्वव्यापी औद्योगीकरण से वैज्ञानिकों ने पृथ्वी का क्रूरतापूर्वक असीमित दोहन किया है, जिससे उत्पन्न प्राणघाती प्रदूषित पर्यावरण ने पंचभूतात्मक सृष्टि के अस्तित्व पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया है। आचार्यश्री ने प्राचीन संस्कृति-सम्मत सामाजिक समता तथा वर्णाश्रमधर्मिता का समर्थन किया है तथा वे दूसरी ओर जल-थल-आकाश-वायु में परिव्याप्त प्रदूषणों के प्रति गहरी चिंता व्यक्त करते हुये मानवमात्र में विवेकजन्य संचेतना को सचेष्ट करने का स्तुत्य प्रयास कर रहे हैं—

"नाना वाहन-धूम से, वायुप्रदूषित पूर्ण।
राधासर्वेश्वरशरण, परमनिवारण तूर्ण॥
कोलाहल करन अज्ञता, वृथा ही वार्तालाप।
राधासर्वेश्वरशरण, कृष्ण नाम कर जाप॥
नगर—ग्राम का दूषित जल, संगम गंगाकूल।
राधासर्वेश्वरशरण, अवरोधन अनुकूल॥"

वन एवं वन्य जीव संरक्षण, पशु-पक्षी एवं पादप संवर्धन, गंगोदक-यमुनोदक शोधन, गोरक्षा, संस्कृति-संरक्षण आदि रचनात्मक कार्य आज की अपरिहार्य अनिवार्यताएँ हैं—

"पशु-पक्षी सेवा करो, मत काटो बनबाग।
राधासर्वेश्वरशरण, इनमें हो अनुराग॥
द्रुमवल्ली छाया करैं, दलफल पुष्प प्रदान।
राधासर्वेश्वरशरण, पर उपकार महान॥"

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उत्पन्न खाद्याभाव के समाधानार्थ **हरित-क्रांति** युग सापेक्ष्य है, पर कृत्रिम उपायों से धरती की सहज उर्वराशक्ति का निरन्तर ह्रास हो रहा है, तथा कृत्रिमताओं से उत्पन्न अन्न-जल-सब्जियाँ-फल आदि प्रदूषणयुक्त होने से अति रोगकारी हैं। आचार्यश्री ने इसका सापेक्ष-प्रतिवाद उजागर किया है—

"विदूषित जल सम्पोषित, साग करै अति हानि।
राधासर्वेश्वरशरण, परिहर सेवन ज्ञानि॥
प्रचलित कृत्रिम खाद में, नाना रोग विकार।
राधासर्वेश्वरशरण, फसल प्रयोग प्रहार॥

कृत्रिम विधि परिपक्व फल, रोगद परम अखाद्य।
राधासर्वेश्वरशरण, वैज्ञानिक प्रतिपाद्य ।।"

इसी संदर्भ में अन्नादि निरामिषाहारों की क्षतिपूर्ति हेतु अण्डा-मछली-मांस आदि का बृहद् उत्पादन करते हुये सामिषाहारों के प्रति स्वभाव और सुरुचि के वर्द्धनार्थ प्रचार-प्रसार भले ही स्वावलम्बन की ओर अग्रेसित करता हो, पर इनके कुप्रभाव से उत्पन्न अनेकानेक शारीरिक व मानसिक व्याधियाँ तथा उत्तेजनात्मक मानवीय व्यवहार से होने वाले पैशाचिक अपराध मानव जीवन को निरन्तर अशान्त और नारकीय बना रहे हैं। इसी कारण आचार्यश्री ने इनका प्रबल विरोध किया है—

"अण्डा-मछली-मद्यपान, तजो आमिषाहार।
राधासर्वेश्वरशरण, मुख उज्ज्वल संसार ।।"

मानव जीवन को देवतुल्य दिव्य बनाने वाले परम्परागत आदर्शों, रीति-नीति परक लोकविश्वासों, धार्मिक-सामाजिक-पारिवारिक संस्कारों तथा सांस्कृतिक मान्यताओं को विखंडित करने वाला सांस्कृतिक प्रदूषण, जो चलचित्र, दूरदर्शन, वीडियो, उपन्यास आदि माध्यमों से सेक्स-रोमांस के अश्लील-प्रसंगों तथा मारधाड़ के हिंसात्मक प्रदर्शनों से नई सन्तति में उच्छृङ्खलता-अनुशासनहीनता, हिंसक-क्रूरता, अनाचार-बलात्कार, मद्यपान-आतंकवाद आदि के महानाशकारी कुसंस्कारों का विद्युतवत् प्रसारण हो रहा है। इस विडम्बना से आज संस्कृति और धर्म के संरक्षक आचार्यों एवं महामनीषियों के हृदय संतप्त हैं। सर्वाच्छादित सामाजिक-सांस्कृतिक-चारित्रिक प्रदूषणों के समाधानार्थ आचार्यश्री ने परम्परागत सत्शास्त्रों पर आधारित धार्मिक-नैतिक-सार्वभौमिक तत्त्वों से समन्वित सत्शिक्षा-व्यवस्था का विवेक जागृत किया है—

"सद्ग्रन्थों का ज्ञान हो, असद्ग्रन्थ परित्याग।
राधासर्वेश्वरशरण, उत्तम जन बड़भाग ।।
सुरभारती भाषा का, अनुशीलन परिज्ञान।
राधासर्वेश्वरशरण, निज कर्त्तव्य महान।
जीवन शिक्षा मूल है, शिक्षा सर्वाधार।
राधासर्वेश्वरशरण, शिक्षा करो संचार ।।
शिक्षा उत्तम वही है, जिससे हो सद्बोध।
राधासर्वेश्वरशरण, पावन गुण अक्रोध ।।"

मादक द्रव्यों का व्यापक-व्यसन आधुनिक युग की महाविनाशकारी त्रासदी है। विश्वव्यापी षड्यंत्रों-हत्याओं, राजनैतिक-आर्थिक-धार्मिक कुचक्रों तथा आतंकवादी महातांडवों की सूत्रधारिणी, सर्वविध शासन-तंत्रों की विश्व-साम्राज्ञी, यातायात दुर्घटनाओं की मूलाधार मदिरा महारानी का आज झोंपड-पट्टी से राजमहलों तक एकछत्र राज्य है। हीरोइन, स्मैक, ब्राउनसुगर जैसे प्राणघाती नशीले पदार्थों की अन्तर्राष्ट्रीय तस्करी प्रत्येक राष्ट्र की चिंता का

विषय बन गई है। भारतीय समाज में भी अब मद्यपान, कुलीनता का पर्याय, सामाजिक अहम् एवं परमऐश्वर्ययुक्त श्रेष्ठता का प्रतीक बन गया है। चाय-गुटका-जर्दादि का घर-घर प्रचलन फैशन और आतिथ्य का प्रमुख आधार बन चुका है। नशा-निरोधक सरकारी नीति में घोर विरोधाभास-चिन्तनीय है। एक ओर सरकार मुक्त हस्त से उत्पादकों को लाइसेंस एवं अर्थ सहायता प्रदान कर रही है, तो दूसरी ओर उत्पादों पर 'स्वास्थ्य के लिए हानिकर है' आदि अक्षरांकित 'लेबल' लगाकर जनहित संरक्षण का दावा कर रही है। कैंसर जैसी असाध्य-प्राणघातक-व्याधि का जनक गुटका-जर्दा आज भगवन्नामों, मुग्धकारी देवचित्रों से सुसज्जित आवरणों से युक्त होकर अबोध बालकों के भी मुँह लग गया है। आचार्यश्री ने अपनी प्रखर विवेक-वाणी से नशा-निषेध का प्रबल उद्घोष किया है—

"सम्प्रति प्रचलित चाय से, विविध रोग संचार।
राधासर्वेश्वरशरण, उसका त्याग प्रचार॥
गुटका एक अखाद्य है, तज दो महानुभाव।
राधासर्वेश्वरशरण, अर्बुद (कैंसर) रोग प्रभाव॥
मादक द्रव्य असेव्य हैं, व्याधिवर्द्धक निंद्य।
राधासर्वेश्वरशरण, जीवन करते भिंद्य॥"

विश्व की महाशक्तियाँ आणविक हथियारों के व्यापार-प्रसार हेतु विश्व-राजनीति में, धर्म-भाषा-क्षेत्र सीमादि के कल्पित विवाद खड़े कर येन-केन-प्रकारेण राष्ट्रों में परस्पर शीतयुद्ध का चक्रव्यूह रचती रहती हैं। लोकतंत्र के यमराज सैनिक तानाशाह, अन्तर्राष्ट्रीय कुख्यात तस्कर एवं गुप्तचर संघटन धार्मिक उन्माद और आर्थिक प्रलोभनों से युवाशक्ति को दिग्भ्रमित कर विकासमान-शांतिप्रिय राष्ट्रों में विस्फोटक तोड़फोड़-साम्प्रदायिक हिंसा और अलगाववाद-आतंकवाद का महातांडव करवा रहे हैं। पूँजीवादी देशों द्वारा संगृहीत रसायनिक आणविक विस्फोटकों तथा कम्प्यूटर संचालित अति संहारक अस्त्र-शस्त्रों का विपुल भंडार आदि निष्क्रिय और विनिष्ट नहीं किया गया तो बिना विश्वयुद्ध के ही, इनके रख-रखाव और परीक्षणों से उत्पन्न प्रदूषित पर्यावरण से पंचमहाभूत सृष्टि कुछ ही वर्षों में स्वतः समाप्त हो जायेगी।

युग के महान् चिन्तक आचार्यश्री ने विश्वशांति-सौहार्द की पुनःस्थापना के संदर्भ में शस्त्रीकरण का घोर-विरोध किया है। उन्होंने विश्वशांति के लिए अहिंसा-दया-करुणा, विश्वबन्धुत्व, सहिष्णुता सह-अस्तित्व, स्वच्छ-राजनीति एवं राजनेताओं के पवित्र आचरण पर बल देते हुये भारतीय-संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रबल प्रतिपादन किया है। आपने राजनीति में धर्म के सार्वभौमिक आचरण की अपरिहार्य अनिवार्यता निर्देशित की है। आपकी मान्यतानुसार धर्मरहित राजनीति वारांगना है। शासन की रीति-नीति और शासक के आचरण में धर्म ही उसका प्राण है, जिसकी अनुपस्थिति में मानव-कल्याण कोरी कल्पना है। आचार्यश्री द्वारा उपदेष्टित युग-संदर्भ के ऐसे विवेक अत्यन्त सटीक और सार्थक हैं—

"परस्पर सौहार्द हो, नहीं करो संघर्ष।
राधासर्वेश्वरशरण, पुनर्मिलन संतर्ष॥
केवल अपनी मत कहो, सुनो और की बात।
राधासर्वेश्वरशरण, सरल भाव प्रणिपात॥
धर्मरहित जो राजनीति, वारांगना अधिरूप।
राधासर्वेश्वरशरण, धर्मविहित हो रूप॥
स्वार्थ रहित शासन करै, वही प्रशासक शुद्ध।
राधासर्वेश्वरशरण, नहिं हो देश विरुद्ध॥
प्रजानुरंजन धर्मरत, सत्य-दया शुभ कर्म।
राधासर्वेश्वरशरण, राजा-शासक धर्म॥"

आज के हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में व्याप्त अराजकता, भ्रष्टाचार, कर्त्तव्यहीनता, अन्याय और पक्षपात आदि के समाधानार्थ आचार्यश्री ने देशवासियों में राष्ट्र-प्रेम की उदात्त-भावना, लोकार्पण एवं सामाजिक सेवार्पण का सद्भाव, स्वार्थरहित-देशहित कर्त्तव्यनिष्ठा तथा सदाचारिता का विवेक सरल और युक्ति-युक्त ढंग से अभिव्यंजित किया है—

"सरल सत्य सेवाव्रती, अतिशय शान्त स्वभाव।
राधासर्वेश्वरशरण, परिचारक प्रियभाव॥
शिशु शिक्षा सावधान, सहज नेह के साथ।
राधासर्वेश्वरशरण, बालक परम सनाथ॥
स्वार्थ रहित श्रद्धा निरत, सेवा शासन ज्ञान।
राधासर्वेश्वरशरण, मंत्री कर्म महान॥
देश निष्ठ निस्वार्थ हो, रक्षण सेवा ध्यान।
राधासर्वेश्वरशरण, आरक्षी पहचान॥"

सामाजिक संदर्भ में आचार्य प्रवर ने 'हिन्दू संस्कृति' के वर्णाश्रमधर्म-सम्मत, वर्ग-संघर्ष रहित कर्त्तव्यपरायणता, समन्वयात्मक सामाजिक समरसता, आध्यात्म-पुष्ट आश्रम-चतुष्टय-जीवनचर्या का प्रतिपादन किया है—

"विप्रसुधीवर प्रखर प्रभाव, सकल विश्व में व्याप्त।
राधासर्वेश्वरशरण, परमात्म विद्या प्राप्त॥
क्षत्रिय वीर परम्परा, सुन्दरतम आदर्श।
राधासर्वेश्वरशरण, करते धर्म विमर्श॥
वैश्य-श्रेष्ठ दानी धनी, करते पर उपकार।
राधासर्वेश्वरशरण, पावत सुयश अपार॥
ब्रह्मचर्य गृहस्थाश्रम, अथ वानप्रस्थ संन्यास।
राधासर्वेश्वरशरण, आश्रम चार प्रकास॥"

'तीर्थधाम-विवेक' तथा **'भारत-महिमा विवेक'** का अभीष्ट पौराणिक धार्मिकता तथा राष्ट्रीयता का प्रतिपादन है, जो आज के संदर्भ में भारत का भूमि एवं सांस्कृतिक वैशिष्ट्यपूर्ण दर्शन कराता है। सम्पूर्ण देश में **'गोवध-निषेध'** को आचार्यश्री ने अपरिहार्य राष्ट्र-धर्म माना है। गोरक्षा-प्रसंग न केवल धार्मिक है, वरन् यह भारत की कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था तथा संस्कृति का मूलाधार है। संदर्भित उद्घोष और विवेक सटीक है—

"गोहिंसा अवरोध हो, गोमाता सम्मान।
राधासर्वेश्वरशरण, धर अन्तर सद्भाव॥
गोधन हिंसितचर्म के, पादत्राण निवार।
राधासर्वेश्वरशरण, गोरक्षा व्रत धार॥

उक्त ग्रन्थ का **'आयुर्वेद-विवेक'** अनुभूत, व्यापक, सारभूत, देशज, सहज-सुलभ और निरापद होने से आचार्यश्री का ज्ञानगर्भित कल्याणकारी प्रसाद है—

"तुलसी-सोंठ-सिता-मिरच, सरस क्वाथ अनुपान।
राधासर्वेश्वरशरण, शीत शमन ध्रुव मान॥
निम्बतरु दल परिसेवन, सर्वरोग परिहार।
राधासर्वेश्वरशरण, करणीय चमत्कार॥"

पाश्चात्य-अन्धानुकरणों, दूरदर्शन-चलचित्र के असंगत-अश्लील प्रसारणों तथा अनैतिकतापूर्ण साहित्य से उत्पन्न सांस्कृतिक प्रदूषण एवं नैतिकता, आध्यात्मिकता रहित भौतिकवादी शिक्षा से भारतीय संस्कृति सम्मत-स्वस्थ-व्यक्ति निर्माण विशृंखलित हो गया है। **'मनुज धर्म विवेक'** में इसीलिए हमारा परम्परागत 'संस्कारित व्यक्ति निर्माण' आचार्यश्री का अभीष्ट है। मनुष्य के मूल प्रवृत्तिपरक व्यवहार का परिष्कार कर उसमें अध्यात्म-समन्वित देवतुल्य संतोचित उच्चादर्शों की स्थापना हमारी संस्कृति का परमलक्ष्य रहा है। आचार्यश्री ने इसीलिए 'मनुजधर्म' प्रासंगिकता में सत्वगुणमयी सदाचारिता, अहिंसा, दया-करुणापरक उदारता, परोपकारी-सेवा समर्पण, दानशीलता-ईश्वर-परायणता, संतोचित निरहंमता तथा संयमित आचार-विचार-वाणी आदि गुणात्मक संवेदनाओं का विवेक जागृत किया है—

सदाचार सच्चरित्रता, दृढ़ता से अवधार।
राधासर्वेश्वरशरण, मनुज रूप संचार॥
दया मनुज का धर्म है, करुणा पर उपकार।
राधासर्वेश्वरशरण, आगत जन सत्कार॥
धन जन यौवन रूप बल, विद्या का अभिमान।
राधासर्वेश्वरशरण, तज दे नर गुणवान॥
मितभाषी मृदुभाषी का, जीवन सुखमय जान।
राधासर्वेश्वरशरण, आदर धीर समान॥
आत्मप्रशंसा घातक है, होय स्वयं की हानि।
राधासर्वेश्वरशरण, रहो परम अमानि॥"

'साधक धर्म विवेक' के प्रसंग में आपने गुरुदीक्षा, वैराग्य, सत्संग, नामस्मरण, देवदर्शन, तीर्थाटन, सन्तसेवा आदि का निर्देशन किया है। मनःसाधना को मूलाधार बताते हुए आपने 'मनसाधक' को उत्तम योगी माना है—

"उत्तम योगी वही है, करता मन अवरोध।
राधासर्वेश्वरशरण, प्रभु दृढ़मति अक्रोध॥"

संत का आदर्श रूप प्रतिपादन भी अनूठा एवं सारगर्भित है—

"दैत्य तितिक्षा-शुद्ध-मन, दया हृदय हरि ध्यान।
राधासर्वेश्वरशरण, सन्तरूप सम्मान॥"

धर्म आचरण का विषय है; व्यवहार और चरित्र में धर्म की दृढ़तापूर्वक पालना से ही धर्मरक्षित होता है, अन्यथा अनाचरित धर्म शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसी दृष्टि से आचार्यश्री ने 'वैष्णवाचार, **वैष्णव-विवेक**' तथा '**निज सम्प्रदाय-विवेक**' के प्रसंगों में सरल-सारगर्भित-सर्वग्राही-निर्देशन किया है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के '**निकुञ्ज-रस-तत्त्व**' का प्रसंग अत्यन्त तात्विक, सरस और उनके अनुरूप उनकी परमाह्लादिनी स्वामिनी श्रीराधा, युगल की निकुञ्जकेलि-लीला, लीलाधाम श्रीवृन्दावन, सहचरी स्वरूप का भावपूर्ण प्रतिपादन दर्शनीय है। श्रीराधिकाजी के प्रति सहचरीपरक परम-अनुरक्ति विलक्षण है—

"हे श्रीराधे स्वामिनी, राधामोहन श्याम।
राधासर्वेश्वरशरण, कृपा करो रसधाम॥"

सनातन धर्म के परम्परागत शिव, गणेश, सूर्य, श्रीराम, नृसिंह, हनुमान, भगवती श्रीजानकीजी तथा वैष्णवी दैवी, सरस्वती, गंगा, यमुना आदि 'भगवत् तत्त्वों' के प्रति आचार्यश्री की उत्कट भक्ति-भावना व्यक्त हुई है। आचार्यश्री की उदारता एवं व्यापक वैष्णवता का परिचायक यह भक्तिप्रसंग साम्प्रदायिक सौहार्द, तात्विक-एकता एवं उपासनात्मक समन्वय को व्यापक रूप से जागृत करने वाला है।

इस प्रकार उभय लोकात्मक ज्ञानगर्भित विविध प्रसंगों से ग्रथित यह चरित्रनिर्माणकारी तथा युगसापेक्ष्य प्रेरणादायी सुपाठ्य महनीय रचना '**विवेकवल्ली**', संत-भक्त-परम्परानुसार रीति-नीति-उक्ति परक तथा संक्षिप्त-सारभूत-सर्वग्राही उपदेशात्मकवाणी के सर्वथानुकूल दोहे छन्द में निबद्ध हैं। इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ, सरल-सरस-परिमार्जित एवं प्रसादपूर्ण है, जिसमें सटीक, सार्थक, सानुप्रासिक, प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक शब्दावली तथा उपमा-रूपक-उत्प्रेक्षा- दृष्टान्त-उदाहरण-वक्रोक्ति आदि अलंकार सहज-संतोचित तथा युक्ति-युक्त ढंग से प्रयुक्त हुये हैं। उक्ति-वैचित्र्य तथा विशद-विषय विवेचन से पूर्ण आचार्यश्री का यह युगसापेक्ष्य लोकग्राह्य उपदेशात्मक वचनामृत श्रीपरशुरामवृन्द द्वारा विरचित दोहावली के समान हिन्दी जगत् में अत्यन्त उपयोगी और समादरणीय सिद्ध होगा—श्रीसर्वेश्वर प्रभु से यही अभ्यर्थना है।

'तीर्थधाम-विवेक' तथा **'भारत-महिमा विवेक'** का अभीष्ट पौराणिक धार्मिकता तथा राष्ट्रीयता का प्रतिपादन है, जो आज के संदर्भ में भारत का भूमि एवं सांस्कृतिक वैशिष्ट्यपूर्ण दर्शन कराता है। सम्पूर्ण देश में **'गोवध-निषेध'** को आचार्यश्री ने अपरिहार्य राष्ट्र-धर्म माना है। गोरक्षा-प्रसंग न केवल धार्मिक है, वरन् यह भारत की कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था तथा संस्कृति का मूलाधार है। संदर्भित उद्घोष और विवेक सटीक है—

"गोहिंसा अवरोध हो, गोमाता सम्मान।
राधासर्वेश्वरशरण, धर अन्तर सद्भाव॥
गोधन हिंसितचर्म के, पादत्राण निवार।
राधासर्वेश्वरशरण, गोरक्षा व्रत धार॥

उक्त ग्रन्थ का **'आयुर्वेद-विवेक'** अनुभूत, व्यापक, सारभूत, देशज, सहज-सुलभ और निरापद होने से आचार्यश्री का ज्ञानगर्भित कल्याणकारी प्रसाद है—

"तुलसी-सोंठ-सिता-मिरच, सरस क्वाथ अनुपान।
राधासर्वेश्वरशरण, शीत शमन ध्रुव मान॥
निम्बतरु दल परिसेवन, सर्वरोग परिहार।
राधासर्वेश्वरशरण, करणीय चमत्कार॥"

पाश्चात्य-अन्धानुकरणों, दूरदर्शन-चलचित्र के असंगत-अश्लील प्रसारणों तथा अनैतिकतापूर्ण साहित्य से उत्पन्न सांस्कृतिक प्रदूषण एवं नैतिकता, आध्यात्मिकता रहित भौतिकवादी शिक्षा से भारतीय संस्कृति सम्मत-स्वस्थ-व्यक्ति निर्माण विशृंखलित हो गया है। **'मनुज धर्म विवेक'** में इसीलिए हमारा परम्परागत 'संस्कारित व्यक्ति निर्माण' आचार्यश्री का अभीष्ट है। मनुष्य के मूल प्रवृत्तिपरक व्यवहार का परिष्कार कर उसमें अध्यात्म-समन्वित देवतुल्य संतोचित उच्चादर्शों की स्थापना हमारी संस्कृति का परमलक्ष्य रहा है। आचार्यश्री ने इसीलिए 'मनुजधर्म' प्रासंगिकता में सत्वगुणमयी सदाचारिता, अहिंसा, दया-करुणापरक उदारता, परोपकारी-सेवा समर्पण, दानशीलता-ईश्वर-परायणता, संतोचित निरहंमता तथा संयमित आचार-विचार-वाणी आदि गुणात्मक संवेदनाओं का विवेक जागृत किया है—

सदाचार सच्चरित्रता, दृढ़ता से अवधार।
राधासर्वेश्वरशरण, मनुज रूप संचार॥
दया मनुज का धर्म है, करुणा पर उपकार।
राधासर्वेश्वरशरण, आगत जन सत्कार॥
धन जन यौवन रूप बल, विद्या का अभिमान।
राधासर्वेश्वरशरण, तज दे नर गुणवान॥
मितभाषी मृदुभाषी का, जीवन सुखमय जान।
राधासर्वेश्वरशरण, आदर धीर समान॥
आत्मप्रशंसा घातक है, होय स्वयं की हानि।
राधासर्वेश्वरशरण, रहो परम अमानि॥"

'साधक धर्म विवेक' के प्रसंग में आपने गुरुदीक्षा, वैराग्य, सत्संग, नामस्मरण, देवदर्शन, तीर्थाटन, सन्तसेवा आदि का निर्देशन किया है। मनःसाधना को मूलाधार बताते हुए आपने 'मनसाधक' को उत्तम योगी माना है—

"उत्तम योगी वही है, करता मन अवरोध।
राधासर्वेश्वरशरण, प्रभु दृढ़मति अक्रोध॥"

संत का आदर्श रूप प्रतिपादन भी अनूठा एवं सारगर्भित है—

"दैत्य तितिक्षा-शुद्ध-मन, दया हृदय हरि ध्यान।
राधासर्वेश्वरशरण, सन्तरूप सम्मान॥"

धर्म आचरण का विषय है; व्यवहार और चरित्र में धर्म की दृढ़तापूर्वक पालना से ही धर्मरक्षित होता है, अन्यथा अनाचरित धर्म शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसी दृष्टि से आचार्यश्री ने 'वैष्णवाचार, **वैष्णव-विवेक**' तथा **'निज सम्प्रदाय-विवेक'** के प्रसंगों में सरल-सारगर्भित-सर्वग्राही-निर्देशन किया है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के **'निकुञ्ज-रस-तत्त्व'** का प्रसंग अत्यन्त तात्विक, सरस और उनके अनुरूप उनकी परमाह्लादिनी स्वामिनी श्रीराधा, युगल की निकुञ्जकेलि-लीला, लीलाधाम श्रीवृन्दावन, सहचरी स्वरूप का भावपूर्ण प्रतिपादन दर्शनीय है। श्रीराधिकाजी के प्रति सहचरीपरक परम-अनुरक्ति विलक्षण है—

"हे श्रीराधे स्वामिनी, राधामोहन श्याम।
राधासर्वेश्वरशरण, कृपा करो रसधाम॥"

सनातन धर्म के परम्परागत शिव, गणेश, सूर्य, श्रीराम, नृसिंह, हनुमान, भगवती श्रीजानकीजी तथा वैष्णवी दैवी, सरस्वती, गंगा, यमुना आदि 'भगवत् तत्त्वों' के प्रति आचार्यश्री की उत्कट भक्ति-भावना व्यक्त हुई है। आचार्यश्री की उदारता एवं व्यापक वैष्णवता का परिचायक यह भक्तिप्रसंग साम्प्रदायिक सौहार्द, तात्विक-एकता एवं उपासनात्मक समन्वय को व्यापक रूप से जागृत करने वाला है।

इस प्रकार उभय लोकात्मक ज्ञानगर्भित विविध प्रसंगों से ग्रथित यह चरित्रनिर्माणकारी तथा युगसापेक्ष्य प्रेरणादायी सुपाठ्य महनीय रचना **'विवेकवल्ली'**, संत-भक्त-परम्परानुसार रीति-नीति-उक्ति परक तथा संक्षिप्त-सारभूत-सर्वग्राही उपदेशात्मकवाणी के सर्वथानुकूल दोहे छन्द में निबद्ध हैं। इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ, सरल-सरस-परिमार्जित एवं प्रसादपूर्ण है, जिसमें सटीक, सार्थक, सानुप्रासिक, प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक शब्दावली तथा उपमा-रूपक-उत्प्रेक्षा- दृष्टान्त-उदाहरण-वक्रोक्ति आदि अलंकार सहज-संतोचित तथा युक्ति-युक्त ढंग से प्रयुक्त हुये हैं। उक्ति-वैचित्र्य तथा विशद-विषय विवेचन से पूर्ण आचार्यश्री का यह युगसापेक्ष्य लोकग्राह्य उपदेशात्मक वचनामृत श्रीपरशुरामवृन्द द्वारा विरचित दोहावली के समान हिन्दी जगत् में अत्यन्त उपयोगी और समादरणीय सिद्ध होगा—श्रीसर्वेश्वर प्रभु से यही अभ्यर्थना है।

'तीर्थधाम-विवेक' तथा **'भारत-महिमा विवेक'** का अभीष्ट पौराणिक धार्मिकता तथा राष्ट्रीयता का प्रतिपादन है, जो आज के संदर्भ में भारत का भूमि एवं सांस्कृतिक वैशिष्ट्यपूर्ण दर्शन कराता है। सम्पूर्ण देश में **'गोवध-निषेध'** को आचार्यश्री ने अपरिहार्य राष्ट्र-धर्म माना है। गोरक्षा-प्रसंग न केवल धार्मिक है, वरन् यह भारत की कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था तथा संस्कृति का मूलाधार है। संदर्भित उद्घोष और विवेक सटीक है—

"गोहिंसा अवरोध हो, गोमाता सम्मान।
राधासर्वेश्वरशरण, धर अन्तर सद्भाव॥
गोधन हिंसितचर्म के, पादत्राण निवार।
राधासर्वेश्वरशरण, गोरक्षा व्रत धार॥

उक्त ग्रन्थ का **'आयुर्वेद-विवेक'** अनुभूत, व्यापक, सारभूत, देशज, सहज-सुलभ और निरापद होने से आचार्यश्री का ज्ञानगर्भित कल्याणकारी प्रसाद है—

"तुलसी-सोंठ-सिता-मिरच, सरस क्वाथ अनुपान।
राधासर्वेश्वरशरण, शीत शमन ध्रुव मान॥
निम्बतरु दल परिसेवन, सर्वरोग परिहार।
राधासर्वेश्वरशरण, करणीय चमत्कार॥"

पाश्चात्य-अन्धानुकरणों, दूरदर्शन-चलचित्र के असंगत-अश्लील प्रसारणों तथा अनैतिकतापूर्ण साहित्य से उत्पन्न सांस्कृतिक प्रदूषण एवं नैतिकता, आध्यात्मिकता रहित भौतिकवादी शिक्षा से भारतीय संस्कृति सम्मत-स्वस्थ-व्यक्ति निर्माण विशृंखलित हो गया है। **'मनुज धर्म विवेक'** में इसीलिए हमारा परम्परागत 'संस्कारित व्यक्ति निर्माण' आचार्यश्री का अभीष्ट है। मनुष्य के मूल प्रवृत्तिपरक व्यवहार का परिष्कार कर उसमें अध्यात्म-समन्वित देवतुल्य संतोचित उच्चादर्शों की स्थापना हमारी संस्कृति का परमलक्ष्य रहा है। आचार्यश्री ने इसीलिए 'मनुजधर्म' प्रासंगिकता में सत्वगुणमयी सदाचारिता, अहिंसा, दया-करुणापरक उदारता, परोपकारी-सेवा समर्पण, दानशीलता-ईश्वर-परायणता, संतोचित निरहंमता तथा संयमित आचार-विचार-वाणी आदि गुणात्मक संवेदनाओं का विवेक जागृत किया है—

सदाचार सच्चरित्रता, दृढ़ता से अवधार।
राधासर्वेश्वरशरण, मनुज रूप संचार॥
दया मनुज का धर्म है, करुणा पर उपकार।
राधासर्वेश्वरशरण, आगत जन सत्कार॥
धन जन यौवन रूप बल, विद्या का अभिमान।
राधासर्वेश्वरशरण, तज दे नर गुणवान॥
मितभाषी मृदुभाषी का, जीवन सुखमय जान।
राधासर्वेश्वरशरण, आदर धीर समान॥
आत्मप्रशंसा घातक है, होय स्वयं की हानि।
राधासर्वेश्वरशरण, रहो परम अमानि॥"

'साधक धर्म विवेक' के प्रसंग में आपने गुरुदीक्षा, वैराग्य, सत्संग, नामस्मरण, देवदर्शन, तीर्थाटन, सन्तसेवा आदि का निर्देशन किया है। मनःसाधना को मूलाधार बताते हुए आपने 'मनसाधक' को उत्तम योगी माना है—

"उत्तम योगी वही है, करता मन अवरोध।
राधासर्वेश्वरशरण, प्रभु दृढ़मति अक्रोध॥"

संत का आदर्श रूप प्रतिपादन भी अनूठा एवं सारगर्भित है—

"दैत्य तितिक्षा-शुद्ध-मन, दया हृदय हरि ध्यान।
राधासर्वेश्वरशरण, सन्तरूप सम्मान॥"

धर्म आचरण का विषय है; व्यवहार और चरित्र में धर्म की दृढ़तापूर्वक पालना से ही धर्मरक्षित होता है, अन्यथा अनाचरित धर्म शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसी दृष्टि से आचार्यश्री ने 'वैष्णवाचार, **वैष्णव-विवेक**' तथा **'निज सम्प्रदाय-विवेक'** के प्रसंगों में सरल-सारगर्भित-सर्वग्राही-निर्देशन किया है। श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के **'निकुञ्ज-रस-तत्त्व'** का प्रसंग अत्यन्त तात्विक, सरस और उनके अनुरूप उनकी परमाह्लादिनी स्वामिनी श्रीराधा, युगल की निकुञ्जकेलि-लीला, लीलाधाम श्रीवृन्दावन, सहचरी स्वरूप का भावपूर्ण प्रतिपादन दर्शनीय है। श्रीराधिकाजी के प्रति सहचरीपरक परम-अनुरक्ति विलक्षण है—

"हे श्रीराधे स्वामिनी, राधामोहन श्याम।
राधासर्वेश्वरशरण, कृपा करो रसधाम॥"

सनातन धर्म के परम्परागत शिव, गणेश, सूर्य, श्रीराम, नृसिंह, हनुमान, भगवती श्रीजानकीजी तथा वैष्णवी दैवी, सरस्वती, गंगा, यमुना आदि 'भगवत् तत्त्वों' के प्रति आचार्यश्री की उत्कट भक्ति-भावना व्यक्त हुई है। आचार्यश्री की उदारता एवं व्यापक वैष्णवता का परिचायक यह भक्तिप्रसंग साम्प्रदायिक सौहार्द, तात्विक-एकता एवं उपासनात्मक समन्वय को व्यापक रूप से जागृत करने वाला है।

इस प्रकार उभय लोकात्मक ज्ञानगर्भित विविध प्रसंगों से ग्रथित यह चरित्रनिर्माणकारी तथा युगसापेक्ष्य प्रेरणादायी सुपाठ्य महनीय रचना **'विवेकवल्ली'**, संत-भक्त-परम्परानुसार रीति-नीति-उक्ति परक तथा संक्षिप्त-सारभूत-सर्वग्राही उपदेशात्मकवाणी के सर्वथानुकूल दोहे छन्द में निबद्ध हैं। इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ, सरल-सरस-परिमार्जित एवं प्रसादपूर्ण है, जिसमें सटीक, सार्थक, सानुप्रासिक, प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक शब्दावली तथा उपमा-रूपक-उत्प्रेक्षा- दृष्टान्त-उदाहरण-वक्रोक्ति आदि अलंकार सहज-संतोचित तथा युक्ति-युक्त ढंग से प्रयुक्त हुये हैं। उक्ति-वैचित्र्य तथा विशद-विषय विवेचन से पूर्ण आचार्यश्री का यह युगसापेक्ष्य लोकग्राह्य उपदेशात्मक वचनामृत श्रीपरशुरामवृन्द द्वारा विरचित दोहावली के समान हिन्दी जगत् में अत्यन्त उपयोगी और समादरणीय सिद्ध होगा—श्रीसर्वेश्वर प्रभु से यही अभ्यर्थना है।

(3) भारत-कल्पतरु

'भारत-कल्पतरु' अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज कृत अनूठी सद्यःरचना है। रससिद्ध कवि की सुकोमल-सुललित सुमधुर एवं प्रसादपूर्ण वाणी में अभिव्यक्त, अध्यात्मपरक-विमल-भारतीयता तथा सर्वतोमुखी-प्रबल-राष्ट्रीयता के प्रति समर्पित, उत्कट-स्वर सुमनस-पाठक को स्वदेश-प्रेम, सदाचार, सहिष्णुता, अहिंसा, विश्व-बन्धुत्व, दया-करुणा-परोपकार, शुचिता की सद्भावना में आप्लावित कर देता है।

ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध महिमामयी धर्मप्राण भारत भूमि के पावन एवं अति विलक्षण-गरिमामय प्राकृतिक-सांस्कृतिक-सामाजिक एवं चारित्रिक परिवेश की गीति पदात्मक अभिव्यक्ति से ओत-प्रोत है। सरस भाव और संस्कृतनिष्ठ-परिमार्जित-सरल-भाषा का अद्भुत सामंजस्य, संगीत-संगति, लयात्मक-छन्द विधान, सानुप्रासिक-आलंकारिक-भावानुरूप-शब्दसार्थकता, वातावरण-चित्रांकनता, वर्ण्य-वस्तु-शिल्पावेष्टित बहुज्ञता तथा विषय-वैविध्यपूर्ण उत्कृष्ट काव्यकला आद्योपान्त दर्शनीय है।

भगवत्क्रीड़ा स्थली, ऋषि-मुनि-मनीषी की तपोभूमि, वीर प्रसविनी, सुरम्य-सुललित-विपुलसम्पदायुक्त-शस्यश्यामला भारत माता विश्ववंद्य तीर्थभूमि है, यथा—द्रष्टव्य है—

"भारत तीरथ रूप महा है।
देववृन्द मुनि पुनि पुनि भारत वसुन्धरा पर जन्म चहा है।
अतिशय सुन्दर विविध तीर्थ जहँ अतिपावन यह दरश रहा है॥
शरण सदा राधासर्वेश्वर असीम अनूप सुखा वहाँ है॥"

भारतमाता के ऐसे दिव्य-स्वरूप के अनुपम प्राकृतिक परिवेश की अलौकिक-अद्वितीय छटा के स्रष्टा कवि के कलात्मक-पुञ्जभाव भी वन्दनीय हैं—

"नमन करों श्रीभारतमाता।
दिव्य हिमालय अभिनव अनुपम, छवि दरशन कर मन हरषाता॥
रतनाकर श्रीमहोदधि सागर, भारतमाता जय जय गाता।
गंगा-यमुना-कृष्णा-सरयू, सरस्वती जल शुभफल दाता॥
वन-उपवन-श्री-सरस माधुरी, ललित लता तरु हृदय सुहाता।
तड़ित प्रभायुत श्यामल जलधर, मंजुल मधुर-सलिल वरषाता॥
नलिन सुशोभित विविध सरोवर, सुभग दरश हित मन अकुलाता।
अतुलित वैभव पावन महिमा, गावत गुणिजन हिय सरसाता॥
कनक रजत मणि माणिक हीरा, आभा अतिशय भव विख्याता।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, वन्दन करते शंकर धाता॥"

ऐसी भारतमाता की क्रोड़ में जन्म लेना धन्य है, जहाँ का वैदिक ज्ञानार्जन, सांस्कृतिक-आध्यात्मिक-वैभवपूर्ण तीर्थों का दर्शन, विलक्षण-प्रकृति-भ्रमण, जहाँ की

ललित-कला, स्थापत्य-शिल्प, संगीत-नृत्य-विद्या, भारतीय आयुर्वेद-विज्ञान तथा प्राचीन-संस्कृति-समन्वित- जनजीवन व सदाचारपूर्ण आतिथ्य, असंख्य-विदेशियों के लिए आज भी भारत-दर्शन की सतत-लालसा के प्रबल प्रेरक तत्त्व हैं—

"विदेशवासी भारत आते।
विविध राष्ट्र से नर-नारी गन, दरश हेतु वे आतुर पाते॥
अतुलित वैभव ललित कला लख, भारत की नित महिमा गाते।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, पुनरपि आने की कह जाते॥"

'भारत-वांछा कल्पतरु' है, जिसकी छाया शरणागत सुखद-शीतल है। प्राचीन 'विश्वनीड़' भारत द्वारा प्रतिपादित विश्व-बन्धुत्व, सहिष्णुता-समन्वयता-समता, अहिंसा, सर्वात्मप्रेम-दर्शन आदि की भावना का पुनर्जागरण ही आज सृष्टि को आणविक-सर्वनाश से बचा सकता है, इसी सत्य का उद्घाटन कवि का अभीष्ट है। भारत भूमि का दर्शन-परसन ही जिसका एकमात्र उपाय है।

'भारत-कल्पतरु' के कवि महान् युगद्रष्टा हैं, शीर्षस्थ धर्माचार्य, चिन्तक-साधक और उपदेष्टा मनीषी के व्रतानुरूप ही अपने यहाँ सर्वनाशी-समसामयिक आणविक-संत्रासदियों से आक्रान्त मानवता के परित्राणार्थ ओजस्वी उद्बोधन किये हैं। प्रलयंकारी-आणविक-शस्त्रीकरण, मृत्युदायी प्रदूषण, महाविध्वंसकारी-असंतुलित-प्रकृति-दोहन, सर्वात्मघाती सकल-वन्य-सम्पदा- संहारण आदि महासंकटों के प्रति की गई आपकी आकुल-वर्जनाएँ विश्वशान्ति, सुख-समृद्धि की शुभचिन्तनाओं की परिचायक हैं—

(1) "अति घातक संहारक अणुबम आदि अस्त्र।
राधासर्वेश्वरशरण, विनिषेध हों सब शस्त्र॥

(2) सुन्दर वन तरु सम्पदा सब विधि रक्षण हेतु।
राधासर्वेश्वरशरण, राजधर्म यह सेतु॥

(3) विहग मृगादि विविध जीव रक्षा हित अनिवार्य।
राधासर्वेश्वरशरण, सर्वकार यह कार्य॥

(4) गंगादिक सरित शुचि रक्षण हित यह कार्य।
राधासर्वेश्वरशरण, अनुशासक अनिवार्य॥"

राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में व्याप्त तस्करता, आतंकवाद, अलगाववाद, युद्धलिप्सा, भ्रष्टाचार, अनाचार, मद्यपान-नशाव्यसन आदि अनेकानेक समसामयिक समस्याओं के समाधानार्थ राष्ट्र नायकों शासकों के प्रति उपदेष्टा कवि ने प्रेरणात्मक-दायित्व-दिशादर्शन भी किया है—

(1) "तस्करता का त्याग कर, हिंसा नित्य निवार।
राधासर्वेश्वरशरण, भ्रष्टाचार विसार॥

(2) मद्यादि सेवन अवैध, चलचित्रों का त्याग।
राधासर्वेश्वरशरण, हो दुष्कर्म विराग॥

(3) **भारतवर्ष अखंडता, रक्षाहित अरपन।**
राधासर्वेश्वरशरण, उज्ज्वल मुख दरपन॥

(4) **संघटन करके रहो, सभी दृष्टि से आज।**
राधासर्वेश्वरशरण, सुधरेंगे सब काज॥"

मौलिक चिन्तन, प्रेरणादायी-सद्गुणावेष्टित-चरित्र उन्नायक-साहित्य के अभाव एवं पाश्चात्य-अन्धानुकरण से ग्रस्त आज हमारा भारतीय जनजीवन अनेक विपदाओं से पीड़ित है। अपनी विश्वविश्रुत संस्कृति-सभ्यता, जीवन पद्धति, रीति-रिवाज, खानपान, रहन-सहन की स्वस्थ परम्पराओं, देशानुकूल प्रकृति-सम्मत जीवनचर्याओं, सादा जीवन-उच्चविचार के सुखदायी, व्यावहारिक सिद्धान्तों, कल्याणकारी-निरापद आयुर्वेद-ज्ञान, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, परोपकार आदि शाश्वत-सत्यों के परित्याग से आज हमारा तन-मन-धन, व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन कलुषित और दुःखी है। अतः सर्वजनहिताय की संतोचित भावना से परिपूर्ण कवि-हृदय ने इन्हीं विस्मृतियों का पुनःस्मरण कराया है। दोहा-छन्द और सरल भाषा में की गई अभिव्यञ्जनायें कितनी सार्थक और उपादेय हैं, अवलोकनीय है—

(1) **"सकल रोगहर निम्ब है आयुर्वेद प्रमान।**
राधासर्वेश्वरशरण, महिमा परम महान॥

(2) **पञ्चगव्य सेवन करो गोमय घृत गोमूत्र।**
राधासर्वेश्वरशरण, दधि-पय अनुपम सूत्र॥

(3) **श्रीतुलसी भवरोगहर अतुलित महिमा जान।**
राधासर्वेश्वरशरण, प्रभु प्रसाद सनमान॥

(4) **आमिष भोजन अभक्ष्य है वह अनर्थ का मूल।**
राधासर्वेश्वरशरण, तज दो मत कर भूल॥"

'भारत-कल्पतरु' में ग्रंथित ऋतु-श्रुतिपेशल, सार्थक-सूक्ति-दोहावली में **'गागर में सागरवत्'** गुरु-ज्ञान-गुणादि मंडित, सदाचार-विमल-चारित्र्य की सम्मोहिनी-संहिता है। यह ग्रंथ भक्ति-भाव, राष्ट्रप्रेम और सूक्ति-संदेशों का त्रिवेणी-संगम है। 'भारत-कल्पतरु' ही सर्वसुखद, सुभग-शीतल, विश्व-मन-विमोहक-छाया, कलिमल हारिणी और सर्वरस-विस्तारिणी है। समसामयिक, सर्वकल्याणकारी, मंगलदायक-जन-मन प्रबोधक, रसपीयूषवर्षिणी, 'भारत-कल्पतरु' शुभ-नामांकित यह सारगर्भित गुरुवाणी श्रीमुख-वचनों का पावन प्रसाद है, जिसके कलात्मक-कलेवर में निहित भावाभिभूत प्रेरणादायी शुभ-संदेश स्तुत्य, समादरणीय, ग्रहणीय और वन्दनीय है। उक्त रचना हिन्दी-साहित्य की राष्ट्रीय-काव्य निधि का समुज्ज्वल रत्न है।

(4) श्रीराधासर्वेश्वर-मंजरी

भारतीय शास्त्रों में शब्द को ब्रह्म कहा गया है, क्योंकि—शब्द और अर्थ काव्य का शरीर एवं रस आत्मा माना गया है। "रसो वै सः" इस उपनिषद् वचन के अनुसार रस ही ब्रह्म है और वह रस ब्रह्म शब्दगत होने से शब्द को भी ब्रह्म कहा गया है।

रसोपासना में नित्य निरन्तर निरत हमारे परम पूज्य अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणादेवाचार्य श्री "श्रीजी" महाराज द्वारा अपनी सारस्वत समाराधना के अन्तर्गत सुरभारती (संस्कृत) तथा हिन्दी भाषा में जो विविध सरस ग्रन्थों का सर्जन हुआ है, उनमें प्रस्तुत दिव्यरसभावामृतमयी "श्रीराधासर्वेश्वर मञ्जरी" आपश्री की एक अनुपम कृति है। इसका गहन अध्ययन करने से श्रीमद्भागवत का एक दिव्य प्रसङ्ग स्फुरित हो आता है।

भगवान् श्री शंकर जगदम्बा पार्वती से कहते हैं—

सत्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीर्यते तत्र पुमानपावृतः।
सत्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते॥

(भाग 4 स्कन्ध 3/28)

महापुरुषों के तपश्चर्या एवं उपासना से जो अन्तःकरण विशुद्ध (निर्मल) हो जाता है, उसको वसुदेव कहते हैं, क्योंकि उस पवित्र वसुदेव संज्ञक अन्तःकरण में ही भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट होकर बिना आवरण के दर्शन प्रदान करते हैं। भगवान् वसुदेव के यहाँ एक भक्त के परम-पावन निर्मल हृदय में प्रकट होने से उनको वासुदेव कहते हैं। अस्तु।

'**श्रीराधासर्वेश्वर मञ्जरी**' के दिव्य सरस सजीव प्रसंगों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि परम पूज्य आचार्यश्री 'श्री राधासर्वेश्वर मञ्जरी' ग्रन्थ लेखन के समय सरसभाव साम्राज्य में ऐसे निमग्न हो गये हैं कि अपने परम निर्मल अन्तःकरण में श्रीराधामाधव की दिव्यरसमाधुरी का जैसा दर्शन और अनुभव उन्हें हुआ, उसी को उन्होंने यहां व्यक्त किया है।

प्रिया-प्रियतम की सरस रूपमाधुरी एवं अनेकों लीला-प्रसंगों के सजीव भावमय सरस शब्दचित्र अंकित किये गये हैं, उनका वास्तविक वर्णन करने के लिए शब्दों का चयन करना अस्मदादि के शक्ति का विषय नहीं है। फिर भी अपने हृदय के भक्तिभाव सुमन समर्पित करने की यह चेष्टा मात्र है।

श्रीवृन्दावनधाम संवलित श्रीराधामाधव के दिव्य रसमय लीला-प्रसंगों के अतिरिक्त भारत के अनेक महिमामय विषयों का भी अतिसुन्दर चित्रण 'श्रीराधासर्वेश्वर मञ्जरी' में हुआ है, वे मननीय हैं। यथा—श्री वृन्दावन धाम की महिमा का वर्णन पठनीय हैं—

"सब तज चल श्रीव्रजवृन्दावन।
परम ललित अति सरस मनोहर, शोभित मुक्ता-मणिमय काँचन॥
राधा मोहन केलि-कुंज वन, वृन्दा-वृन्द-दल सुरभित रसधन।
ठोर-ठोर प्रिय सुभग सरोवर, बिच-बिच विलसत पंकज कलियत॥
प्रिया लालश्री विहरत कुंजन, चारु-चमर-कर सेवित सखिजन।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, यह वृन्दावन युगल रसिक धन॥"

लघु-ग्रन्थ में गागर में सागर भरने का सा प्रयास करते हुए धर्म-प्रधान भारत का ही शब्दचित्र प्रस्तुत किया गया है, ऐसा प्रतीत होता है। हरिद्वार तथा भगवती पतित-पावनी भागीरथी (गंगा) का वर्णन—'जय जय गंगे शरण तिहारी' तथा इसी के साथ भारत के चारों कुम्भों का वर्णन दर्शनीय है। यथा—

"जय जय गंगे! शरण तिहारी।
दिव्य हिमालय कल-कल ध्वनि युत, प्रवहनि अविरल सुन्दर वारी॥
भगवच्चरण नलिन युगलश्री, पावन-उद्भव-मंगलकारी॥
कोटि-कोटि जन-ताप वारिणी, भारतवसुधा रस-संचारी॥
कृपादृष्टि शुभ मोक्ष दायिनी, सुर-मुनि वन्दित कल्मषहारी।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, श्री गंगातट दरश विहारी॥"

'प्रयाग कुम्भ सरस मनोहर'

"प्रयाग कुम्भ शुभ सरस मनोहर।
सरस्वती-श्रीगंगा-यमुना, त्रिवेणी-संगम परम पुण्य कर॥
महाकुम्भ पर विविध सन्त जन, अगणित भावुक आते बहुतर।
सकल तीर्थ भी तीर्थराज में, पुलकित आवत भक्ति भाव भर॥
वेणी माधव - भरद्वाज मुनि, अक्षयवट के दर्शन सुन्दर।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, संगम-मार्जन सकल तापहर॥

इत्यादि शास्त्रीय संगीत के नियमों को ध्यान में रखते हुए जो पदों का सर्जन हुआ, वह संगीत-शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वानों के लिए 'श्रीराधासर्वेश्वर-मंजरी' एक अभिनव संगीत-निधि के रूप में मानी जा रही है।

श्रीराधासर्वेश्वर मंजरी' लघु काव्य, प्रसाद गुण मण्डित भाषा-शैली, सरस-भाव-गाम्भीर्य, संस्कृतनिष्ठ पदावली, भक्ति रस निरूपण की अमिट छाप सहृदय पाठक तथा श्रोता पर अवश्य पड़ेगी। भक्ति-सरोवर में सराबोर-अवगाहन कराने में यह कृति बेजोड़ है। यथा-काव्य से उद्धरण दर्शनीय है—

"भज श्रीराधा भज श्री सर्वेश्वर।
जय जय जय हो जय रसिकेश्वर॥
तन्मय होकर इनको ध्यावो, निज मानस हरि रस बरसावो।
बोलो भाव भर री रासेश्वर॥
निश्चय जीवन परम सफल है, नाम लेत ही मन निर्मल है।
सतत निहारो श्री विपिनेश्वर॥
पुलकित होकर जय जय राधे, मधुर कण्ठ से बोलो राधे।
प्रमुदित आवत श्री कुञ्जेश्वर॥
अपने तन को प्रभु-सेवा में, चंचल-मन को हरि-चिन्तन में।

तुरत लगादो भजो व्रजेश्वर॥
श्री वृन्दावन नव कुंजन-वन, विहरत राधा सेवित सखिजन।
शरण सदा राधासर्वेश्वर॥"

वर्तमान युगीन दुर्व्यसनों से बचने के लिए श्री 'श्रीजी' महाराज ने सरल, प्रसाद गुण मण्डित भाषा में सहज भावाभिव्यक्ति 'दोहा' छन्द में एवंप्रकारेण प्रस्तुत की है—

"सतरंज-चौपड़-तास के, खेल अनेक विकार।
समय व्यर्थ में नष्ट हो, 'शरण' कलह संचार॥
सुलफा-गाँजा-अफीम-विष, मद्य-मांस परित्याग।
अण्डा-मछली हेय सब, 'शरण' कथन पर जाग॥
जर्दा-बीड़ी-सिगरेट-तमकू घातक सिद्ध।
धूम्रपान वर्जित सदा, 'शरण' शास्त्र प्रसिद्ध॥
गुटका आदि अखाद्य हैं, विविध पेय को छोड़।
कैन्सर अदिक रोग सब, प्रकट 'शरण' मन मोड़॥"

भाषा-शैली, भाव-गाम्भीर्य, अलंकार-योजना एवं छन्द-विधान आदि की दृष्टि से '**श्रीराधासर्वेश्वर मंजरी**' काव्य शास्त्रीय खराद पर खरी उतरती है। श्री 'श्रीजी' महाराज द्वारा विरचित उक्त हिन्दी लघु काव्य युगानुकूल अनुपम कृति है, जो हिन्दी साहित्य की अर्वाचीन-साहित्य-निधि में देदीप्यमान बहुमूल्य-रत्नवत् है।

(5) भारत-वीर-गौरव

अनन्तश्री-विभूषित निम्बार्क-पीठाधीश्वर वर्तमान आचार्यवर्य **श्री 'श्रीजी' महाराज** द्वारा प्रणीत '**भारत-वीर-गौरव**' हिन्दी-साहित्य की वीर-काव्य-परम्परा में अपना अनूठा स्थान है। इस काव्य में भारत-माता की अनुपात महिमा व भारत के वीरों का बेजोड़ शौर्य वर्णित है। भारतवर्ष की अनुपम महिमा है। इसके माहात्म्य का सुविस्तृत परिवर्णन श्रुति-स्मृति-सूत्र-तन्त्र पुराणादि सम्पूर्ण शास्त्रों में विद्यमान है। विधि-शिव-पुरन्दर-गन्धर्व-किन्नरादि सुरवृन्दों द्वारा इस भारत की पावन-वसुधा सर्वदा अभिवन्दित रही है। समस्त ऋषि-मुनि-साधु-सन्तजन-धर्माचार्यवर्य इस पवित्र धरित्री का सर्वदा मङ्गल-गान करके परम सौभाग्य का अनुभव करते रहे हैं। गंगा-यमुना-कृष्णा-कावेरी-गण्डकी-सरयू-क्षिप्रा-गोदावरी-चन्द्रभागा-पार्वती-वेत्रवती-चर्मण्वती-सरस्वती-नन्दा-प्राची-साभ्रमती आदि विविध पुण्यसलिलाओं के कल-कल निनाद से यह भारत-देश परमगुंजायमान एवं अतिशय सुरम्य है। यहाँ पर चारों धाम, सप्तपुरियाँ, द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग एवं श्रीभगवद्धाम श्रीवृन्दावन, व्रजमण्डल एवं कोटि-कोटि यावन्मात्र तीर्थस्थल सुशोभित हैं। पुष्कर, प्रयाग, काशी, अयोध्या का दिव्यतम स्वरूप सभी को परमानन्द प्रदान करता है। वस्तुतः ऐसी अतिशय सुपावन सुरम्य भारत-वसुधा का वर्णन, दर्शनीय है—

"जय हो भारत वर्ष की, जिसका सुयश अपार।
निगमागमादि शास्त्र में, वर्णन 'शरण' निहार॥
ऋषि-मुनि-योगी-सन्तजन, धर्माचार्य महान्।
भारत-महिमा अनवरत, 'शरण' करत शुभ गान॥
दिव्य हिमालय धवलिमा, शोभित भारत-वर्ष।
जिसकी पावन अवनि पर, 'शरण' तीर्थ उत्कर्ष॥
तीर्थ रूप हैं यह भारत, चारों धाम महान्।
गंगा-यमुना-गण्डकी, 'शरण' प्रचुर सम्मान॥
ऋषि-मुनि-साधु-सन्तजन, वैष्णव करत निवास।
भारत-वसुधा नमन हो, 'शरण' यही अभिलाष॥
भारत परम अजेय है, भारत प्रबल महान्।
भारत आध्यात्म धाम है, भारत 'शरण' सन्मान॥"

श्रीमद्भागवत के इस वचन से भारतवर्ष के स्वरूप का दर्शन स्पष्ट है—

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः सन्यस्य संयान्त्यमयं पदं हरेः॥

उत्तमोत्तम स्वर्गलोकादिह तो क्या—जहाँ पर सतत रहने वाले सुरवृन्दों के एक-एक कल्प का आयुर्मान है, किन्तु जिस अनुपम लोक से इस भवार्णव में आते हैं, इस प्रकार ब्रह्मलोक आदिक दिव्य लोकों की विशेषता से अधिक भारतवर्ष की पवित्र वसुधा धाम पर स्वल्पायु में भी रहने या यहाँ जन्म प्राप्त करना परम श्रेष्ठतम है। क्योंकि श्रेष्ठ-पुरुष द्वारा पल मात्र में ही पंचभूतात्मक प्राकृत शरीर से किये जाने वाले सत्कर्म सर्वेश्वर श्रीहरि को समर्पित कर उनके सर्वोच्च दिव्यतम मङ्गलमय सान्निध्य प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है।

वस्तुतः इस प्रकार भारत का स्वरूप, उसका लोकोत्तर माहात्म्य अनिवर्चनीय हैं। ऐसे ही इस भारत की वीर-वसुधा पर अगणित वीर-वीरांगनाओं ने प्रकट होकर इसकी विविध संकटकालिक स्थिति में इसकी सर्वात्मना समग्ररूप से सुरक्षार्थ मनसा, वाचा, कर्मणा सेवा-सम्पादित करते हुए आवश्यकता पड़ने पर अपने आपको भी सहर्ष सगौरव समर्पित किया है—

"देश-संस्कृति संरक्षण, श्रीशिवाजी वीर।
असंख्य शत्रुदल संहरण, किया 'शरण' कर तीर॥
राणा-साँगा का समर, विश्व प्रसिद्ध विराट्।
अर्पित जीवन देश को, 'शरण' विभव सब थाट॥
श्रीयुत भामाशाह ने, भारत किया प्रकाश।
समस्त वैभव तज दिया, 'शरण' तजा तन श्वास॥

महाराणा प्रताप तप, अतुल अमिट अपार।
घोर समर तत्पर रहे, 'शरण' वीर अवतार॥
मरु राठौड़ दुर्गादास, नीति निपुण बलवान।
हिन्दू-संस्कृति रक्षा हित, 'शरण' शरण भगवान्॥
लक्ष्मीबाई रानी ने, झाँसी का इतिहास।
उज्ज्वल कितना कर दिया, शरण हृदय में वास॥"

जब-जब भी भारत पर आसुरी शक्तियों का प्रबल झंझावात उपस्थित हुआ, तब-तब यहाँ के उत्तमोत्तम वीर श्रेष्ठों ने उनका परिहार, उनका विनाश किया है। सतयुग-त्रेता-द्वापर-कलियुग इन प्रत्येक युगों में आसुरी शक्तियों ने भारत पर उत्पात मचाया है, जिसके परिशमनार्थ सर्वनियन्ता सर्वेश्वर स्वयं राम, कृष्ण रूप में किंवा अपने नित्य दिव्य पार्षदों द्वारा इस भूतल पर उन्हें भेजकर संकट का निवारण कराया है, श्रीमद्भगवद्गीता के इन दिव्य वचनों से स्पष्ट है—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्॥
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

यथार्थ में वे परम कृपामय प्रभु अपने इस दृढ़-संकल्प के अनुसार स्वयं अथवा अपने पार्षदों द्वारा अपने स्वकीय वचन द्वारा निर्दिष्ट कार्यों को सम्पादित करते हैं।

सम्प्रति भारत की धरा पर इस समय भी घोर संकट (पाकिस्तान द्वारा) उपस्थित हुआ है। भारत के उत्तरांचल में कारगिल के हिमाच्छादित क्षेत्र में विपरीत शत्रु ने भारत की निर्धारित नियन्त्रण रेखा में प्रवेश कर उस पर अपना आधिपत्य करते हुए सामरिक शस्त्रास्त्रों से युद्ध प्रारम्भ कर दिया, जिसके फलस्वरूप हमारी भारतीय सेना के श्रेष्ठतम वीर योद्धाओं के समक्ष भीषण संकट उपस्थित हो गया है। किन्तु यहाँ के वीरवरेण्य योद्धाओं ने अद्भुत शक्ति-सम्पन्न वीरों ने अपने प्रबल अस्त्रों का प्रयोग कर शत्रु को परास्त किया है और अपने क्षेत्र को उनसे मुक्त करा लिया है। इस भीषण समर में अनेक भारत के विभिन्न प्रान्तों के, मुख्यतः राजस्थान के वीरों ने युद्धकाल में अपने प्राणों की आहुति दे कर वीरगति प्राप्त की है। ऐसे वीरों के गौरवपूर्ण वृत्त अवगत कर पूरे देश ने महान् गौरव का अनुभव किया। वस्तुतः उन्हीं की पवित्र-स्मृति में यह "भारत-वीर-गौरव" ग्रन्थ रचित है।

इस काव्य की भाषा **सरल, सरस,** प्रसाद गुणमण्डित, सहज-अलंकारों से समलंकृत, वीररस संवलित भावों से पूर्णतः परिप्लावित है। यथा-उद्धरण दर्शनीय हैं—

"कारगिल निज क्षेत्र में, सीमा-रेखा देख।
तदुलंघन है अहितकर, 'शरण' विधान-सुलेख॥
अटल अटल है सीमा पर, विहारी शंख निनाद।

परम संयमी शुभ्रतम, 'शरण' कृष्ण नित याद॥
नियन्त्रण-रेखा में घुसे, पाक सैनिक अज्ञ।
गोलाबारी बम डाले, शरण हैं हत प्रज्ञ॥
भारत अद्भुत वीरों ने, लिया बुद्धि से काम।
प्रत्युत्तर में अस्त्र चले, 'शरण' पाक बेकाम॥
राजस्थान की वीर-भू, वीर-प्रसविनी सिद्ध।
जिसके प्रबल-प्रताप से, 'शरण' स्वदेश प्रसिद्ध॥"

भारत माता के सच्चे सपूत धर्मवीर, दयावीर, दानवीर, कर्मवीर एवं रणबाँकुरे बाँकड़ली मूँछों वाले यशस्वी युद्धवीरों द्वारा ही यह पावन भारत-वसुधा उपभोग योग्य है। जो काव्य के उद्धरण से सुस्पष्ट है—

"वीर भोग्या वसुन्धरा", कथित उक्ति चरितार्थ।
अद्भुत-साहस धीरता, अद्भुत पावन कार्य।
अद्भुत-शौर्य-सम्पन्नता, 'शरण' यही अनिवार्य॥"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि अनन्त श्री विभूषित निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु **श्री 'श्रीजी' महाराज द्वारा विरचित 'भारत-वीर-गौरव'** काव्य हिन्दी साहित्य की वीर-काव्य-परम्परा में अपना अनूठा स्थान निर्धारित करता है। अर्वाचीन-साहित्य प्रणयन में वीररस संवलित यह रचना अनूठा प्रयास है; ज़ो तत्कालीन कारगिल-युद्ध की विषम-परिस्थितियों के लिए समसामयिक उद्बोधनात्मक वीर-काव्य है।

(6) छात्र-विवेक-दर्शन

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री "श्रीजी" श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज, निम्बार्कतीर्थ—सलेमाबाद (राजस्थान) ने **"छात्र-विवेक-दर्शन"** की रचना कर छात्र जगत् का व्यवहार दर्शन भी संस्थापित किया है। अपने समीप अन्तेवासियों की सुदीर्घ परम्परा का अधुनातम आचार-विचार तथा अपने शिक्षालयों की यात्राओं में परिदर्शित छात्र-जगत् की क्रिया-प्रक्रियाओं, हाव-भावों, रहन-सहन, जीवनचर्या, मानसिकताओं, मन, शरीर, वाणी के गुणावगुणों का इस शैक्षिक रचना में गूढ़ार्थपरक सरल, सशक्त प्रसाद एवं चमत्कृति पूर्ण काव्यमयी रचना में स्पष्ट होता है। भगवती माँ सरस्वती गंगा की रसधारा मानों कलयुगी प्रभावों से विचलित, विखण्डित और अर्द्धतृप्त बालवाड़ी का संतर्पण करने ही प्रकट हुई हो।

चाहे आयुर्वेद सम्मत दिनचर्या हो, चाहे भागवत धर्म परक जीवनशैली हो अथवा सामाजिक परिवेश के अनुकूल विद्या संस्कारों की, संस्थापन हो, आचार्यश्री ने अपनी इस अमृतमयी रचना में अपने हृदय के सात्त्विक रस को निचोड़ कर सारस्वत चरणामृत प्रसाद के रूप में, सारस्वत राजस पंचपात्र में विद्यार्थी-जगत् को छात्रों के लिए माननीय—1. पीठस्थ छात्रों के लिए, 2. सर्वाङ्गीण छात्रा जगत् के लिए, 3. अभिभावकों

के लिए, 4. शिक्षकों के लिए, -. इस प्रकार पंचपात्र में—पंचामृत रूपी अमृत कलश को लोक कल्याण के लिए अवतरित किया है।

सरलतम भाषा में ग्रथित, पूर्णतया स्वाभाविक, छात्रों की जीवनशैली, संस्कृत-संस्कृति, धर्म और शिक्षा को सदाचार के राजसिंहासन पर स्थापित करने वाला यह काव्य अनुपम है, अभिनन्दनीय है। प्राथमिक एवं माध्यमिक तथा वरिष्ठ पाठ्यक्रमों के अनुपोषण हितार्थ इस रचना का सार्वजनिक स्वागत होगा तथा भावी रचनाओं के लिए ब्रह्मसूत्र, योगसूत्र की भाँति शिक्षा-सूत्रों के रूप में मार्गदर्शक बनेगा, इसी विश्वास के साथ 233 पद्यों तथा अष्टपदी से अभिमण्डित यह छात्र-मंजूषा छात्रों के चरित्र, ज्ञान, आचरण, विवेक, कर्म तथा सुपरिणाम को सुरक्षित रखने का सहस्रार्चिकप्रकाशलोक है, जिन दिशाओं का दिग्दर्शन बड़े-बड़े ग्रन्थों में भी छात्रों को सहज सुलभ नहीं होता, उनका समागम इस दिव्य शारद-वीणा से छात्र-जीवन निर्झरित अर्थात् संदर्शित हो रहा है।

मैं इस यशस्वी रचना के व्यापक प्रचार-प्रसार तथा वितरणकी मंगल कामनाएँ करता हूँ एवं शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी, अभिभावक तथा समाजरूपी वट-वक्ष की ओर इस कृति के प्रति एवं आचार्यश्री के रचना-सौष्ठव की सार्थकता, भावी आदर्श, भारतीय शब्दब्रह्म की रचना के सारस्वत यज्ञ की प्राण-प्रतिष्ठा का सादर वन्दन करता हूँ, अभिनन्दन करता हूँ।

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के पूर्ववर्ती आचार्यों ने दार्शनिक एवं शिक्षामय साहित्य संरचना की जो परम्परा स्थापित की थी उसे वर्तमान आचार्यश्री ने अपनी अनुशीलन और अनुभवपूर्ण काव्य गुणगरिमा की वल्लरी से मकरन्दायित किया है। वासन्तिक किया है और इस युक्ति को पूर्णतः चरितार्थ किया है—

"जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति तेषां यशःकाये पांचभौतिकमिदं भयम्॥"

उपसंहार

वैष्णव चतुः सम्प्रदायों में निम्बार्क-सम्प्रदाय अतिप्राचीन सम्प्रदाय है। उसका प्रादुर्भाव श्री ब्रह्माजी के मानस-पुत्र श्री सनकादि मर्हर्षियों से हुआ है। जैसाकि द्रष्टव्य है —

सनकः श्री ब्रह्म रुद्र सम्प्रदाय-चतुष्टयम्।

सनकादि मुनिजन, श्री (लक्ष्मी), ब्रह्माजी एवं भगवान् शंकर यही चारों वैष्णव चतुः सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। इस सम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा श्री हंस भगवान् से प्रारम्भ होती है। श्री हंस भगवान् ने सनकादिकों के प्रश्न का समाधान कर उन्हें वैष्णवी-दीक्षा प्रदान की थी। अतः श्री हंस भगवान् के शिष्य सनकादि मुनिजन हैं तथा श्री सनकादिकों के शिष्य देवर्षिवर्य नारदमुनि हैं। श्री नारद मुनि के शिष्य श्री चक्रसुदर्शनावतार आद्याचार्य जगद्गुरु भगवान् श्री निम्बार्कमहामुनीन्द्र हैं।

श्री हंस भगवान् श्री सनकादि मुनिजन तथा देवर्षिवर्य श्रीनारद ये तीनों तो देवस्वरूप में हैं, अतः प्रायः करके अनेक सम्प्रदायों की परम्परा में उनके नाम आ जाते है, किन्तु इनके पश्चात् श्री निम्बार्क भगवान् आचार्य रूप में इस धराधाम पर प्रकट हुए। अतः यह सम्प्रदाय **'निम्बार्क-सम्प्रदाय'** के नाम से लोक में अभिहित किया जाने लगा।

श्री निम्बार्क महामुनीन्द्र का प्राकट्य युधिष्ठिर शके 7 में दक्षिण भारत तैलंग (आन्ध्रप्रदेश) वैदूर्यपत्तन (वर्तमान में पैठण) गोदावरी तटवर्ती अरुणाश्रम में हुआ था। आपका जन्मकालीन अभिधान (नाम) 'श्रीनियमानन्द' था।

एक बार अपने आश्रम में दिवा भोजी दण्डी महात्मा के रूप में आये हुए श्री ब्रह्माजी को रात्रि हो जाने पर निषेध करते देखकर, आपने निम्बवृक्ष पर अपने तेज तत्त्व श्री सुदर्शन चक्र का आह्वान कर, महात्मा को सूर्यरूप में दर्शन कराकर उन्हें भोजन करा दिया था। निम्ब (नीम) के वृक्ष पर अर्क (सूर्य) के दर्शन कराने पर श्री ब्रह्माजी द्वारा आपका 'श्रीनियमानन्द' से 'निम्बार्क' नाम पड़ा। आपके द्वारा प्रसारित सम्प्रदाय को 'श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय' के नाम से अभिहित किया जाने लगा है।

निम्बार्क-सम्प्रदाय की पीठाचार्य-परम्परा में वर्तमान निम्बार्कपीठाधीश्वर जगद्गुरु **श्री राधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज** हैं, जो न्याय, व्याकरण, वेदान्त, दर्शन, धर्म, संगीत, आयुर्वेद, संस्कृत, हिन्दी एवं राजस्थानी आदि विविध विषय एवं भाषाओं के विद्वत्प्रकाण्ड हैं।

काव्य-प्रणयन के क्षेत्र में संस्कृत-वाङ्मय एवं हिन्दी-साहित्य निधि में आपका अक्षुण्ण अवदान है। आप हिन्दी, संस्कृत के एक सरस एवं सहृदय कवि हैं। आपश्री ने संस्कृत में गद्य, पद्य, स्तोत्र आदि विधाओं पर साहित्य सर्जन किया है।

प्रसाद गुण-मण्डित, उपमानुप्रासादि अलंकारों से अलंकृत आपकी प्रमुख संस्कृत कृतियाँ अधोलिखित हैं —

1. **भारत-भारती वैभवम् (राष्ट्रीय-काव्य)**
2. **युगल-गीति-शतकम् (गीति-काव्य)**
3. **श्रीस्तवरत्नांजलिः (पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध) ।**
4. **श्रीयुगलस्तवविंशतिः**
5. **श्रीराधामाधवशतकम्**
6. **श्रीसर्वेश्वरशतकम्**
7. **श्रीनिम्बार्कस्तवार्चनम्**
8. **श्रीराधाशतकम्**
9. **श्रीनिम्बार्क-चरितम् (गद्य-रचना)**
10. **नवनीत-सुधा (वेदान्त कामधेनुदशश्लोकी की संस्कृत व्याख्या)**
11. **निकुंज-सौरभम्**

आचार्यश्री द्वारा विरचित-'भारत-भारती-वैभवम्' का विषय विवेचन भी विलक्षण है। ग्रथित विषय-वस्तु भारत-वैभवम्' तथा 'देव-भारती-वैभवम्' नामांकित द्वय शीर्षकों में वर्णित है। प्रथम भाग में भारत भूमि के पर्वत, नदी-नद, समुद्र, तीर्थ, सागर, वृक्ष, पशुपक्षी, जनधनादि से संयुक्त प्राकृतिक परिवेश के प्रति प्रगाढ़ रागात्मकता अभिव्यक्त हुई है। भारत राष्ट्र के इस साकार स्वरूप के प्रति अद्भुत आकर्षण-विमोहन से उत्पन्न अनन्यभावपूरित उत्कृट प्रेम का उद्घाटन ही इस काव्य का मर्म है। भारत के उत्तर दिशा में स्थित हिमाच्छादित श्वेत हेम-वर्णी गिरिशृंगों से युक्त विशाल पर्वतराज हिमालय, दुग्ध-धवल-जल-पूरित कलकलनिनादिनी गंगा-यमुना-सरयू-गोदावरी प्रभृति नदियों, शस्य-श्यामल-हरित भूमि, नित्य तरंगित रत्नगर्भ दाक्षिणात्य सागर, जम्बू-कदली-कदम्ब-आम्रवृक्षावलि आदि 'भारत-भारती-वैभवम्' को यहाँ दिव्य वंदनीय चरणीय माना है। मधुर-राग-रंजित और लयात्मक कोमलकान्त-संस्कृत पदावली में वर्णित भारत माता का यह वर्णन अनुपम है—

(1) जयति मदीया भारतमाता।
निर्मलसुभगा मणिमयरूपा रम्या विविधगुणैरवदाता॥
सस्यश्यामला परमविशाला हिमगिरिधवला परिसंजाता॥
राधासर्वेश्वरशरणस्य चकास्ति चेतसि भारतमाता॥ 8॥

(2) गंगा-कलिन्दतनया-सरयू-त्रिवेणी
गोदावरीप्रभृतिदिव्यतरंगिणीभिः ।
नानागिरीन्द्रहिमशैलवरैः सुरम्यं
वन्दे सदा रुचिरभारतवर्षदेशम् ॥ 10 ॥
(3) अत्युद्भुतानि विपिनानि मनोहराणि
जम्बू-कदम्ब-कदलीतरुशोभितानि ।
आम्रावलीविविधवृक्षयुतानि यत्र
वन्दे च तं रुचिरभारतवर्षदेशम् ॥ 12 ॥

"भारत-भारती-वैभवम्"—मातृभूमि वंदना का महागीतिकाव्य है, जिसके प्रत्येक पद में भूमि-वैशिष्ट्य का भावात्मक स्तवन और नमन हुआ है।

'भारत-भारती-वैभवम्' के ऐसे अनूठे-अलौकिक, दिव्या-दिव्य वैशिष्ट्य वर्णन से परिपूर्ण यह एक गीतिपद नहीं, प्रत्युत राष्ट्रभक्ति का वेदवाक्य है। प्रस्तुत पद्य 'भारत-भारती-वैभवम्'—का परम वैभव है। गीतिकार ने यहाँ कलात्मक गागर में भावों का विशाल सागर भर दिया है, जिसमें ज्ञान-भक्ति, संगीत, काव्य-कला, गीति-लालित्य तथा संस्कृत-संस्कृति का अद्भुत समन्वय हुआ है। अस्तु 'भारत-भारती-वैभवम्' की इस गीति मणिमाला का यह सुमेरु है। यह राष्ट्रगीति पद राष्ट्रकवि श्रीबंकिम चटर्जी द्वारा प्रणीत 'वन्देमातरम्' की भाँति परम गेय है—

"वन्दे नितरां भारतवसुधाम् ।
दिव्यहिमालय-गङ्गा-यमुना-सरयू-कृष्णाशोभितसरसाम् ॥
मुनिजनदेवैरनिशं पूज्यां जलधितरंगैरंचितसीमाम् ।
भगवल्लीलाधाममयीं तां नानातीर्थैरभिरमणीयाम् ॥
अध्यात्मधरित्रीं गौरवपूर्णां शांतिवहां श्रीवरदां सुखदाम् ।
सस्यश्यामलां कलितामभलां कोटि-कोटिजनसेवितमुदिताम् ॥
वीरकदम्बैरतिकमनीयां सुधीजनैश्च परमोपास्याम् ।
वेदपुराणं नित्यसुगीतां राष्ट्रसुभक्तैरीड्यां भव्याम् ॥
नानारत्नैर्मणिभिर्युक्तां हिरण्यरूपां हरिपदपुण्याम् ॥
राधासर्वेश्वरशरणोऽहं वारं वारं वन्दे रम्याम् ॥ 1 ॥

अस्तु, सभी दृष्टियों से "भारत-भारती-वैभवम्" राष्ट्रभक्ति गीति साहित्य की अमरकृति है, जिसके कलात्मक-कमनीय कलेवर में वर्णित वस्तु, भावपरक सुमधुर राष्ट्रीय वन्दना, संस्कृत संस्कृति-सौष्ठव अनूठे और अद्वितीय है। वस्तुतः यह युगान्तरकारी विश्व-भारती है, जो निश्चय ही राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत वाङ्मय मंच पर समादृत है।

अनन्तश्रीविभूषित निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज के साहित्य में राष्ट्रीयता, भक्ति एवं शृंगार की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। 'भारत-भारती-वैभवम्'

राष्ट्रीयता से परिपूर्ण काव्य है, श्रीस्तवरत्नांजलिः, श्रीयुगलस्तवविंशतिः – प्रभृति स्तोत्र ग्रन्थ में भक्ति-भागीरथी की अजस्रधारा बही है।

युगलगीतिशतकम्, राधामाधवशतकम् निकुंजसौरभम् – आदि काव्यों में प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधव की युगलरसोपासना दृग्गोचर होती है। इन काव्यों में युगल किशोर किशोरी श्री श्यामाश्याम के अलौकिक शृंगार की कमनीय छटा दर्शनीय है। अतः सुस्पष्ट होता है कि सहृदय कवि वर्तमान आचार्यवर्य द्वारा प्रणीत संस्कृत-कृतियाँ अर्वाचीन संस्कृत साहित्य निधि के लिए परमोपादेय दैदीप्यमान रत्न-राशि की भाँति हैं।

वर्तमान निम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज ने हिन्दी में भी विविध कृतियाँ प्रणीत की हैं—

(i) श्री सर्वेश्वर-सुधा-बिन्दु (गेय काव्य) (श्रीराधा सर्वेश्वर-शतक)

(ii) भारत कल्पतरु (राष्ट्रीयता से परिपूर्ण काव्य)

(iii) विवेक-वल्ली

(iv) उपदेश-दर्शन (आचार्य श्री के प्रवचनों का संकलन)

(v) हिन्दू-संगठन (सामयिक-उद्बोधन)

(v) श्रीराधा सर्वेश्वर-मंजरी

(v) छात्र-विवेक-दर्शन

(v) भारत-चीन-गौरव (वीर रस संकलित काव्य)

आपश्री के द्वारा विरचित हिन्दी ग्रन्थ, हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना अनुपम योगदान देते हैं। '**भारत-कल्पतरु**' जैसा, राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक मूल्यों से ओत-प्रोत काव्य युगानुरूप आकलनीय हैं। इस काव्य में वर्तमान आचार्यश्री ने भारतमाता के प्रति अपने समादरणीय एवं वन्दनीय अनन्य भावों को साकार रूप देने का सुप्रयास किया है। यथा—उद्धरण दर्शनीय हैं—

"भारत माता नमन निरन्तर।
अति पावन मन विमल भाव भर,
जिन पद पंकज निज मस्तक धर॥
अनुपम दर्शन बुध जन सेवित,
शोभित नाना तीर्थ सरोवर।
'शरण सदा राधासर्वेश्वर'
कोटि नमन है पुलकित अन्तर॥"

x x x

जय जय बोलो भारत वसुधा।
शस्य श्यामला गंगजल विमला, कोटि चन्द्र सम शीतल अतुला॥
गोरस सरिता सुरगण गीता, विलसत अनुपम निर्मल प्रभुता।
शरण सदा राधासर्वेश्वर, पुनि पुनि बोलो जय जय वसुधा॥"

अनन्तश्रीविभूषित निम्बार्कपीठाधीश्वर वर्तमान जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज द्वारा प्रणीत 'श्री-सर्वेश्वर-सुधा-बिन्दु' में निम्बार्कीय रसोपासना का मूल तत्त्व 'बीज बिन्दुवत्' सार रूप में प्रतिपादित है। माधुर्य भाव से परिपूर्ण-कोमलकान्त पदावली एवं रागबद्ध गीति में यहाँ (इस ग्रन्थ में) निम्बार्कीय सहचरी-सेवा, नित्यकेलि तत्व, युगल-स्वरूप एवं उनके लीला-लीलाधाम आदि का सारगर्भित मार्मिक वर्णन हुआ है। केलिरत श्यामश्याम के ये ही दिव्यदर्शन निकुंज रस का परमानन्द है, अहर्निश निकुंज-केलि-क्रीड़ा के विधान में दिव्य भाव समन्वित सहचरी के नेत्र कुंजरन्ध्रों से इसी दिव्य-दर्शन के चिरभिलाषी हैं, धन्य है, यह छवि—

"छाई श्याम घटा अति प्यारी।
श्री वृन्दावन पावन धरणी, बरषत सरसत सुन्दर वारी॥
युगल-किशोर रति-रस भीजत, उमगत सुख रस परम अपारी।
कोकिल कूजत, मोर मधुर धुनि, सुनि सहचरि मन मोद महारी॥
द्रादुर घोर करत अति सुन्दर, वेणु बजावत कुंजबिहारी।
शरण सदा 'राधासर्वेश्वर' चला चमकत पुनि-पुनि प्यारी॥"

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि, **'निम्बार्क-सम्प्रदाय'** की पीठाचार्य-परम्परा श्री भगवन्निम्बार्काचार्य से प्रारम्भ होती है, जो विकास-यात्रा के अनेकानेक सोपानों को पार करती हुई वर्तमान निम्बार्क-पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज तक क्रमशः पहुँची है। वर्तमान आचार्यवर्य श्री 'श्रीजी' का संस्कृत वाङ्मय एवं हिन्दी साहित्य को प्रदत्त अवदान अतिशय रूप में प्रशंसनीय है, जो संस्कृत, व हिन्दी-साहित्य श्री-वृद्धि में चार-चाँद लगाता है। वर्तमान श्री 'श्रीजी' महाराज द्वारा प्रदत्त साहित्यिक योगदान संस्कृत तथा हिन्दी-साहित्य-वारिधि में सम्मिलित होने वाली उत्ताल-तरंगों से प्रवहमान सरस-सलिल-समलंकृत-सरिता भागीरथीवत् है, जिसकी परम-पावन-पतित-पाविनी-पुनीत छटा यत्र-तत्र-सर्वत्र परिव्याप्त है।

सभी भक्तहृदयों की आराध्य युगलकिशोरस्वरूप राधा-माधव से विनम्र प्रार्थना है कि वर्तमान आचार्यश्री दीर्घायुष्य प्राप्त कर इसी प्रकार लोकहितार्थ सरस साहित्य की सर्जना में लीन रहें। शुभमस्तु।

"जय जय श्री राधे जय जय सर्वेश्वर।"